श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ पारसभागप्रारम्भः ॥

प्रथमं प्रकरणम् ॥

केभक्त भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक ।
नके पद वन्दनकिये, नाशत विघ्न अनेक ॥ १ ॥

वरण स्तुति और शुक्र एक उसी महाराज के लिये आकाश
ो बूंदें और बनस्पतियों की पत्ती और पृथ्वीके रेणु के समान
श्वर्य और उसकी पूर्णताई और सामर्थ्यताई को कोई जीव
ता पुनः उसके सम्पूर्ण पहिंचानने के मार्ग को कोई नहीं पा-
महाराज की सृष्टि के विषे किसी और जीव की सामर्थ्य और
ा ताते जे महापुरुष सच्चे हैं सो उनकी भी अन्त अवस्था यही
: सम्पूर्ण पहिंचानने के विषे अपनी असामर्थ्य वर्णन करते हैं
बड़े ईश्वर भी महाराज की स्तुति और बड़ाई विषे अपनी
और महाबुद्धिमानों की बुद्धि भी उसके आदि प्रकाश और
रता को प्राप्त होती है पुनः जिज्ञासु और प्रीतिमान् भी उसके
ता के ढूंढ़ने के विषे विस्मय होरहे हैं और उसके स्वरूप का
पे प्राप्त नहीं होता बहुरि उसका समझावना और आकार स्थूल
ण है इसीकारण से बुद्धिरूपी नेत्रों की दृष्टि उसके स्वरूप के
जाती है ताते सर्व बुद्धियों का फल यही है कि उसकी आश्चर्य-
ो देखकर महाराज को पहिंचानें और किसी मनुष्य का ऐसा

क्या है और यह भी किसी को उचित नहीं कि जो एक
आश्चर्यरूप कारीगरी से अचेत होवै और इसप्रकार न जाने
कर्त्ता और आश्रय कोई नहीं ताते चाहिये कि कारीगरी व
माने कि यह सर्व जगत भी उस महाराज के ऐश्वर्य का प्र
ही के तेज का प्रकाशहै बहुरि सर्व आश्चर्यमय जो रचना है
भव है और सब कुछ उसके स्वरूप का आभास है ताते
उत्पन्न हुये हैं और उसही विषे स्थित हैं तात्पर्य यह कि स
कोई पदार्थ भगवन्त की शक्ति बिना आप करके स्थित ना
का आश्रय वही है बहुरि उसके प्रियतम जे सन्तजनहैं सो
शुभमार्ग दिखावनेवाले हैं और भगवन्त के गुह्य भेद लखा
दयालुरूप हैं ताते उनको भी मेरा नमस्कारहै आगे ऐसे ज
को भगवन्त ने व्यर्थ बोलने और हँसने के निमित्त नहीं उ
मनुष्यका पदभी महाउत्तमहै और भयभी अधिक है और यह
नहीं अर्थात् उत्पन्न किया हुआहै पर तौ भी अविनाशीरूपहै
का स्वरूप स्थूलतत्त्वों करके रचाहुआ है पर इसका हृदय
महाउत्तम और अमर है बहुरि यद्यपि इस जीव का स्वभा
पशुओं और सिंहों और भूतोंके स्वभावके साथ मिलाहुआ
की कुठारी विषे डालिये तब नीचस्वभावों के मैलते शुद्ध
भगवन्तके दर्शन और दरबारका अधिकारी होताहै ताते प्र
गति महारसातलहै और ऊर्द्धगति जे देवताहैं सोभी इसी
नीचगति विषे जाना यह है कि पशु और सिंहों के स्वभा
लोभों और क्रोधके वशीकार होना बहुरि ऊर्द्धगतिजाना य
विषे स्थित होना और भोग और क्रोधको अपने वशीकार
धीन रखना सो जब इनको अपने वशमें करताहै तब भगव
कारी होताहै सो देवताका स्वभाव यहीहै और मनुष्यकी उ

जब इस

जानता है और यह जो मनुष्य देहरूपी रत्न है सो आदि
और मलीन होता है ताते पुरुषार्थ और साधन बिना किसी
नहीं पहुँचता जैसे तांबे और और धातु को पारस बिना स्व
है और यह विद्या सब कोई नहीं पहिंचानसक्का तैसेही मह
सो तिसको पशुओं के स्वभावरूपी मैलसे शुद्ध करना
प्राप्त होना सो यहभी विद्या महागुप्त है और कोई नहीं जानत
है सो भागों का पारस है और इस विषे जे सुन्दर वच
ताते इस ग्रन्थ का नाम पारसभाग राखाहै काहेते कि पार
है पर वह पारस जो तांबे को स्वर्ण करता है सो स्थूल औ
तांबे और स्वर्ण विषे रूड़ी का भेदहै और उस स्वर्ण का
होते हैं सो माया आपही नाशवान है ताते माया के भोग
परिणामी होजाते हैं बहुरि यह जो पारसरूपी वचन है सो
कि इन वचनों करिके महारसातल से ऊर्द्धगति को प्राप्त ह
ते और ऊर्द्धगति विषे बड़ा भेद है और जब यह मनुष्य नि
द्धगति को पहुँचता है तब अविनाशी भागों को पहुँचता
कि उसका काल और अन्त नहीं बहुरि दुःखरूपी मैल भी
दाचित स्पर्श नहीं करता ताते इस ग्रन्थ का नाम पारसभा
शोभा भी दृष्टिमात्रही कही है ताते जान तू कि तांबा
स्वर्ण होतीहै जब प्रथम पारस की प्राप्ति होवे सो यह स्थूल
र सब किसी के गृह में नहीं पायाजाता किसी सिद्ध अवस्थ
किसी महाराजा के भण्डार विषे होता है तैसेही वह सूक्ष्म
के भण्डार विषे है सो भगवन्त का भण्डार सन्तजनों का
ई इस पारस को सन्तजनों के हृदय बिना अपर ठौर ढूंढ़
ता फिरता है और उसको प्राप्त कुछ नहीं होता इसीकार
काल में निर्द्धनताई को प्राप्त होता है और झूंठे मद करिके
था सो पीछे निर्लज्जता को प्राप्त होता है ताते

इस प्रकार तैंने समझा तब कुछ एक अपने आपका पहिंचानना होवेगा और जो कोई इस भेद को नहीं पहिंचानता उसको धर्ममार्गविषे चलना कठिन होता है और आत्मसुख विषे उसको आवरण होता है ॥

दूसरा सर्ग ॥

बहुरि जब तू आपको पहिंचानना चाहताहै तब इस प्रकार निश्चय जान कि तुझको दो पदार्थ करिके उत्पन्न किया है सो एक तो शरीर जो स्थूलनेत्रों करिके देखाजाताहै और दूसरा चैतन्य है वह सूक्ष्मरूप है और उसको जीव कहते हैं और मन कहते हैं और चित्तभी उसीका नाम है सो तिसको बुद्धिरूपी नेत्रकरि देख सक्ता है और स्थूलनेत्रों की दृष्टि ते परे है ताते तेरा जो निजस्वरूप है सो वही चैतन्य तत्त्व है और जेते गुण हैं सो चैतन्य के अधीन हैं और उसीके टहलुवे हैं अथवा सेनाकी नाईं हैं और मैंने उसी चैतन्य का नाम हृदय राखाहै सो यह बार्त्ता निस्सन्देह है कि आत्मा और हृदय और मन उसी चैतन्य के नाम हैं ताते मैं जो हृदय का वर्णन करताहूं सो मेरा प्रयोजन शरीरके हृदयस्थान का नहीं काहेते जो इस स्थूल हृदयस्थान का स्वरूप मांस और त्वचाकरि रचाहुआ है और पञ्चभूतों का रचाहै ताते जड़रूप है और मनुष्य का जो चैतन्यरूप हृदय है सो स्थूल सृष्टि ते विलक्षण है और इस शरीर में परदेशी की नाईं अपने कार्यनिमित्त आया है बहुरि यह जो स्थूल हृदय का स्थान है सो जीव का घोड़ा अथवा शस्त्र है और सब इन्द्रिय भी जीव की सेना हैं और शरीर का राजा जीवहै ताते भगवन्त के पहिंचानना और उसका देखना भी जीवको अधिकार है इसीकारण ते दण्ड और उपदेश और पुण्य पाप का अधिकारी वही जीवहै ताते भाग्यहीन और भाग्यवान् उसी जीव को कहाजाता है और सर्वकालविषे शरीर उसके अधीन है इसी कारण ते उस चैतन्य के स्वरूप का पहिंचानना और उसके स्वभावों का समझना भगवन्त के पहिंचानने की कुञ्जी है ताते तू यही पुरुषार्थ कर कि चैतन्यरूप को पहिंचानै काहे ते कि यह चैतन्यरूपी रत्न दुर्लभ है और देवताओं की ना[illegible]

अपने कार्य के निमित्त यहां आया है ताते तुझको वह कार्य भी अवश्यमेव पहिंचानना चाहिये पर भगवन्त की दया करिके जानाजाता है ॥

तीसरा सर्ग ॥

आत्मसत्ता के अभ्यास का वर्णन ॥

अब आत्मसत्ता के अभ्यास का वर्णन करताहूं ताते जान तू कि जब लग चैतन्यरूपको नहीं पहिंचानिये तबलग हृदयके यथार्थस्वरूप को पहिंचान नहीं सक्ता सो इसीकारण से भगवन्त का पहिंचानना भी नहीं होसक्ता और उत्तम भागों को भी नहीं पावता और जब एकभाव करिके देखिये तो चैतन्यरूप अति प्रकट है काहेते कि चैतन्य का होना शरीर के आश्रित नहीं जैसे मृतकशरीर और इन्द्रिय प्रकट होती हैं पर चैतन्यसत्ता विना उसको मृतक कहते हैं बहुरि यों भी है कि जब कोई पुरुष नेत्र आदिक इन्द्रियों को रोंके और चैतन्यता के अभ्यास विषे सर्वशरीर और स्थूल जगत् विस्मरण करै तब निस्सन्देह अपने आप को पहिंचान लेवे और यथार्थरूप आत्मा को जानै बहुरि उसी विषे अधिक अभ्यास करै और विचारकरे तब सुगमही परलोक को भी देखलेवे और इस वार्त्ता को भी प्रत्यक्ष जाने कि जब इस मनुष्य का शरीर छूटताहै तब चैतन्यरूप जीव का नाश नहीं होता और अपने आप विषे स्थिर रहता है ॥

चौथा सर्ग ॥

साधनाकाल का वर्णन ॥

बहुरि इस जीवका जो शुद्ध स्वरूप है और जो इसका परम स्वभाव है सो तिसका खोलना धर्मशास्त्रविषे प्रमाण नहीं कहा इसीपर एक वार्त्ता है कि लोगों ने जाकर महापुरुष से पूछा था कि जीवका स्वरूप क्या है तब उन्होंने जीवका परम स्वरूप वर्णन नहीं किया और भगवन्त की आज्ञा पाकर इतनाही कहा कि यह महाराज की सत्तामात्र है सो इससे अधिक बखान करना उचित नहीं देखा ताते इतनाही उत्तर दिया कि यह सब सृष्टि दो प्रकार की रचना है सो एक सृष्टि स्थूल है और दूसरी सत्तारूप सूक्ष्म है सो जिस पदार्थ की मर्याद और आकार और बढ़ना घटना है तिसको स्थूल कहते हैं और चैतन्यसत्ता जो सूक्ष्मरूप है तिसकी मर्याद और आकार कुछ नहीं और अखण्ड है काहेते कि वह

का नाम जीव इस निमित्त कहा है कि यह भगवन्त का उत्पन्न कियाहुआ है इसी करके जीव को सूक्ष्मसृष्टि कहागया है पर तौ भी इसका स्वरूप स्थूल नहीं ताते सूक्ष्म है बहुरि जिन पुरुषों ने इस प्रकार निश्चय किया है कि यह जीव अनादि है सो वे भी भूले हैं और जिन्होंने इस जीवको प्रतिबिम्ब जाना है सो वे भी भूले हैं काहेते कि प्रतिबिम्ब आपकरिके वस्तु कुछ नहीं और जो अनादि है वह उत्पन्न कियाहुआ नहीं होता और यह जो जीव है सो उत्पन्न कियाहुआ है और शरीर का आश्रय है ताते इसको प्रतिबिम्ब भी कहना योग्य नहीं और जिन्हों ने इस शरीर को आत्मा प्रमाण कियाहै सो वे भी भूले हैं काहेते कि यह शरीर खण्ड २ होजाताहै और आत्मा अखण्डहै और ज्ञानस्वरूपभी है सो यह शरीर भी नहीं और प्रतिबिम्ब भी नहीं अर्थ यह कि सत्तारूप है और चैतन्य है और देवताओं की नाईं प्रकाशमान है और इस जीवका जो कारणस्वरूप है सो तिसका पहिंचानना दुर्लभ है और वचन विषे प्रसिद्ध कहाभी नहीं जाता और साधन काल विषे जिज्ञासु को इस निर्णय की अपेक्षा भी नहीं रहती काहेते कि धर्ममार्गविषे जिज्ञासु को यत्न और उद्यम चाहिये है बहुरि जब विधिसंयुक्त पुरुषार्थ दृढ़ होजाता है और भली प्रकार दृढ़ अभ्यास करताहै तब जिज्ञासु को आपही स्वरूप का ज्ञान भास आवता है और उसको किसी से कुछ सुनने की अपेक्षा नहीं रहती काहे ते कि स्वरूप का ज्ञान अपने पुरुषार्थ और भगवन्त की दया से प्राप्त होताहै इसीपर साईं ने भी कहा है कि जब पुरुष मेरे मार्ग विषे मन और अभ्यास करतेहैं तब मैं उनको अपने स्वरूप का ज्ञान लखावता हूं और जिस पुरुष ने यत्न और पुरुषार्थ भली प्रकार न किया होवे तब उसको आत्मस्वरूप की वार्त्ता प्रसिद्ध करनी योग्य नहीं और जब उसको कहिये तब दृढ़ भी नहीं होती जबलग यत्न के आगेही जीवकी सेना को न पहिंचानिये तब तक अशुभ सेना से विरुद्ध भी नहीं करसक्ता ॥

पांचवां सर्ग ॥

जीव की सेना का वर्णन

है सो परलोकके कार्यनिमित्त पैदा किया है सो कार्य इसका क्या है कि अपनी भलाई को ढूंढ़ना और भलाई इस जीवकी यह है कि भगवन्त का पहिचानना और भगवन्त का पहिंचानना उसकी आश्चर्य कारीगरी करि होती है सो यह सर्व जगत् भगवन्तही की कारीगरी है और कारीगरी का पहिंचानना इन्द्रियों करि होता है सो इन पांचों इन्द्रियों का आश्रय शरीर है ताते ये इन्द्रियां फांसी की नाईं हैं और शिकार इनका कारीगरी है और यह शरीर पांच तत्त्वों करि रचा हुआहै और वात पित्त कफ इसमें प्रबल विकार हैं ताते सर्वदा इसको नाशहोने का भय रहता है और यद्यपि यह शरीर भूंख और तृषा करि भी नाश होजाता है और जल और अग्नि और शत्रु और सिंह आदिक भी इसको नाश करनेवाले हैं ताते भूंख और प्यास दूर करनेको भगवन्त ने जल और अनाज उत्पन्न किया है और शरीर की रक्षा के निमित्त दो प्रकार की सेना रची है सो एक स्थूल है जैसे हाथ और पांव और नाना प्रकार के शस्त्र बहुरि दूसरी सेना सूक्ष्महै सो चाह और क्रोध है पर सर्व कार्यों के पहिंचाननेवाली बुद्धि है सो प्रथम बुद्धि करिकै शत्रु को पहिंचानता है तब क्रोध करिकै जल और अनाज को खींचता है और शरीर की रक्षा करताहै बहुरि श्रवण त्वचा नेत्र रसना नासिका जो पञ्चइन्द्रियहैं सो यह भी बुद्धि के आश्रित हैं और शरीर का प्रेरक चतुष्टय अन्तःकरण है सो यह सभी सेना भगवन्त ने कार्यनिमित्त बनाई है और जब इस सेना विषे किसी को कुछ विघ्न होजाता है तब इस मनुष्य का स्वार्थ और परमार्थ का कार्य सिद्ध नहीं होता और ये सूक्ष्म स्थूल जो सेना हैं सो सब जीवही के अधीन हैं पर राजा इनका जीव है सो जब रसना को आज्ञा करताहै तब बोलने लगती है और हाथ आज्ञा से ग्रहण करते हैं और चित्त को जब आज्ञा करता है तब चित्त विषे चिन्तन की शक्ति आय फुरती है इसीप्रकार सब अङ्गों और सर्व स्वभावों विषे जीव ही की आज्ञा वर्तती है तब यह जीव परलोक मार्ग के तोशे को बनावे और भगवन्तकी पहिंचानरूपी शिकार को फँसावै और अपनी भलाई के बीज को बढ़ावै और परमार्थ के कार्यविषे दृढ़ होवे तब निस्संदेह परमपद को पहुँचता है और शरीर की रक्षा करनी भी इस निमित्त प्रमाण कही है कि यह जीव शरीर

हैं सो यह सबही जीवकी सेनाहै यद्यपि उस सेना का बखान करना बहुत विस्तार है पर तौभी समझाने के निमित्त कुछ वर्णन करताहूं अब ऐसे जान तू जो यह शरीर राजाका नगरहै और सब इन्द्रियां इस शरीर विषे बसनेवाले लोगहैं और भोगों की अभिलाषारूपी राजा का प्रधान है और क्रोधरूपी कोतवाल है और जीव इस देश का राजा है बुद्धि इसका मन्त्री है पर जीवरूपी राजाको इस सर्व सेना की चाहहै काहे ते कि राज्य इनहीं करिके सिद्ध होती है पर अभिलाषारूपी क्रोध प्रधानहै सो महाझूंठा और पाखण्डी है और बुद्धिरूपी मन्त्रीके कहने से विपर्यय वर्तता है और सर्वदा योंही चाहताहै कि राजा की सामग्री सब मैंहीं खर्च लेऊं बहुरि क्रोधरूपी जो कोतवाल है सो महातीक्ष्ण और कठोर है और सर्वदा जीवों का घातही चाहता है इसीकारण ते जीवरूपी राजाको देश महादुःखी रहता है पर यह जीव जो राजा है सो जब बुद्धिरूपी मन्त्री के साथ सम्मत लेवै और अभिलाषारूपी प्रधानको निर्बल करिके अपने वशीकार करै और बुद्धिते विपर्यय जो कुछ कहै सो न मानै और कोतवाल को उसके ऊपर प्रबल करै तब उसको मर्याद विषे राखसक्ता है इसीप्रकार क्रोधरूपी कोतवाल को प्रबल न होने देवै और मर्यादते उलंघिकरि न बर्तने देवै तब इसका देश सुखी होवै और सदैव बुद्धिरूपी मन्त्री के कहनेके अनुसार बर्तै जो अभिलाषा और क्रोध को ऐसा निर्बलकरै कि वहभी बुद्धि की आज्ञाविषे चलै और बुद्धि को उनके अधीन न करै तब इसका राज्य स्वाधीनहोवै और सुखेन होवै और भगवन्तके दरबारमें विघ्न न होवै पर जब यह जीव बुद्धिको अभिलाषा और क्रोधके अधीन करदेवै तब इसका राज्य नष्ट होजाताहै और राजा भी मन्दभागी होता है ताते इस करके प्रसिद्ध हुआ कि भोग और रागभी शरीरकी रक्षाके निमित्त उत्पन्न किये हैं तैसेही जल और अनाज भी शरीर का आहार बनाया है और शरीर को इन्द्रियोंके ठहराने के निमित्त बनायाहै ताते शरीर इन्द्रियों का टहलुवा है बहुरि इन्द्रिय जो हैं सो बुद्धि को खबर पहुँचाने के निमित्त रची हैं कि इन्द्रियों करिके भगवन्त की कारीगरीको देखै और जानै ताते यह इन्द्रियां बुद्धिकी टहल करने वाली हैं और तैसेही बुद्धिको जीवके निमित्त उत्पन्न किया है सो यह बुद्धि जीव

दर्शन इस जीव का परमस्वर्ग है ताते बुद्धि जीव का टहलुआ है तैसेही जीव के महाराज के दर्शन निमित्त बनाया है सो जब यह जीव महाराज के दर्शन को प्राप्त होवे तब अपने उत्तम कार्यको पावताहै और महाराज की सेवाविषे लीन होताहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मैंने सर्वमनुष्यों को अपने भजन के निमित्त उत्पन्न किया है सो इसका अर्थ यही है कि इस जीवको महाराज ने उत्पन्न किया है और इन्द्रियादिक सेना दीनीहैं और शरीररूपी घोड़ा दिया है कि जिस करिके स्थूलदेश से गमनकरके सूक्ष्मदेश बिषे पहुँचे बहुरि जब यह जीव भगवन्त के उपकार का धन्यवाद कियाचाहे और भगवन्त का दर्शन हुआ चाहे तब इस प्रकार प्रथम इसको करना योग्य है कि इस शरीररूपी देश बिषे बैठकर राज्य करै और अपना मुख भगवन्त की ओर लावै और इस संसार से गमन करने की इच्छाराखे और सर्व इन्द्रियों को अपनी टहल बिषे लगावै अर्थ यह कि अपने २ कार्य बिषे सावधान करै और तब इन्द्रियों करके जो कुछ कार्य करै तिसको चित्त बिषे बिचारे बहुरि समय पायके बुद्धिबिषे उसका अभ्यासकरै और बुद्धिरूपी मन्त्री उस खबर को पाकर राजा को समझावै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे देश की खबर दूत ले आवते हैं और उनसे दरवान खबर लेकर मन्त्री को पहुँचावते हैं और वह मन्त्री राजा को समझाय देताहै तैसे इन्द्रियरूपी दूतहैं और चित्त इसका पवँरिया है और बुद्धिरूपी मन्त्री है सो इस प्रकार इन्द्रियरूपी दूतोंने जो खबरें चित्तरूपी पवँरिया के द्वारा मन्त्री बुद्धिरूपी को पहुँचाई हैं तिनको मन्त्री के द्वारा जीवरूपी राजा पाता रहै बहुरि बुद्धिरूपी मन्त्री जब देखे कि इस जीव की सेना में काम और क्रोध अथवा कोई और स्वभाव प्रबल हुआहै और राजा की आज्ञासे विपर्यय होकर बिचरने लगा है और राजा को नाश किया चाहता है तब बुद्धिरूपी मन्त्री उसको अपने अधीनकरै और कोमल करके राखै काहेते कि उन बिना शरीर का व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता और उनका प्रबल होना भी दुःखदायक है ताते जब इसकी आज्ञा बिषे होते हैं तब वह सर्वस्वभाव भी यथार्थमार्ग की सहायता करते हैं और वह जीवरूपी राजा अपने स्वामी को

के साथ मिलजावे अर्थात् बासना के अधीन होजावे तब भगवन्त के उपकार का कृतघ्नी होजाता है और मन्दभागी होता हुआ महादुःख पाता है॥

छठा सर्ग॥

जीव के स्वभाव का वर्णन॥

ताते ऐसे जान तू कि जितने स्वभाव इस शरीर विषे पाये जाते हैं सो सबों के साथ इसका सम्बन्ध है और इस विषे इतना भेदहै कि कोई स्वभाव तो शुभ होते हैं और कोई अशुभ होते हैं सो अशुभ स्वभावों करि इस जीव को नाश होताहै और शुभ स्वभावों करि उत्तम अवस्था को पावता है सो वह स्वभाव यद्यपि अगणित हैं पर तो भी चार प्रकारके स्वभाव हैं सो एक स्वभाव पशुओंके हैं और दूसरे सिंहों के तीसरे प्रेतों के चौथे देवतों के सो प्रथम जो इस मनुष्य विषे भोगोंकी अभिलाषा है और तृष्णा है सो इस करके पशु आदिक व्यवहार सिद्ध होताहै अर्थात् कामादिक खान पानादिक भोगों विषे लगे हैं बहुरि दूसरा जो क्रोधका स्वभाव है तिसकरके सिंहादिक व्यवहार सिद्ध होताहै जैसे मन कर्म वचन करके ईर्षा और दुर्वचन और जीवों का घात करना और तीसरा भूतों का स्वभाव मनुष्य विषे यह है कि छल प्रपञ्च दम्भ कपट करना और उपाधि उठावनी और चौथा स्वभाव देवतों का इस विषे बुद्धिहै सो बुद्धि करके दिव्य कार्य करताहै जैसे विद्या और भलाई और विराग को अङ्गीकार करना और निन्द्य कर्मों से आपको बचा रखना और सब जीवों के सुख को चाहना बहुरि बुद्धि करके शुभ कर्मों विषे प्रसन्नता को पावताहै जड़ता और मूर्खता के विघ्नों को समझता है सो इस मनुष्य विषे चारप्रकार के स्वभाव पाये जाते हैं जैसे पशु और भूत और देव स्वभाव आगे वर्णन किये हैं पर कूकुरको जो जगत् विषे अपवित्र कहा जाताहै सो तिसका स्वभाव ही अपवित्रहै शरीर करके अपवित्र नहीं है पर क्रोध करके जो जीवों को फाड़ने लगते हैं ताते अपवित्र हैं तैसेही शूकर में भी शरीर करके अपवित्रता कुछ नहीं है अपवित्र पदार्थों की जो तृष्णा करता है तिसकरके अपवित्र कहा जाताहै तैसेही भूत और देवता जो वर्णन किये हैं सो यहभी स्वभावही का अर्थ है और इन मनुष्यों को सन्तजनों और शास्त्रों ने यही उपदेश कियाहै कि बुद्धिरूपी नेत्रों के प्रकाश करके मनरूपी भूतके छलोंको पहिंचानैं और उनकी बुराई जानकर अपने चित्त सों त्यागें तब उनकी उसके

विघ्न और छलसे रक्षाहोवे इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि सर्व मनुष्यों विषे भूतों का स्वभाव प्रत्यक्ष है और मेरे विषे भी है पर महाराज ने उसके ऊपर मुझको प्रबल कियाहै उसका विघ्न मुझको स्पर्श नहीं करता तैसेही इस मनुष्य को सन्तजनों ने इसी प्रकार आज्ञा करी है कि तृष्णारूपी शूकर और क्रोधरूपी कूकर को अपने अधीनकरे जो बुद्धि की आज्ञानुसार बर्ते तब इस करके तेरे सभी स्वभाव भले होजावेंगे और यह स्वभावही तेरे पुण्यों के बीज होवेंगे और जब तू इससे विपर्यय होकर बर्तेगा अर्थात् उनहीं के अधीन होकर चलेगा तब तेरेसबही स्वभाव अशुभ होजावेंगे और वह अशुभ स्वभावही तेरे भाग्यहीनता का बीज होजावेंगे पर जब इस जीवको जाग्रत् अवस्था अथवा स्वप्न विषे अपनी अवस्था प्रत्यक्ष होवे तब निस्सन्देह जाने कि मैं भूतों और कूकुरोंके अधीन हूं और उन की आज्ञा विषे बर्तता हूं सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी धर्मात्मा पुरुष को किसी अधर्मी तामसी मनुष्य के बन्दीखाने में बांध राखिये तब वह धर्मात्मा पुरुष महादुःखी और कष्टवान् होताहै बहुरि जैसे कोई देवता किसी कूकुर अथवा किसी दैत्यके बन्धन विषे आ फँसे तब उसकी भी नीच अवस्था होती है तैसेही जब यह मनुष्य विचारकरे और यथार्थ नीति की दृष्टिकर देखे तब जाने कि मैं दिन रात अपने मन की बासना के अधीन हूं और यद्यपि देखने में मनुष्यका शरीर दृष्टि आवताहूं पर तौभी स्वभाव करके कूकर शूकर और भूतों का स्वरूप हूं सो परलोक विषे यह वार्त्ता प्रसिद्ध होवेगी क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव है सो तैसाही शरीर वहाँ पावता है ताते जिस मनुष्य विषे तृष्णा और अभिलाषा अधिक है सो शूकर के शरीर को पावेगा और इस प्रकार भी है कि जब कोई स्वप्न विषे आपको कूकुर और सिंह देखे तब इसका अर्थ यह है कि उस पुरुष का स्वभाव अपवित्र है काहे ते कि स्वप्न भी परलोक को लखावनेहारा है इस करके कि स्वप्न विषे भी यह मनुष्य इन्द्रियादिक देश से उल्लंघित होजाताहै ताते स्वप्नविषे जीव को अपना स्वरूप स्वभाव के अनुसार भासता है और जैसा इसका हृदय होता है तैसाही आकार प्रत्यक्ष देखता है और इस बचन का बखान करना भी बहुत विस्तार करिके होता है ताते इस ग्रन्थविषे कहा नहीं जाता बहुरि जब तैंने इस प्रकार जाना कि यह चारों स्वभाव तेरे अन्तःकरण विषे प्रकटे हैं तब तू अपनी करतूति को विचार करके देख कि मैं इन चारों स्वभावों में से किनकी आज्ञा विषे

चलताहूं और यह बात भी निश्चयजान कि जैसी क्रिया तू करता है तैसाही स्वभाव तेरे हृदय के विषे दृढ़ होता है और वही स्वभाव तेरे परलोक में भी संगी होगा सो सर्व स्वभावों का मूल यह चारों कृत हैं पर जब तू तृष्णारूपी शूकर की आज्ञा विषे चलता है तब तेरे हृदय में अपवित्रता और निर्लज्जता और लम्पटता और ईर्षादिक अपलक्षण प्रकट होते हैं और जब तू तृष्णारूपी शूकर को अपने अधीन करे तब संयम और शीलता और गम्भीरता और निर्लोभता और निराशता आदि शुभगुण उपजते हैं बहुरि जब तू क्रोधरूपी कूकुर के अधीन होताहै तब कुटिलता और निश्शङ्कता और बढ़ावना और अपनी स्तुति करनी और दुर्वचन बोलना और मानता चाहनी और और जीवों को नीच जानना और उनको दुखावना इत्यादिक अनेक अवगुण उत्पन्न होते हैं और जब तू इस क्रोधरूपी कूकुर को अपने वशमें करे तब धैर्य, सहनशीलता, क्षमा, स्थिति, पराक्रम और दयाआदिक शुभ गुण प्रकट होते हैं बहुरि जब तू शैतान और भूतों की आज्ञा में बर्तता है तब तेरे हृदय विषे मलिनता, रोग, कपट, दुविधा और छल पाखण्ड आदिक बुरे स्वभाव आनकर उत्पन्न होते हैं और जब तू इसको अपने वशीकार करे और भूतों के स्वभावों के अधीन न होवे तब तेरी बुद्धि की जीत होती है ताते विवेक, पहिंचान, विद्या, अनुभव, सब जीवों का भला चाहना और भावआदिक गुण बढ़ते हैं सो यह भले स्वभाव जब तेरे हृदय विषे प्रकट होते हैं तब सर्वदा तेरे संगी होते हैं और अविनाशी हैं और तेरे परमभागों का बीज है बहुरि जो अशुभ कर्म है सो तिन करके हृदय का स्वभाव भी बुरा होजाता है ताते पाप भी इसी का नाम कहाजाता है सो सब करतूति इस मनुष्य के शुभ और अशुभ क्रिया के कदाचित् बिलग नहीं होते पर मनुष्य का जो यह हृदय है सो दर्पणवत् निर्मल है और जेते बुरे स्वभाव तेरे हैं सो धुएं और जंगल की नाईं हैं ताते इन करके हृदयरूपी दर्पण ऐसा मलिन होजाता है कि भगवन्त के दरबारको नहीं देखसक्ता बहुरि यह जो भले स्वभावहैं सो प्रकाशरूप हैं ताते इन करके हृदयरूपी दर्पण से अविद्यारूपी मैल उतरजाताहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जब कोई निन्दितकर्म तुझ से होजावे तब उसके पीछे शीघ्रही भलाकर्म कर तब वह बुराई नष्ट होजावेगी और हृदय मलिन न होने पावेगा क्योंकि परलोक विषे जैसा किसी का हृदय है

तैसाही प्रकट होजाताहै जिसका हृदय निर्मल है सो वहभी प्रत्यक्ष होताहै इसी पर महाराज ने भी कहाहै कि जिसका हृदय शुद्ध है उसही को भगवन्तकी ओर मार्ग खुलताहै काहेते कि आदि उत्पत्ति बिषे इस मनुष्य का हृदय लोहे की नाईं होताहै सो तिसको बिधिसंयुक्त जब मर्दन करिये तब दर्पणवत् निर्मल होजाता है और सर्वपदार्थों को लखावताहै और जब उसको मर्दन न करिये तब ऐसा मलिन होजाताहै कि उस बिषे कुछ निर्मलताई भासती नहीं और किसी पदार्थ को भी नहीं लखाता इसीपर महाराज का वचनहै कि निस्सन्देह मैं तुम्हारे हृदय की ओर देखताहूं और जैसी करतूति तुम करतेहो सो तिनकी ओरभी देखताहूं॥

सातवां सर्ग॥

पूर्वपक्ष का वर्णन॥

ताते जान कि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि जो इस मनुष्य बिषे पशुओं, सिंहों, भूतों और देवतों के स्वभाव प्रकट हैं सो तो मैं समझा पर इस प्रकार तुम क्योंकर कहतेहो कि यह मनुष्य दिव्यरत्न है और कारण इसका निर्मल है और इसका अपना स्वभाव भी शुद्ध है और अपर सबही परस्वभाव है सो इस वार्त्ताको क्योंकर समझावे कि इस मनुष्य को भगवन्त के निर्मल स्वभाव के प्राप्तहोने निमित्त ही पैदाकियाहै काहेते कि यह चार प्रकार के स्वभाव हैं और इस मनुष्य बिषे इकट्ठेहुये उपजे हैं ताते निर्मल स्वभाव इसका क्योंकर अपना हुआ और अपर स्वभाव परस्वभाव किसकारण कहेगये सो तिसका उत्तर यह है कि इस मनुष्यको भगवन्तने पशुओं और सिंहोंसे विशेष उत्पन्न किया है और सर्व पदार्थों की बड़ाई और पूर्णताई भी भिन्न २ है और जिस पदार्थ की जो बड़ाई होती है सो वोही तिसका कारण कहाजाताहै जैसे गर्दभते घोड़ा विशेषहै काहे ते कि गर्दभको बोझ उठावने के निमित्त बनाया है और घोड़े को इस निमित्त उत्पन्नकिया कि उसका दौड़ना और चलना सवार की आज्ञानुसार होवै और लड़ाई में सावधान होवै पुनः घोड़ा भार गर्दभ की नाईं बोझा उठावने का बल भी रखता है और दौड़ने और संग्राम में सावधानता की बड़ाई अधिक दीनी है कि जो गर्दभबिषे नहीं पाई जाती पर जब घोड़ा अपनी बड़ाई और पूर्णताते हीन होताहै तब बोझा उठावने का अधिकारी रहताहै और गर्दभ के पदको पावता है और उसकी अपनी बड़ाई नष्ट होजातीहै तैसेही जिन पुरुषोंने इस प्रकार समझा

है कि यह मनुष्य खाने और सोवने और कामादिक भोग और धनसंचने के निमित्त उत्पन्न हुआहै सो मूढ़ है और उनकी सर्वआयुष् इनहीं कार्यों बिषे बीत जाती है अथवा जिन्होंने इस प्रकार जानाहै कि यह मनुष्य जीतने और क्रोध करनेके निमित्त उत्पन्न हुआहै सो वह भी महातामसी पुरुष और दुष्ट हैं ताते यह दोनों प्रकार के मनुष्य भूले हैं काहेते कि अधिक आहार और भोग तो पशुओं बिषेभी पायेजाते हैं जैसे सिंह और बैल का आहार तो मनुष्यसेभी अधिक होता है और चिड़ियों बिषे कामचेष्टा अधिक होती है तैसेही क्रोध करना और फाड़ना सिंहों बिषे होताहै ताते जो कुछ पशुओं के स्वभाव हैं सो यहभी मनुष्यों को दिये हैं और एक बड़ाई भी इनसे अधिक दीन्ही है सो बुद्धि है कि उस बुद्धिही करके भगवन्तको पहिंचानताहै और महाराजकी कारीगरी को भी बुद्धिही करके जानताहै और उस बुद्धिही करके क्रोध और भोगोंसे आपको बचाये रखता है सो यह देवस्वभाव कहाजाताहै और इसी स्वभाव करके यह मनुष्य पशुओं और सिंहोंसे विशेषकहाहै और इसीकारण कर सर्वसृष्टि मनुष्यके अधीनहै इसीपर साईं नेभी कहाहै कि धरती और आकाश बिषे जेती सृष्टि है सो मैंने तुम्हारी आज्ञाकारी करिदीन्ही है ताते मनुष्य का जो अर्थ है सो यही बुद्धिहै कि इसकी बड़ाई और विशेषता बुद्धि ही करके प्रकट है और अपर जेते स्वभाव इस मनुष्य बिषे पायेजाते हैं सो वास्तव में मनुष्य के स्वभाव नहीं केवल इस जीव की टहल और कार्य के निमित्त उत्पन्न किये हैं बहुरि जब यह जीव मृत्यु होताहै तब भोग और क्रोध की सबही सामग्री नष्ट होजाती है पर जब इस जीव की बुद्धि शुद्ध होती है और देवतोंकी नाईं इसका स्वभाव निर्मल होताहै तब चैतन्य देश बिषे प्राप्त होता है और निस्सन्देह भगवन्त की पहिंचान और उसके दर्शन बिषे लीन होता है बहुरि जिसकी बुद्धि मलिन और विपरीत होती है तब वह भोगों और क्रोधकी मलिनता करके आवरण आजाताहै सो यद्यपि उस देश बिषेभी जाताहै तौभी उसका मुख संसार की ओर रहताहै अर्थ यह कि उसका हृदय इन्द्रियादिक भोगोंमें बध्यमान होताहै और सर्वदा उसको विषयोंकी खैंच रहतीहै ताते उसको अधोगति कहाहै और अधोगति का अर्थ यह कि परलोकरूपी उत्तम देश बिषे भी उस मनुष्यका हृदय नीचताकी ओर खिंचा रहताहै इसीपर साईंने भी कहाहै कि परलोक बिषे पापियों का शीश नीचे लटकाया रहैगा ताते जिस मनुष्य की

ऐसी अवस्था है सो भूतों के समान कहना चाहिये बहुरि ऐसे जान तू कि हृदयरूपी देश की ऐश्वर्यता अमित है और बड़ाई इसकी यह है कि इस मनुष्य का हृदय सर्वपदार्थों से आश्चर्यरूप है परन्तु मनुष्य अचेतता करके इस आश्चर्यता को नहीं पहिंचानते और विशेषता इस मनुष्य की दोप्रकार करके कहीहै सो एक विद्याहै और द्वितीय बल है बहुरि विद्या करके जो यह विशेषता कही है सो इसे सब कोई पहिंचानता है सो स्थूल है और दूसरी सूक्ष्म और गुह्य है सो महादुर्लभ है बहुरि स्थूलविद्या यह है कि यह मनुष्य सर्वपदार्थों की विद्याका वेत्ता होसक्ता है और नानाप्रकारकी कारीगरी को पहिंचानसक्ता है बहुरि अनेकग्रन्थों की विद्या को पढ़सक्ता है जैसे वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, धर्मशास्त्र और अनेक विद्या के भेदों को समझता है और यद्यपि येते प्रकार की विद्या को पढ़ता है तौ भी इस मनुष्य का हृदय ऐसा आकाशरूप है कि परिडताई को नहीं प्राप्तहोता और सर्व पदार्थों का ज्ञान इस बिषे समा जाता है अथवा सर्व संसार ही इसकी चैतन्यता के बिषे ऐसा समा रहा है कि जैसे समुद्र बिषे बूंद समाजाता है और इस चैतन्य पुरुष की ऐसी सूक्ष्मगति है कि अपने किंचित् संकल्पकरके पाताल और आकाश का कार्य करलेता है और उदय अस्तलों देख आवता है सो यद्यपि इस चैतन्य का सम्बन्ध इस शरीरके साथ ऐसा दृढ़ है कि सर्वदा आपको शरीरही जानताहै तौभी इसबिषे ऐसी शक्तिहै किविद्या के बलकरके आकाश के तारों का प्रमाणभी पहिंचानता है और योंभी जानता है कि अमुक ग्रह अमुक स्थान बिषे आया है और अमुक ग्रह अमुक ग्रहते इतना दूरहै बहुरि विद्याही के बल करके मछली को समुद्रकी गहराईसे बाहर निकाल लेताहै और आकाशबिषे उड़नेहारे पक्षियोंको पृथ्वीपर आन डालताहै और जो कुछ इस जगत्बिषे आश्चर्यता और विद्या है सो तिसको पांच इन्द्रियों करके ग्रहण करलेता है सो यह इन्द्रियादिक विद्या सबही स्थूल कहलातीहै ताते इसको सब कोई पहिंचानता है बहुरि दूसरी विद्या जो महाआश्चर्यरूप है सो यह है कि इस मनुष्य के हृदयबिषे एक बारी अर्थात् खिड़की है सो वह देवलोक की ओरको खुलीहुईहै जैसे यह पांचों इन्द्रियां आधिभौतिक जगत् की ओर को खुलीहुई हैं पर सूक्ष्मदेश का नाम देवलोक है और चैतन्यदेश भी उसीको कहते हैं सो बहुत पुरुष तो इसी इन्द्रियादिक देश को समझते हैं पर चैतन्यदेश की अपेक्षा करके जो देखिये तो यह सब जगत्

तुच्छमात्र है बहुरि चित्तविषे जो खिड़की है सो तिसका खुलनाभी दो प्रकार का होताहै प्रथम जब निद्रा करके सर्व इन्द्रियों का मार्ग रोकाजाता है तब स्वप्न विषे सूक्ष्मदेश की ओर वह खिड़की खुलती है सो तिसविषे अपूर्व सृष्टिको भी पहिंचानताहै पर प्रत्यक्ष नहीं देखता जैसे मन्दहष्टि जीवों को पदार्थों का स्वरूपभी मन्द ही दृष्टि आता है तैसेही स्वप्नविषे भविष्यकाल को इस प्रकार पहिंचानता है कि जब उस स्वप्न का बयान करिये तब युक्तिकर समझा जाता है अन्यथा नहीं समझाजाता सो यह वार्त्ता प्रसिद्धहै और सब कोई जानताहै कि जाग्रद्‌विषे किसी भविष्यकाल की प्रकटता नहीं होती और स्वप्नविषे सब कोई अधिक व अल्पभविष्य देखताहै सो वह देखना इन्द्रियोंके मार्गकर नहीं होता और इस स्वप्न का अर्थ खोलना भी बहुत विस्तार करके होताहै ताते इतना कुछ तात्पर्य समझना चाहिये कि इस मनुष्य का हृदय दर्पणवत् निर्मल है सो जैसे दो दर्पण परस्पर सम्मुखहोने समय उनका प्रतिबिम्ब एक दूसरे विषे भास आवता है तैसेही चित्तरूपी दर्पण जब इन्द्रियादिक वृत्ति सों भिन्न होता है तब हिरण्यगर्भ जो स्थूल जगत् का आश्रय है सो तिसका प्रतिबिम्ब चित्त विषे भास आवताहै और जब यह चित्त इन्द्रियों की वृत्तिको त्याग जाताहै तब भविष्यकाल को देखता है इस विषे इतना भेद है कि यद्यपि स्वप्न विषे इन्द्रियों की वृत्ति रोकीजाती है तो भी संकल्पों का ठहरना नहीं होता और चित्तका फुरना भटकता रहताहै ताते स्वप्नविषे भविष्यकाल को मन्दहष्टिकी नाईं देखताहै और पदार्थों को प्रत्यक्ष नहीं देखता और जब यह जीव शरीर को छोड़जाता है तब इन्द्रिय और संकल्प की वृत्ति नष्ट होजातीहै तो उसको परलोक प्रत्यक्ष भास आवताहै और नरक स्वर्ग को भी प्रत्यक्ष देखताहै तब महाराज के आगे प्रार्थना करने लगताहै कि हे भगवन्! तू मेरी सहायताकर बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जब किसी को अकस्मात् कोई संकल्प फुरआताहै तब वही संकल्प सत्यरूप होकर भासताहै और इस प्रकार नहीं जाना जाता कि यह संकल्प कहां से आया था सो इस करके इतना पहिंचान सकता है कि विद्याका मार्ग केवल इन्द्रियांही नहीं ताते विद्याका प्रकटहोना सूक्ष्मदेश ते होताहै और इन्द्रियों को इस स्थूलजगत् के ग्रहणकरने के निमित्त उत्पन्न किया है इसीकारण करके सूक्ष्मदेश की पहिंचान विषे इन्द्रियां करके पटल होताहै सो जबलग इन्द्रियों की विक्षेपता दूर न होवे तबलग सूक्ष्मदेशको नहीं पाता बहुरि

चित्तविषे जो बारी अर्थात् खिड़की कहीथी सो तिसके खुलने का दूसरा प्रकार यह है कि जब कोई पुरुष इस जगत् बिषे पुरुषार्थ और अभ्यासकर इन्द्रियों को रोके और चित्त को क्रोध और भोग और मलिन स्वभाव और सर्व अभिलाषाते शुद्धकरे बहुरि एकान्त ठौर बैठकर मनको एकत्रकरे और चित्तकी वृत्ति चैतन्य देश की ओर लगावे और भजनविषे सावधान होवे तब उसही अभ्यास बिषे ऐसा लीन होता है कि उसको अपना शरीर और सर्वजगत् विस्मरण होजाता है और उसके चित्तविषे किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं फुरता सो जब इस पुरुषकी ऐसी अवस्था होतीहै तब निस्सन्देह जाग्रत् बिषेही उसको सूक्ष्म देश की खिड़की खुलती है और और पुरुषों को जो स्वप्न बिषे भविष्यकाल की खबर होती है सो तिसको जाग्रत् बिषे ही फुरआती है बहुत देवतों और अवतारों के स्वरूप को प्रकट देखताहै उनसों सहायता और लाभ पाता है सो जिसके हृदय बिषे ऐसा मार्ग खुलता है तिसको और अनेक पदार्थों का भी ज्ञान होता है कि जिनका बखान नहीं कियाजासक्ताहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि मैंने अपने प्रकाश करके धरती और आकाश को लपेटलिया है और उदय अस्त को मैंने प्रत्यक्ष देखा है ताते सन्तजनों की जो विद्या है सो तिनको अपने चित्त के मार्ग बिषे खुली है और उनका जानना इन्द्रियोंके मार्ग करके नहीं हुआ पर प्रथम उन्हों ने भी यत्न और अभ्यास कियाहै इसीपर साईं ने भी कहा है कि प्रथम तुम सब पदार्थों से विरक्त और शुद्ध होवो बहुरि अपने आपको मुझ को अर्पण करो और मायाके कार्यों बिषे आसक्त न होवो इस करके कि कार्य तुम्हारे मेरी सहायता करके सिद्ध होवेंगे काहेते कि उदय अस्त बिषे मेरी नाईं और कोई समर्थ नहीं ताते मेराही आसरा करो और और किसी कार्य की ओर हृदय न देवो और जब तुमने मेरा आसरा लिया तब तुम अपने चित्तको निस्सङ्कल्प कर सब जगत ते भिन्न होवो ताते यह जो सब उपदेश और यत्न वर्णन किया है सो जगत् के जञ्जाल और इन्द्रियादिक भोगोंसे हृदयकी शुद्धता के निमित्त कहा है ताते जिज्ञासुओं और सन्तोंका आदिमार्ग यही है बहुरि शास्त्रोंकी विद्या को पढ़ना और उनके भेदों को समझना पण्डितों का मार्ग और विशेषता है पर तौ भी सन्तजनों की विद्या ऐसीहै कि वह किसी शास्त्र और किसी उपदेशके अधीन नहीं ताते उनके हृदय बिषे भगवन्त की सहायता करके सर्वदा अनुभवका मेघ

बरसताहै सो यह वार्त्ता बहुत पुरुषों को प्राप्तहुई है और उनकी अवस्था ऐसीही दृढ़हुईहै और शास्त्रों के वचन और अपनी बुद्धिकरके भी समझा जाताहै ताते तुझको इतना तो अवश्यमेव समझना चाहिये कि इस अवस्था के प्राप्तहोनेकी प्रतीति तेरे हृदय बिषे दृढ़होवे बहुरि सन्तजनों की अवस्था और विद्यावानोंका मार्ग और तीसरी उनकी प्रतीति सों अष्ट न होवे और यह जो अवस्था वर्णन बिषे आई है सो इस मनुष्य के हृदय की आश्चर्यता यही है और इसीकरके मनुष्य के हृदय की विशेषता कहीहै बहुरि इस प्रकारभी अनुमान न किया चाहिये कि यह अवस्था आगेही सन्तजनों और अवतारों को प्राप्तहुईहै और इस समय बिषे किसी को नहीं प्राप्तहोती काहेते कि आदि उत्पत्ति बिषे सब मनुष्यों का हृदय इस पद का अधिकारी होता है जैसे सब लोहा दर्पण का अधिकारी होता है पर जब कोई जङ्गारकरके महामलिन होजावे तब उसकी निर्मलता नष्ट होजातीहै तैसेही जिस मनुष्य का हृदय माया की तृष्णा और भोगों की अभिलाषा करके और पापकर्मों करके मलिन होजाताहै और उसके ऊपर यह बुरे स्वभाव प्रबल होजातेहैं तब निस्सन्देह उसकी मनुष्यता नष्ट होजाती है और उस परमपद के पावने का अधिकारी नहीं कहलाता इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि सबही बालकों का एक धर्म होताहै पर पीछे माता पिता की सङ्गति करके उनका निश्चय भिन्न २ होजाताहै इसीपर साईंने भी कहाहै कि तुम्हारा मैं ईश्वर हों और तुम मेरे उत्पन्नकिये हुये हो तब सर्वजीवों ने इस वचनको सत्य करके माना है सो इस वचनबिषे प्रसिद्ध हुआ कि इस अवस्था के प्राप्तहोनेका सब कोई अधिकारी है इस बिषे कुछ भेद नहीं जैसे बुद्धिमान् पुरुष इस बात को प्रत्यक्ष जानताहै कि एकसे दो अधिक होते हैं सो यद्यपि उसी ने किसीसे सुनाभी नहीं तौभी इस वचनको निस्सन्देह समझता है तैसेही सर्व जीवों की आदि उत्पत्ति बिषे यह निश्चय दृढ़ है कि हमारा उत्पत्तिकर्त्ता भी ईश्वर है धरती और आकाश को भी उसीने स्थित किया है ताते यह वार्त्ता अपने अनुभव और बुद्धि की युक्ति करके हमने प्रत्यक्ष समझी है कि उस परमपद को प्राप्तहोना केवल उन्हीं का अधिकार नहीं इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि मैं भी तुम्हारी नाई मनुष्य हूं पर भगवन्त की सहायता करके मुझको आकाशवाणी होतीहै ताते इस वचन का तात्पर्य यहहै कि जिस पुरुष को ऐसी अवस्था प्राप्तहोवे और सर्व जीवों को

उपदेश करके कल्याण का मार्ग दिखावे तब उसको आचार्य और अवतार कहते हैं और उसके वचनही धर्मशास्त्र कहलाते हैं और जिसको यह अवस्था भी प्राप्तहोवे और उस बिषे उपदेश का बलभी होवे पर किसी और आचार्य का उपदेश जगत् बिषे वर्त्तमान होवे और इस करके वह उपदेश न करे तौभी उस पुरुष की अवस्था कुछ खण्डित नहीं होती और तुझकोभी इस वार्त्ताकी प्रतीति उचित है और यद्यपि इस अवस्था के प्राप्तहोने का मूल अभ्यास है पर तौभी भगवन्त की सहायता करके पहुँच सक्ता है और अपने बल करके पहुँचना कठिन है काहेते कि मार्ग में विघ्न करनेहारे शत्रुभी बहुत हैं और जो पदार्थ दुर्लभ होता है तिसका पावनाभी दुर्लभ होता है और उस वस्तु के प्राप्तहोनेके निमित्त युक्ति भी बहुत चाहती है इसी कारण ते कहा है कि सबही खेती बोवनेवाले अनाजको नहीं पाते और सबही ढूंढ़नेवाले अपनी प्रियतम वस्तुको नहीं पासक्ते हैं सो यद्यपि अनाज की प्राप्ति खेतीही करके होती है और वस्तुका पावना ढूंढ़ने करके होता है तौ भी अकस्मात् विघ्नभी होजाता है बहुरि यह जो सब बखान हुआ है सो इस मनुष्य की बूझ और उत्तम अवस्था वर्णन करी है और इसका प्राप्त होना यत्न और पूर्ण गुरुदेव की सहायता बिना सम्भव नहीं होता और जब जिज्ञासु को यत्न और सद्गुरु की संगति भी प्राप्तहोवे तौभी सर्वप्रकार भगवन्त की सहायता चाहिये काहेते कि उसकी सहायता बिना कोई कर्म सिद्ध नहीं होता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि पुरुषार्थ और बड़ाई भी उसही को प्राप्तहोती है जिसको भगवन्त देता है और धर्म का मार्ग भी वही देखता है जिसको साईं आप देखावै ॥

आठवां सर्ग ॥

मनुष्य के बल वर्णन में ॥

ताते जान तू कि मनुष्य की विशेषता और विद्या को जो तैंने भलीप्रकार समझा तब चाहिये कि बल करके जिस प्रकार मनुष्य की विशेषता है सो तिसको पहिचान इस करके कि वह भी देवशक्ति है और पशुआदिक में पाई नहीं जाती सो तिसका अर्थ यह है कि जैसे यह सबही शरीरधारी जीव देवतों के अधीन हैं सो वह देवता भगवन्त की आज्ञा पाकर जीवों के सुखके निमित्त मेघ बरसावते हैं और जिस समय बिषे पवन चाहिये है तब पवन को

चलावते हैं बहुरि गर्भविषे जीवों का प्रतिपाल करते हैं और धरती विषे वन-
स्पतियों की उत्पत्ति करते हैं इसी प्रकार सबही देवता भगवन्त ने अपने २
कर्मों विषे दृढ़ किये हैं तैसेही इस मनुष्य का जो हृदय है सो यह भी देवरत है
और इसविषे भी देवतों की नाईं बल दिया है इसी कारण ते केते शरीरों पर
इसकी भी आज्ञा चलती है और इसका जो निज शरीर है सो भी इसके हृदय
के अधीन है और सर्व अङ्गों विषे चित्तकी आज्ञा बर्त्तती है जैसे यह वार्त्ता
प्रसिद्ध है कि हाथ की अंगुली विषे चित्त का स्थान नहीं कह सके पर चित्त
की प्रेरणा करके प्रत्यक्ष अंगुली हिलती है ऐसेही जब चित्तविषे क्रोध का बल
होताहै तब शरीर के अङ्गों विषे पसीना हो आवता है सो यह बर्षा की नाईं है
बहुरि जब चित्त विषे काम का संकल्प आन फुरता है तब इन्द्रियों को चपलता
आन होती है और जब भोजन करने लगता है तब रसना भी जल को डालने
लगती है सो इस वार्त्ता को सब कोई जानता है कि शरीरकी सर्व क्रिया चित्त
के फुरने करके होती है बहुरि योंभी है कि केते पुरुष विशेषता और पुरुषार्थ
संयुक्त ऐसे दृढ़ होते हैं कि उनका स्वभाव देवतों की नाईं दृढ़ होता है ताते
उनकी आज्ञा और शरीरों पर चलती है और उनके तेजकरके सिंह भी कांपने
लगते हैं और जब वह चाहैं तब रोगी पुरुषको आरोग्य करलेवें और जब क्रोध
करके देखें तब आरोग्य मनुष्य भी रोगी होजावे और जो पुरुष उनसे दूर होवे
तब उसको संकल्प की खैंच करके निकट लेआते हैं और उसके चित्तको खैंचलेते
हैं बहुरि जब इस प्रकार चाहैं कि मेघ बर्षे तब बर्षा होनेलगे सो यह सबही
वार्त्ता प्रसिद्ध और निश्चय होती है और बुद्धि की युक्ति करके भी पहिचाना
जाता है सो सन्तजनों का बल इससे भी अधिक है बहुरि दृष्टिदोष और मन्त्र
यन्त्र आदिक जो फुरना है सो यह भी मनुष्य के हृदय की विशेषता और बलहै
सो वह बलही और शरीर विषे प्रवेश करता है पर जिसका हृदय मलिन होताहै
सो तिसका बल भी ऐसा होता है कि जब किसी सुन्दर पशु को देखता है तब
उसकी ईर्षा और दोषदृष्टि करके तत्कालही वह पशु नष्ट होजाता है सो यह
भी मनुष्य के हृदय का बलहै पर इस विषे इतना भेद है कि जिसके बल करके
जीवों का हृदय शुभमार्ग विषे दृढ़ होवे तब उसको शुद्ध सात्त्विकी बल कहते हैं
और जिसके बल करके जीवों को शारीरिक अथवा धन का सुख प्राप्त होता है

तब उसको सिद्धता और ऐश्वर्य कहते हैं और जिसके बल करके उपाधि और खेद उत्पन्न होवै सो तिसको तामसी बल कहते हैं पर तौभी शुद्ध सात्त्विकी बल और ऐश्वर्य और यन्त्र मन्त्रादिक जेते तामसीबल हैं सो यह सबही इस मनुष्य के हृदय का बल और पुरुषार्थ है पर स्थूलदृष्टि करके देखिये तौ इन्हों विषे बड़ा भेद है सो इसका बखान भी सम्पूर्ण इस ग्रन्थ विषे कहा नहीं जाता पर जो पुरुष इस बचन के भेद को नहीं समझता तो तिसको सन्तजनों की अवस्था की पहिंचान कुछ भी नहीं होती और श्रवणमात्रही वह पुरुष उनको सन्त जानता है पर तौभी अवतारों और सन्तजनों की जो अवस्था है सो यह सबही इसी मनुष्य का पुरुषार्थ है और इस अवस्था के भी तीन लक्षण हैं उनमें से प्रथम यह है कि संसारीजीव जिस भेद को स्वप्नकरके पहिंचानते हैं सो सन्तजनों को जाग्रत् बिषेही प्रत्यक्ष भासताहै और दूसरा यह है कि इतर जीवों का संकल्प अपनेही शरीर में प्रवेश करता है और सन्तजनों का संकल्प सर्व शरीरों बिषे प्रवेश करजाता है पर इस संकल्प के प्रवेशकरके जीवों का हृदय शुद्धमार्ग को पाता है बहुरि तीसरा यह है कि और जीव जिस विद्या को पढ़कर प्राप्त होते हैं सो विद्या सन्तजनों को विनापढ़ेही अपने अन्तःकरण बिषे फुर आवती है इसकी युक्ति यह है कि जो पुरुष बुद्धिमान् शुद्धचित्त होता है सो तिसको कितनी विद्या अपने हृदय मेंही भास आती है और अनुभव भी इसीको कहते हैं इसीपर साईंने भी कहा है कि केते पुरुषों की विद्या अपनेही अनुभव करके होती है ताते जिस पुरुष में यह तीन लक्षण सम्पूर्ण होतेहैं तब उसकी अवस्था सन्तजनों और अवतारों आचार्यों की होती है पर जब उस पुरुष की आज्ञा और उपदेश जगत् बिषे बर्त्तमान होवै तब उसको आचार्य कहते हैं और जब वैराग्य करके सकुचता है अर्थात् उपदेश नहीं करता है तब उसकी सनकादिक अवस्था कहलाती है पर सन्तजनोंकी अवस्था बिषे भी बड़ाभेद होता है किसी की अवस्था उत्तम होतीहै और किसीकी मध्यम और किसी की निकृष्ट होतीहै पर सम्पूर्ण सन्त उसीही को कहतेहैं कि जिसमें यह तीनों लक्षण सम्पूर्ण होवें पर यह तीन लक्षण भी इस निमित्त कहे हैं कि इनका कछुक अंश जीवों बिषे भी पायाजाताहै जैसे स्वप्न और संकल्प का सत्यहोना और अनुभव जो कहआये हैं सो मनुष्य इन तीनों करके वह तीन लक्षणभी समझताहै काहेते कि इस मनुष्य

का यही स्वभावहै कि जिस अवस्था का अंश इम बिषे होताहै उस बिषे प्रतीतिभी करताहै इसी कारण करके कहा है कि भगवन्त की पूर्णताईको भगवन्तही ठीक जानता है और कोई नहीं पहिंचानसकता सो इसका तात्पर्य यह है कि आचार्यों और सन्तों बिषे इन तीन लक्षणों से अधिक और भी अनेकलक्षण हैं पर हमको उनकी पहिंचान कुछ नहीं काहेते कि उनका अंश हमारेबिषे कुछ पाया नहीं जाता इसी कारणते कहा है कि जैसे भगवत्‌को आप भगवतही यथार्थ पहिंचानता है तैसेही सन्तजनों की अवस्था को सन्तजनही पहिंचानते हैं इतर जीव नहीं जानसकते सो इसका दृष्टान्त यह है कि जब हमारे देश बिषे निद्राकी प्रबलता न होती और कोई पुरुष हमको यह वार्त्ता सुनाता कि अमुक देशबिषे पृथ्वीपर लोग पड़ेहुये दृष्टिआतेहैं पर उनबिषे बोलना देखना सुनना कुछ नहीं रहता और उनकी चेष्टा भी शून्य होजाती है और फिर समय पाकर सुचेत हो उठते हैं सो जब हमको निद्रा न होती तब हम कदाचित् इस वार्त्ता को न समझते काहे ते कि यह मनुष्य जो कुछ देखता है सो उसी पर प्रतीति करता है इसीपर साईंने भी कहा है कि यद्यपि मैंने तुमको विद्या समझने का अधिकार दियाहै पर तौभी जबलग मैं तुमको मार्ग न दिखाऊं तबलग तुमको उस विद्याके भेद की युक्ति नहीं खुलती ताते तू इस वार्त्ता को आश्चर्य न जान कि सन्तजनों बिषे कितने लक्षण ऐसे भी होते हैं कि उनको और कोई पहिंचान नहीं सकता और वह सन्त उन लक्षणों करके परमानन्द को पाते हैं जैसे यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जिस पुरुष को राग और गीत की पहिंचान नहीं होती तिसको राग और गीत के श्रवण करने से आनन्द कुछ नहीं होता और जब कोई उसको और गीत शब्द का अर्थ समझावे तौभी नहीं समझता काहेते कि वह उसको जानता ही नहीं बहुरि जैसे जन्म के अन्धे को तेजरूप और सुन्दरताई का ज्ञान कुछ भी नहीं होता तैसेही भगवन्त की सामर्थ्य के बिषे यह बात कुछ आश्चर्य नहीं कि आचार्यों और सन्तजनों को ऐसी भी कितनी अवस्था प्राप्त होती हैं कि उनको और जीव नहीं जानते ॥

नववाँ सर्ग ॥

पूर्वपक्ष के उत्तरके बखान में ॥

ताते जान तू कि इससे आगे जो कुछ वर्णनकियाहै सो इस करके तैंने मनुष्य

की विशेषता को समझा और जिज्ञासुओं का मार्ग भी तैंने पहिंचाना पर जब तैंने योगीजनोंसे यह सुनाहोवे कि अन्तरीय अभ्यास मार्ग बिषे यह विद्या पटल डालती है तो तुझको इस वचन का तिरस्कार करना प्रमाण नहीं काहेते कि यह वचन निस्सन्देह सत्य है कि यह इन्द्रिय और इन्द्रियादिक विद्या जो स्थूल हैं सो हृदय की एकाग्रताबिषे यहभी पटलहै और इस करके चित्त विक्षेपता को प्राप्त होता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि इस मनुष्य का हृदय तालाब की नाई है और यह पांचों इन्द्रिय तालाब बिषे जल प्रवेशकरने के मार्ग हैं सो जब कोई इस तालाबके भीतर से निर्मलजल निकालाचाहे तब इसका उपाय यह है कि प्रथम जो उस तालाब बिषे बाह्यजल है तिसको निकाले बहुरि उस मलिन कीच को दूरकरे फिर उस तालाब को खोदे और जल प्रवेश करनेवाली मोहरियों को रोंके तब उस तालाबबिषे निर्मलजल उत्पन्नहोवे पर जबलग वह बाह्यका जल और कीच दूर न होवे तबलग निर्मलजल कदाचित् नहीं निकलता तैसेही चित्त जब इन्द्रियादिक विद्यासे रहित न होवे तबलग वह सूक्ष्मविद्या कदाचित् नहीं प्रकट होती ताते जब यह पुरुष स्थूल जगत् की जानता को विस्मरणकरे और हृदयके अभ्यास बिषे दृढ़ होवे तब निस्सन्देह अनुभवविद्याको पाताहै और स्थूलविद्याको जो पटल वर्णन कियाहै सो इसनिमित्त कहाहै कि जब यह मनुष्य किसी मत और पन्थ को ग्रहण करताहै तब उसकी विद्या और युक्तियों को पढ़कर प्रतीति करलेताहै फिर एक दूसरे के मत को खण्डन किया चाहताहै और उसके वाद विवाद बिषे दृढ़ होताहै तब ऐसे जानताहै कि इस विद्यासे इतर और विद्या कोई नहीं बहुरि तिससे पीछे जब किसी यथार्थ वचन को श्रवण करताहै और समझता भी है पर तौ भी अपने हृदयबिषे ऐसा अनुमान करताहै कि जैसी विद्या मैंने आगे पढ़ी है सो यह वचन उससे विपर्यय है ताते उन वचनों को यथार्थ नहीं जानता इसीकारण से यथार्थ विद्याको प्राप्त नहीं होता और संसारी जीव जिस विद्या को और मत को निश्चय करते हैं सो विद्या यथार्थ ज्ञानकी त्वचाहै अर्थात् सारवस्तु नहीं और यथार्थज्ञान उसको कहते हैं कि उस गुह्यभेद को भलीप्रकार समझै पर जैसे दाखकी त्वचा जब दूर होती है तब उसका सर्वरस और गूदा प्रकट होताहै तैसे जब पन्थों और मतों का निश्चय दूर होताहै तब यथार्थ वस्तु का ज्ञानप्रकट होताहै ताते जान तू कि जो पुरुष वादविवाद की विद्याको पढ़ताहै उसको यथार्थज्ञान की विद्या नहीं प्राप्त

होती और वह जानताहै कि जो विद्या मैंने पढ़ी है सो यथार्थरूप यही विद्या है ताते यह अभिमानही उसको पटल होताहै इस करके कि ऐसी विद्या पढ़नेवाले को अवश्यमेव अभिमान उपजनाहै और जब वह पुरुष अभिमानी न होवे तब उसको वह विद्या पटल नहीं होती और सारवस्तु के ज्ञान को पाताहै और उसकी अवस्था भी उत्तम होतीहै और वह यथार्थ मार्ग बिषे चलताहै पर बहुत विद्यावान् तो ऐसे होते हैं कि अपना जन्म मिथ्याप्रतीति बिषेही खोते हैं और वह स्थूल प्रतीतिही उनको पटल डालती है और जो पण्डित बुद्धिमान् होताहै सो झूठी प्रतीति नहीं करता कदाचित भी और संशयों से निर्भय होताहै ताते इस वचन बिषे जो विद्याको पटल कहाहै सो तिसका अर्थ तुझको समझना योग्यहै और तिरस्कार करना प्रमाण नहीं पर तौभी यह वचन उसको कहना योग्य है जिस को अनुभव विद्या खुली है और यह जो मनमती झूठे लोग हैं तिनको अनुभव विद्या नहीं प्राप्तहुई थोड़े से सूक्ष्म वचन सन्तजनों के उन्होंने पढ़लिये हैं और सर्वदा करतूति उनकी यही है कि सदैव शरीर को धोतेरहते हैं अथवा मैली गुदड़ी और आसनों को बनावते रहते हैं और समझ बिनाही विद्यावानों और विद्या की निन्दा करते हैं सो तिनको अति दण्ड देना उचितहै काहेते कि वह जगत का मार्ग खोनेवाले हैं भगवत् और भागवतों से बिमुखहैं इसकरके कि भगवत् और सन्तजनों ने विद्यावानों की स्तुतिकरी है और सर्वजगत को विद्या पढ़ने का उपदेश कियाहै और यह जो पापी भाग्यहीन लोग हैं सो उस अनुभवकी अवस्था को भी नहीं प्राप्तहुये और विद्यासे भी हीनहैं ताते इनको विद्यावानों की निन्दा करनी कैसे प्रमाण होवे सो ऐसे पुरुषों का दृष्टान्त यह है कि जैसे किसीने सुनाहोवे कि स्वर्ण से रसायन उत्तम है काहेते कि रसायन करके अमित स्वर्ण उत्पन्न होता है और जब कोई उसको स्वर्ण देवे तब अङ्गीकार न करे और कहे कि स्वर्ण किस काम आताहै और इसका मोल भी तुच्छहै ताते हमको तो रसायन चाहिये है क्योंकि रसायन स्वर्णका मूलहै पर जब वह पुरुष स्वर्ण भी न लेवे और उसके पास रसायन भी न होवे तब वह पुरुष निर्द्धन और भाग्यहीन रहता है और मूर्ख है काहेते कि रसायन की विशेषता सुनकरही प्रसन्न होता है तैसे ही सन्तजनों की अवस्था रसायन की नाईं है सो यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि रूपे और स्वर्ण से रसायन का पाना बिशेष है तैसेही सन्तजनों की अवस्था विद्या-

वानों से विशेष है बहुरि इस विषे एक और भी भेद है कि जैसे किसी के पास इतनाही रसायन होवे कि १०० मोहर प्रमाण स्वर्ण उससे होसके और किसी और पुरुष के पास सहस्र मोहर होवें तब उस सहस्र मोहरवाले पुरुषसे सौ मोहर की रसायनवाला विशेष नहीं होता काहेसे कि रसायन की विद्या और उसके ढूँढनेवाले पुरुष जगत् विषे बहुत हैं पर रसायन की पूर्ण विद्या प्राप्त होनी कठिन है इसीकारण से चिरकाल में किसी विरले को प्राप्त होती है तैसेही हृदय के अभ्यास का जो मार्ग है सो यद्यपि महाउत्तम है पर इसकी पूर्णताई को पहुँचना महादुर्लभ है ताते योंभी पहिचानना चाहिये कि जिस पुरुष को ध्वनि ध्यान अथवा मन्त्र यन्त्र का कुछ परचो होताहै तौ भी वह पुरुष सर्व विद्यावानों से विशेष नहीं होता काहेते कि जब किसी को प्रथम साधन करके कछुक एकाग्रता होती भी है तौभी बहुत पुरुष पीछेको पसरजाते हैं अथवा किसी संकल्प करके बावले होजाते हैं और वह जानते हैं कि हम बड़ी अवस्था को प्राप्तहुये हैं ताते ऐसा कोई बिरलाही होता है जो अपने हृदय की शुद्धता करके पूर्णपद को पहुँचे और बहुत तो विशेपता को प्राप्त होजाते हैं जैसे सच्चा स्वप्न भी कोई होता है और विशेष करके तो चित्त का भ्रमही होता है ताते विद्यावानों से वह पुरुष विशेष कहाजाता है जिसकी अवस्था ऐसी होवे कि जिस विद्या को और जीव पढ़कर समझें सो तिसको बिना पढ़ेही भासआवे सो यह अवस्था महादुर्लभ है ताते तुझको उचित है कि सन्तजनों की अवस्था और उनकी विशेषतापर भी तेरी प्रतीति होवे और पाखण्डी मनुष्यों के वचनों करके विद्यावानों का निरादरभी न करे तब तेरा धर्म नष्ट न होवे बहुरि जब तू इसीप्रकार प्रश्नकरे कि इस मनुष्य की बुराई भलाई उत्तम भाग जो भगवन्त की पहिचान करके आगे कहाहै सो इस भेदको क्योंकर पहिचानिये तब इसका उत्तर यह है कि जिस पदार्थ करके किसी को प्रसन्नता और आनन्द प्राप्त होताहै तब वही पदार्थ उस पुरुष की भलाई कहीजातीहै बहुरि प्रसन्नता और आनन्द उस पदार्थ विषे प्राप्त होताहै जो पदार्थ इसके स्वतः स्वभाव अनुसार होता है और स्वतः स्वभाव उसीको कहते हैं कि जिस पदार्थ के निमित्त इस जीव को भगवन्त ने उत्पन्न कियाहै जैसे कामकी प्रसन्नता यह है कि अपनी इष्ट वस्तु को प्राप्त होना और क्रोध की प्रसन्नता यह है कि अपने शत्रुको जीते बहुरि श्रवणों को सुख

सुन्दर शब्द और राग विषे होताहै तैसेही बुद्धि की प्रसन्नता और भलाई यह है कि कामों के भेद को पहिंचाने काहेते कि इसका अपना स्वभाव भी यह है और भगवन्त ने भी इस बुद्धि को इसी निमित्त उत्पन्न कियाहै बहुरि काम और क्रोध और पांचों इन्द्रियों के भोग तो पशुओं विषे भी पाये जाते हैं परन्तु यह स्वभाव मनुष्यों में और अधिक है कि जिस पदार्थ के भेद को नहीं जानता तब निस्सन्देह उस पदार्थ को ढूंढ़ा करताहै और जानना चाहताहै बहुरि जब उसके भेद को समझताहै तब प्रसन्न होकर उसपर बड़ाई करताहै और यद्यपि वह पदार्थ नीच होवे तौभी उसके ज्ञान विषे ऐसा प्रसन्न होताहै कि उस प्रसन्नताको रोंक नहीं सक्ता जैसे शतरञ्ज खेलनेवाला पुरुष शतरञ्जकी विद्या बताने से धैर्य नहीं करसक्ता और योंभी समझता है कि मैं भली प्रकार खेलताहूं ताते उस प्रसन्नता को प्रकट किया चाहताहै सो जब तैंने इस वचन के भेद को समझा कि इस मनुष्य का स्वस्वभाव पहिंचानहै तब ऐसे जान कि जो पदार्थ जितनाही जानने योग्य विशेष और उत्तम होताहै तितनाही उसकी पहिंचानविषे आनन्द भी अधिक होता है जैसे कोई वजीर के भेदको जानता है तब प्रसन्न होताहै और जो पुरुष बादशाह के भेदको जाने तब वह उससे अधिक प्रसन्नता को पाताहै बहुरि शतरञ्ज की विद्या जाननेवाले पुरुष से ज्योतिष और वैद्यकविद्याका वेत्ता अधिक प्रसन्न होता है ताते यह वार्ता प्रसिद्धहै कि जब जाननेयोग्य पदार्थ उत्तम होवे तिसकी पहिंचान विषे आनन्द अधिक होताहै ताते कोई पदार्थ भगवन्त के समान उत्तम नहीं काहेते कि सर्व पदार्थों की विशेषता उसीकी शक्तिकरके होती है और वह सर्व सृष्टिका ईश्वर है और जो कुछ जगत् विषे आश्चर्य है सो सब उसीकी कारीगरीहै इसी कारण से भगवन्त की पहिंचान के समान और पहिंचान कोई नहीं और उसके दर्शन समान और दर्शन सुन्दर कोई नहीं सो वह पहिंचान और दर्शन इस मनुष्यका स्वस्वभावहै और इस जीवको भगवत्ने अपनी पहिंचान के निमित्त उत्पन्न किया है ताते इस मनुष्यकी भलाई और पूर्णताई भगवत् की पहिंचान विषेहै पर जिस पुरुष के हृदयमें भगवत् की पहिंचान की प्रीति न होवे तब जानियेकि उसका हृदय रोगीहै जैसे किसी पुरुष को अनाजकी रुचि न होवे और माटीको प्रीतिसंयुक्त खावे तब वह रोगी कहलाताहै और जब उसका उपचार न करे तब मृत्यु को पाताहै और इस जगत् विषे भाग्यहीन कहाजाताहै तैसे

ही जिस मनुष्यको विषयों की प्रीति अधिक होवे और भगवत्की प्रीति से शून्य होवे तब उसका हृदय रोगी कहाजायगा पर जब वह भी मानसीरोग का उपचार न करे तब परलोक बिषे मन्दभागी होता है और उसकी बुद्धि नष्ट होजाती है और महादुःखी होता है काहेते कि इन्द्रियादिक भोगों का सम्बन्ध इस शरीर के साथ है सो मृत्यु के समय यह शरीर दूर होजाता है ताते सर्वभोग भी नष्टता को पाते हैं और वह जीव भोगों की खैंचबिषे बड़े कष्टको प्राप्त होता है ताते परलोक बिषे भाग्यहीन कहलाता है और भगवत् की पहिंचान का जो सुख है तिसका सम्बन्ध हृदय के साथ है ताते वह सुख मृत्यु के समय अधिक होता है काहेते कि विक्षेपदायक पदार्थ सब दूर होजातेहैं बहुरि जितनी कुछ इस मनुष्य के हृदय की विशेषता कहीहै सो इस ग्रन्थ बिषे इतनाही बहुत है पर यह सबही बखान इस जीव के स्वभावों का वर्णन किया है बहुरि इस मनुष्य का जो शरीर है सो इस बिषे भी भगवन्त ने बड़े आश्चर्य गुण उत्पन्न किये हैं और सर्व अङ्गों बिषे अनन्त गुण उपजाये हैं और इसी शरीर बिषे कितनी नाड़ी और अस्थि हैं सो सभोंके आकार और गुण भिन्न २ बनाये हैं और कर्मभी उनके भिन्न २ सिद्ध होते हैं परन्तु इन सर्व अङ्गोंते अचेत है और यों तू जानता है कि हाथ ग्रहण करने के निमित्त हैं और चरण चलने के निमित्त और रसना बोलने के निमित्त है पर यह जो तेरे नेत्र हैं तिनको सात परदेकर बनाया है बहुरि जब एक परदा दूर होजावे तब नेत्रों की दृष्टि मन्द होजाती है सो तुझको यह पहिंचान कुछ नहीं कि यह सातपरदे किस निमित्त बनाये हैं और सभोंबिषे देखने की क्रिया किस प्रकार राखी है बहुरि नेत्रों का जो आकार है सो तो प्रकटही अल्पमात्रहै पर इनकी दृष्टि कितनी फैलती है और इनकी दृष्टि और विधि का वर्णन करिये तब तो कितने और ग्रन्थ चाहिये ताते तुझको इतना पहिंचानना योग्य है कि इस शरीरबिषे मूलचक्र से आदि लेकर जो स्थान बनाये हैं तिनके बनावने का प्रयोजन क्या है सो प्रथम इस शरीर बिषे कलेजा इस निमित्त बनाया है कि भिन्न २ आहारों को परिपक्व करके रुधिर बनाताहै बहुरि वह रुधिर सर्व नाड़ियों में प्रवेश करताहै और उसका आहार सब अङ्गों को पहुँचता है बहुरि एक ऐसा स्थान है कि जब वह रुधिर परिपक्व होता है तब उसका जो मैल शेष रहता है तिसको गिराय देता है बहुरि उसी रुधिर बिषे कछुक भाग उत्पत्ति

होते हैं तब उसको पित्ता दूरकरदेता है और प्रथमहीं जो रुधिर कलेजे से बाहर निकलता है तब पतला और जलसहित होता है सो उस जलको गुर्दा रुधिर से खींचलेताहै बहुरि उस जल के अंशको कुलियां भिन्न करके लघुके स्थान में डालदेती हैं तब वह रुधिर मैल, झाग और जल के अंशसे शुद्धहोकर नाड़ियों में प्रवेश करता है पर जब सब अङ्गोंविषे किसी एक अङ्ग को विघ्न होजावे तब शरीर विषे रोगउत्पत्ति होती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सूक्ष्म और स्थूल शरीर के जो अङ्ग हैं सो सबही अपने कार्य के निमित्त बनाये हैं और शरीर की रक्षा इनहीं करके होती है बहुरि यह जो जीव का पिण्ड है सो यद्यपि देखने में इस का आकार अल्पसा भासता है तौभी ब्रह्माण्ड की नाईं है और जितने पदार्थ ब्रह्माण्ड विषे बनाये हैं तिनके अंश पिण्डविषे भी प्रवेशे हैं जैसे अस्थि पर्वतों की नाईं हैं और रोमावली बनस्पति हैं और पसीना मेघ की नाईं है शीश आकाश और इन्द्रियां तारामण्डल हैं सो इनकाभी बखान करना बड़े विस्तार करके होता है पर तात्पर्य यह है कि ब्रह्माण्ड विषे यावत् पदार्थ और जीव हैं सो तिनका अंश पिण्ड विषे सबही पाया जाताहै जैसे शूकर कूकर पशु प्रेत देवता और पक्षी आदिक हैं सो तिनके स्वभावभी इस मनुष्य के शरीर विषे पायेजाते हैं बहुरि ब्रह्माण्ड विषे यावत् व्यवहारहैं तिनका अंशभी शरीर विषे प्रसिद्ध है जैसे जठराग्नि जो आहार को पचाती है सो मानों रसोई करनेवाली है और जिस शक्ति करके आहारका रस निकलताहै और मैलको भिन्न करदेय है सो गन्धी की नाईं है और जिस अङ्ग करके रुधिर का दूध और वीर्य बनताहै सो धोबी की नाईं है और जो अङ्ग जल के अंशको लघुस्थान विषे डालत है सो पनिहारा है और जिस करके आहार का मैल बाहर निकलता है सो झाड़ूवाला भङ्गी है और जिस करके वात पित्त कफ शरीर विषे कोपते हैं और देह को दुःख होताहै बटमार और चोर की नाईं हैं बहुरि जिस करके वात पित्त कफ का कोप निवृत्त होताहै सो धर्मात्मा राजा की नाईं है पर इसका बखान करना भी बहुत विस्तार होताहै और तात्पर्य यह है कि तुझको ऐसी पहिचान चाहिये है कि तेरे शरीर विषे भिन्न २ स्वभाव और अङ्ग उत्पत्ति किये हैं और सबही तेरी टहल विषे सावधान हैं बहुरि जब तू अचिन्त्य होकर सोइ रहता है तौभी वह तेरी सेवाको त्याग नहींकरते और तू उनको जानताही नहीं और जिस महाराजने यह तेरे

टहलुवे बनाये हैं सो तिसका तू उपकार भी नहीं जानता पर जब कोई मनुष्य एक बार तेरी टहल के निमित्त अपने टहलुवे को भेजे तब सारी आयुष् पर्यन्त तू उसका उपकार याद रखता है और जिस भगवत् ने कई सहस्र टहलुवे तेरे शरीर की टहल बिषे लगाये हैं और वे ऐसे सावधान हैं कि एक पल भी तेरी सेवा से आलस नहीं करते सो तिस भगवत् का तू कदाचित् भी स्मरण नहीं करता बहुरि इस शरीर की जो उत्पत्ति है और इसके अङ्गों बिषे जो गुण रचे हैं तिसकी विद्या भी अपार है और सबही लोग इस विद्या से अचेत हैं पर जब कोई इस शरीर की विद्या को पढ़ता भी है तो भी वैद्य होने के निमित्त पढ़ता है ताते शरीर की विद्या को भी इस निमित्त पढ़ना प्रमाण है कि इस विद्याको पढ़कर भगवत् की कारीगरी को पहिंचाने तब उस पुरुष को निस्सन्देह भगवत की पहिंचान प्राप्तहोती है सो भगवत् का पहिंचानना यह है कि प्रथम शरीर और जीव के उत्पन्न करनेवाले महाराज को ऐसा समर्थ जाने कि उसकी सामर्थ्य बिषे दीनता और पराधीनता का अंश कुछ भी नहीं पाया जाता ताते जो कुछ किया चाहता है सो करसक्ता है जैसे वीर्यके बूंदसे उसने यह शरीर उत्पन्न किया है सो जिस भगवत् में ऐसी सामर्थ्य है तिसकी सामर्थ्य बिषे शरीर के नाशहुये पश्चात् जिवायलेना कुछ कठिन बात नहीं इसी कारण से परलोक का दुःख और सुख पहिंचान किया जासक्ता है बहुरि ऐसे जाने कि वह भगवत् ऐसा ज्ञानस्वरूप है जिसका ज्ञान सर्व जगत् बिषे भरपूर है और यावत् नानाप्रकार के आश्चर्य और उनके बिषे गुण हैं सो सबही उसकी विद्याकरके सिद्धहुये हैं बहुरि तीसरा गुण महाराज का यह भी पहिंचानना चाहिये कि वह परमदयालुरूप है और सर्व जीवों पर उसकी अमित करुणा है ताते जिस २ जीवको जो कुछ चाहिये था सो सबही दिया है और कृपणता करके दुराय कुछ नहीं राखा जैसे शीश औ हृदयस्थान से लेकर जो कुछ अवश्यही चाहिये था सो सबही दिया और जिन अङ्गों करके इस जीव का प्रयोजन और कार्य सिद्ध होता है जैसे हाथ, पांव, रसना आदिक सो सबही दिये बहुरि जिस बिषे इस जीव का प्रयोजन भी न था और उस पदार्थ का होना अवश्यही चाहिये तो भी न था पर उस कर के सुन्दरता और शृङ्गार सिद्ध होता था सो वह अङ्ग भी दिये हैं जैसे नेत्रों की समता अधरों की ललाई बालों की स्याही भ्रूकी कुटिलता पलकों की समानता

और इसकी नाईं केते अङ्ग और भी सुन्दरता के निमित्त दिये हैं बहुरि भगवत् ने ऐसी कृपा मनुष्योंपर ही नहीं करी ताते सर्व जीवों पर उसकी दया समान है इसीकारण से मच्छर और माखीपर्यन्त जीवों को जो कुछ चाहिये था सो सबही दिया है उनका बदन और आकार और नाना प्रकार के चिह्नों करके सुन्दर बनाये हैं सो इन जीवों के शरीरों की उत्पत्ति का पहिंचानना भी इस प्रकार करके भगवत् के पहिंचानने की कुञ्जी है और विद्या के पढ़ने की विशेषता यही है कि इस करके भगवत् की बड़ाईको पहिंचाने जैसे कोई पुरुष किसी कवीश्वर की कविता और किसीकी कारीगरी को भली प्रकार समझता है तब निस्सन्देह उस कवीश्वर और कारीगर की बड़ाई को पहिंचान लेता है तैसेही यह जेती कुछ भगवत् की कारीगरी है सो महाराज के पहिंचानने की कुञ्जी है और उसके सर्व गुणोंको लखावनेवाली है पर तौ भी शरीर की उत्पत्ति का जो पहिंचानना है सो हृदय की पहिंचान के निकट तुच्छमात्र है काहेते कि यह शरीर घोड़े की नाईं है और चित्त सवार है ताते उत्पत्ति का जो तात्पर्य है सो हृदयरूपी सवारही है इस करके कि घोड़ा सवार के निमित्त होताहै और सवार की उत्पत्ति घोड़े के निमित्त नहीं बहुरि इतना कुछ जो वर्णन हुआहै सो इस करके प्रसिद्ध हुआ कि तू अपने शरीरके अङ्गोंको भलीप्रकार नहीं पहिंचानता और यह वार्त्ता प्रकट है कि तुझको तेरे स्वरूप से निकट और कोई पदार्थ नहीं सो जब तू अपने आपको ही न पहिंचाने तब और किसी पदार्थ के पहिंचानने का अभिमानी किसप्रकार होताहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष ऐसा निर्द्धन होवे कि अपने शरीर के आहार को समर्थ न होवे और इस प्रकार अभिमान करके कहे कि सारे नगर के अभ्यागत मेरेही गृह से भोजन पावते हैं सो यह वार्त्ता असम्भव है और ऐसा अभिमान करनेहारा पुरुष मूर्ख और झूठा कहा जाताहै ॥

दशवां सर्ग ॥

जीव की पराधीनता के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि बड़ाई और शोभा और विशेषता इस मनुष्य के हृदयरूपी रत्न की तैंने भली प्रकार समझी तब आगे यों भी जानना चाहिये कि यद्यपि भगवत् ने ऐसा रत्न तुझको दियाहै पर तौभी तुझसे गुह्य कररक्खा है सो जबलग

तू इस रत्नको न खोजै और उससे अचेत होवे और व्यर्थ गँवावे तब इस करके तेरी परमहानि होती है ताते तू पुरुषार्थ करके अपने चित्त को खोज और माया के जञ्जालों से विरक्त हो तब वह तेरा चित्तरूपी रत्न पूर्णता को पहुंचे सो उस की पूर्णता और बड़ाई चैतन्यतारूपी सूक्ष्मदेश बिषे प्रकटहोती है काहेते कि चैतन्यदेश बिषे शोकते रहित आनन्द को पाता है और अविनाशी सत्यस्वरूपको देखता है और पराधीनता ते रहित सामर्थ्यता को प्राप्तहोता है और अविद्याते रहित ज्ञान को पाता है सो भगवत् का निर्मल स्वरूप यही है और यह जीव भी सूक्ष्मदेशमें इसीस्वरूप बिषे लीन होताहै बहुरि इस स्थूलदेश बिषे जो जीवकी विशेषता कही है सो इस निमित्त कहीहै कि उस परमपद के पाने का अधिकारी है और जबलग ऐसे परमपद को न प्राप्त होवे तबलग यह जीव ऐसा पराधीन और महानीच है कि इसकी नीचता वर्णन बिषे नहीं आती भूख, प्यास, शीत, उष्ण, रोग, शोक, दुःख, मोह, क्रोध, तृष्णा आदिक सर्व स्वभावों के अधीन हैं बहुरि इस जीव के शरीर का जो सुख है सो भी कड़वे औषधोंबिषे राखा है और जो भोग इस को प्रियतम लगते हैं सो तिनकरके रोग को प्राप्त होता है बहुरि इस मनुष्य की विशेषता जो है सो विद्या और बल अथवा धैर्य और श्रद्धा और सुन्दरताकर होती है सो जब तू इस मनुष्य की ओर देखे तब जाने कि ऐसा मूर्ख और कौन है काहेसे कि जब एक नाड़ी इसके शीशबिषे विपर्यय होजावे तब बावला होजाता है और नाशता के भयको पाताहै और यद्यपि इसका औषध इसके निकट ही पड़ाहोवे तोभी जान नहींसक्ता कि मेरा औषध यही है और मुझको रोग क्या है बहुरि जब तू इसके बल की ओर देखे तब जाने कि इसके समान बलहीन और पराधीन भी कोई नहीं काहेते कि यह मनुष्य एक माखी से भी आपको बचाय नहींसक्ता और जब मच्छरही इसके ऊपर प्रबल होवे तो भी उसके काटने से महादुःखी होता है और जब इसके पुरुषार्थ और धैर्य की ओर देखिये तब ऐसा अधीर प्रकट होता है कि एक पैसे के गिरने करके शोक और दुःखको पाता है और जब भूखके समय एक ग्रास भी कम मिले तब मूर्छा को प्राप्त होताहै ताते इस मनुष्यसमान नीच और कोई नहीं बहुरि जबइस मनुष्य की सुन्दरता का विचार करिये तब इसका शरीर ऐसा मलिन है कि मानों मलमूत्र के भवन पर त्वचा लपेटी है और जब एक दिनबिषे दो बार न धोवे तब

ऐसी दुर्गन्ध उत्पन्न होती है कि अपने आपही ग्लानि करनेलगता है और २ पुरुषभी उससे ग्लानि करनेलगते हैं सो जिस शरीर की सुन्दरता का अभिमान करताहै और जो शरीर का इसको आधारहै सो तिसके मलको अपने हाथों करके नित्यप्रति आपही धोता है, इसीपर एक वार्त्ता है कि एक महापुरुष मार्गविषे चलाजाता था और उस मार्गविषे कछुक आपलाख विष्ठाको डालते थे सो तिसकी दुर्गन्धकरके लोग नासिका को मूंदनेलगे तब लोगों से उस महापुरुष ने कहा कि हे भाई ! तुमको भी कुछ सुनाई देता है यह विष्ठा मुझसे यह कहती है कि कल्हके दिन मैं बाजारविषे धरीहुई थी और सबलोगों ने मुझको दाम देकर मोललिया था परन्तु मैंने एकरात्रिपर्यन्त तुम्हारी सङ्गति करी है तिसकरके ऐसी मलिनता को प्राप्तहुई हों इसी हेतुसे जब विचारकरके देखिये तौ मुझको तुम से भागना उचित है कि तुमको मुझसे, सो इसका तात्पर्य यह है कि यह जीव इस शरीरविषे महादीन और पराधीन है और इसकी अवस्था भी महानीच है ताते परलोकविषे इसकी हीनता और विशेषता प्रकट होवेगी अर्थात् जब यह पुरुष भले स्वभावों के पारस साथ निर्मल करलेवे तबहीं पशु और सिंहों के स्वभावों से मुक्त होकर देवतों के पद को प्राप्तहोगा काहेते कि पशुओं की क्रिया और कर्मों का दोष नहीं लगता और यह मनुष्य अशुभकर्मोंकरके नरकों को भोगता है ताते इस पुरुष को चाहिये कि जिस प्रकार अपनी विशेषता को पहिंचानता है तैसेही अपनी नीचता और पराधीनता को भी पहिंचानराखै काहेसे कि इस प्रकारका पहिंचाननाभी भगवत्के पहिंचानने की कुञ्जी है ताते अपने आपके पहिंचानने का वर्णन करना इतनाही बहुत है ॥

दूसरा अध्याय ॥

भगवत्के पहिंचानने के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सन्तजनोंके वचनोंविषे यह वचन प्रसिद्ध है और उन्होंने यही उपदेश कियाहै कि हे भाई ! जब तू अपने आपको पहिंचाने तब निस्सन्देह भगवत्को पहिंचानेगा इसीपर महाराज का वचनहै कि जिसने अपने आत्मा और मनको पहिंचाना है तिसने भगवत् को पहिंचाना है और इसकी युक्ति यह है कि मनुष्य का हृदय दर्पण की नाईं है ताते जो पुरुष इस विषे बुद्धि की दृष्टि करके देखताहै तब उसको भगवत् का दर्शन प्रत्यक्ष भासताहै बहुरि सबहीलोग जो

आप को देखते हैं और भगवत् को नहीं देखसके सो तिसका कारण यह है कि जिस प्रकार आपको देखना सन्तजनों ने कहाहै तिस विधिसंयुक्त आपको नहीं देखते ताते जिस दृष्टि करके हृदयरूपी दर्पण विषे भगवत् को देखसक्ताहै तिस का खोलना अवश्यही प्रमाण है पर बहुत लोगों की बुद्धि इस भेद को समझ नहींसक्ती ताते जिस प्रकार सबोंको समझना सुगमहै सो तिसी प्रकारसे वर्णन करता हूं कि प्रथम यह मनुष्य अपने स्वरूप के होनेकरके भगवत् के स्वरूप को पहिंचाने और अपने गुणों करके भगवत् के गुणों को पहिंचाने बहुरि अपने शरीर और इन्द्रियोंविषे जिस प्रकार इस जीवकी आज्ञा वर्तती है तैसेही सर्व जगत् विषे भगवत् की आज्ञा को पहिंचाने सो तिसका बखान यह है कि जैसे मनुष्य अपने होनेको जानताहै कि केते काल आगे मेरा नाम रूप कुछ भी न था बहुरि जब यह पुरुष अपनी आदि को समझे तब आदि उत्पत्ति का मार्ग वीर्य है सो मलिन जल की बूंदथी सो उस बूंद विषे बुद्धि, श्रवण, नेत्र, शीश, हाथ, पांव, रसना, अस्थि, नाड़ी, त्वचा कुछ न थी और वह केवल श्वेत जल ही था ताते यही बिचार करे कि शरीर विषे नाना प्रकारके आश्चर्य उत्पन्न हुये हैं सो इसने आपही बनाये हैं कि किसी ने उसको उत्पन्न किया है और यों भी जानना योग्य है कि अब तो यह मनुष्य बुद्धि और इन्द्रियों करके संयुक्त और पूर्ण है तो भी एक बालको बनाय नहीं सक्ता और जब इसका आकार वीर्यरूप था तब तो महानीच था तब आपको क्योंकर बनाय सक्ता सो जब इस प्रकार यह मनुष्य अपनी उत्पत्ति को पहिंचाने तब अपने उत्पत्ति करनेवाले महाराज को सुगमही पहिंचान लेवे बहुरि जब अपने आश्चर्यरूप अङ्गों को देखे तब भगवत् की समझ को प्रकटही समझलेवे और यों भी जाने कि वह ईश्वर ऐसा समर्थ है कि जिस प्रकार किसी पदार्थ को उत्पन्न किया चाहे सो करसक्ता है बहुरि इससे विशेष और क्या वर्णन करिये उसका बल जो ऐसे मलिन जलकी बूंदसे यह शरीर सुन्दर बनाया है और आश्चर्यरूप इन्द्रियों के साथ शरीर को बनाया है और जब यह मनुष्य अपने स्वभावों की ओर देखे और इन्द्रियों के कर्मों को पहिंचाने तब इस वार्ता को जान लेवे कि एक २ अङ्ग कैसे गुणों के निमित्त बनाये हैं जैसे हाथ, पांव, जिह्वा, नेत्र, दांत और इस शरीर के अन्तर के अङ्ग जैसे हृदय, नाभि, प्राण इत्यादिक और भी जो असंख्य अङ्ग हैं सो

इनकी उत्पत्ति के गुणों करके अपने उत्पत्ति करनेवाले ईश्वर की विद्या को समझे कि उसकी विद्या अपार है और सर्व पदार्थों विषे भरपूर है और यों भी जाने कि उसकी ऐसी विद्या से कोई पदार्थ गुप्त नहीं होसक्ता ताते जब सर्व बुद्धिमान् एकत्र होकर दीर्घकालपर्यन्त विचार करके किसी एक अङ्गको और भांति से बनाया चाहें तब जिस प्रकार आगे भगवत् ने बनाया है तिसही को भलाजाने और उससे अन्यथा किसी प्रकार न करसके जैसे यह दांत हैं सो अगले दांतोंका शीश तीक्ष्णहै और उस तीक्ष्णता करके आहार को खण्ड २ कर देतेहैं बहुरि दूसरे जो दांतहैं तिनके शीश चौड़े हैं उन करके आहार पीसाजाता है जैसे अनाज को चक्की पीसतीहै और जैसे उस विषे नली करके अनाज इकट्ठा हो आता है तैसेही रसना ग्रास को इकट्ठा करके दांतोंके तले करदेती है बहुरि रसना के नीचे एक सरोवर रखाहै सो उस करके रसना ग्रास को भिगो लेती तब आहार को भिगोवने करके कोमलता प्राप्तहोती है और उसका भिगोवना भी मर्यादा अनुसार होताहै ताते वह ग्रास सूखे नहीं कण्ठ विषे उतर जाता है सो जब सब बुद्धिमान् इकट्ठे होकर भगवत् की कारीगरी आश्चर्यरूपी से कुछ और प्रकार बनाना सोचें तब इससे विशेषता बनाय न सकें ताते जो कुछ भगवत् ने कियाहै उसही विषे भलाई और सुन्दरताई है जैसे हाथकी पांच अँगुली हैं सो चार अँगुलियों का स्वभाव एक है और पांचवां जो अँगूठा है तिसका स्वभाव भिन्न है और इसकी ऊँचाई थोड़ी है बहुरि कैसाहै कि सब अँगुलियों के ऊपर फिरता है और सबोंके साथ कार्यों को करताहै और अँगुलियोंके तीन २ बन्दहैं अँगूठेके दोही बन्दहैं ताते अँगूठे को ऐसा दृढ़ बनायाहै कि जब चाहता है तब अँगुलियोंको समेटकर मूठ करलेताहै और फिर उस मूठको उठाभी देता है और कभी हाथ को तलपात्र करलेताहै कभी चौड़ा करलेता है और नाना प्रकारके जो शस्त्र हैं सो अँगूठे करकेही सिद्ध होतेहैं और कभी हाथ को बासन की नाईं बनायलेता है तात्पर्य यह कि हाथों की क्रिया सब अँगूठे करके सिद्ध होतीहै और जब सभी सयाने मिलकर किसी और प्रकार विचारकरें कि पांचों अँगुलियां समानहोवें अथवा तीन एकओर होवें और दो भिन्न होवें अथवा षष्ठ अथवा चारहोवें अथवा इन तीन बन्दोंसे और भांति कियाचाहैं सो यह जितना विचार करेंगे वह सब नीच और कुरूपहोवेगा ताते जो भगवत् ने बनायाहै सोई

पूर्ण है और इसकरके प्रसिद्धहुआ कि उत्पत्ति करनेवाले महाराजको विद्या इस जीवके शरीर और सर्व पदार्थों बिषे भरपूरहै और सब जगत् का जाननेवाला है बहुरि जितने इस शरीर के अङ्गहैं सो सबों बिषे ऐसेही गुण और भेद हैं पर जो कोई इन भेदों को अधिक समझताहै सो भगवतकी विद्याको देखकर अधिकही आश्चर्यवान् होताहै ताते यह पुरुष अपने अङ्गोंकी ओर देखे बहुरि आहार और वस्त्र और पृथ्वी आदिक जो स्थान हैं सो तिनका बिचारकरे बहुरि आहार की उत्पत्ति का जो सम्बन्ध मेघ और पवन और शीत उष्ण आदिक के साथहै सो तिसको पहिंचाने और आश्चर्यरूप जो खानि हैं तिन बिषे लोहा और तांबा आदिक धातु उपजती हैं बहुरि लोह और काष्ठकरके अनेक भांति के शस्त्र बनाते हैं और इन शस्त्रों की विद्या जो है और कारीगरी जो है सो यह भी अपार है और जब कोई पुरुष बिचारकर देखे तब यह सबही पदार्थ जगतबिषे चाहिये थे सो भगवतने आगेही अपनी दयाकरके उत्पन्नकिये हैं और सम्पूर्ण बिधिसंयुक्त बनायराखे हैं और एक २ पदार्थ बिषे कितने गुण रचे हैं सो प्रथमही जब भगवत् इनको उत्पन्न न करता तब यह भी कोई न जानता कि अमुक पदार्थ मुझ को चाहिये है और मांगलूं ताते भगवत् ने अपनी दया करके पहिंचानने और मांगने के पहिलेही सभी पदार्थदिये हैं और जीवों को सर्व कार्योंकी विद्या दीन्हीं है सो इस करके भगवत् की परमदया पहिंचानी जाती है सो वह महाराज सब सृष्टिपर महाकृपालु है और इनकी ऐसी दया को देखकर सब सन्त आश्चर्यवान् होरहे हैं इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जैसे बालक के ऊपर माता पिताकी दया होतीहै तैसेही सर्वजीवों पर भगवत् इससे भी अधिक दयालु है ताते इस जीव के उत्पन्नहोनेकरके उस भगवत् की सत्ता पहिंचानी जातीहै और नाना प्रकारके अङ्गोंकी उत्पत्तिकरके उस और अस्तीकी पूर्ण सामर्थ्य पहिंचानसक्के हैं बहुरि सर्व अङ्गोंबिषे जो अनेक भांतिके गुण और कार्य रचे हैं सो इसकरके भगवत् की परमदया भास आवती है और जेते पदार्थ अवश्यमेव कार्यमात्र और सुन्दरताई के निमित्त चाहनेथे सो सभी इस मनुष्य को दिये हैं और किसीसे कुछ दुराय नहीं राखा सो ऐसे बिचारों करके भगवतकी परमदया पहिंचानी जातीहै ताते अपना पहिंचानना भगवत्के पहिंचानने की कुञ्जी जो कहीहै सो यही है॥

दूसरा सर्ग ॥

भगवत् की निर्लेपता और परमशुद्धता की पहिचान के बखान में ॥

ताते जान तू कि जब तूने अपने स्वरूप की सत्ता करके भगवत् के स्वरूप को पहिंचाना और अपने गुणों करके भगवत् के गुणों को पहिचाना तब भगवत की शुद्धता और निर्लेपता का अर्थभी पहिंचानना चाहिये सो शुद्धता का अर्थ यहहै कि जेती स्थूलता मनके संकल्प विषे आवती है तिससे भगवत् निर्लेप है अर्थ यह कि उसका स्वरूप संकल्प विषे नहीं आवता बहुरि देशकाल से भी निर्लेपहै सो यद्यपि कोई स्थान उसकी सत्ता से भिन्न नहीं पर तौभी उसको ऐसे नहीं कहसक्के कि भगवत अमुक स्थान विषे रहताहै और इस निर्लेपता का लक्षण भी अपने विषेही पहिंचान सक्केहैं जैसे मैंने आगे भी वर्णन कियाहै कि इस जीवका चैतन्य स्वरूप है सो मनके संकल्प विषे उसका रङ्गरूप कुछ नहीं भासता बहुरि मर्यादते रहितहै और अखण्डहै और अरूपहै ताते जो वस्तु मर्याद और रूपसे रहित होतीहै उसका स्वरूप संकल्प विषे कदाचित् नहीं आवता काहेते कि जिस पदार्थ को नेत्रों करके देखाहोवे अथवा उसकी नाईं और वस्तु देखीहोवे तब उसका स्वरूप संकल्प करके जानना चाहताहै इसका अर्थ यही है कि अमुककी वस्तु कैसी है और अमुक का रूपरङ्ग क्या है और अमुक की मर्याद केती है और लघु वा दीर्घ है सो उस चैतन्यस्वरूप विषे ऐसे संकल्पों का मार्गही नहीं और जब कोई यह प्रश्न करै कि वह कैसाहै सो यह प्रश्नही व्यर्थ है और जब तू इस संशय को दूर कियाचाहै कि जिस पदार्थ का रङ्गरूप कुछ न होवे तब उस पदार्थको क्योंकर सत्यजानिये सो तिसका उत्तर यहहै कि इस वार्ता को भी तू अपनेही अन्तर विषे देख कि तेरा चैतन्य स्वरूप है सो मर्याद और प्रमाण ते रहितहै और उसका रूप वर्णन विषे नहीं आवता पर जब तैंने आप कोभी इस प्रकार निर्लेप जाना तब ऐसे जाना कि भगवतकी निर्लेपता तेरी निर्लेपता से अधिक विशेषहै पर यह लोग इस वार्ताको सुनकर आश्चर्य मानते हैं कि जिसका रङ्ग कुछ न होवे तब उसको सत्यस्वरूप क्योंकर जानिये परन्तु जब विचारकरके देखें तब वह आपभी रङ्गरूपसे रहितहै और सत्यस्वरूपहै और आप को पहिंचान नहींसक्के बहुरि जब यह मनुष्य अपने शरीरविषे विचारकर देखे तब सहस्रों पदार्थों को रूपरङ्गसे रहित पहिंचाने जैसे क्रोध, प्रेम, पीड़ा और सुख

दुःखआदि सो यह सबही अरूप हैं ताते जो कोई यह प्रश्नकरै कि अरूप वस्तु क्योंकर सत्यहोसक्तीहै सो यह प्रश्नही व्यर्थहै काहेते कि जब यह पुरुष राग और सुगन्ध और स्वादके चिह्नको देखाचाहे तब इनके आकार देखने विषे भी असमर्थ होताहै सो इसका कारण यह है कि रूपरङ्ग की ढूंढ़ भी मनके संकल्प कर होतीहै तौभी प्रथम जिस पदार्थ को नेत्रों करके देखाहोवे तब उसकी मूर्त्ति संकल्प विषे दृढ़ होजाती है तो संकल्प नेत्रों के देखेहुये को ढूंढ़ता है पर श्रवणों विषे जो शब्दहै तिस विषे नेत्रों का देखना पहुँच नहींसक्ता और शब्दका रूप चिह्नभी कुछ नहीं पासक्ता ताते जिस प्रकार शब्द का स्वरूप दृष्टिसे विलक्षण है तैसेही रूपरङ्ग का देखना श्रवणों सेभी विलक्षणहै बहुरि इसीप्रकार सर्व इन्द्रियों के विषय भिन्न २ हैं पर जिस पदार्थ का ज्ञान बुद्धि करकेही होता है उसको इन्द्रिय अगोचर कहते हैं उसमें किसी इन्द्रिय का गम्य और विषय नहीं और रूपरङ्गकी प्राप्ति इन्द्रियों के देश विषय विषे पाई जाती है पर इस भेद को पुरुषार्थ और युक्तिकरके समझ सक्ते हैं इसका विस्तार अपर ग्रन्थों में है इस ग्रन्थमें जितना वर्णनहुआ सो यही बहुतहै सो इसका तात्पर्य यह है कि यह मनुष्य अपनी अरूपता और निराकारता करके भगवत् की अरूपता और निराकारता को पहिंचानै और इस प्रकार जाने कि इस जीवका स्वरूप जिस प्रकार रूपरङ्ग से रहित है और शरीर जो रूपरङ्गसहित है तिसका राजा है और शरीर इसका देश है तैसेही सर्वदृष्टि का ईश्वर जो भगवत् है सो अरूप और निराकार है और जेता कुछ जगत् स्थूल और आकारवान् है सो महाराज की आज्ञा विषे बर्तता है बहुरि भगवत्को जो स्थानसे निर्लेप कहाहै सो तैसेही इस जीव को भी हाथ, पांव, शीश और किसी और अङ्ग विषे पाइ नहीं सक्ता काहेते कि यह इन्द्रिय और सब अङ्ग खण्डाकारहैं और चैतन्यरूप जो जीव है सो अखण्ड है सो खण्डाकार विषे अखण्ड वस्तु का स्थित होना असंभव है इसकरके कि जब खण्डाकाररूप पदार्थ विषे अखण्डवस्तु स्थित होवे तब वह भी खण्ड २ होजावे ताते यह बड़ा आश्चर्य है कि यद्यपि जीव की सत्ता से कोई अङ्ग भिन्न नहीं और सब अङ्ग जीवकी सत्ता और आज्ञामें हैं सत्ताबिना कोई अङ्ग नहीं पर तौभी उस को किसी एक स्थान विषे कह नहीं सक्ते और शरीर के सर्व अङ्ग जीवकी आज्ञा के अधीन हैं इसी प्रकार वह महाराज सर्व सृष्टिका ईश्वर है और निर्लेप है और

सर्व जगत् उसकी सत्ता से है और उसके अधीन है सो भगवत् को धरती और आकाश और पाताल विषे किसी एक स्थान में कहा नहीं जाता बहुरि भगवत् की जो निर्लेपता और शुद्धता है तिसका सम्पूर्णभेद तबहीं समझा जासक्ता है जब जीव के यथार्थरूप का वर्णन करिये और धर्मशास्त्र विषे इस वचन को प्रसिद्ध कहने से वर्जित कियाहै जैसे महाराजने भी कहाहै कि इस मनुष्यको मैंने अपने रूपके अनुसार उत्पन्न कियाहै ॥

तीसरा सर्ग ॥

भगवत्की बादशाही के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि भगवतका स्वरूप और उसके गुण और अरूपता को तैंने समझा और देशकालसे निर्लेप निराकार तैंने जाना सो इन सब भेदों का पहिंचानना अपने पहिंचानने करके सिद्धहुआ तब भगवत् की बादशाही को पहिंचानने का प्रसङ्गभी तुझको श्रवण कियाचाहिये कि वह महाराज अपनी बादशाही विषे क्योंकर बर्ततहै और सर्वदेवतों को किसप्रकार आज्ञाविषे चलाताहै और देवता उसकी आज्ञा क्योंकर मानते और चलते हैं बहुरि जगत् के कार्यों को क्योंकर सिद्ध कराता है और आकाश लोक से उसकी आज्ञा भूमिलोक विषे किस प्रकार आती है और तारामण्डल को क्योंकर फिराता है और भूमिलोकके जीवों के कार्य किसप्रकार देवतों के आधीन राखे हैं और सर्वजीवों की प्रतिपालना आकाशद्वारे क्योंकर होती है सो इस विद्याको भगवत् के करतूतों का पहिंचानना कहते हैं और इसका बखान करना बहुत विस्तार से होताहै पर इस विद्या के पहिंचानने की कुञ्जी अपने २ पहिंचानने करके प्राप्त होतीहै ताते जबतक तू इस भेदको भी न पहिंचानसके कि मैं अपने शरीर विषे क्योंकर बादशाही करताहूं तबतक सर्व जगतका राजा जो महाराज भगवत् है तिसकी बादशाही के भेदको क्योंकर पहिंचानेगा इसी कारण से प्रथम तू अपने एक कर्म को पहिंचान कि जैसे तेरे चित्तविषे भगवतका नाम लिखने की इच्छा होवे तब प्रथम वह सङ्कल्प हृदय विषे आन फुरता है बहुरि उसका प्रवेश शीशविषे जाय पहुँचता है पर जिसको हृदयस्थान कहा है सो प्राणकी स्थिति होने का ठौरहै और सर्वइन्द्रियों का व्यवहार इसही करके सिद्ध होताहै ताते वैद्यक विद्या विषे प्राणों के स्थानको चैतन्य कहते हैं पर मेरे मतविषे प्राणों का और जो हृदयस्थान है

सो जड़, स्थूल और नाशवन्त है बहुरि वह हृदय जो चैतन्यरूप है और ज्ञान का स्थान है सो इस प्राणवायु से भिन्न है और अविनाशी है पर बहुसङ्कल्प हृदयस्थान से शीशविषे पहुँचता है तब उस नाम की मूर्त्ति सङ्कल्पविषे दृढ़ हो जाती है तिससे पीछे उसकी प्रेरणा कांधों और सर्वनाड़ी अर्थात् पुट्ठोंविषे आन पसरती है तिसकरके पुट्ठे और उनकी प्रेरणा से अँगुली हलती हैं और अँगुली लेखनी को हिलाती हैं तब कागज़ पर अक्षर प्रकट होते हैं और नामकी मूर्त्ति बनजाती है पर जैसी मूर्त्ति सङ्कल्प विषे फुरीथी सो नेत्रादिक इन्द्रियों के सम्बन्ध से पत्र के ऊपर प्रकट होती है सो जैसे तुझ को भी प्रथम महाराज के नाम लिखने की इच्छा प्रकट हुईथी तैसेही सर्वजगत् की उत्पत्ति का कारण भगवत्की इच्छा है और जैसे उस इच्छा की प्रेरणा तेरे हृदय स्थान विषे फुरीथी तैसे ही प्रथम भगवत् की इच्छाभी ईश्वरविषे आन फुरती है और जैसे तेरी इच्छा हृदय स्थान से शीश विषे पहुँचती थी तैसेही भगवत् की इच्छा ईश्वरसे और देवतों को पहुँचती है और जैसे तेरी इच्छा की मूर्त्ति प्रथम सङ्कल्प विषे दृढ़ हुई थी और उसके अनुसार अक्षर प्रकट हुये थे तैसे ही जो कुछ इस जगत् विषे प्रकट हुआ है सो प्रथम तिनकी मूर्त्ति महत्तत्त्व विषे प्रकट होती है और जैसे शीश के बल करके कांधे और भुजा और अँगुलियां हलती हैं तैसे ही देवतों की सत्ता नक्षत्र और तारामण्डल को हिलावती हैं और जैसे भुजा और अँगुलियों के बलकरके कलम का हिलना होताहै तैसेही नक्षत्रों करके पांच भूतों के स्वभाव भिन्न २ प्रकट होतेहैं और जैसे कलमकरके स्याहीका पसरना और अक्षर प्रकट होते हैं तैसेही वात पित्त और कफ आदिक जो भूतों के स्वभाव हैं सो तिन्हों करके नाना प्रकार के शरीर उत्पन्न होते हैं और जैसे कलम का कार्य येही था कि उस करके आदि सङ्कल्प अनुसार नाम की मूर्त्ति कागज़पर प्रकटहुई तैसेही पञ्चतत्त्वों की करतूति येही है कि देवतों की सहायता करके इनके विषे नाना प्रकारके शरीर और बनस्पति उत्पन्न होती हैं सो जैसे शीशमें सङ्कल्प विषे प्रथम नाम की मूर्त्ति दृढ़होकर फिर तिसके अनुसार नाड़ी और अँगुली आदिक करिके कागज़पर प्रकट होती हैं तैसेही भगवत के आदि संकेत विषे सब रचना प्रथमही होचुकी है और तिसही के अनुसार सर्व जगतकी उत्पत्ति और उसमें सर्व जीवों के समस्त व्यवहार समय पाकर होतेरहते हैं बहुरि जैसे तेरे सर्व कार्योंकी इच्छा

हृदय स्थान विषे फुरती है और पीछे उसका प्रवेश सर्व अङ्गों विषे होताहै तैसे ही सर्व जगत् का कारण ईश्वर है और पीछे देवतों को बल ईश्वर से पहुँचता है और जैसे तेरे चैतन्यता का स्थान हृदय कहा जाता है और उस करके सर्व क्रिया सिद्धहोतीहैं तैसेही भगवत् की इच्छा का स्थान ईश्वर है और ईश्वरकी सत्ताकरके सर्व जगत् का व्यवहार सिद्ध होता है सो इस वार्ता विषे कुछ भेद नहीं पर जिन्हों के बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं तिनको प्रकट भासती है और तिस वचन के अर्थ को भी वही समझता है जैसे भगवत् ने कहा है कि मैंने मनुष्य को अपनी सूरतके अनुसार उत्पन्नकिया है ताते निरसंदेह जान तू कि राजाओं के भेद को कोई राजाही जानता है और अन्यथा कोई नहीं जान सक्ता इसी कारण से भगवत् ने तुझ को भी राज्य दिया है कि अपने शरीररूपी देश के राज्यकरके तू भगवत् के राज्यको पहिंचाने ताते तू महाराज का परम उपकार विचार कि जो तुझको प्रथम उत्पन्न किया है बहुरि अपने राज्य की नाईं तुझको भी कछुक राज्य दियाहै और हृदय स्थान को तेरा वैकुण्ठ बनाया है और शीश को देवलोक बनाया है और तेरे चित्त को महत्तत्त्व बनाया है बहुरि नेत्र और श्रवणादिक जो सर्व इन्द्रियां हैं सो तिन को देवतारूप स्थित कियाहै और तेरे शीश को आकाश की नाईं इन्द्रियों का स्थान बनाया है बहुरि तुझ को रूप रङ्गसे रहित उत्पन्न किया है और जेता कुछ रूप रङ्गसहित शरीर है सो तिसपर तुझको राजा बनाया है बहुरि इस प्रकार तुझ को आज्ञा करी है कि तू अपने राज्यसे एक पलभी अचेत न हो काहेते कि जब तू अपने आपसे अचेत होवेगा तब मुझको भी न पहिंचानेगा ताते तू प्रथम आपको पहिंचान और यह जो कुछ वर्णनविषे आया है सो जीव और भगवत् के राज्य को सूचनमात्र करके कहा है बहुरि जब जीवके सर्व अङ्गों और सर्व स्वभावों का वर्णन कियाहै सो वह भी बहुत विस्तार होता है तैसे ही इस ब्रह्माण्ड और देवतों का जो परम्परा सम्बन्ध है और उनके जो स्थान और पुरियां हैं सो यह विद्याभी अपार है और तात्पर्य यह है कि जो कोई बुद्धिमान् होवे सो इस भेदको समझकर प्रतीतिकरे कि सर्वसृष्टि का ईश्वर भगवत् है पर जिसका हृदय मलिन होता है सो इतना भी नहीं समझसक्ता और ऐसा अचेत होताहै कि भगवत् के स्वरूप की सुन्दरता और सामर्थ्य के ऊपर प्रतीति नहीं करता ताते इन जीवों की बुद्धि तो ऐसी

मलिन है कि जेता कुछ वर्णन मैंने कियाहै सो तिसको भी नहीं समझते ताते भगवत् स्वरूप को क्योंकर पहिंचानें ॥

चौथा सर्ग ॥

वैद्यक और ज्योतिषके मतके खण्डन के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि ये वैद्य और ज्योतिषी ऐसे मतिहीन हैं कि सर्व जगत् के कार्यों को वात, पित्त, कफ और नक्षत्रों के अधीन कहते हैं सो इनका दृष्टान्त यहहै कि जैसे किसी लिखेजातेहुये कागज़को कोई मकोड़ादेखे कि कालाहुआ जाता है और उसपर अक्षर बनताहै तब जाने कि क्योंकर कागज़ स्याह होता जाताहै फिर कलम को देखे तब अपने चित्तविषे प्रसन्नहोवे कि मैंने इस भेद को भलीप्रकार समझाहै कि इन अक्षरों को कलमही आप बनाताहै सो यह दृष्टान्त वैद्यक मतपर प्रसिद्ध है कि उन्होंने सबसे नीचे पद को अङ्गीकार कियाहै काहेते कि वह सर्व कार्यों को वात पित्त कफ के अधीन समझते हैं बहुरि कोई दूसरा मकोड़ा अर्थात् चींटी उसके पास आवे और उस पूर्वकी चिउँटी से इसकी दृष्टि अधिक विशालहोवे तब यह चिउँटी उसको कहे कि तू भूली है काहेते कि इस कलम को चलावनेवाली अँगुलियां हैं बहुरि इस अपनी समझपर प्रसन्नहोकर कहे कि मैंने तो इस वार्त्ता को भलीप्रकार जाना है सो यह दृष्टान्त ज्योतिषियों का है कि वैद्यों से उनकी दृष्टि अधिक है काहे ते कि वे तत्त्वों के स्वभावों को नक्षत्रों के अधीन जानते हैं पर यह नहीं जानते कि नक्षत्र भी और देवतों के अधीनहैं ताते इससे परे जो पदवी थी सो तिसको यहभी नहीं जानते भये बहुरि जैसे ज्योतिषी और वैद्यों की समझ विषे भेद है परस्पर उनका विवाद होता है तैसेही आत्मा और अनात्मा के समझनेवालों विषेभी भेद बड़ा होताहै सो बहुत पुरुष तो ऐसे हैं कि वे शरीर और प्राणादिकोंको चैतन्य मानते हैं ताते यह तो बहुत नीचीपदवी विषे गिरे हैं और ऊँचीपदवी जो चैतन्यता का मार्ग है सो तिस से उनको आवरण हुआ है ताते उनकी बुद्धि शरीर देशविषेही दृढ़हुई है बहुरि एक ऐसे पुरुषहैं कि उन्होंने शरीर से जीवको भिन्न जानाहै और वे चैतन्यता के प्रकाश विषे स्थितहुये हैं इसी प्रकार और भी केते पद हैं जो परे से परे चलेजाते हैं पर किसी का प्रकाश तारावत्है कितने चन्द्रमा के समान हैं कितने सूर्य की नाईं प्रकाशमान हैं सो इन पदों को वही पुरुष प्राप्तहोते हैं जिनकी बुद्धि चिदा-

काश बिषे गमनकरती है इसीपर खलीलनामी सन्तने भी कहाहै कि जिस महाराज ने पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न कियाहै सो मैं तिसकी ओर अपना मुख लाया हूं और महापुरुष ने भी कहाहै कि भगवत् और जीव बिषे सत्तरहजार परदे हैं सो दूर जो होवें तौ प्रकाशरूप होवे अर्थात् महाराज के सत्तरहजार परदे अथवा कला प्रकाशरूप हैं सो जो महाराज उन परदों को समस्त उठादेवें तौ निश्चय करके उनका प्रकाश ऐसा है कि जिनकी दृष्टि उनपर पड़े तिनके मुख को अवश्यमेव शीघ्रही भस्म करदेवें सो इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि वैद्यक विद्यावाले ने भी सत्य कहाहै काहेते कि जो वात, पित्त, कफ बिषे भगवत् की सत्ता न होती तो वैद्यकविद्या झूठ होजाती सो नहीं परन्तु भूलना उनका इसप्रकार है कि वे महानीचे पद को उत्तम पद मानते हैं ताते इनकी दृष्टि महामन्द है अर्थ यह कि जैसे कोई मूर्ख किसी टहलुवे को राजाकरके जाने और यों न जाने कि यह टहलुवा तो पनहीं पकड़नेवाला है बहुरि एकता की दृष्टि करके देखिये तो ज्योतिषियों ने जो जगत् को नक्षत्रों के अधीन कहाहै सो यहभी सत्य कहाहै काहेसे कि जब नक्षत्रोंबिषे भगवत् की सत्ता कुछ न होती तौ रात्रि व दिन एक समान होते क्योंकि सूर्यभी एक दीर्घ ताराहै जो सूर्यकरकेही जगत्बिषे प्रकाश और उष्णता होतीहै जब यों न होता तब ग्रीष्म और शरद्ऋतु समान होतीं काहेते कि जब सूर्य आकाशबिषे पृथ्वी के निकट आवते हैं तब ग्रीष्मऋतु होती है जब पृथ्वी से दूरजातेहैं तब शरद्ऋतु होती है ताते जिस भगवत् ने सूर्य को प्रकाशमान और उष्णतासहित बनाया है तिन्हीं ने शुक्रको भी शीतल और सोखनेवाला बनाया है बहुरि एक तारे को उष्ण और सजलता सहित बनाया है सो इस प्रकार समझने करके धर्म बिषे खण्डता कुछ नहीं होती परन्तु ज्योतिषियों को इस कारण भूलेहुये कहाहै कि उन्होंने जगत्को नक्षत्रोंही के अधीन जाना है और नक्षत्रों की पराधीनता नहीं जानते कि सूर्य चन्द्र और सब तारे भगवत् की आज्ञा के अधीन हैं ताते इनको चलावनेवाली भगवत् की शक्ति है और यह सब आप समर्थ नहीं जैसे हाथ और भुजाके बिषे कांधों की शक्ति फुरती है पर कांधों बिषे भी शीश का बल होता है तैसे यद्यपि तारामण्डल और नक्षत्र भी चरणदासी पकड़नेहारे टहलुवे की नाईं नहीं पर तौभी नीच किंकर हैं पर तत्त्वों को स्वभाव जो वात पित्त कफ हैं सो महाअधम ते अधम हैं और महाराज के हाथ बिषे कलम

की नाई हैं और अधीनहैं पर बहुतलोगों विषे इस करके विवाद होताहै क्योंकि एक २ भावकरके वैद्यक और ज्योतिषवाले भी सत्य कहते हैं पर भलीप्रकार यथार्थ भेद को नहीं समझते और जानतेहैं कि हमने ज्यों का त्यों भेद पायाहै सो इनका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी जगह कई एक अन्धे रहते थे सो उन्होंने सुना कि हमारे नगर विषे हाथी आया है तब हाथीके देखने को सब इकट्ठे होकर गये पर उन्होंने इस प्रकार न जाना कि हाथी का देखना नेत्रों से होताहै और हाथों करके नहीं पहिंचानाजाता बहुरि तहां जायकर हाथी पर हाथ फेरनेलगे तब किसीका हाथ पांवों पर पड़ा और किसी का दांतों पर किसीका कान पर किसी का सूंड़ पर हाथ पहुँचा इसी प्रकार हाथी को देखकर लौटआये और परस्पर पूछनेलगे कि हे भाई ! वह हाथी कैसा था सो जिसने पांव को पकड़ा था वह कहने लगा कि हाथी बड़े खम्भा की नाई है और जिसने कानों को पकड़ा था उसने हाथीको पंखेकी नाई बताया और जिसका हाथ दांतोंपर पहुँचा था वह मूसल की नाई वर्णन करनेलगा और जिसके हाथ सूंड़ आई थी वह अँगरखा की आस्तीन की नाईं कहनेलगा ऐसे कहकर परस्पर झगड़ने लगे पर बिचार करके देखिये तौ एक भावकरके उनका कहना सत्य है और एक भावसे मिथ्याहै काहेते कि उन्होंने एक २ अङ्गको पहिंचाना था हाथी को संपूर्ण नहीं देखा तैसेही वैद्यक और ज्योतिषवालों की दृष्टिभी भगवत्के एक टहलुवे पर पड़ी और उस टहलुवे के ऐश्वर्यको देखकर आश्चर्यवान् हुये ताते उसीको राजा जाना पर जिसको भगवत्ने सीधमार्ग दिखाया वह सबोंकी नीचता और पराधीनता को पहिंचानताहै और योंभी जानताहै कि जो कोई पराधीन होता है वह राजा नहीं कहलाता ताते इनके ऊपर ईश्वर और है ॥

पांचवां सर्ग ॥

तत्त्वों और नक्षत्रों के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह ब्रह्माण्ड राजा के मन्दिर की नाईं है सो तिसबिषे वैकुण्ठपुरी एक घर है कि वहां प्रधान के रहने का स्थानहै अर्थात् विष्णु का भवनहै बहुरि उस भवन के चारों ओर एक बारहदरी है सो तिसको बारहराशि कहते हैं और उसके एक २ दरवाजोंपर उसप्रधान के कामदार बैठते हैं सो मानो द्वादश राशिविषे द्वादश देवताहैं बहुरि उस बारहदरी के बाहर नवनक़ीब फिरते हैं सो नव-

ग्रह हैं और प्रधान की आज्ञा जो कामदारों को पहुँचती है तिसको यह सुनते हैं बहुरि नकीब सवारों के नीचे पांच प्यादे हैं सो वे पांच तत्त्व हैं सो इनकी दृष्टि सर्वदा सवारकी ओर रहती है कि देखिये उस दरबार से कैसी आज्ञा आती है बहुरि उन प्यादों के हाथमें पांच जेवड़ी हैं सो वे वात पित्त कफादिक स्वभाव हैं तब उसके केते मनुष्यों को भगवत् की आज्ञाकरके ऊर्ध्वगति को खैंचते हैं और केतोंको नीचे गिरायदेते हैं बहुरि किसीको सुखरूपी शिरोपाव देतेहैं और किसी को दण्डदेते हैं और वैकुण्ठरूपी भवनविषे जो प्रधान कहे हैं सो विष्णुदेवहैं और परब्रह्मरूपी महाराज के अतिनिकटवर्ती हैं और सबही उनके अधीन हैं सो जगत्विषे जो किसी मनुष्य की अवस्था उलटजाती है तब संसारसे उसकी रुचि दूर होजाती है तब उसके ऊपर शोक ऐसा प्रबल होजाता है कि संसारके भोगों को विरस जानता है और परलोकके भयकरके चिन्तित रहताहै सो उस को जब कोई वैद्य देखताहै तब कहताहै कि इसको बाईका रोगहै और इसका कारण शीतऋतु की सीलता है जबलग बसन्तऋतु न आवे तबलग इसका उपचार नहीं होसक्ता और जब उसको कोई ज्योतिषी देखताहै तब वह इस प्रकार कहताहै कि इस पुरुषको बाईका रोग बृहस्पति के कोप करके हुआहै काहेसे कि बृहस्पति और मङ्गल का विरुद्धहुआहै सो जबलग इनका विरुद्ध दूर न होवे तबलग इस पुरुष का रोग दूर न होवेगा सो एकभावकरके जो देखिये तो इन्हों नेभी सत्य कहाहै पर तात्पर्य यहहै कि भगवत् जिस जीव को भलाई प्राप्तकिया चाहता है तब बृहस्पति और मङ्गल जो दो नकीब हैं तिनको शीघ्रही उसकी ओर भेजता है और उनकी आज्ञा करके पवनरूपी प्यादा सीलतारूपी जेवड़ी उसपर डालताहै तिसकरिके उसका चित्त माया के भोगों से विरस होजाताहै और शोकरूपी चाबुक लगाकर श्रद्धारूपी बाग उसकी खैंचते हैं और भगवत् के दरबार की ओर उसका मुख ले आवतेहैं पर इस भेद की बूझ वैद्यक और ज्योतिषशास्त्र विषे नहीं पाईजाती ताते यह विद्या सन्तजनोंके अनुभवरूपी समुद्रविषे होती है सो सन्तजनों की विद्या सर्व दिशा और सबकार्यों विषे भरपूर है इसी कारण से वे सन्तजन ग्रह और नक्षत्रों के फिरने को भी जानते हैं और योंभी जानते हैं कि भगवत्की आज्ञा पाकर किसीको ऊपरको खैंचते हैं और किसीको नीचे गिरायदेते हैं सो यद्यपि वैद्य और ज्योतिषी का कहना भी सत्यहै पर तो

भी महाराज और उसके श्रेष्ठ प्रधान और सेनापतियों को नहीं जानते काहेते कि वह महाराज दुःख और रोग और आपदा और दण्डकरके जीवों को अपनी ओर खैंचताहै और महाराज का वचनहै कि जब सात्त्विकी मनुष्यों को कुछरोग होताहै तब मैं उनको पीड़ा नहीं देता परन्तु उस दुःखकरके मैं अपने प्रियतमोंको अपनीओर खैंचताहूं ताते यह दुःखभी मेरी जेवड़ी है पर जेता कुछ प्रथम बखान किया है सो इस जीवके स्वरूप का पहिंचानना कहाहै और इस करके भगवत्के स्वरूपकी पहिंचानभी प्रसिद्धकरके कही है और अब यह जो वर्णन कियाहै सो भगवत् के राज्य और उसकी करतूतों की पहिंचान कही है सो यह पहिंचानभी अपने राज्य और करतूतोंकी पहिंचानने करके प्राप्त होती है इसीकारण से मैंने अपने पहिंचानने का अध्याय प्रथम कहा है ॥

छठा सर्ग ॥

चार वचन भगवत्स्वरूपसूचक स्तुतिके बखानमें ॥

जानना चाहिये कि भगवतकी स्तुति चार वचनों विषे कहीहै सो चार वचन ये हैं प्रथम भगवत् सबसे निर्लेप है और शुद्ध है १ और दूसरा यह कि महाराज का सर्वप्रकार धन्यवादहै और वह सर्व जगत्का ईश्वरहै २ तीसरे भगवत् एक है और उसकी नाई दूसरा कोई नहीं ३ चौथा यह कि वह महाराज सबसे बड़ा है और परेते परे है ४ सो यद्यपि ये चार वचन कहने विषे संक्षेपकरके कहे हैं पर तौभी भगवत् की सम्पूर्णताई को लखावनेवाले हैं ताते जब तैंने अपनी निर्लेपता करके महाराज की निर्लेपता को समझा तब निर्लेपता के अर्थ की पहिंचान तुझको प्राप्त हुई १ बहुरि जब अपने राज्यकरके ईश्वर के राज्य को तैंने पहिंचाना कि जेते कुछ देवता और कालकर्म स्वभावसहित सम्बन्धहैं सो ईश्वर के अधीन हैं तब ऐसे जानने करके धन्यवाद का अर्थ तैंने समझा काहेसे कि जब कोई और सुख देनेहारा नहीं और आप करके कोई समर्थ भी नहीं तब सर्व प्रकार के जितने सुख हैं तितने केवल भगवतही के उपकार हैं और उस ही का धन्यवाद किया चाहते हैं २ बहुरि जब तैंने इसप्रकार जाना कि भगवत् बिना और कोई समर्थ नहीं और सबही उसके अधीन है तब तीसरे वचन का अर्थ तुझको प्रकट हुआ ३ बहुरि चौथे वचनका भाव यहहै कि भगवत् सब से बड़ाहै सो तिसका अर्थ इस प्रकार जानना चाहिये कि जैसे तू यों जानताहै कि

मैंने भगवत्को पहिंचानाहै सो तिसको तैंने पहिंचानाही कुछ नहीं काहेसे कि भगवत् की बड़ाई का अर्थ यह है कि यह जीव सर्व अनुमान करके उस महाराज को पहिंचान नहींसके ताते बड़ाई का अर्थ यह नहीं कि भगवत् अमुक पदार्थ से बड़ा है काहेसे कि उसके निकट तो और कोई पदार्थही नहीं कि जिस पदार्थ से भगवत् को बड़ा कहिये इस करके कि जेती कुछ सृष्टि भासती है सो भगवत् के प्रकाश का प्रतिबिम्बहै और उसकी सत्ताकरके स्थितहै तौ बड़ा किससे होवे जैसे सूर्य की जो धूप है सो जब धूप सूर्य से कुछ भिन्न होवे तब उससे सूर्य को बड़ा कहिये इसकारण से भगवत् की बड़ाई का अर्थ यहीहै कि यह मनुष्य अपनी बुद्धि और अनुमान करके महाराज को नहीं जान सक्ता और उसकी जो निर्लेपता और शुद्धताहै सो तिसको मनुष्यकी निर्लेपताकी नाईं जानना महा अयोग्य है काहेसे कि जितनी यह सृष्टि भासतीहै सो सबसे भगवत् का स्वरूप विलक्षणहै और उसको किसीकी नाईं नहीं कहाजाता तब यह मनुष्य क्या है कि जो इसका दृष्टान्त भगवत्के ऊपर सम्भव होवे बहुरि ऐसी बुद्धिसे भगवान् रक्षाकरे जो उस महाराज महाप्रभुता और राज्य को इस मनुष्यके ऐश्वर्य राज्य के समान जाने अथवा विद्या और शक्ति आदिक जो महाराज के स्वभाव हैं तिनको मनुष्य की विद्या और सामर्थ्य की नाईं विचारे सो यह महाअयोग्य है यद्यपि इस प्रकार आगे वर्णन कियागया है तौभी महाराज का स्वरूप लखावने के निमित्त दृष्टान्तमात्र कहा है कि उस करके इस मनुष्य को भी कुछ बूझ प्राप्त होवे जैसे कोई बालक किसी बुद्धिमान् से पूछे कि राज्य करने में कैसा स्वादु होता है तब उस बालक को कहा जायगा कि जैसे तुझ को गेंद दण्डा खेलने में स्वादु आवता है तैसेही राजाओं को राज्यमें स्वादु मिलताहै सो उस बालक को इस निमित्त ऐसे कहाहै कि वह गेंद दण्डा से इतर सुख को नहीं जानता और जिस सुख को उसने देखाही न होवे तिसको अनुमान करके क्योंकर पहिंचाने ताते उसको गेंद दण्डा के दृष्टान्त करके समझ में आवेगा पर यह बात प्रसिद्ध है कि गेंद दण्डा का सुख राज्य के सुख से परस्पर कुछ सम्बन्धही नहीं रखता पर सुख शब्द दोनों पर समान आवताहै ताते नामसंज्ञा की एकता करके बालकों को समझावना सुगम होताहै तैसेही मनुष्यकी शुद्धता और निर्लेपताका जो वर्णन कियाहै सो इस जीव की मूर्खबुद्धि समझावने के निमित्त कहाहै ताते

यह वार्त्ता निस्सन्देहहै कि भगवत् की पूर्णता को भगवत बिना और कोई नहीं जानसक्ता इसी कारण से भगवत की पहिचान का विस्तार अमित है जो इस ग्रन्थ में कहा नहीं जाता ताते इस जीव को श्रद्धा और प्रीति उत्पन्नहोने के निमित्त इतनाही बहुतहै और यह मनुष्यभी इतनेही समझने का अधिकारी है कि इस जीवकी भलाई भगवतकी पहिचान और उसकी सेवा और भजन बिषे होतीहै इस करके कि जब इस मनुष्य का शरीर मृत्यु को प्राप्त होवे तब चाहिये कि इसका ध्यान महाराजकी ओर होवे काहेसे कि इस जीव के स्थितहोने का स्थान वोही है और इसको अवश्य में तहाँहीं पहुँचना है ताते जब आगे ही इसकी प्रीति उसके साथ होवे तब जीवकी भलाई जानिये इसकरके कि जितनी प्रीति किसी की अधिक होती है तितनाही उस प्रियतम के दर्शन बिषे उसको आनन्द भी अधिक होता है और जबलग इस मनुष्य को भगवत की पहिचान और भजन की अधिकता न होवे तबलग इसके हृदयबिषे भगवत् की प्रीति दृढ़ नहीं होती सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि जिस पुरुष के साथ किसी की प्रीति अधिक होतीहै उसका स्मरण भी बहुत करता है और जिसका स्मरण करता है उसके साथ प्रीति भी दृढ़ होजाती है इसी पर एक सन्त दाऊद को आकाशबाणी हुई थी कि हे दाऊद! तेरे सर्व कार्यों का सिद्ध करनेवाला मैंहीं हूं और तेरा प्रयोजन भी मेरेही साथ है ताते एक क्षणभी मेरे भजनसे अचेत न हो पर इस मनुष्य के हृदयबिषे भजन तबहीं दृढ़ होताहै जब प्रथम सत्कर्मों बिषे बर्तता है और सत्कर्मों का अवकाश तब पावताहै जब सर्व भोगवासना का त्याग करताहै ताते पापकर्मों का त्यागकरना हृदय की शुद्धि का कारणहै और सत्कर्मोंका ग्रहणकरना भजन की दृढ़ता का कारणहै और ये दोनों भगवतकी प्रीतिके उपजावनेवाले हैं और उत्तम मार्गोंका बीज भगवतकी प्रीति करके सिद्ध होता है सो यद्यपि यह जीव शरीरधारी जो है सो सर्व भोगोंसे रहित नहीं होसक्ता और खानपान वस्त्रआदिक शरीर के कार्यनिमित्त प्रमाण भी कहे हैं ताते चाहिये कि बिचार की मर्यादबिषे स्थित होवे तब करणीयकर्मों और भोगवासनाको भिन्न करे पर बिचारकी मर्याद भी दो प्रकारकरके होती है सो एक यहहै कि यह मनुष्य अपनी बुद्धि और अनुभव की दृष्टिके साथ बिचार की मर्याद को देखकर अङ्गीकारकरे अथवा किसी महापुरुष की संगति करके बिचार की मर्याद बिषे बर्ते पर अपनी

बुद्धि और पुरुषार्थ के आश्रित मर्याद बिषे रहना कठिनहै काहेसे कि इस जीव के ऊपर भोगवासना ऐसी प्रबल है कि इसकी बुद्धि को अन्ध करके सर्वदा यथार्थ मार्गको दुराय रखती है और अपने मनोरथोंके अनुसार भोगों को पुण्यरूप करके देखावतीहै ताते चाहिये कि यह मनुष्य स्वाधीन होकर कभी न बर्ते और अपना शरीर किसी महापुरुषको समर्पणकरे पर सबही मनुष्यभी इस योग्य नहीं होते कि उन को अपनपौ अर्प दीजिये ताते जो ज्ञानवान् सन्त होवे उस की आज्ञा बिषे बर्ते और आज्ञा की मर्याद से उल्लंघितन होवे तब स्वाभाविकही भलाई को प्राप्तहोताहै सो सेवक होने का अर्थ यही है और जो मनुष्य अपनी वासना करके सन्तजनों की मर्याद से उल्लङ्घित होता है तब उसकी बुद्धि तत्कालही नष्ट होजाती है इसी पर महाराज ने भी कहा है कि जिस पुरुष ने बिचार की मर्यादका त्याग किया है तिसने अपने आपपर अन्याय किया है॥

सातवां सर्ग॥

मूर्ख मनुष्य सन्तमार्ग विपरीतगामियों के वर्णन में॥

ताते जान तू कि जिन पुरुषों ने अपनी वासना के अनुसार सन्तजनों की आज्ञा और मर्याद को त्यागकियाहै सो तिनकी अवस्था सात प्रकारकी है सो प्रथम ऐसे मूर्ख हैं कि उनकी प्रतीति भगवत् पर भी नहीं होती और इसप्रकार कहते हैं कि भगवतभी कल्पनामात्रहै काहेसे कि जब कोई इस जगत् का ईश्वर होता तब उसका भी कुछ रूप रङ्ग होता ताते जिसका रूपरङ्ग स्थान दिशा न पाईजावे तब इससे जानाजाता है कि भगवान् कल्पाहुआ है और इस जगत् के कार्य तत्वों के स्वभाव और नक्षत्रों के आश्रित होते हैं सो वह मूर्ख ऐसे ही जानतेहैं कि यह मनुष्य और २ जीव और नानाप्रकार की रचना अनेक गुणों संयुक्त जो दीखते हैं सो ईश्वर विना आप ही उत्पन्न हुयेहैं और इसी भांति स्थित रहेंगे अथवा इनका उत्पन्नहोना तत्वों का स्वभावहै सो यह उनका कहना व्यर्थ है काहेसे कि वह मूर्ख अपने आप से भी अचेत है तब और किसी पदार्थ को क्या जाने सो इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई पुरुष लिखेहुये अक्षरोंको देखे और कहे कि यह अक्षर विद्यावान् और समर्थ लिखारी विना आपही करके लिखेहुये हैं अथवा अक्षरोंकी मूर्त्ति अनादिकालकी लिखीचली आवतीहै सो जिनकी बुद्धि के नेत्र ऐसे अन्धहोवें तब उनका इसप्रकार देखनाही भाग्यों की हीनताका मार्ग

है बहुरि वैद्य और ज्योतिषियों का भूलना तो पहिलेही वर्णनहुआ है १ और दूसरे मनुष्य इसप्रकारके मूर्ख हैं कि वह परलोक को नहीं मानते और यों कहते हैं कि यह मनुष्यभी घास और खेतीकी नाईहैं ताते जब यह जीव मृत्यु होता है तब मूलहीसे नष्ट होजाता है इसी कारण से पाप पुण्य सुख दुःख दण्ड ताड़ना सबही व्यर्थहैं सो यह ऐसे मूर्ख हैं कि आपको भी घास और बैलों और गधोंकी नाई जानतेहैं और आत्मा जो चैतन्य और अविनाशी है तिसको नहीं पहिंचानते और मृत्युहोना जो शरीर की नाशता का नामहै तिससे अचेतहैं पर इस का निर्णय परलोक अध्याय विषे कहेंगे २ बहुरि तीसरे मूर्ख ऐसे हैं कि वह भगवत् और परलोक को मानते हैं पर उनकी प्रतीति निर्बल होतीहै ताते सन्तजनों के वचनों को नहीं पहिंचानते और कहते हैं कि भगवत् को हमारे भजनकी अपेक्षा क्याहै? और हमारे पाप करने करके उसको दुःख क्याहै? काहेसे कि वह भगवान् ऐसा महाराजा है कि उसको जगत्के भजन करनेकी कुछ परवाहही नहीं ताते उसके निकट पाप और भजन सब समान हैं पर यह मूर्ख भगवत् के वचनों में प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं कि महाराज ने कहा है कि जिज्ञासुजन पुरुषार्थ और शुभकर्म अपने मनकी पवित्रता के निमित्त करते हैं सो यह मूर्ख मन्दभागी इस वचन को नहीं जानते और इसप्रकार समझ रक्खा है कि शुभकर्म भगवत के निमित्त कियेजाते हैं अपने कल्याण के निमित्त नहीं सो तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष रोगी होवै और पथ्य का त्यागन करे और कहे कि मेरे पथ्य और कुपथ्य करके वैद्यकी क्या हानि होतीहै? सो यह वचन तो सत्यहै कि वैद्यकी हानि कुछ नहीं होती पर इस कुपथ्य करके रोगीही का नाश होताहै सो रोगी का नाश वैद्य की अप्रसन्नता करके नहीं होता पर वह कुपथ्यही रोगीकी नाशता का मार्ग है और वैद्य तो उसको शुभमार्ग दिखानेवालाहै ताते वैद्य की हानि क्योंकर होवै सो जैसे शरीर का रोग शरीर की नाशता का कारणहै और रोगों का उपचार करना सुखों का कारण है तैसेही मलिनस्वभाव बुद्धि की नाशता का कारणहै और भगवत का भजन और पहिंचान बुद्धि की आरोग्यता का कारण है ३ बहुरि चौथे मूर्ख इस प्रकार कहते हैं कि सन्तजनों ने जो भोग और क्रोध से हृदय को शुद्धकरना कहाहै सो यह असम्भव है काहेसे कि यह स्वभाव मनुष्य की आदि उत्पत्ति विषे मिलेहुये उपजे हैं ताते यह यत्नकरना ऐसा है जैसे कोई काले-

कम्मल को सफ़ेद कियाचाहे तब वह कदाचित् सफ़ेद नहीं होता सो यह मूर्ख यों नहीं जानते कि सन्तजनों ने भोगों को और क्रोध को वशीकारकरना कहा है जिससे सन्तजनों की आज्ञा और मर्यादसे उल्लङ्घित न होवे और प्रबल न होजावे बहुरि तामसी, राजसी कर्मोंका त्यागना जो कहाहै सो यह वार्त्ता होनेके योग्य है और बहुतपुरुष इस अवस्था को प्राप्तहुये हैं इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि मैं भी और मनुष्यों की नाईं क्रोध करताहूं पर मेरा हृदय तपायमान नहीं होता और महाराज ने भी ऐसे पुरुषों की प्रशंसा करी है जिन्होंने क्रोध को जीताहै सो जीतना तबहीं कहाजाता है जब प्रथम क्रोध होवे और जब क्रोध होवेही नहीं तब उसका जीतना क्योंकर कहिये ४ बहुरि पांचवें मूर्ख इसप्रकार कहते हैं कि वह भगवत् परमदयालु और कृपालुस्वरूप है ताते हमारे अवगुणों की ओर न देखेगा पर यों नहीं जानते कि यद्यपि वह महाराज परमदयालु है पर तौभी पापी मनुष्यों को दण्ड देनेवाला भी वोही है और इस जगतविषे जो नानाप्रकार के रोग और कष्ट और निर्धनता आदिक दुःख जो जीवों को प्राप्त होते हैं सो तिस को नहीं देखते और भगवत् की दया और कृपा में तो कुछ संदेह नहीं पर जब वह अपनी जीविका के निमित्त यत्न करते हैं तब उनकी प्रतीति भगवत्के दयालु जानने में कहां रहसक्ती है और व्यवहार और जीविका के निमित्त क्यों यत्नकरते हैं काहेसे कि वह महाराज उद्यम बिना ही प्रतिपाल करनेवालाहै और महाराज ने प्रसिद्ध कहा है धरती और आकाश विषे सर्वजीवों का प्रतिपाल करनेवाला एक मैंहीं हों सो इस वचन से महाराजने व्यवहार से प्रसिद्ध वर्जाहै परन्तु परलोक के मार्ग में यत्न करनेसे तो इस प्रकार नहीं वर्जा कि तुम भजन और पुरुषार्थ मत करो बहुरि इसी प्रकार जब मूर्ख भगवत् को कृपालुस्वरूप जानते हैं और माया की तृष्णाका त्याग नहीं करसके तो परलोक की वार्त्ता मुखसे व्यर्थही कहतेहैं कि हम को भगवत् क्षमाकरलेवेगा सो यह लोग अपने मन के सिखाये हुये हैं और वासना के दास हैं और भगवत् की कृपापर उनको प्रतीति ही कुछ नहीं ५ बहुरि छठे मूर्ख अपने ऊपर अभिमानी हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हम ऐसी अवस्था को प्राप्तहुये हैं कि हमको पापों का स्पर्श ही नहीं होता और हमारा धर्म ऐसा दृढ़ हुआ है कि उसको कदाचित् मैल नहीं लगता सो ऐसे मूर्खों की अधिक तो ऐसी अवस्था होती है कि जब कोई उनका एकवचन खण्डन करके निरादरकरे

तब सर्व आयुष् अपनी उसके विरोध बिषे खोवते हैं अथवा जब एक ग्रास भी भोजन का किसी से मांगें और वह न देवे तब क्रोध करके उनके हृदयविषे महा अन्धकार छाजाता है सो यह मूढ़ परमपुरुषार्थ बिषे ऐसे तो दृढ़ नहीं हुये कि जो इनको पापों का प्रवेश न होवे फिर ऐसा अभिमान करना क्योंकर प्रमाण होवे और जब कोई मूर्ख ऐसे पद को पहुँचभी जावे कि वैरभाव और भोगों की अभिलाष दम्भ और क्रोध करके उसने दूर कियाहोवे पर जब इस प्रकार जाने कि मैं परमपद को प्राप्तहुआ हूं तौभी अभिमानी कहलावेगा काहेसे कि सन्तजनों की अवस्था तो ऐसी हुई है कि जब उनसे कुछ अवज्ञा होजाती थी तब भय करके रुदन करते थे और महाराज के आगे प्रार्थना करके क्षमा करावते थे और जो उत्तम पुरुष सबे हुये हैं वह किंचित पापसे भी डरते थे और मलिन धान्य के संशय करके शुद्ध धान्यको भी त्यागदेतेथे तब इस मूर्ख ने यह क्योंकरजाना कि मैं मान और भोगों की फांसी से मुक्त हुआ हूं सो इस बुद्धिहीन की अवस्था तो सन्तजनों से उत्तम नहीं हुई बहुरि जब इस प्रकार कहें कि सन्तजन भी कर्मोंसे निर्लेपहुये हैं पर उन्होंने जीवों के कल्याण के निमित्त अशुभ कर्मों का त्याग किया है सो तिसका उत्तर यह है कि जब वह सन्तजन जीवों के कल्याण के निमित्त पापकर्मों का त्याग करते थे तब यह मूर्ख जीवों के कल्याणनिमित्त क्यों नहीं करते और योंभी जानते हैं कि जब कोई और भी हमारे अशुभकर्मों को देखता है तब वह भी धर्म के मार्ग से गिरपड़ता है और उसकी बुद्धि नाश होजाती है बहुरि जब इस प्रकार कहैं कि लोगों की बुद्धि के नाश होने से हमारी क्या हानि होती है ? तब ये मूर्ख यों नहीं जानते कि जो लोगों के नाशकरके इन की कुछ हानि न होती तो आगे जो सन्तजनों ने अपने शरीर पर तप और वैराग्य रक्खा है सो लोगों के अकाज बिषे उनकी हानि क्योंकर होती थी जैसे महापुरुष के पास एक छुहारा सकामता का आया था तब उन्होंने मुख से उस को डालदिया सो जब उस छुहारे को भोजन करलेते तब इसमें उनको क्या पाप होता और लोगों का क्या अवगुण था और जब उस छुहारे के खाने के बिषे दोष था तब इन मूर्खों को मांस मदिरा के खानपान करने से क्योंकर दोष नहीं होगा और फिर जो विचारकर देखें कि जिन्होंने एक छुहारे का त्याग किया था तिनकी अवस्था से इन मूर्खों की अवस्था तो उत्तम नहीं और एक छुहारेके

पाप से मद्यपान का पाप भी थोड़ा नहीं ताते क्योंकर जानिये कि उनको एक छुहारे का भी पाप लगता था और इनको मदिरा करके भी दोष नहीं ताते निस्संदेह जानाजाता है कि इनकी क्रिया देखकर माया प्रसन्न होती है और इन मूर्खों को हास्य का स्थान और खिलौना बनाया है और जब बुद्धिमान् पुरुष इनके कर्मों को देखते हैं तब इनके दम्भकरके आश्चर्यवान् होतेहैं ताते धर्मात्मा पुरुष वेही हैं कि जिन्होंने मन को छलरूप जाना है इसी कारण से मन और वासना को जिसने वश में नहीं किया सो मनुष्य महानीच है अथवा पशु है काहे से कि जिसको अपने मन के छलों की पहिचान नहीं तिसको अभिमान करना व्यर्थ है इस करके कि वह मूर्ख बुद्धि की हीनता करके कहताहै कि मैंने मन को वशीकार किया है और मन के वशीकार करने का कोई लक्षणही इस विषे पाया नहीं जाता सो मनके जीतने का लक्षण यह है कि जब इस जीवकी करतूति अपनी वासना के अनुसार न होवे और सन्तजनों की आज्ञाविषे वर्ते और सर्वदा आपको उनकी आज्ञाविषे अर्पे तब जानिये कि सच्चा है और जब अपनी सयानप और चतुराई करके निर्दोष हुआ चाहे तब जानिये कि मनका दास है और झूंठा अभिमान करता है ताते अपने मन की परीक्षा का त्याग करना कदाचित् प्रमाण नहीं और जब निडर होता है तब निस्सन्देह छला जाता है और अपने नाश होने को भी नहीं जानता बहुरि सन्तजनोंके वचन अनुसार करतूति करना भी जिज्ञासु की आदि है अवस्था इसके बिना धर्म की दृढ़ता नहीं होसक्ती तब परमपद का पावना तो महाकठिन है और परेसे परेहै सो तिस पद का अभिमानी होना व्यर्थ है और सातवें मूर्ख अपनी वासना की प्रबलता करके मूढ़ हुये हैं अजान नहीं हैं इस करके कि आपको निर्लेप नहीं जानते पर जब मनमती लोगों की ओर देखते हैं कि कुमार्ग विषे चले जातेहैं और नाना प्रकार के भोग भोगते हैं और सूक्ष्म वचनों का उच्चारण करते हैं और आपको सन्त करके दिखावते हैं और वेषभी सन्तजनों का करतेहैं सो इन की क्रिया को देखकर वह देखनेवाले भी लम्पट होजाते हैं ताते वह भोगोंको बुरा नहीं कहते और योंभी नहीं जानते कि भोगों करके दुःख प्राप्त होता है और कहते हैं कि भोग तो निन्द्य नहीं और भोगों विषे दुःखही कहां है दुःख भी यह कहनेमात्र है और ये ऐसे मूर्ख हैं कि कहनेमात्र का अर्थ भी नहीं जानते

और पाखण्डियों के संग करके और मन की वासना करके महाअचेत और अन्धेहुये हैं और इनको माया ने जीतलिया है सो यह वचन और चर्चा करके सीधे नहीं होते काहेसे कि अज्ञानता करके नहीं भूले जानबूझकर बावलेहुये हैं ताते उनका उपाय राजदण्ड है और वचन करके उनका उपाय नहीं होता बहुरि ऐसे ने मूर्ख हैं तिनकी अवस्था का बखान इतनाही बहुतहै और इस अध्याय विषे इस कारण से इनकी अवस्था का वर्णन किया है कि ऐसे मूर्खों की अवस्था और मूर्खता अपने मन करके होती है अथवा भगवत् की ओर पहुँचने का जो मार्ग है सो तिस सन्तजनों के मार्ग से अचेत होते हैं पर मूर्ख के हृदय में मूर्खता का स्वभाव ऐसा दृढ़ होजाता है कि इसका दूरकरना कठिन होजाता है इसीकारण से एक ऐसे मूर्ख होते हैं कि अज्ञानता और संशय विषे ही मनमति के मार्ग में चलेजाते हैं और उसपर बड़ाई करते हैं बहुरि जब उनसे कोई प्रश्नकरे तब बावले से होजाते हैं और वचन का निर्णय बताय नहींसकै और किसीसे पूछते भी नहीं काहेसे कि उनके हृदयविषे प्रीति भी कुछ नहीं होती और किसी वचन की शङ्का भी नहीं करते क्योंकि शङ्का भी उसी को उपजती है जिसके हृदयविषे कुछ ढूंढ़ होती है सो ऐसे पुरुषों का उपचार करना कठिन है जैसे कोई रोगी पुरुष वैद्य के पासजावे और अपने रोग को प्रसिद्ध वर्णन करे तब उसका उपचारकरना कठिन रहताहै और ऐसे मूर्खोंको यह उपदेश करना भला है कि और जिस वार्त्ता को तुम नहीं समझते तिससे अजानही रहो पर इतनी प्रतीति तुमको अवश्यही चाहिये है कि तुम सब भगवत के उत्पन्न कियेहुये हो और तुम्हारा उत्पन्न करनेवाला भी ईश्वर समर्थहै और जो कुछ किया चाहे सो करसक्ता है सो वार्त्ताविषे संशय करना अयोग्यहै बहुरि जब उस विषे कुछ श्रद्धा देखिये तब सन्तजनों के वचन उसको युक्ति अनुसार समझाइये जिसप्रकार मैंने भी इस ग्रन्थ विषे वर्णन किया है ॥

तीसरा अध्याय ॥

माया की पहिचान के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह संसार भी धर्म के मार्ग की मंज़िलहै और जो जिज्ञासु जन भगवत् की ओर गमन करते हैं सो तिनके पन्थ विषे यह संसार भी ऐसा स्थान है कि जैसे किसी महाबन के किनारे पर कोई बड़ा नगर अथवा बाज़ार

होवे इस करके कि उस नगर से परदेशी मनुष्य अपना तोशा करलेवें तैसेही यह संसार भी परलोक मार्ग का तोशा बनावने के निमित्त रचा है बहुरि लोक और परलोक का अर्थ यह है कि शरीर के नाश होने से पहले जो संसार दीखता है तिसका नाम लोक है और शरीर के मृत्यु हुये से पीछे जो जीव की अवस्था होती है सो परलोक कहाता है और इस लोक विषे जीवका उत्तम प्रयोजन यह है कि परलोक का तोशा बनावे और यद्यपि आदि उत्पत्ति विषे इस मनुष्य की अवस्था सामान्य और नीच होती है पर तौभी पूर्णपद का अधिकारी बनाया है कि देवतों के निर्मल स्वभाव को जब अपने हृदयविषे स्थित करे तब भगवत् के दर्शन का अधिकारी होवे सो जब इस मनुष्य को उस मार्ग की बूझ प्राप्तहोवे तब निस्सन्देह महाराज का दर्शन देखेगा और जीवकी परम भलाई यही है और इसका वैकुण्ठ भी यही है और इस जीव को भगवत्ने इसी कार्य के निमित्त उत्पन्न किया है पर तबलग महाराज का दर्शन नहीं देख सक्ता जबलग प्रथम इसके हृदय की आंख न खुलजावे और उस सूक्ष्मस्वरूपको समझ और पहिंचान भलीप्रकार न लेवे सो भगवत् के पहिंचानने की कुञ्जी यही है कि उसकी आश्चर्य कारीगरी को प्रथम पहिंचानै बहुरि महाराज की कारीगरी के पहिंचानने की कुञ्जी इन्द्रियां हैं और इन्द्रियों के स्थित होने का स्थान शरीर है और यह शरीर पञ्चतत्त्वों के सम्बन्धकरके रचाहुआ है इसी कारण से यह जीव स्थूल तत्त्वों के देशविषे आया है कि इस जगत् विषे तोशा बनालेवे और अपने मनकी पहिंचान करके भगवत् को पहिंचाने और सर्व पदार्थों का पहिंचानना इन्द्रियों करके होताहै ताते जबलग इस मनुष्य को इन्द्रियां जगत् की खबर देतीहैं तबलग यह पुरुष संसारविषे जीवता रहता है और जब इन्द्रियां इससे दूर होजातीहैं और यह जीव अपने स्वभाव विषे स्थित होता है तब इसी को परलोक कहते हैं सो इस जगत् विषे इस मनुष्य का आवना इसी निमित्त है कि अपने कार्यको सिद्धकरे ॥

दूसरा सर्ग ॥

शरीर और हृदय की रक्षा के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि संसार विषे इस जीव को दो कार्य अवश्य ही करनेहैं सो प्रथम यहहै कि अपने हृदय को अशुभ स्वभावों से बचावे काहे से कि बुरे

स्वभावों करके बुद्धि का नाश होजाताहै बहुरि हृदय का जो आहार है तिसको प्राप्त करे १ और दूसरा कार्य यह है कि शरीर को भी नष्ट होने से बचावे और शरीरको आहार भी देवै २ बहुरि हृदय का जो आहार है सो भगवत्की पहिंचान और प्रीति है काहेसे कि सबका आहार अपने स्वभाव अनुसार होताहै और उस को प्रियतम भी वोही लगता है और यह कछुक आगेभी वर्णन कियाहै कि जीव का स्वस्वभाव भगवत् की पहिंचान है पर जब यह जीव भगवत् से इतर किसी पदार्थ के साथ प्रीति करताहै तब उसी करके इस जीवकी बुद्धि नष्ट होजाती है बहुरि शरीर की रक्षा और सुख जो है सो यह भी हृदय की रक्षा के निमित्त चाहिये है काहे से कि चैतन्य स्वरूप हृदय अविनाशी है और यह शरीर नाशवन्त है ताते जीव और शरीर का सम्बन्ध ऐसा है जैसे तीर्थयात्रा में यात्री और ऊंट का सम्बन्ध होताहै अर्थात् यात्री के निमित्त ऊंट चाहिये है पर ऊंट के निमित्त तो यात्री नहीं होता और यद्यपि वह यात्री भी घास और पानी करके ऊंट की रक्षा करताहै पर तौभी उसका प्रयोजन तीर्थयात्रा है बहुरि जब तीर्थयात्रा सिद्ध होती है तब यात्री को ऊंट की अपेक्षा नहीं रहती ताते चाहिये कि मार्गविषे ऊंट की खबर कार्यमात्र ही लेवे पर जब सारा दिन ऊंट की टहलविषे और संभारविषे बीतजावे तब वह यात्री संगियों से दूर पड़जाताहै और तीर्थ को नहीं पहुँचता तैसेही जब यह मनुष्य सर्व आयुष् आहार की उत्पत्तिविषे लगावे और विघ्नोंसे शरीर की रक्षा करतारहै तब यह पुरुष भी अपनी भलाई को नहीं पहुँचता ताते इस संसार विषे शरीर की रक्षा के निमित्त अवश्यही चाहिये हैं सो तीन पदार्थ हैं एक आहारहै दूसरा वस्त्र तीसरा शीत उष्णकी रक्षाके निमित्त स्थानके होने की भी अपेक्षा होतीहै सो प्राणों की रक्षा के निमित्त इस जीव को इन तीन पदार्थों से अधिक कुछ नहीं चाहिये बहुरि माया के सर्व पदार्थों के मूल भी येही हैं बहुरि हृदयका आहार जो भगवत् की पहिंचान है सो जितनीही अधिक होवे तितनीही सुखदायक है और शरीर का आहार जो अनाज है सो जब मर्याद से अधिक अङ्गीकार करताहै तब इस करके शरीर का नाश होजाता है पर इस जीव विषे जो भगवत् ने भोगों की अभिलाषा रची है तिसका प्रयोजन यह है कि वह अभिलाषा आहार वस्त्र स्थान की चाह करनेवाली होवे और इस करके शरीररूपी घोड़े की रक्षाकरे पर यह अभिलाषा ऐसी प्रबल रची है कि अपनी

मर्याद विषे नहीं ठहरती और सदैव अधिकता को चाहती है ताते भगवत्‌ने बुद्धि को उत्पन्न किया है कि उस अभिलाषा को मर्याद विषे राखै और सन्तजनों की रसना विषे धर्मशास्त्रके वचन उत्पन्न कियेहैं कि वचनों करके विचारकी मर्याद प्रकट होवे और भोगों की अभिलाषा बालक अवस्था सेही इसके ऊपर प्रबल हुई काहेसे कि शरीर की प्रतिपालना खान पान आदिक भोगोंकरके होती है और बुद्धि का प्रवेश पीछे हुआहै ताते भोगों ने आगेही से हृदयस्थान को घेरलिया है इसी कारण से बुद्धि की आज्ञा को नहीं मानते और विचार की मर्याद तो पीछे प्रकट हुईहै सो तिससे उल्लङ्घित वर्तते हैं ताते इस मनुष्यका अपना आप आहार और वस्त्र और स्थान आदिक भोगों विषे आसक्त हुआ है और इसीसे जीव ने भोगों की अभिलाषा करके आपको विस्मृत कियाहै बहुरि यों भी नहीं जानता कि आहार और स्थान आदिक का प्रयोजन क्या है ? और इस जगतविषे मैं किस निमित्त आया हूं इसी अज्ञानता करके हृदय के आहार से अचेत हुआ है और परलोकमार्ग विषय का तोशा इसको भूलगया है पर जब तैंने इस वचन करके माया का स्वरूप और उसके विघ्न और प्रयोजन को भलीप्रकार समझा तब इससे आगे माया का विस्तार और इसकी जो शाखा हैं तिसको भी पहिं-चानना चाहिये ॥

तीसरा सर्ग ॥

माया के विस्तार के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जब विचारकरके देखिये तो तीनही पदार्थों का नाम संसार है सो एक तो प्रकटही देखनेमें वनस्पति हैं १ दूसरे पर्वतोंमें खानि हैं २ तीसरे अनेकभांतिके जीव हैं ३ पर धरतीके उत्पन्नहोनेका जो कारण और प्रयोजन है सो यहहै कि यह सर्वपदार्थोंकी स्थिति और वनस्पति उपजने के निमित्त बनाई है बहुरि तांबे और लोहे आदिक की जो खानि हैं सो बासनों और वस्त्रोंके नि-मित्त बनाई हैं और नाना प्रकार के जो जीव हैं सो अपने २ निमित्त उत्पन्न किये हैं पर इन मनुष्योंने अपने हृदय और शरीरको इन जञ्जालों विषे बन्धायमान कियाहै और हृदय का बन्धन स्थूल संसार की प्रीति है और शरीर का बन्धन संसार के कार्यहैं पर माया की प्रीतिकरके चित्त विषे ऐसे बुरे स्वभाव उपजते हैं कि वह सब ही बुद्धि की नाशता के कारण होते हैं जैसे तृष्णा और कृपणता

और ईर्षा और वैरभाव आदिक जो बुरेस्वभाव हैं सो निस्सन्देह बुद्धिके नाश करनेवालेहैं बहुरि शरीर का बन्धन जो माया के कार्यहैं सो तिन बिषे हृदय भी ऐसा आसक्त होजाता है कि आपको और परलोकको बिसार देताहै पर तौभी माया के पदार्थों का जो मूल और प्रयोजन है सो केवल आहार और वस्त्र और स्थान है ताते तीनों व्यवहार इस जीवको अवश्यही चाहिये हैं जैसे खेती और वस्त्रों और स्थानोंका बनावना बहुरि और जेते व्यवहार हैं सो इनहींकी शाखाहैं जैसे धुनियां सूत बनावनेवाला कोरी, धोबी, दरज़ी सो यह सबही वस्त्र के कार्य सिद्ध करते हैं पर इन सबोंको जो अपने २ शस्त्र चाहिये हैं ताते काष्ठ और लोहा आदिक जो शस्त्रोंको बनावते हैं सो तिनका व्यवहार पसरता है सो जब इतने व्यवहारी आपस बिषे इकट्ठे हुये तब यह सबही एक दूसरे की सहायता करते हैं काहेसे कि सबकोई सर्वकार्य अपने आप नहीं करसके जैसे दरज़ी, कोरी और लोहार का कार्य करताहै बहुरि लोहार भी इन दोनों के कार्यों बिषे सावधान है इसी प्रकार सबही एक दूसरे की सहायता करते हैं और परस्पर कार्य सिद्ध करते हैं ताते सबोंका परस्पर व्यवहार चलता है बहुरि लेने देने बिषे बिरुद्ध जाग आवता है काहेसे कि सब कोई नीति बिषे नहीं बर्तता और तृष्णा करके एक दूसरे को दुखाया चाहता है इस कारण और भी तीन पदार्थों की अपेक्षा हुई सो प्रथम तो धर्मशास्त्र का ज्ञाता चाहिये जो धर्म की मर्यादको प्रकटकरे बहुरि कोई ऐसा श्रेष्ठ मनुष्य विचारवान् चाहिये जो झगड़ा करनेवालों को समझावे बहुरि तीसरा कोई बलवन्त राजा भी चाहिये जो झूठे मनुष्य को दण्डदेवे सो इसी प्रकार यह सबही व्यवहार ऐसे हैं कि सबों का परस्पर सम्बन्ध है अधिक से अधिक पसरते जाते हैं काहेसे कि संसार संसरने ही का नाम है पर लोगों ने इनहीं कार्यों बिषे अपना आप भुलादियाहै और आहार, वस्त्र, स्थान जो प्राणों की रक्षा के कारण हैं और माया के भी सर्व पदार्थों का मूल है सो तिसके प्रयोजन को नहीं जाना अर्थात् सर्वव्यवहारों का प्रयोजन आहार आदिक तीन पदार्थ हैं और इन तीनों पदार्थ आहार वस्त्र स्थान से प्रयोजन शरीर की रक्षा है बहुरि शरीर की रक्षा जीव के निमित्त है कि यह शरीर जीव का घोड़ा है और जीव के उत्पन्नहोने का प्रयोजन भगवतकी पहिंचान है पर इन मनुष्यों ने माया के कार्यों बिषे आपको और भगवतको विस्मरण करादिया है जैसे यात्री कोई तीर्थ के मार्ग और संगियों को

भुलादेवे और अपने समय को घोड़े के सँभार और सेवाविषे बितावे तब उसकी यात्रा नष्ट होतीहै तैसेही जो मनुष्य परलोक के मार्गपर अपनी दृष्टि नहीं रखता और आपको परदेशी नहीं जानता और माया के जञ्जालों विषे मर्याद से अधिक आसक्त होताहै तब निस्संदेह जानाजाताहै कि उसने मायाके भेद को नहीं जाना और माया को जो पहिंचान नहींसक्ता तिसका कारण यह है कि यह माया महाछलरूप है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि यह माया जीवों को मन्त्र यन्त्र करके मोहनेवाली है ताते इसके छलों से भयकरना प्रमाण है सो जब यह माया ऐसीहुई तब इसके छलों का पहिंचानना अवश्यही चाहिये ताते मैं इस माया के छलों को दृष्टान्तसहित वर्णन करताहूं॥

चौथा सर्ग॥

माया के छलों के वर्णन मे॥

ताते जान तू कि माया के छलों का प्रथम दृष्टान्त यह है कि यह माया सर्वदा तुझको स्थिर दिखावती है परन्तु इसको ऐसे जानता है कि सदैव मेरे पास रहेगी पर यह माया ऐसी है कि सर्वदा तुझसे दूर चलीजाती है और क्षण २ विषे इस का जीवना ऐसा सूक्ष्म है कि जाना नहीं जाता जैसे वृक्ष की छाया को जब कोई देखे तब वह स्थिरही पड़ी भासती है पर जब भली प्रकार देखिये तब एक क्षण भी नहीं ठहरती तैसेही तेरी आयुर्बल पल २ विषे घटती जाती है और तू इसको स्थिरही जानताहै सो निस्सन्देह यह शरीर और आयुष् मायारूपहै और ऐसी छलरूपहै कि तू इसके दूर होनेसे अचेत है और यह सर्वदा तुझसे बिछुड़तीजाती है १ बहुरि दूसरा माया के छल का दृष्टान्त यह है कि यह माया तेरे साथ अपनी अधिक प्रीति दिखावती है ताते अपने ऊपर तुझको उलझालेती है और तेरे हृदय विषे उसकी प्रीति और प्रतीति ऐसी दृढ़ होजाती है कि यह हमारी परम प्यारी है और कदाचित और किसी के पास न जावेगी पर वह माया अचानक ही तुझको छोड़कर तेरे शत्रु के पास जातीरहती है जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषों को अपने ऊपर उलझावे और उनको अधिक प्रीति दिखाकर अपने गृह विषे लावे बहुरि अदया करके उनका घात करे इसी पर एक वार्त्ता है कि महात्मा ईसाने स्वप्न विषे माया को स्त्री के स्वरूपवत् देखा था तब उससे पूछनेलगे कि तूने कितने भर्ता किये हैं तब माया ने कहा कि मेरे भर्ता अगणित हैं तब उन्हों

ने पूछा कि यह सब मृतक हुये अथवा उन्हों ने तेरा त्याग किया है तब मायाने कहा कि मैंने ही सबको मारा है तब महात्मा ईसा कहनेलगे कि मुझको लोगों की मूर्खता पर आश्चर्य आताहै काहेसे कि जिनकी प्रीति तेरे साथ दृढ़ हुई है तिनका नाश और दुःखी होनाभी देखते हैं और फिरि तेरे ऊपर उलझकर आसक्त होतेहैं और भय नहीं करते २ बहुरि तीसरा दृष्टान्त यहहै कि यह माया आप को कपटी मनुष्य की नाईं बाहर से सुन्दर बनाकर दिखावतीहै और इसके अन्तर जो दुःख और विघ्नहैं तिनको दुराय रखती है ताते जब इसको मूर्ख मनुष्य देखते हैं तब अचानकही लिपटजाते हैं बहुरि जब इसका भेद पावते हैं तब महादुःखी होते हैं जैसे कोई महाकुरूपा स्त्री नाना प्रकारके भूषण और सुन्दर वस्त्र पहरे और अपने मुख को घूंघुट विषे दुरायलेवे सो जब कोई उसको देखताहै तब अवश्यही मोहजाताहै फिरि जब घूंघुट उतारकर उसकी कुरूपता को देखताहै तबपश्चात्ताप करने लगताहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि परलोक विषे माया की सूरत महाकुरूपा वृद्धा स्त्रीवत् दिखावेंगे कि उसके नेत्र भयानक और दांत मुखसे बाहर निकलेहुये होवेंगे तब महाराज से प्रार्थनाकरेंगे कि हे महाराज ! इससे हमारी रक्षा कर और कहेंगे कि यह महाराक्षसी कौन है तब आकाशवाणी होगी कि जिस माया के निमित्त तुम ईर्षा और परस्पर विरोधकरते थे और जीवों का घातकरते थे बहुरि भाव और दया से रहित होतेथे और जिसके ऊपर तुम अभिमान करते थे सो यह वोही माया है बहुरि आज्ञा होवेगी कि इस माया को महानरक विषे डालो तब माया कहेगी कि मेरे प्रियतम कहांहैं तब आज्ञा होवेगी कि इसके प्रियतमों कोभी नरकविषे डालदो ३ बहुरि चौथा दृष्टान्त यहहै कि जब कोई माया की आदि अन्त का विचारकरे तब निस्संदेह जाने कि यह माया आदि में भी न थी और अन्त में भी न रहेगी ताते मध्यकाल विषे कुछदिन इसकी स्थितिहै जैसे कोई पुरुष परदेशी होवे तिसको मार्गविषे ठहरना अल्पकालही होताहै तैसेही संसार की आदि पालनाहै और अन्त श्मशानहै और इसके मध्यमार्ग विषे केती मंज़िलें हैं सो वर्ष तो मंज़िल की नाईंहै और महीना योजन है और कोस की नाईं दिन है और श्वास पैंड़हैं इसी प्रकार सर्वजीव सर्वदा मृत्यु के मार्गविषे चलेजाते हैं सो किसीको योजनपर्यन्त मार्ग रहताहै और किसीको इससे भी अल्प रहताहै औरकिसीको कुछ अधिक रहताहै पर यह मनुष्य आप को स्थिर जानता है कि मैं इसी संसार विषे

सदैव स्थितरहूंगा और कितने बर्षों की आशा धारकर कार्यों की चिन्ता करता है और यों नहीं जानता कि मेरी आयुष् दो दिन अथवा चारदिनही है अथवा कुछ भी नहीं रही ४ बहुरि पांचवां दृष्टान्त यह है कि विषयीजीव माया के भोगों विषे प्रसन्न होते हैं पर परलोकबिषे ऐसे दुःख और निर्लज्जता को प्राप्तहोवेंगे कि उस कष्ट का वर्णन किया नहींजाता जैसे कोई मीठा और चिकना आहार होवे और उस को कोई मनुष्य ऐसा तृप्त होकर खावे कि उस करके उदरपीड़ा को प्राप्तहोवे बहुरि विसूचिका रोग करके वमन और अतीसार को प्राप्तहोवे और अतिमूर्च्छा को प्राप्त होवे तिसकी अतिदुर्गन्धकरके तब बहुत पश्चात्ताप और लाज को पाताहै काहे से कि सुखका समय बीतगया और कष्ट उसका शेषरहा सो यत्नकरके भी दूर नहीं होता और जितनाही भोजन स्वादिष्ठ होता है तितनीही उसमें परिणाम बिषे दुर्गन्ध अधिक होती है तैसेही इस संसार बिषे माया के भोग जितना अधिक भोगता है तितनाही परलोक बिषे अधिक दुःखी और लज्जित होता है और इस दुःख को शरीर के नाशहोने के समय में प्रकट देखता है काहेसे कि जिस मनुष्य के पास भोग और बागीचे और टहलुवे और दासी और सोना चांदी अधिक होता है तिसको शरीर छूटने के समय उनके वियोग का दुःखही उतनाही अधिक होता है और जिसके पास माया की सामग्री थोड़ी होती है तिसको दुःखभी थोड़ा होताहै ताते भोगों के वियोग का जो दुःखहै सो शरीरके मरनेपर भी दूर नहीं होता और अधिक वृद्ध होता है काहे से कि माया की प्रीति मनुष्य के हृदय का स्वभाव है और शरीर के दूरहुये से मनुष्य का हृदय अपने आप बिषे स्थित रहता है इसी कारण से माया के भोगों की प्रीति को खैंचकरके अधिक दुःखी होता है ५ बहुरि छठवां दृष्टान्त यह है कि जिस माया के कार्यों को यह मनुष्य करनेलगता है तब प्रथम वह कार्य अल्प दिखाई देता है और यह मनुष्य जानता है कि मैं शीघ्रही इस कार्य को करलूंगा और आसक्त न हूंगा बहुरि इस कार्य की आशा और तृष्णा बढ़ती है तब एकही कार्य बिषे अनेक संकल्प और मनोरथ उपज आते हैं और वह कदाचित् नहीं सम्पूर्ण होते इसीपर महात्मा ईसाने भी कहा है कि माया की तृष्णा करके मनुष्य महाअतृप्त होता है जैसे कोई तृषावन्त पुरुष कल्लर पृथ्वी के जल को पीवे तब उसकी तृषा अधिक से अधिक बढ़ती जाती है और उसही जलपान करके नास

को पाताहै बहुरि महापुरुषने भी कहा है कि जैसे कोई मनुष्य जलबिषे प्रवेश करे तब वह किसी प्रकार सूखा नहीं रहता तैसेही माया के व्यवहारों बिषे भी निर्लेप रहना अतिकठिन है ताते ऐसा कोई बिरला महापुरुष होता है जो माया के व्यवहारों बिषे आसक्त न होवे ६ बहुरि सातवां दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी के गृह बिषे कोई परदेशी पुरुष आवे और वह घरवाला पुरुष परदेशियों की टहल करनेलगे और उनके निमित्त स्थान पवित्र कररक्खे और उनको रूपे के बासनों में भोजन और सुगन्ध आदिक देवे सो इसी प्रकार परदेशी लोग उसके आते जाते रहाकरें और वह पुरुष सबकी सेवा इसी प्रकार करता रहै सो उन परदेशियों में जो कोई बुद्धिमान् होता है और घरवालों के भेदको जानताहै वह पुरुष भोजन और सुगन्ध को अङ्गीकार करके फिर प्रसन्नता सहित उसके बासन सब उस के पास पहुँचाय देताहै और उसका उपकार मानता है बहुरि जो परदेशी मूर्ख होता है वह उन सुगन्ध और भोजनवाले रूपेके बासनोंको जानताहै कि उसने मुझको देडाले हैं और ऐसा विचारकर चलनेके समय उन बासनोंको अपने साथ उठाने लगताहै बहुरि जब उससे फेर लेते हैं तब शोकवान् और दुःखी होता है और पुकार करताहै तैसेही यह संसार भी परदेशियों का स्थानहै और इस निमित्त भगवतने बनायाहै कि इसबिषे परदेशी जीव अपना तोशा बनालेवें और किसी पदार्थ के लोभ करके बध्यमान न होवें ताते जो बुद्धिमान् पुरुष होताहै वह अपने कार्यमात्र व्यवहार को सिद्ध करलेता है और जो मूर्ख होता है वह पदार्थों के लोभ बिषे और भोग बिषे बध्यमान होजाता है और फिर वियोग समय दुःखी होताहै ७ बहुरि आठवां दृष्टान्त संसारी जीवों पर यह है कि यह संसारी जीव माया के व्यवहारों बिषे ऐसे आसक्त होते हैं कि उनको परलोक की वार्त्ता ही भूलजाती है सो इसीपर एक वार्त्ता है कि किसी जहाज़ बिषे कितनेक पुरुष चले जाते थे जब वह जहाज़ किसी टापूपर आया तब शरीर की नित्यक्रिया के निमित्त सब कोई उतरे तब केवट ने पुकारकर कहा कि हे भाई! अपनी २ क्रियाकरके शीघ्र ही चलेआइयो काहेसे कि यह जहाज़ बेगही आगे चलेगा बहुरि वह लोग उस टापूपर अपनी क्रिया करनेलगे पर उनमें जो बुद्धिमान् थे सो उन्होंने तो शीघ्र अपनी क्रिया करके जहाज़ पर आकर सावकाश समेत अपनी रुचिके अनुसार ठौर लेलिया और उसमें स्थितहुये और थोड़े पुरुष उस टापूमें जो नानाप्रकार के

फूल और पक्षी शब्द कररहे थे और रङ्गीन पत्थर पड़ेहुये थे सो उनकी आश्चर्य रचना को देखनेलगे पर कुछेक ढीलकरके वह भी जहाजपर आपहुँचे तब उन को सावकाश समेत ठौर न मिला ताते सकुचकर बैठे बहुरि कितने लोग उस आश्चर्यताको देखकर भी तृप्त न हुये और रङ्गीन पत्थरोंकी पोटें बांधकर लेआये और कङ्कड़ों के रखने का ठौर भी उस जहाज बिषे उन्होंने न पाया ताते वह पोटें शीशपर रखकर बैठे बहुरि जब एक दो दिन व्यतीत हुये तब उन कङ्कड़ पत्थरों का रङ्ग भी होगया और उनमेंसे दुर्गन्ध आनेलगी और उनको फेंकदेने का मार्ग दूर प्राप्त न हुआ ताते बड़े दुःख को प्राप्तहुये और पश्चात्ताप करनेलगे बहुरि कितने पुरुष उस टापू की आश्चर्यता को देखकर विस्मयको प्राप्तहुये और सुन्दर रचना को देखने में जहाज से दूरगये और वह जहाज भी आगेको चल दिया और उन मूर्खों ने केवट की पुकार भी न सुनी ताते उस टापू बिषे भूख प्यास के मारे मृतक हुये और कितनों को सिंहादिकों ने फाड़ डाला पर वह मनुष्य जो प्रथमही शीघ्र जहाज बिषे आय बैठे थे सो वैरागी पुरुष की नाईं हैं और जो पुरुष टापू बिषेही रहे वह तामसी मनुष्य हैं कि उन्हों ने आपको और भगवत् को और परलोक को भुला दिया और अपने आप माया के बिषे बद्ध्य मान हुयेहैं बहुरि जो पुरुष कुछ एक ढील करके जहाज बिषे आये थे और रङ्गीन कङ्कड़ उठाय लाये थे सो वह दोनों विषयी राजसी हैं कि यद्यपि भगवत् और परलोक को मानते हैं पर तो भी माया का त्याग नहीं करते और जगत् के पदार्थों के संचने करके भार उठाते हैं ॥

पांचवां सर्ग ॥

माया और निर्मायिकपदार्थों के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जैसी कुछ मायिक पदार्थोंकी माया की नाईं निषेधता कही है सो इस करके यों नहीं जानना चाहिये कि मायाबिषे सबही पदार्थ निन्द्य हैं काहे से कि इस संसार बिषे कितने पदार्थ ऐसे भी पायेजाते हैं कि वह माया से रहित हैं जैसे विद्या और शुभकरतूति भी संसार ही बिषे प्राप्त होती हैं पर माया से रहित हैं और परलोक बिषे भी जीवों की संगी और सहायता करनेवाली हैं सो यद्यपि परलोक बिषे विद्या के अक्षर और वचन नहीं पहुँचते पर तौभी विद्या का जो गुण है सो जीवोंके साथ रहताहै सो विद्या का गुण भी दो प्रकार का

होताहै प्रथम तो हृदयरूपी रत्न की पवित्रता और शुद्धता पापों के त्याग करके प्राप्त होती है और दूसरा गुण रहस्य और आनन्द है सो भगवत् के भजन और चित्त की एकाग्रता करके प्राप्तहोता है सो यह शुभगुण सत्यस्वरूप है ताते भगवत् की प्रार्थना और भजन का जो रहस्य है सो सर्व कार्यों से विशेष है पर यह रहस्य भी इसी जगत् विषे प्राप्त होताहै और माया से रहितहै इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सबही रस भी निन्द्य नहीं पर जो रस परिणाम को शीघ्रही पाता है सो निन्द्य है और जब विचारकरके देखिये परिणाम पानेका रस वही स्वाद निन्द्य नहीं काहे से कि परिणाम पानेवाले स्वाद भी दो प्रकार के हैं सो एकतो यह कि जिन स्वादोंकरके शरीर की पुष्टता होतीहै सो यह निन्द्य है काहेसे कि ऐसे स्वादों करके अचेतता और प्रमाद और संसार की सचाई बढ़ती है १ बहुरि दूसरा सुख जो आहार और वस्त्र और स्थान करके प्राप्त होताहै सो यद्यपि यह भी नाशवन्त है पर तौभी निन्द्य नहीं काहे से कि विद्या और शुभ करतूति भी इसी से सिद्ध होती है ताते इसको भी परलोक का संगी कहते हैं २ ताते जो कोई पुरुष इस शरीर के सुखको संतोष सहित अङ्गीकार करे और उसका मनोरथ यही होवे कि मैं अचिन्त्य होकर भगवत् का भजनकरूं तब उसको माया से रहित कहते हैं इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिन माया के पदार्थों करके भगवत् की प्राप्ति होवे सो पदार्थ निन्द्य नहीं और ग्रहण करने के योग्य हैं ताते माया के छलों और इसके विस्तार का जो वर्णन किया सो इस ग्रन्थ विषे इतनाही बहुत है ॥

चतुर्थ अध्याय ॥

पहिला सर्ग ॥

परलोक की पहिंचान के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जबलग प्रथम मृत्यु होने को न पहिंचानिये तबलग परलोक भी नहीं जानाजाता और संसार का जीवना है जबलग इस जीवने को न जानेगा तबलग मृत्यु को नहीं पहिंचानसक्ता बहुरि जब जीव के यथार्थस्वरूप को न पहिंचानेगा सो जीवका पहिंचानना यह कि अपने आपको पहिंचानिये सो कुछ एक इस वचन का बखान मैंने पहले भी वर्णन कियाहै और सन्तजनों के वचन विषे भी आया है कि यह मनुष्य दो पदार्थों के सम्बन्धसे

उत्पन्न हुआ है सो एक जीव है और दूसरा शरीर बहुरि शरीररूपी घोड़ाहै और जीवरूपी उस के ऊपर सवार है और परलोक विषे सुख दुःख इस जीव को शरीर के सम्बन्ध करके भी होता है और शरीर बिना ही अपने आप करके यह जीव दुःखी सुखी होता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक विषे जीव की अवस्था केवल जीव की भी होती है पर शरीर के साथ जो जीव की अवस्था है सो तिसको स्थूल स्वर्ग नरक कहते हैं और दुर्गति सुगति भी कहते हैं बहुरि शरीर के बिना जो जीव को सुख और आनन्द प्राप्त होता है तिसको आत्मस्वर्ग कहते हैं और शरीर से रहित जो जीव को कष्ट और दुःख होता है तिस का नाम मानसी नरक है पर यह जो स्थूलनरक स्वर्ग है तिसको सब कोई प्रकट ही समझते हैं जैसे स्वर्ग विषे कल्पवृक्ष और उत्तम फल और अप्सरा और अनेक प्रकार के सुन्दर खानपान आदिक भोग पायेजाते हैं बहुरि नरक विषे सर्प और बिच्छू और अग्नि के कुण्ड आदिक और बहुत दुःख पायेजाते हैं सो इसलिये स्थूलस्वर्ग और नरककी वार्ता मैंने संक्षेप करके कही है काहेसे कि यह वार्ता धर्मशास्त्र में प्रसिद्ध है ताते सब कोई पहिचानता है ताते अब इस से आगे मृत्यु होने का अर्थ प्रकट करके कहता हूं फिरि मानसी नरक और स्वर्ग का वर्णन करूंगा काहे से कि इस सूक्ष्म नरक और स्वर्ग को सब कोई नहीं पहिचानता पर इस भेद के पहिचानने का उत्तम मार्ग यह है कि इस मनुष्य के चित्तविषे एक खिड़की है और वह देवलोक की ओर खुलीहुई है पर जो कोई इस अनुभवरूपी सूक्ष्म खिड़की विषे देखता है उसको परलोक की दुर्गति और सुगति प्रकट भास आवती है और संशयरहित होता है काहे से कि प्रत्यक्ष देखने में संशय कुछ नहीं रहता और युक्ति और वचन श्रवण से संशय रहजाता है जैसे वैद्य को शरीर का रोग और आरोग्यता भास आती है और वह योंभी जानता है कि जब यह रोगीपुरुष कुपथ्य को अङ्गीकार करेगा तब नाशको प्राप्त होवेगा और जब अपने रोग का उपचार करेगा और संयम में बर्तेगा तब रोग के दुःख से मुक्त होवेगा तैसेही सन्तजनों को जीवों की सुगति और दुर्गति प्रकट भासती है और इस बात को भी प्रकट देखते हैं कि भगवद्भजन और उसकी पहिचान जीवकी उत्तमगति का कारण है और मूर्खता और पापों करके यह जीव नीचगति को पाता है सो यह विद्या ऐसी दुर्लभ है कि

बहुत पण्डित भी इस भेद को नहीं समझते अथवा इसपर प्रतीति नहीं करते और स्थूल नरक और स्वर्ग बिना और कुछ नहीं जानते और परलोक को भी श्रवणमात्रही मानते हैं ताते मैं शास्त्रों की युक्ति और वचन करके कुछ परलोक का अर्थ वर्णन करूंगा पर जिस मनुष्य की बुद्धि उज्ज्वल होवे और जिसका हृदय पन्थों के विवाद से रहित होवे और देखादेखी के विरुद्ध से शुद्ध और निष्काम होवे तब उसको इस मार्ग की बूझ भासआवेगी और उसके चित्तविषे परलोक का दृढ़ होवेगा काहेसे कि बहुतलोगों की प्रतीति परलोक के जानने विषे निर्बल और संशययुक्त होती है ॥

दूसरा सर्ग ॥

मृत्यु के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जब तुझको मरने का अर्थ जानने की इच्छा हुई तब इस प्रकार श्रवणकर कि इस मनुष्य विषे दो प्रकार की चैतन्यता है सो एक प्राण चेतना कहाती है जिस करके हृदय स्थान और प्राणवायु के संयोग साथ शरीर और इन्द्रियां चैतन्य रहती हैं सो प्राणचेतना पशुओं और मनुष्यों विषे एक समान है बहुरि दूसरी चैतन्यता बुद्धिकरके होती है वह केवल मनुष्यही का अधिकारहै पर वह प्राणचेतना जो शरीर को सुचेत करती है सो प्राणों का फुरना हृदयस्थान से होता है बहुरि हृदयस्थान जो तत्त्वों के सूक्ष्म अंशों करके रचा हुआ है सो तत्त्वों का अंश वायु, पित्त, कफ आदिक हैं पर जबलग इनकी वृत्ति समान होती है तबलग वह हृदयस्थान सुख से रहता है और उसी हृदयस्थान की नाड़ी शीश और सर्व अङ्गों विषे पसरती हैं ताते प्राणवायु के सम्बन्ध करके सब इन्द्रियां चैतन्य होजाती हैं और शरीर की सर्वक्रिया सिद्ध होतीहै और जब वह तत्त्वों की समानवृत्ति शीश विषे पहुँचती है तब नेत्र और श्रवण आदि इन्द्रियों को अपने २ विषे ग्रहण करने का बल होताहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दीपक के प्रकाशकरके मन्दिरविषे चमत्कार होताहै और सर्वपदार्थ भासनेलगतेहैं तैसेही भगवत् की सत्ता पाकर तत्त्वों की समान अंश और प्राणवायु के मार्ग से सब इन्द्रियों को अपनी क्रिया का बल पहुँचता है और वह अपनी २ क्रियाविषे सावधान होतीहैं और जब किसी नाड़ी में प्राणवायु के मार्ग और तत्त्वों के समान अंश से पटल पड़ जाता है तब वह अङ्ग क्रियासे रहित

होजाता है जो उस पटल और ग्रन्थि के आगे है और वह अङ्ग शून्य भी होजाता है बहुरि वैद्य की विद्या का प्रयोजन यह है कि उसका उपचार करके पटल को दूर करदेवै तब उस अङ्गविषे चैतन्यता फुरआती है और अपनी क्रिया विषे सावधान होताहै ताते वह हृदयस्थान शरीर विषे दीपक की नाईं है और प्राणवायु उसकी बाती है और आहार तेल है ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि तेल बिना दीपक बुझजाता है तैसेही प्राणरूपी दीपक आहार बिना बुझजाता है और जैसे अधिक तेल करके भी बाती तेल को नहीं खींचती तबभी दीपक शून्य होजाता है तैसे यह हृदयस्थान भी अधिक व्यतीतहुये वृद्ध अवस्था विषे आहार को नहीं खींचसक्ता ताते मृत्यु होजाती है बहुरि जैसे तेल और बाती होते भी अकस्मात् किसी विघ्नकरके दीपक बुझजाता है तैसेही शस्त्रादिक विघ्न करके भी शरीर का नाश होजाता है और प्राणवायु की जो समानता है तिस करके शरीर और इन्द्रियों की क्रिया सिद्ध होती है और जब वायु पित्त कफ के कोपकरके वह समान वृत्ति नष्ट होजाती है तब अवश्य में इन्द्रियों की क्रिया शून्य होजाती है जैसे दर्पण विषे जब उज्ज्वलता होती है तब उस विषे सब पदार्थों की मूर्त्ति भासती है और जब वह दर्पण जंगार करके मलीन होजाताहै तब किसी पदार्थ का प्रतिबिम्ब नहीं भासता सो जैसे निर्मलताई के नाश होने से किसी पदार्थ का भास नहीं होता तैसेही प्राणों की जो समान वृत्ति है तिसका भी यही स्वभाव है कि जब वह समानवृत्ति विपर्यय होती है तब हृदयस्थान शून्य होजाता है और इन्द्रियादिक व्यवहार सिद्ध नहीं होता और शरीर का अङ्ग जब तिस प्राणवायु के प्रकाश से रहित होताहै तब शून्य होजाता है और शून्यहुये अङ्गको मृतक कहते हैं ताते मरने का अर्थ यही है कि प्राणवायु की समान वृत्ति का नाशहोना और समानता का नाश करनेवाला यमराज है सो वहभी भगवत् का उत्पन्न कियाहुआ है पर यह लोग उस यम को भी नाममात्र मानते हैं और इस वार्त्ता का खोलना बहुत विस्तार करके होताहै परतात्पर्य यहहै कि प्राणवायु के शून्य होने का नाम मृत्यु है और वह प्राणवायु भी सूक्ष्मशरीर है अर्थात् तत्त्वों के सूक्ष्म अंश करके रचाहुआहै पर इस मनुष्यविषे जो चैतन्यरूप जीव है सो प्राणचेतना से भिन्न है और शरीर की नाईं नहीं और अखण्ड है और भगवत् की पहिंचान का स्थान है सो जैसे वह भगवत् अखण्डरूप है और एक है तैसेही उसका पहिंचानना भी

अखण्ड है और उसका पहिंचाननेवाला जीव भी अखण्ड है क्योंकि उस ज्ञान स्वरूप का समझना खण्डाकार शरीर विषे नहीं होसक्ता इसी कारणसे अखण्ड स्वरूप जीव विषेही भगवत् की पहिंचान होती है बहुरि दीपक के दृष्टान्त करके तू इस भेद को पहिंचान कि स्थूलशरीर दीपक है और हृदयस्थान इसकी बाती है और प्राणरूपी अग्नि है और चैतन्यतारूपी प्रकाश है सो इसका तात्पर्य यह है कि जैसे दीपकसे दीपकप्रकाश सूक्ष्म होता है तैसेही प्राणशक्तिसे चैतन्यता रूपी प्रकाश सूक्ष्महै और ऐसा स्वरूप है कि उसको किसी वचन की संज्ञा करके कहा नहीं जाता सो जब तू सूक्ष्मता की ओर देखे तब यह दृष्टान्त प्रमाण होता है और जब इस प्रकार देखले कि दीपक का प्रकाश दीपक के आश्रित होताहै तब इस भाव करके यह दृष्टान्त मिथ्या होताहै काहेसे कि दीपक के नाश करके उसका प्रकाश भी नष्ट होजाता है और प्राणवायु के शून्य होने से तो चैतन्यता का नाश नहीं होता ताते इस प्रकार भी समझना चाहिये कि जैसे दीपक की विशेषता प्रकाश करके होती है तैसेही चैतन्यता करके शरीर की विशेषता है सो दीपक के दृष्टान्त का प्रयोजन भी यही है कि दीपक का होना प्रकाश के निमित्त चाहिये है ताते दीपक प्रकाश के आश्रित है तैसेही प्राणों का आश्रय भी चैतन्य है और प्रकाश की नाईं महासूक्ष्म है तब इस भाव करके दीपकका दृष्टान्त संभव होता है अब इस करके प्रसिद्ध हुआ कि प्राणरूपी घोड़ा है और चैतन्यरूपी सवार है अथवा चैतन्यरूपी जीव के हाथविषे प्राणरूपी शस्त्र है सो जब प्राणों की समान वृत्ति नष्ट होजाती है तब शरीर स्थूल मृतक होजाता है और चैतन्यता अपने आप विषे स्थित रहती है और जैसे सवार घोड़े से रहित प्यादा कहाता है तैसे वह भी शरीररूपी घोड़े के नष्ट होने से प्यादा होताहै पर जैसे सवार का नाश घोड़े के नाश होनेसे नहीं होता तैसेही शरीर के नाश हुये जीव का नाश नहीं होता ताते यह शरीररूपी घोड़ा अथवा शस्त्र जो भगवत् ने इस जीव को दिया है सो भगवत् की पहिंचानरूपी शिकार के निमित्त दिया है पर जिस मनुष्य ने पहिंचानरूपी शिकार करलिया है तब शरीररूपी फांसी का नाश होना उसको सुखदायक है अर्थ यह कि उसके बोझ उठाने से छूटता है तब वह उत्तम सुख के स्थान को पाताहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जब सन्तलोगों का शरीर छूटता है तब वह उत्तम सुख के स्थानको पाते

हैं और परमलाभ मानते हैं पर जिस मनुष्य को भगवत् की पहिंचान नहीं प्राप्त हुई और उसका शरीर छूटता है तब महादुःखी होता है जैसे शिकार के प्राप्तहुये विना किसी का जाल दूर होजावे तब उसका कार्य कदाचित् सिद्ध नहीं होता और उसका पश्चात्ताप अधिक होता है तैसेही इस जीव को शरीर के छूटने से दुःख होता है और प्रथम यम मार्गही में पश्चात्ताप करने लगताहै ॥

तीसरा सर्ग॥

जीव की अखण्डता के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जब किसी पुरुष के हाथ पाँव भुजा सूखजाते हैं अथवा अर्द्धाङ्ग होजाता है तब उस पुरुष की चैतन्यता तो दूर नहीं होती काहे से कि चैतन्यरूप जीव हाथ पाँव से रहित है पर हाथ पाँव उसके शस्त्र हैं और जीव इनका प्रेरक है सो जैसे हाथ पाँव तेरा स्वस्वरूप नहीं तैसेही पेट, पीठ, शीश आदिक जो सर्व शरीर हैं उनसे भी तेरा स्वरूप भिन्नही है ताते प्रमाण हुआ कि जब यह शरीर सबही शून्य होजावे तौभी तेरी चैतन्यता अपने आपविषे स्थित रहती है और जैसे यह हाथ भी जब अपनी क्रिया से शून्य होता है तब उसको मृतक कहते हैं अर्थात् हाथ की क्रिया बलकरके होती है और बल प्राण चेतना के प्रकाश करके नाड़ियों के मार्ग से सर्व अङ्गों में पहुँचता है और जब किसी नाड़ी का मार्ग रुकजाता है तब उस अङ्गको प्राणों का प्रकाश नहीं पहुँचता और बलकी हीनता करके क्रिया से रहित होजाता है तैसेही यह शरीर भी प्राणों के सम्बन्ध करके तेरी आज्ञाविषे वर्त्तता है पर जब प्राणों की समानवृत्ति दूर होजाती है तब शरीर के सब अङ्ग शून्य होजाते हैं और तेरी आज्ञा से रहित होते हैं सो इसी को मृत्यु कहते हैं पर तौभी तेरा चैतन्यस्वरूप अपने आप विषे स्थित रहता है काहेसे कि जब कोई टहलुवा तेरी टहल से दूर होजावे तब इस करके तेरा तो नाश नहीं होता अर्थ यह कि शरीर तेरा टह-लुवा है और तेरा निजस्वरूप इससे विलक्षण है और जब तू विचार करके देखे कि यह तेरे अङ्ग जैसे बालक अवस्था में थे सो अब तो वोही अङ्ग नहीं काहे से कि वह अङ्ग सबही परिणाम करके विपर्यय हुये हैं और आहारों करके वृद्ध होगये हैं ताते प्रसिद्धहुआ कि तेरा शरीर-वह नहीं और तू अब भी वही है इस करके कि तेरा स्वरूप शरीरही नहीं ताते तू शरीर के नाश होने की चिन्ता न

कर काहेसे जब तेरा शरीर दूरहोजावेगा तब भी तेरा स्वरूप अविनाशी है और तेरे स्वभाव दो प्रकार के हैं सो एक तो शरीर के सम्बन्ध के साथ मिलेहुये हैं जैसे भूख प्यास और निद्रा जो है सो यह शरीरके सम्बन्ध के साथ मिलेहुये हैं और शरीर के सम्बन्ध बिना सिद्ध नहीं होते ताते शरीर के मृत्यु हुये यह सबही स्वभाव दूर होजाते हैं और दूसरे स्वभाव तेरे ऐसे हैं कि उन बिषे शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं होता जैसे भगवत का पहिंचानना और उसके ऐश्वर्य का देखना और उस बूझ की जो प्रसन्नता है सो केवल तेरा अपनाही स्वभाव है इसी कारण से यह पदार्थ सर्वदा तेरे साथही रहते हैं और कदाचित् दूर नहीं होते और भले गुणों को जो अविनाशी कहा है तिसका अर्थ यह है कि भले स्वभाव जीव के सर्वदा सङ्गी हैं और ऐसेही मूर्खता और अविद्या जो है सो यह भी तेरा अपनाही स्वभाव है ताते यह मूर्खता भी परलोक बिषे तेरे साथही रहती है इस करके कि यह अजानता तेरी बुद्धि के नेत्रों की हीनता है और मन्दभागों का बीजहै इसीपर महाराजने भी कहाहै कि मनुष्य संसार बिषे अज्ञान करके अन्धा है वह परलोक बिषे महादुःखी और अन्धा रहता है पर जब लग तू भलीभांति इसप्रकारकी चैतन्यता को न पहिंचाने तबलग किसी प्रकार मृत्यु के अर्थ को न पहिंचानसकेगा काहेसे कि परिणामत्व और चैतन्यता बिषे जो भेद है तिसके पहिंचानने करके मृत्यु का अर्थ भी जानाजाता है ॥

चौथा सर्ग ॥

प्राणचेतना और चैतन्यकला के भेद के वर्णन में ॥

ताते जानतूकि यह प्राण चैतन्यता तत्त्वों का बिकार है और वायु पित्त आदिक जो तत्त्वों का सूक्ष्म अंश है सो तिन करके रचीहुई है बहुरि जब कुछ वायु, पित्त, कफका कोप आपसमें होताहै तब प्राणोंकी वृत्तिभी विपर्यय होती है और जब इनका स्वभाव समान होताहै तब प्राणचेतना भी समानता स्वभाव बिषे ठहरजाती है ताते वैद्यक विद्या का तात्पर्य यह है कि वायु, पित्त, कफ रुधिर के कोप को उपचार करके समान रखतेहैं तब इस करके प्राणचेतना सावधान होतीहै और चैतन्यकला की आज्ञा को मानती है बहुरि चैतन्यकला जो कही है वह तत्त्वों के देश से नहीं उपजी और सूक्ष्म देश से आई है और देवतों की नाईं निर्मल स्वरूप है और तत्त्वों के देशबिषे उसका आना परदेशी की नाईं है और उसका

स्वरूप आधिभौतिक नहीं पर इस शरीरविषे उसके आनेका प्रयोजन यहहै कि परलोक मार्ग का तोशा बनालेवे इसी पर साईं ने भी कहा है कि मैंने अपनी कृपा करके सर्व जीवों को मार्ग दिखाया है पर जो शुभ मार्ग की बूझ पाकर उस पन्थविषे चलते हैं वह भय और शोक से रहित हुये हैं और इस मनुष्य का शरीर जो है सो मैंने पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रचा है बहुरि मेरा अंश जो चैतन्य कलाहै तिसको शरीर विषे प्रवेश कियाहै तिसका तात्पर्य यह है कि प्रथम प्राण चेतना को स्थितकिया है और चेतना को चैतन्य कलाके स्थित होनेका अधिकारी बनाया है बहुरि उसबिषे चैतन्यकला प्रवेश की है सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे प्रथम रुई की अथवा कपड़े की मशाल बनाई जावे जो अग्नि के खैंचने के लायक होजावे बहुरि उसबिषे अग्नि प्रवेश की जाती है तब प्रकाशमान होती है तैसे ही प्राणों की समान वृत्ति मशाल की नाईं है और चैतन्यकला अग्नि की नाईं है पर जैसे वैद्यक विद्या के जाननेवाले प्राणों की समान वृत्ति को पहिंचानते हैं तब उसकरके रोग और कष्ट से शरीर की रक्षा करते हैं तैसेही चैतन्यरूप जो जीवहै तिसके स्वभाव की भी समानताहै पर तिसको सन्तजन पहिंचानते हैं और जब इसी जीव के स्वभाव, वैराग्य और पुरुषार्थ करके सन्त जनों की मर्याद विषे समान होते हैं तब इस मनुष्य का चित्त आरोग्य होताहै ताते प्रसिद्धहुआ कि जैसे आपको पहिंचाने विना भगवत् को नहीं पहिंचान सक्ता तैसेही यथार्थरूप चैतन्य की पहिंचान विना परलोक को भी भली प्रकार नहीं पहिंचानसक्ता ताते अपने मन का पहिंचानना भगवत् के पहिंचानने की कुञ्जी है और परलोक के पहिंचानने की भी कुञ्जी है पर धर्मकी प्रतीति का मूल भी अपना पहिंचानना है इसीकारणसे मैंने अपने आप का पहिंचानना प्रथम ही वर्णन किया है पर तौ भी इस जीव का जो यथार्थरूप है सो तिसको मैंने प्रसिद्ध नहीं कहा और सन्तों ने भी उस स्वरूप के कहने को बरजा है काहेसे कि इस जीवकी बुद्धि उस गुह्यभेदको समझ नहीं सकी और भगवत्की सम्पूर्ण पहिंचान और परलोक का भलीप्रकार देखना उसी यथार्थ स्वरूपके ज्ञान करके होताहै ताते तू यही पुरुषार्थ कर कि जिसमें अभ्यास और यत्न करके उस यथार्थ रूप को अपने अन्दर देखे काहे से कि उस स्वरूप का देखना अपने ही विषे होताहै और जब उस स्वरूप की वार्ता सुनकर हृदयमें न चाहैं तब तेरी प्रतीति

ही नष्ट होजावेगी इसकरके कि बहुत पुरुषों ने भगवतके यथार्थरूप के लक्षण श्रवण किये हैं तब उनकी प्रतीति नष्ट होगई है और बुद्धि की हीनता करके संशय को प्राप्त हुये हैं और ईश्वर का नतकार करके महाढीठ हुये हैं सो तिस का तात्पर्य यह है कि जब तेरेविषे भगवत के यथार्थस्वरूप श्रवण करने का बल ही नहीं तब तू उस स्वरूप की वार्ता श्रवण करके आप विषे क्यों कर प्रमाण कर सकेगा इसी कारण से परमात्मस्वरूप का बखान धर्मशास्त्र विषे भी नहीं कहा काहे से कि जब संसारी जीव इस भेदको श्रवण करेंगे तब प्रतीति से हीन होजावेंगे ताते सन्तजनों को इस प्रकार आज्ञा करी है कि जीवों की बुद्धि अनुसार उपदेश करो और इनको मेरे गुह्यभेद और सहज स्वरूप की वार्त्ता प्रकट करके न कहो काहे से जो इन जीवों विषे ऐसे सूक्ष्म वचन सुनकर इनकी प्रतीति दूर होजावेगी ताते तब धर्महीनता को प्राप्त होवेंगे इसी करके जीवों की बुद्धि अनुसार वचन कहना विशेष है पर तैंने जब भली प्रकार समझा कि इस मनुष्य का चैतन्य स्वरूप अपने आप करके स्थित है और जीवका होना शरीरके अधीन नहीं ताते मरने का अर्थ यह नहीं कि चैतन्यस्वरूप का नाश होवे पर मृत्यु होने का अर्थ यह है कि जब इस जीव की आज्ञा इस शरीर विषे वर्त्तमान नहीं होती तब इसको मृत्यु हुआ कहते हैं बहुरि परलोकविषे जीवके जीनेका भी अर्थ यह नहीं कि प्रथम इस जीव का नाश होता है फिर परलोक विषे उपज आता है ताते परलोकविषे सुरजीत होने का अर्थ भी यही है कि यह जीव दूसरे शरीर को अङ्गीकार करता है पर जिस प्रकार भगवत् इस जीव को और शरीर को उत्पन्न करता है सो किसी मनुष्य की बुद्धि विषे नहीं आता काहेसे कि भगवन् की करतूति विषे कठिनता और सुगमता नहीं कही जाती पर बहुत पुरुष योंभी कहतेहैं कि परलोक विषे इस जीव को यही शरीर मिलता है सो यह वार्त्ता अयोग्य है क्योंकि यह शरीर घोड़े की नाईं है सो जब घोड़ा बदलजावे तब सवार तो नहीं बदलता और यह शरीर तो बाल्यावस्था से वृद्धावस्थापर्यन्त परिणाम को पाताजाता है और आहार के सम्बन्ध करके सर्व अङ्गों का स्वरूप और से और ही होताजाता है पर जीव तो कदाचित् अन्यथा नहीं होता सो जिन पुरुषों ने ऐसाही निश्चय कियाहै कि परलोक विषे बहुरि यही शरीर सावधान होताहै सो तिनके वचनपर और भी अनेक प्रश्न और

संशय उपजते हैं और उनका उत्तर ऐसा निर्बल होता है कि संशय को दूर नहीं करसक्ता जैसे कोई प्रश्न करे कि एक मनुष्य को कोई दूसरा मनुष्य भक्षण करजावे तब वह तो दोनों शरीर के अङ्ग इकट्ठे होजाते हैं बहुरि परलोकविषे एकही शरीर दोनों जीवों को क्योंकर मिलताहै? अथवा जब कोई अङ्गहीन पुरुष होवे और वह भजन करे तब परलोक विषे भजन करनेवाले को अङ्गहीन करके भजन का फल भोगनापड़ेगा कि अङ्गों के संयुक्त पर जब कहिये कि वह पुरुष पुण्य के फल को अङ्गहीनही भोगता है तब उत्तर यह कि स्वर्गविषे तो अङ्गहीनही कोई नहीं होता बहुरि जब कहिये कि अङ्गसंयुक्त भोगता है तब उत्तर यह कि भजन के समयविषे और करतूति में तो वह अङ्ग थेही नहीं फल भोगने के समय क्योंकर संगी हुये सो ऐसे प्रश्नों करके उनका उत्तर मन्द और निर्बल होताहै और संशय को दूर नहीं करसके ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोकविषे अवश्यही इस जीव को पूर्व शरीर की अपेक्षा नहीं रहती और जिन्होंने इस प्रकार समझा है कि परलोक विषे जीव को वहही शरीर फिर मिलताहै सो तिस का कारण यह है कि उन्होंने अपने आपको शरीरही जाना है ताते यह ऐसे ही समझते हैं कि शरीर के और होने करके जीव भी और होजाताहै सो इस वचन का मूलही मिथ्या है क्योंकि शरीर भिन्नहै और जीव भिन्न है॥

पांचवां सर्ग॥

पूर्वपक्ष उत्तर वर्णन में॥

बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि केते शास्त्रके मतविषे यह वार्त्ता प्रमाण करते हैं कि जब इस जीव का शरीर छूटता है तब प्रथम जीवही नाश होजाता है फिर परलोक विषे जीव को सुरजीत करके शरीर पहरावते हैं और जिस प्रकार तुमने आगे कहा है सो उस वचन के साथ इसका विरुद्ध होताहै ताते दोनों वचनों में से किसविषे प्रतीति करिये सो तिसका उत्तर यह है कि जो कोई पुरुष किसी दूसरे पुरुष के कहनेपर भटकता है सो अन्धा कहाताहै और जिन्होंने यही निश्चय किया है कि मृत्यु होने करके प्रथम जीव भी नाशता को पावता है सो तिनकी प्रतीति अपनी बूझ करके भी नहीं और शास्त्रों की विद्या करके भी नहीं काहेसे कि जब उनको अपनी बूझ होती तब इस वार्त्ता को प्रत्यक्ष देखते कि शरीर के मरने करके जीव का नाश नहीं होता और जब शास्त्रों

की विद्यापर प्रतीति करते तो भगवत् और सन्तजनों के वचनों को पढ़कर समझलेते कि यह जीव अविनाशी है और शरीर के नाशहुये से जीव अपने आप विषे स्थित रहता है ताते यह वार्ता भी सन्तजनों के वचनों विषे प्रसिद्ध है कि परलोक विषे दो प्रकार के जीव होते हैं सो एक तो भाग्यहीन हैं और दूसरे भाग्यवान् हैं पर जो भाग्यवान् जीव हैं सो बड़ाई को पाते हैं और अविनाशीरूप हैं इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि जिन्हों ने मेरे मार्गविषे अपने शरीर का त्यागकिया है तिनको मृत्यु हुआ न जानो और वह उत्तमपुरुष मेरी बख़्शीश पाकर सर्वदा आनन्दविषे रहते हैं बहुरि जीव भाग्यहीन हैं तिनकाभी नाश नहीं होता इसी पर एक वार्ता है कि जब लड़ाईविषे एकवार बहुत मनुष्य मृत्यु हुये और महापुरुष की जीत हुई तब मृत्यु हुये पुरुषों से महापुरुष कहनेलगे कि हे भाई! जिसप्रकार मुझको भगवत् की आज्ञा हुई थी कि तेरी जीत होवेगी सो तिसको तो मैंने प्रत्यक्ष देखाहै पर जिसप्रकार भगवान् ने कहा था कि मैं तामसी मनुष्यों को परलोकविषे दण्ड और कष्ट देऊंगा सो उस दुःख को तुमने भी पाया है कि नहीं पाया तब महापुरुषके साथवालों ने पूछा कि यह मृतक माटी की नाईं है तुम इनके साथ वचन क्योंकर कहते हो तब महापुरुष ने कहा कि जिस महाराज की सामर्थ्यविषे मैं पराधीनहूं तिसकी दुहाईकरके कहताहूं कि यह मृतक पुरुष मेरे वचनों को तुमसे अधिक सुनते हैं पर इनको उत्तर देनेकी आज्ञा नहीं ताते प्रसिद्ध हुआ कि जीव का मरना तो धर्मशास्त्र विषे भी नहीं कहा काहे से कि पितृपूजा के निमित्त श्राद्ध और दान आदिक कर्म जो करणीय कहे हैं तब इस करके जानाजाता है कि जीव का नाश नहीं होता पर इस प्रकार धर्मशास्त्र विषे भी कहाहै कि मृत्यु होने करके जीव का शरीर और स्थान परिणाम को पाता है अर्थ यह कि शरीर भी दूसरा पहरता है और स्थित भी और स्थान विषे होताहै पर जो पुण्यवान् जीव हैं वे स्वर्ग विषे सुख पाते हैं और पापी नरकों के दुःखों को भोगते हैं ताते तू इस वार्त्ता को निस्सन्देह जान कि शरीर के नाशकरके तेरे स्वरूप और स्वभावोंका नाश नहीं होता और इन्द्रियों और शारीरिक व्यवहार सब दूर होजाताहै जैसे घोड़ेके मरनेसे सवार नहीं मरता पर तो भी पियादा रहजाता है और उसका जो अपना स्वभाव और क्रिया है सो ज्यों का त्यों बना रहता है तैसेही शरीररूपी घोड़े के नाश होने से तेरा नाश

नहीं होता क्योंकि तेरा स्वरूप सवारकी नाईं शरीररूपी घोड़े से भिन्न है इसी कारण से जिन पुरुषों ने शरीर और इन्द्रियों का विस्मरण किया है और अपने चैतन्य स्वरूपविषे स्थित हुये हैं और भजन की एकत्रता करके चित्तविषे लीन हुये हैं तिनको परलोक की अवस्था प्रत्यक्ष भास आती है इसका कारण यह है कि यद्यपि उनसे प्राणों की समान वृत्ति विपर्यय नहीं हुई पर चित्त के स्थिर होनेसे प्राण चेतना भी ठहर जाती है ताते भगवत् के दर्शन को भी वे प्रत्यक्ष देखते हैं और उनके चित्त की वृत्ति किसी पदार्थ बिषे आसक्त नहीं होती इसी कारण से उनको जीवन्मुक्त कहते हैं अर्थात् जो भेद लोगों को मरने के पीछे प्रकट होताहै वह उनको चित्त की एकत्र अवस्थामें जीवतेही खुलजाता है और प्रत्यक्ष देखते हैं फिर जब उस अवस्था से उत्थान होकर इन्द्रियोंके देश में आते हैं तब तिनको जाग्रत् बिषे भी उस अवस्था का स्मरण रहता है सो जब एकत्रता बिषे सूक्ष्म स्वरूप करके स्वर्ग को देखते हैं तब जाग्रत् में प्रसन्नता और आनन्द उनके हृदयबिषे रहता है और जब अकस्मात् करके नरक को देखते हैं तब जाग्रत बिषे उनको भय सकुच प्रकट होती है ताते जो कुछ परलोक की वार्त्ता उनको जाग्रत् में स्मरण बिषे रहजाती है सो जगत् बिषे उसका वर्णन करके बताय देतेहैं और उस एकत्रता बिषे जैसा संकल्प उनके चित्तविषे फुरता है सो सत्यस्वरूप होताहै और दृष्टान्तमात्र उसका वर्णन भी करते हैं कि एक समय महापुरुष समाधि बिषे बैठे थे तब उन्होंने अपने हाथ को ऊपर को करके फिर खैंचलिया तब लोगोंने पूछा कि क्यों जी! तुमने हाथ किस निमित्त पसारा था तब महापुरुष ने कहा कि स्वर्ग के अमृतफल को मैंने देखा था और उसको जगतबिषे लाने की मैंने मनसा की थी पर शीघ्रही वह फल छिपगया ताते तू इस वार्त्ता से ऐसा अनुमान न करना कि वह फल जगत् बिषे आने योग्य था और महापुरुष उसके लानेमें समर्थ न हुये सो ऐसे जानना अयोग्य है काहे से कि सूक्ष्मदेश का फल इस जगत् बिषे किसी प्रकार आताही नहीं इस करके कि यह आधिभौतिक जगत स्थूल और जड़स्वरूप है और इस वचन का खोलना भी बहुत विस्तार करके होता है और तेरा प्रयोजन भी इस बिषे कुछ नहीं पर केते विद्यावान् भी इसी संशयविषे डूब गये हैं कि वह अमृतफल कैसा था और महापुरुष ने क्योंकर देखा था सो ऐसेही प्रश्न उत्तर करके इस बिषे पड़े विवाद

करतेहैं और अपने कल्याण की वार्त्ताको अङ्गीकार नहीं करते बहुरि अपनी विद्या पर अभिमानी होते हैं सो वे महामूढ़ हैं सो इसका तात्पर्य यह है सन्त जन परलोक को अपने हृदयकी दृष्टि करके देखते हैं और उनका देखना किसी के वचनों और युक्ति करके नहीं होता ताते वे इस जगत् की वृत्ति को त्याग कर चैतन्य देश विषे जाते हैं और परलोक को प्रत्यक्ष देखते हैं सो परलोक का देखना भी सन्तजनों के बल का एक अङ्ग है ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक की अवस्था दो प्रकार करके देखसक्ते हैं सो एक तो यह है कि जब प्राण चेतना के नाश होनेसे शरीर मृत्यु होजाता है तो भी यह जीव परलोक को प्रत्यक्ष देखताहै और दूसरे जब भजन की एकत्रता करके प्राणों की वृत्ति ठहरजाती है तब समझ के बल करके परलोक को प्रत्यक्ष देखताहै और इन्द्रियादिक देश बिषे परलोक का प्रत्यक्ष देखना असंभव है जैसे चौदह लोक ब्रह्माण्ड एक राई बिषे नहीं समाते तैसेही आत्मस्वर्ग की एक राई सर्व ब्रह्माण्ड बिषे नहीं समासक्ती और जैसे श्रवणइन्द्रिय किसी प्रकार पदार्थ के रूप को नहीं देखसक्ती तैसेही सर्व इन्द्रियां चैतन्यदेशकी वार्त्ता को नहीं देखसक्तीं ताते सूक्ष्म देश को देखनेहारी इन्द्रियां चैतन्यदेश की वार्त्ता को नहीं देखसक्तीं ताते सूक्ष्मदेश को देखनेहारी इन्द्रियां भी सूक्ष्म हैं ॥

छठा सर्ग ॥

यममार्ग के कष्ट के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यममार्गका कष्टभी तुझको पहिंचानना उचित है पर वह कष्टभी दो प्रकार का है सो एक दुःख तो शरीर के साथ जीवको होता है और दूसरा शरीरी कष्ट है सो शरीरी दुःख को तो सब कोई जानताहै पर जीव के दुःख को कोई नहीं पहिंचानता पर जिसने अपने आपको पहिंचाना है और हृदय का रूप भी उसको प्रत्यक्ष हुआहै सो जीवके दुःखको वही पहिंचानताहै क्योंकि वह अपना होना शरीरके आश्रित नहीं जानता और ऐसे भी जानता है कि शरीर के नाश हुये से मेरा नाश नहीं होता और मृत्यु के समय शरीर और इन्द्रियों का वियोग होजावेगा और ऐसेही धन पुत्रादिक सम्बन्धी सुन्दर टहलुवे, पशु, इष्टमित्र, धरती, आकाशादिक जो पदार्थ इन्द्रियों करके जाने जाते हैं सो सबही दूर होजावेंगे और जिस मनुष्य की प्रतीति इन पदार्थों बिषे दृढ़ हुई है और जिसने अपना आप स्थूलताबिषे बध्यमान् किया है सो वह इन

के वियोग करके निस्सन्देह दुःखी होता है और जिस पुरुष का हृदय सर्वपदार्थों से विरक्त है और भगवत् के बिना और किसी पदार्थ के साथ उसकी प्रीति नहीं उसको मृत्युके समय दुःख कुछ नहीं होता और अधिक आनन्द को पाता है काहेसे कि जिसके हृदयविषे भगवत् की प्रीति दृढ़ हुई है और जिसके चित्त विषे भजन का रहस्य प्रकट हुआ है और सर्वदा अपना आप जिसने भगवत् की ओर लगाया है और माया के सर्व पदार्थों को विरस जानकर आसक्त नहीं हुआ है तब मृत्यु के समय वह पुरुष निस्सन्देह अपने प्रियतम को पहुँचता है और जिन पदार्थों करके चित्त को विक्षेपता होती थी सो सबही दूर होजाते हैं ताते परमशान्ति को पावता है पर अब तू इस वार्ता को विचार कर देख कि जिस पुरुष ने शरीर के नाश हुये से भी आपको अविनाशी जाना और यों भी जाना कि सर्व मायिक पदार्थ संसार में ही रह जावेंगे इनमें मेरी अधिक प्रीति है तो उसको अवश्य ही यह निश्चय होजावेगा कि जब मैं अन्तसमय अपने प्रियतम पदार्थों से अलग होऊंगा तब निस्संदेह मुझको इनके वियोग करके दुःख प्राप्त होवेगा इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पदार्थ के साथ किसी की प्रीति है सो तिसके वियोग करके अवश्य ही दुःखी होता है और जब इस प्रकार जाने कि मेरी प्रीति केवल भगवत् के साथ है और माया के पदार्थों में से प्राणों की रक्षामात्र खान पानादिक व्यवहार संयमके साथ ग्रहण करके और समस्त पदार्थों को अपना शत्रु जाने तब वह भी निस्सन्देह जानेगा कि जब मेरा शरीर नाश होगा और माया के पदार्थ दूर होवेंगे तब मैं अपने प्रियतम महाराज को पाकर सुखी हूंगा ताते जिस पुरुषने इस वचन के भेदको समझा है वह यममार्ग के कष्टोंको निस्संशय जानताहै कि वैरागी पुरुष माया के वियोग करके सुखको प्राप्त होवेंगे और विषयी जीव विषयोंके वियोग करके अधिक दुःखी होवेंगे तब इस करके इस वचन का अर्थ प्रसिद्ध हुआ कि यह माया मनमुखों को स्वर्गरूप है और जिज्ञासुजन माया को भी नरक जानते हैं ताते माया का वियोग मनमुखों को नरकरूप होता है और वैरागी पुरुष सुख को पावते हैं ॥

सातवां सर्ग ॥

माया के वियोग के दुःखों के भेदके वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जब तैंने यममार्ग के कष्टों को पहिंचाना कि इस दुःखका

कारण माया की प्रीति है तब ऐसे भी जान कि यह दुःख सब जीवों को एक समान नहीं होते किसी को अधिक होते हैं किसी को अल्प होते हैं अर्थात् जितनी प्रीति इस मनुष्य की माया के पदार्थों और भोगों के साथ होती है तितनाही दुःख को पाता है ताते जिस पुरुष के पास एकही पदार्थ होवे और किसी पुरुष के पास बहुत सामग्री, टहलुवे, पशु, मनुष्यादिक सर्व पदार्थ होवें तब ऐसे सम्पदा रखने वाले पुरुष से एक सम्पदावाले पुरुष को निस्सन्देह दुःख अल्प होताहै जैसे किसी पुरुष का एक घोड़ा चोरी जावे और किसी दूसरे पुरुष के दश घोड़े चोरी जावें सो जिस पुरुष का एक घोड़ा चोरी गया है तिसको दश घोड़े चोरी जानेवाले से दुःख अल्प होताहै और जब किसी पुरुष का आधा धन दण्ड करके राजा हरलेवे और किसी का सारा धन हराजावे सो सर्वधनवाला अधिक दुःख को पाता है और जिसका सर्व धन भी हराजावे और स्त्री पुत्रादिक भी मारेजावें और अपने देशसे भी निकालाजावे तब वह सर्व धन जानेवाले से भी अधिक अति कष्ट को पाता है तैसेही मृत्यु का अर्थ है कि जब इस जीव का शरीर छूटजाताहै तब स्त्री पुत्रादिक सम्बन्धी माया के सर्व पदार्थ दूर होते हैं और यह जीव अकेला रह जाताहै ताते जो पुरुष माया की सामग्री बिषे अधिक आसक्त होताहै सो दुःखी भी अधिक होता है और जिस पुरुष की प्रीति पदार्थों में अल्प है वह पदार्थों के वियोग करके दुःखी भी अल्पही होता है इसीपर महाराज ने भी कहा है कि जिस मनुष्य को सर्वसुख और संपदा प्राप्तहुई है और वह पुरुष सर्व माया के पदार्थों बिषे अधिक आसक्तहै सो दुःखी भी अधिक होताहै और इन पदार्थों बिषे जिसकी प्रीति अल्प है सो पदार्थों के वियोग से भी अल्प दुःखी होता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि मनमुख पुरुष को यममार्ग बिषे ऐसा कष्ट होता है कि उसको अजगर काटते हैं और उन अजगरों के सौ२ शीश होते हैं ऐसे महा अजगर विषयी जीवोंको सर्वदा डसते रहते हैं और जिसके बुद्धिरूपी नेत्र खुलेहुये हैं सो इन अजगरों को प्रत्यक्ष देखता है और बुद्धिहीन पुरुष इसप्रकार कहतेहैं कि हमने तो बहुत मृतक पुरुष देखेहैं और हमारे नेत्रोंकी दृष्टि भी तीक्ष्ण है पर हमको तो कोई भी सर्प दृष्टि नहीं आया जो प्राणी को डसता होवे ताते ऐसे पुरुष को इस प्रकार जानना चाहिये कि यह महा अजगर जीव के हृदय बिषे होते हैं और उसी जीव को डसते हैं और जब शरीर को डसते होते तब

और कोई भी देखसक्ता फिर वह ऐसे सर्प हैं कि उस मनमुख के हृदयविषे इसही संसारमें डसते थे पर वह मूर्ख अचेतता करके जानता न था ताते इसका तात्पर्य यह है कि यह सर्प मन के मलिन स्वभाव हैं और एक २ स्वभाव से जो अव-गुणोंकी शाखा उपजती हैं सो सर्पों के शीश वर्णन किये हैं पर इनकी उत्पत्ति का कारण माया की प्रीति है जैसे ईर्षा, कठोरता, कुटिलता, कपट, मान, चप-लता, वैरभाव और मान की प्रीति इत्यादिक जो बुरे स्वभाव हैं सो येही सर्प हैं और इन अजगरोंका यथार्थस्वरूप और संख्या और इनके शीशोंका बिस्तार जो है सो केवल भगवत् की कृपा से अनुभव के द्वारा मनुष्य देखसक्ते हैं क्योंकि जितनी बुरी प्रकृति की शाखा हैं तिनको भगवत् की दया और अनुभव करके पहिंचाना जाताहै और मुझको सर्व मलिन स्वभावों की जान भी नहीं पर यह मलिनस्वभाव मनमुख के हृदयविषे आगे भी थे इसीकरके जो मनमुख पुरुष भगवत् और सन्तजनों की प्रीति से शून्य होता है और सर्वदा माया के पदार्थों विषे आसक्त रहता है तिसको मलिन स्वभावरूपी सर्प जो उसके हृदय विषे थे सो यममार्ग में डसते हैं और इन सर्पों का डसना महादुःखरूप है क्योंकि जब उसको स्थूल सर्प डसते तब किसी समय क्षणमात्र उसको बिश्राम भी देते पर यह मन के स्वभावरूपी सर्प जो उसके हृदय बिषे डसते हैं सो इनसे कदाचित् मुक्त नहीं होता जैसे किसी पुरुष की प्रीति अपनी दासीके साथ होवे और वह उस प्रीतिको आगे न जानता होवे और किसी कारणकरके उस दासी का वियोग होजावे तब उस पुरुष को प्रीतिरूपी सर्प डसते हैं यद्यपि उससे आगे अचेत भी होता है तौ भी वियोग के समय उसको उस प्रीति की चोट महादुःख देती है सो यह प्रीतिरूपी अजगर भी उसके हृदय बिषे आगेही स्थित था और डसता था पर मूर्खता करके पहिंचानता न था बहुरि वियोग बिषे उस का डसना प्रत्यक्ष देखता है अर्थ यह है कि जैसे वह उसकी प्रीति करके उस की प्रीति बिषे सुख पाता था तैसेही वियोग करके वहही प्रीति उसको दुःख देती है काहे से कि जो उस दासी के साथ इसकी प्रीति न होती तो उसके वियोग करके दुःखी भी न होता इसी प्रकार मनमुख की जो प्रीति माया के साथ होती है तिस करके माया के भोगों बिषे आनन्दित होता है बहुरि उसी प्रीति करके वियोगबिषे दुःखी होताहै ताते मान और ऐश्वर्य की प्रीति जो है सो तिसका

डसना अजगर की नाईं है और धन की प्रीति सर्प की नाईं है और सुन्दरों की प्रीति बिच्छू की नाईं है तैसेही जिस जिस की प्रीति इस मनुष्य के हृदय विषे दृढ़ होती है तब उस करके निस्सन्देह दुःख को पाता है जैसे यह पुरुष दासी के वियोग विषे ऐसा दुःखी होता है कि आपको अग्नि और जल में डाला चाहता है इस करके कि प्रीतिरूपी सर्प के डसने से किसी प्रकार छूटे तैसेही जिस जीव को यममार्ग विषे भोगों के वियोग का दुःख होताहै तब वह भी चाहता है कि जब मुझको स्थूल सर्प और बिच्छू डसते तौ भी भला था क्योंकि उनके डसने करके शरीर को दुःख होता और यह दुःख मेरे हृदय को डसता है और कोई इसको देखता भी नहीं जो मेरा उपकार करे ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह जीव अपने दुःख के बीज को इसी संसार से अपने साथ ही ले जाता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि यह तुम्हारे अशुभकर्मही तुमको दुःख देते हैं और कोई तुमको दुःख देनेवाला नहीं इसी पर महाराज का वचन है कि जब तुम्हारी प्रीति और निश्चय दृढ़ होवे तब तुम नरकों को इसी संसार विषे देख लोगे क्योंकि मनमुखों का हृदय यहां भी नरक के दुःखों करके पूर्ण है सो महाराज ने भी इस प्रकार तो नहीं कहा कि मनमुख परलोक विषेही नरक को पावेंगे पर यह कहा कि यहांही नरक उनके साथहै और उसमें वे पूर्ण हैं अर्थात् इसी ठौर में उनका हृदय नरकरूप है ॥

आठवां सर्ग ॥

प्रश्नोत्तर के वर्णन में ॥

बहुरि जब तू प्रश्न करे कि धर्मशास्त्र विषे तो स्थूल नेत्रों से उन सर्पों का देखना कहा है और जैसे सर्प तुमने हृदयविषे वर्णन किये हैं सो स्थूल नेत्रों करके नहीं दीखसक्के ताते इसका उत्तर यह है कि यह सर्प भी दीखते हैं पर जिस मृतक प्राणी को डसते हैं वहही देखताहै और इस संसार के लोग उनको नहीं देखसक्के काहेसे कि सूक्ष्मदेश के पदार्थ स्थूल नेत्रों से नहीं देखे जाते ताते वह सर्प प्राणी को स्थूलसर्पों की नाईं नहीं डसते जो सब कोई प्रकट देखलेवें और उस मृतकजीव को स्थूल सर्पों की नाईं प्रत्यक्ष डसते हुये दीखते हैं जैसे कोई स्वप्न विषे देखे कि सर्प मुझको काटताहै और जो पुरुष और कोई उसके निकट बैठा होवे तिसको कोई सर्प दृष्टि नहीं आता पर उस स्वप्न देखनेवाले को वह सर्प प्रत्यक्ष

दीखता है और उसके डसने के दुःखको भी प्रत्यक्ष पाता है और जाग्रत् पुरुषके ज्ञान में सर्प नहीं भासता और उस जाग्रत् पुरुष को जो सर्प नहीं भासता तिस करके उस स्वप्न देखनेवाले पुरुष को सर्प के डसने का दुःख कुछ खण्डित नहीं होता काहे से कि स्वप्न देखते पुरुष को सर्प डसने का दुःख ऐसे प्रत्यक्ष है जैसे किसी मनुष्य को जाग्रत्विषे कष्ट होवे और योंभी है कि जब कोई स्वप्नविषे देखे कि मुझ को सर्प ने डसा तब इसका फल यह होगा कि जाग्रत्विषे उसको शत्रु जीतलेवेगा सो इस कष्ट को मानसी दुःख कहते हैं और यह विशेष कष्ट है काहे से कि यह पुरुष इस प्रकार चाहता है कि जो मुझको जाग्रत्विषे सर्प डसता तो भला था पर किसी प्रकार मेरी शत्रु से रक्षा होवे क्योंकि सर्पके डसने से शत्रु का दुःख अधिक होताहै इस करके कि शत्रु का दुःख हृदय को पहुँचताहै और सर्प तो शरीर को डसता है बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि जब प्राणी को डसनेवाले सर्प भी स्वप्न की नाईं हुये तब प्रसिद्ध हुआ कि वह सर्प भी संकल्प-मात्र है अर्थात् उस पुरुष को वास्तव में कोई सर्प नहीं डसता पर अपने संकल्प करके दुःख मानता है सो तिसका उत्तर यह है कि ऐसा जानना भी बड़ी मूर्खता है काहेसे कि जब विचार की दृष्टि से देखिये तब वे सर्प निस्सन्देह प्रत्यक्ष हैं इस करके जिस पदार्थ का सुख और दुःख प्रकट प्राप्त होवे तिसको प्रत्यक्ष कहते हैं और संकल्पमात्र का दुःख यह है कि उस पदार्थ का सुख दुःख प्रत्यक्ष न भासे ताते जब तुझको स्वप्न विषे कोई पदार्थ दृष्टि आवे और तैंने उसका सुख अथवा दुःख पाया तब वह पदार्थ तुझको तो प्रत्यक्ष हुआ सो यद्यपि और कोई उसको नहीं देखता पर तौभी तुझको प्रत्यक्ष है और जिस पदार्थ को सबही लोग देखें और तुझको वह पदार्थ न भासे तब तेरी जानविषे वह पदार्थ मिथ्या होता है इसी प्रकार स्वप्न देखनेवाले और मृतकपुरुष को जो दुःख प्राप्त होता है सो य-द्यपि और कोई उसको नहीं देखता पर उनको निस्सन्देह प्रत्यक्ष है और औरों को देखने में भी जो नहीं आता तौभी उसका दुःख दूर तो नहीं होता और इस विषे इतना भेद है कि स्वप्न देखनेवाला पुरुष शीघ्र जाग उठताहै और जाग्रत के समय उस दुःख का भान नहीं होता ताते उसको संकल्प कहते हैं और मृतक जीव को जो दुःख परलोक विषे प्राप्त होता है तिस दुःख की मर्याद कुछ वर्णन में नहीं आती और किसी प्रकार उस दुःख से छूट नहीं सके पर जब भगवत्

की कृपा होवे तब प्राणी को उस दुःखसे मुक्त करे और धर्मशास्त्र विषे भी तो इस प्रकार नहीं कहा कि प्राणी को स्थूलसर्प डसते हैं काहेसे कि जब वह सर्प स्थूल नेत्रों से देखे जावें तब परलोक भी इस लोक की नाईं आधिभौतिक प्रसिद्ध होता है सो ऐसे नहीं ताते जब कोई पुरुष स्थूल जगत् को विस्मरण करे तब उसको परलोक भी प्रत्यक्ष भास आताहै और तामसी जीवों को जिस प्रकार सर्प बिच्छू डसते हैं तिनको भी प्रत्यक्ष देखता है इसी कारण से कहा है कि इतर जीवों को जो कुछ आश्चर्य स्वप्नविषे दीखता है सो सन्तजनों को जाग्रत्विषे ही भासआता है इसी करके कि सन्तजनों को इन्द्रियादि विषय परलोकसम्बन्धी कार्यों में आड़ नहीं करसक्ते पर तात्पर्य यह है कि जेते पुरुष स्थूलदृष्टि देखकर कहते हैं कि इस जीव को मरने के पीछे दुःख कुछ नहीं होता सो इसका कारण यह है कि उनको मानसी दुःख का ज्ञान कुछ नहीं और स्थूलशरीर के दुःख ही को दुःख जानते हैं बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि तुमने जो यममार्ग के दुःख का कारण माया के भोग्य पदार्थ कहे हैं सो इस करके तो जानाजाता है कि यममार्ग के कष्टसे कोई पुरुष मुक्त न होवेगा क्योंकि सब कोई स्त्री पुत्रादिकसम्बन्धी और धन बड़ाई आदिक रखता है और माया की सामग्री भी सब कोई अधिक अथवा अल्प रखता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि यममार्ग के कष्ट से कोई जीव नहीं छूटेगा तब इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार तैंने समझा है सो ऐसे नहीं काहेसे कि कोई पुरुष इस जगत्विषे ऐसे होते हैं कि उनका चित्त माया के भोगों से बिरक्त होता है और किसी पदार्थ के साथ उन की प्रीति नहीं होती सो ऐसे जिज्ञासु वैराग्यसंयुक्त भी बहुत हैं बहुरि जो पुरुष धनवान् हैं सो वह भी तीन प्रकार के होते हैं सो एक तो ऐसे हैं कि उन की प्रीति माया के साथ भी होती है और भगवत् को भी प्रियतम रखते हैं पर जिनकी प्रीति भगवत् के साथ अधिक है तिनको भी यममार्ग विषे कष्ट नहीं होता तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने गृह की सर्व सामग्री को प्रियतम रखता होवे और उसको कोई महाराजा किसी देश की राज्य देवे तब उसको अपने गृह की सामग्री का त्याग करना सुगम होता है काहेसे कि उस देश की राज्य और अधिक उसकी प्राप्ति की प्रीति के आगे अपने गृह की सामग्री और अपने नगर की प्रीति तुच्छमात्र ही होजाती है तैसेही प्रीतिमान्

मनुष्यों की प्रीति यद्यपि माया के भोगों और सम्बन्धियों के साथ भी होती है पर तौभी भगवत् की प्रीति और उसके मिलाप का जो रस है तिस आनन्द में सर्व पदार्थों की प्रीति उनको विस्मरण होजाती है और जब मरने के पीछे माया के पदार्थों का वियोग होता है तब वह आनन्दस्वरूप की प्रीति बिषे लीन होजाते हैं बहुरि जो माया के साथ अधिक प्रीति रखते हैं और भगवत् के साथ अल्प सो ऐसे पुरुष यममार्ग के कष्ट से नहीं छूटते और चिरकालपर्यन्त दुःख को भोगते हैं फिर जब अधिक समय बीतजाता है तब उसको भी मायाके पदार्थ विस्मरण होजाते हैं और भगवत् की प्रीति का बीज जो उनके हृदयबिषे था सो धीरे २ उपजने लगता है तब चिरकाल पीछे वह भी सुख को पाते हैं सो इस का दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी पुरुषके दो गृह होवें पर एक गृहके साथ उस की अधिक प्रीति होवे और दूसरे गृह के साथ कुछ अल्प प्रीति होवे सो उसको जब अधिक प्रीतिवाले गृह से मिलकर दीजिये और वह अल्प प्रीतिवाले गृह बिषे जाय रहे तब कुछ काल तो अधिक प्रीतिवाले गृह के वियोगकरके दुःखी होताहै फिर जब अधिक समय बीतता है तब वह गृह उसको सहजही भूलजाता है और जिस गृह के साथ कुछ अल्प प्रीति रखता था तिसही गृह के साथ उसका स्वभाव मिलजाता है २ और तीसरे धनवान् ऐसे हैं कि जिनकी प्रीति भगवत् के साथ कुछ भी नहीं और सर्वदा माया के पदार्थोंबिषे आसक्त हैं सो सदैव काल परलोक बिषे बड़े दुःखों को भोगते हैं और कदाचित् नहीं छूटते काहे से कि माया के साथ जो उनकी प्रीति थी सो उसका बियोग हुआ तब ऐसे महा-दुःख से उनकी मुक्ति क्योंकर होवे ताते बिमुखलोग जो सदैव दुःखबिषे रहते हैं तिसका कारण मायाही की प्रीति है २ बहुरि सब कोई इस प्रकार कहते हैं कि हम भगवत् ही को प्रियतम रखते हैं और माया के पदार्थों से भगवत् के साथ हमारी प्रीति अधिक है सो यद्यपि मुख से सब कोई ऐसेही कहता है पर तौभी इस वार्ता की परीक्षा के निमित्त कसौटी चाहिये है सो वह कसौटी यह है कि जिस भोग को इस जीवका मन चाहे और सन्तजनों के वचनों बिषे वह भोग निन्द्य है सो जो यह मनुष्य उस समय बिषे अपनी रुचि सन्तजनों के वचनों बिषे अधिक होवे और मन की वासना का त्यागकरे तब जानिये कि उस पुरुष की प्रीति श्रीभगवत् के साथ अधिक है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे दो

पुरुषों के साथ किसी की प्रीति होवे और अकस्मात् उन दोनों पुरुषों में आपस विषे विरुद्ध होजावे तब जिस पुरुष के साथ वह मनुष्य अपनी खैंच प्रबल देखे तब जानिये कि उसकी प्रीति उसी पुरुष के साथ अधिक है तैसेही जबलग इस जीव की अवस्था सन्तजनों की आज्ञानुसार न होवे तबलग मुख के कहने करके कुछ लाभ नहीं होता और ऐसा कहनाही व्यर्थ है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष सर्वदा मुखसे ऐसेही कहते हैं कि एक भगवत् ही सत्य स्वरूपहै और सबही नाशवन्त हैं पर मायाके पदार्थोंविषे उनकी प्रीति अधिक है और इस वचन के कहने परही आपको मुक्त किया चाहते हैं तब भगवत् उन को इस प्रकार कहते हैं कि तुम झूठे हो काहेसे कि तुम्हारी तो मायाही के साथ अधिक प्रीति है और मुख से भगवत् ही को सत्यस्वरूप कहते हो ताते तुम अपने वचनही विषे झूठे हो सो इस करके प्रसिद्ध हुआ कि जिनके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो सूक्ष्मदृष्टि के साथ जिस प्रकार प्रत्यक्ष देखते हैं कि यममार्ग के कष्ट से कोई बिरला ही मुक्त है होवेगा और बहुत मनुष्य तो उस दुःख से न छूटेंगे पर अधिक और अल्प दुःख का भेद रहेगा जैसे माया के पदार्थों की आसक्ति विषे जीवों की अवस्था का भेद है तैसेही यममार्ग विषे भी दुःख का भेद होवेगा अर्थ यह कि कोई पुरुष चिरकालपर्यन्त उसही दुःख विषे रहेगा और कोई पुरुष अल्पकाल दुःख को भोगकर मुक्त होवेगा ॥

नववां सर्ग ॥

अभिमानी मनुष्यों की नीचता के वर्णन में ॥

बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्न करे कि कितने पुरुष तो इस प्रकार कहते हैं कि यममार्ग के दुःख का कारण माया ही की प्रीति है तब हमको तो इस दुःख का कुछ भयही नहीं क्योंकि हमारा चित्त मायाके पदार्थों में आसक्तही नहीं पदार्थों का होना अथवा न होना हमको एक समान है सो इसका उत्तर यह कि ऐसा अभिमान करना कठिन है और ऐसे अभिमान करनेवाले भी महामूढ़ हैं काहे से कि जबलग अपने मनकी परीक्षा न करिये तबलग ऐसी अवस्था का अभिमान करना व्यर्थ है सो परीक्षा यह है कि जब उस पुरुषका धन तस्कर लेजावें अथवा का ऐश्वर्य नष्ट होवे और उसके मिलापी लोग विमुख होकर निन्दा करने लगें तिसपर भी उस पुरुष की अवस्था न बदले और चित्तकी वृत्ति को खेद न

पहुँचे और ऐसे जाने कि किसी और का धन हरागया है और किसी और का मान दूर होता है और मेरा कुछ नहीं गया तब जानिये कि उसका कहना सत्य है और उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ है पर जब लग उसका धन और मान दूर नहीं हुआ होवे तब चाहिये कि अपनी परीक्षा के निमित्त आपही धन का त्याग करे और जिस नगरबिषे इसका मान होवे तिस नगर को छोड़जावे और फिर ऐसी परीक्षा करके आपको निर्मल और निर्लेप देखे तब जाने कि मुझको परम पदकी प्राप्ति हुई है और जबलग आपको इस परीक्षाविषे परिपक्व न देखे तबलग उत्तम अवस्था का अभिमान करना व्यर्थ है काहेसे कि केते पुरुष सम्बन्धियों के संयोग विषे इस प्रकार जानते हैं कि स्त्री पुत्रादिकों के साथ हमारी प्रीति कुछ नहीं पर जब उनका वियोग होता है तब उनके हृदयबिषे जो प्रीतिरूपी अग्नि छिपी हुई थी सो प्रकट हो आती है और उसकी तपन करके बावरे होजाते हैं ताते जो कोई पुरुष आपको यममार्ग के कष्ट से मुक्त किया चाहै तब उसको किसी स्थूलपदार्थ बिषे आसक्त होना प्रमाण नहीं और माया का व्यवहार अवश्यमेव कार्यमात्र करना भला है सो जैसे इस मनुष्य को मलके त्यागने की अपेक्षा अवश्यमेव होती है और अवश्यमेव मलमूत्र के स्थानबिषे जा बैठता है तैसेही जीव को चाहिये कि आहार की अभिलाषा भी इसी प्रकार कार्यमात्र होवे और ऐसे जाने कि जैसे मलत्याग किये बिना शरीर को दुःख होता है तैसेही आहार के बिनाभी शरीर की क्रिया सिद्ध नहीं होती और ऐसेही सब कार्यों बिषे भय और संयमसंयुक्त बर्ते बहुरि जब माया के भोगों से यह मनुष्य अपना चित्त बिरक्त करसके तब चाहिये कि जो पुरुषार्थ और प्रेम करके भजन बिषे सावधान होवे भजन के और रहस्य को माया के रहस्य से प्रबल करे बहुरि सर्वदा अपने चित्त की परीक्षा करतारहै कि मेरा चित्त अपनी वासना की ओर अधिक खींचता है अथवा भगवत् और सन्तजनों की आज्ञाबिषे अधिक प्रीति करता है सो जब इस प्रकार देखे कि मेरा चित्त अपनी वासना का त्याग करके सुगमही सन्तजनों की आज्ञानुसार बर्त्तता है तब निस्सन्देह जाने कि मैं निस्सन्देह यममार्ग के कष्ट से मुक्त होऊंगा और जब अपने मन को इस प्रकार न देखे तब जाने कि उस परमदुःखसे मुक्त होना कठिन है अथवा भगवत् की दया होवे तब मुक्त होसक्ता है सो वह इन सब करतूतों से न्यारी है सो

जब वह महाराज अपनी कृपा करे तब दुःख से मुक्त होना क्या आश्चर्य है ॥

दशवां सर्ग ॥

मानसी नरकों के बखान में ॥

ताते जान तू कि मानसी नरकों का अर्थ यह है कि वह दुःख केवल जीव को होता है और उस दुःखबिषे शरीर का सम्बन्ध कुछ नहीं होता ताते जिस अग्नि करके शरीर को जलन होती है तिसको स्थूल नरक कहते हैं और जो अग्नि केवल मनही को जलावती है तिसको मानसी नरक कहते हैं बहुरि मानसी नरक की जो अग्नि है सो तीन प्रकार की होती है प्रथम तो स्थूल भोगों के बियोग की अग्नि जीव को जलावती है १ और दूसरी अग्नि अपमान और निरादर और लज्जावानी की है २ बहुरि तीसरी अग्नि यह है कि भगवत् के दर्शन से अप्राप्त रहने का पश्चात्ताप इस जीव को जलावताहै ३ सो यह तीन प्रकार की अग्नि केवल हृदय को ही तपायमान करती है और इस दुःख का प्रवेश शरीरपर कुछ नहीं होता ताते इसका बखान करना प्रमाण हुआ पर इन तीनों अग्नि का बीज यह जीव इसी संसार से अपने साथ लेजाता है जैसे स्थूल दृष्टान्तों करके वर्णन करूंगा पर प्रथम अग्नि जो भोगों के बियोग की कही है सो इसका बखान कुछ आगे भी किया है सो इस दुःख का कारण माया की प्रीति है अर्थ यह कि उसही प्रीति करके सुखी होता है और बियोग करके उसी प्रीति करके दुःखी होता है ताते इस पुरुष की प्रीति जो माया के साथ है सो भोगों को इस संसार बिषे स्वर्ग की नाईं भोगता है फिर नरक को प्राप्त होता है काहेसे कि यह माया ही इसकी प्रियतम थी सो जब उसका वियोग होता है तब महादुःखी होता है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि एकही पदार्थ सुख का कारण भी होता है बहुरि दुःख का कारण भी वहही है पर उस पदार्थ का सुख और दुःख संयोग और वियोग करके होता है सो इस अग्नि का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई महाराजा होवे और सर्व पृथ्वीमण्डल पर उसकी आज्ञा वर्त्तमान होवे और सर्वदा सुन्दर स्वरूपों का देखना उसको प्राप्त होवे और नाना प्रकार के दास और दासी और स्त्रियां सुन्दर और लाल बागीचे रमणीक स्थान और इसकी नाईं और भी बड़े सुख को भोगता होवे बहुरि अचानक ही कोई और राजा उसका विरोधी आनकर प्राप्त होवे और उसको

जीतकर अपने अधीन करलेवे और उसके प्रधान के देखतेही उस महाराजा को कूकरों की टहल बिषे लगावे बहुरि उसके देखते ही उसकी स्त्रियों को अपनी दासी कर राखे और उसके दास दासियों से अपनी टहल करावे और उसके भण्डार बिषे जो रत्न और माणिक्य होवें सो सबही उसके शत्रुओं को देवे सो जब बिचारकर देखिये तब उस राजा के शरीरपर दुःख कुछ प्राप्त नहीं हुआ पर राज्य और स्त्री पुत्र दास दासी भण्डार और २ जो सर्व सुखों के बियोग की अग्नि है सो उसके हृदय को जलावती है और वह महाराजा अपने हृदय बिषे आप को ऐसा दुःखी जानता है कि मैं किसी प्रकार मरजाऊं तो भला है जो इस दुःख से छूटूं सो यह दृष्टान्त स्थूल भोगों की अग्नि का है ताते प्रसिद्ध हुआ कि जितने माया के सुख अधिक होवें और वह पुरुष निष्कण्टक उनको भोगता होवे सो तितना ही उनके वियोग की अग्नि भी उसके हृदय को अधिक जलावती है और जिसके पास माया की सामग्री अधिक होवे और इन्द्रियादिक भोग भी उसको निर्यत्न प्राप्त होवें तब उनका वियोग भी उसके हृदय को अतिशय तपायमान करता है बहुरि यों भी है कि जिस वियोग की अग्नि करके इस जीव का हृदय जलने लगता है तिसके समान स्थूल अग्नि का दृष्टान्त नहीं सम्भवता काहे से कि जब इस मनुष्य के शरीर को इस जगत बिषे कुछ दुःख भी होता है तब भी हृदय को सम्पूर्ण नहीं पहुँचता इस करके कि नेत्र और श्रवणादिक इन्द्रियों की क्रियाबिषे चित्त की वृत्ति पसरजाती है ताते दुःख का भास निर्बल होजाता है और इन्द्रियों का व्यवहार भी हृदय को ऐसा पटल होजाता है कि दुःख का प्रवेश सम्पूर्ण चित्त बिषे पहुँचने नहीं देता जैसे जब कोई दुःखी पुरुष अचानक निद्रा से जागता है तब उसको दुःख की पीड़ा अधिक भासने लगती है क्योंकि उस समय बिषे उस पुरुष का चित्त पसरा हुआ नहीं होता और जैसे जब कोई पुरुष निद्रा से अचानक जागे और इन्द्रियों बिषे चित्त की वृत्ति पसरने से आगेही सुन्दर शब्द उसके श्रवण बिषे पड़े तो भी उस शब्दबिषे चित्त की वृत्ति एकत्र होती है पर जबलग यह मनुष्य इस संसार बिषे जीता है तबलग इन्द्रिय व्यवहार के मैल से कदाचित् निर्मल नहीं होता और जब इस जीव का शरीर छूटताहै तब परलोक बिषे अकेलाही रहजाताहै और इन्द्रियों की विक्षेपता सबही दूर होजाती है इसी कारण से परलोक बिषे सुख और दुःख का प्रवेश जीव को

अधिक होताहै ताते तू ऐसा अनुमान चित्तविषे न करे कि वह सूक्ष्म अग्नि जीव को जलावनेवाली भी स्थूल अग्नि की नाईं होवेगी क्योंकि यह अग्नि मसर भाग उस सूक्ष्म अग्नि से शीतल है बहुरि दूसरी अग्नि जो अपमान की कही थी सो तिसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई महाराजा नीच मनुष्य को दयाकरके अपना निकटवर्ती करे और सर्वकार्य गृहके उस को सौंप देवे बहुरि उसको रनिवास में जाने की भी अटक न होवे और धनके भण्डार भी सब उस के अधीन होवें सो जब ऐसे पुरुष को ऐसे सुखों की प्राप्ति होजावे तब विमुखता करके उसका हृदय मलिन होजावे और तिस करके भण्डारों विषे चोरी करने लगे और भीतर राजमहलों में व्यभिचारादिक अपकर्म करनेलगे और बाहर से आप को सुहृद्भाव और भलाई संयुक्त दिखावे बहुरि अचानक ही किसी समय महलों विषे अपकर्म करतेहुये उस महाराजा को देखे और इस प्रकार जाने कि राजा मुझको झरोखे में से अपकर्म महलों में करताहुआ देखता है और ऐसेही सदैवकाल आगे भी देखता रहताहै पर मुझको इस निमित्त दण्ड नहीं दिया कि जब इसका पाप पूर्ण और वृद्ध हो जावेगा तब मैं इसको इकट्ठा ही दण्ड और दुःख देऊंगा सो अब तू विचारकर देख कि उस समय विषे उस नीच मनुष्य को लज्जा की अग्नि किस प्रकार जलावती है कि यद्यपि उसका शरीर और कष्ट से रहित है तौ भी उस लज्जावानी के सबब से आप को धरती विषे लीन किया चाहता है इस करके कि किसी प्रकार लज्जावान् के कष्ट से मैं छूटूं तो भला है हे भाई! तैसे ही तू इस जगत् विषे अपने स्वभाव साथ कार्य करता है और वह कार्य बाहर से भले दृष्टि आते हैं और उस क्रिया का तात्पर्य म-लिन होता है सो जब परलोक विषे नीच क्रिया का तात्पर्य सिद्ध होवेगा तब तुझको अति लज्जा प्राप्त होवेगी और तू उस लाज की अग्निविषे दग्ध होवेगा जैसे कोई पुरुष की निन्दा अब कोई करे सो परलोक विषे ऐसी लज्जा को प्राप्त होवेगा कि जैसे कोई पुरुष इस संसारविषे अपने भाई का मांस भोजनकरे और जाने कि मैं पक्षी का मांस भक्षणकरता हूं बहुरि जब भलीप्रकार देखे तब जाने कि यह तो मेरे सम्बन्धी का मांस है ताते तू भली प्रकार देख कि उस समय विषे उस पुरुष का हृदय कैसा लज्जायुक्त होता है और कैसा तापकरके तपने ल-गता है सो निन्दा करनेवाले को परलोक विषे ऐसीही लज्जा प्राप्त होवेगी जैसी

उस पुरुष अपने भाई के मांस खानेवाले को हुई पर निन्दा करने का तात्पर्य जैसा मलिन है तैसा अब तुझको नहीं भासता और परलोक विषे उसको प्रत्यक्ष देखेगा इसी कारण से कहा है कि जब कोई मनुष्य स्वप्न विषे आप को मृतक का आहार करता देखे तब इसकी युक्ति यह है कि वह मनुष्य किसी पुरुष की निन्दा करता होवे बहुरि दृष्टान्त यह कि जैसे तू स्वाभाविकही किसी भीत के पीछे से पत्थर डारनेलगे और वह पत्थर तेरे घरमें जाकर पड़तेहोवें और कोई पुरुष तुझ से कहे कि तू पत्थर डारने का त्यागकर काहेसे कि यह पत्थर तेरेही गृह में पड़ते हैं और इन पत्थरों करके तेरे पुत्रों के नेत्र अन्धे होते जातेहैं फिर जब तू अपने गृह विषे जाकर प्रत्यक्ष देखे कि पत्थर करके मेरे पुत्रों के नेत्र अन्धे हुये हैं तब उस समय विषे तेरे चित्त को कैसी अग्नि लगती है और किस प्रकार तू लज्जावानी विषे जलता है ताते जब कोई पुरुष किसी मनुष्य की ईर्षा करता है तब परलोक विषे आपको ऐसाही लज्जित देखेगा काहेसे कि ईर्षा का भी येही होता है कि ईर्षा करनेवाला पुरुष अपने शत्रु की हानि चाहता है पर वास्तव में अपनी ही हानि करता है और अपना ही धर्म नष्ट करता है और अपने शुभ करतूतों का नाश किया चाहता है तात्पर्य यह कि परलोक विषे सब करतूतों का स्वरूप अर्थ के अनुसार भासेगा और यह मनुष्य पदार्थों के अनुसार बीज को प्रत्यक्ष देखेगा इसी कारण से अपमान की लज्जा को प्राप्त होवेगा बहुरि स्वप्न की अवस्था भी परलोक की अवस्था की नाई होती है ताते जैसा इस पुरुष का हृदय होता है तिसको स्वप्नविषे आकारवन्त देखता है इसी पर एक वार्ता है कि कोई प्रवृत्ति पण्डित एक सन्त के पास आया था और कहनेलगा कि मैंने स्वप्नविषे अपने आपको लोगों के मुखपर मोहर लगावते देखा है सो इसका अर्थ क्या है ? तब उस सन्त ने कहा कि तू जाग्रत विषे दण्ड करके लोगों को व्रत रखाता होगा बहुरि उसने कहा कि निस्सन्देह मेरा ऐसाही स्वभाव है ताते अब तू विचार करके देख कि इस करतूतिका आकार कैसा है ? और अर्थ कैसाहै ? सो स्थूलव्यवहार विषे तो व्रत रखावना भलाकर्म दृष्टि आता है पर उसका अर्थ अशुभ प्रकटहुआ कि मानो लोगों के मुखों पर मोहर लगाता है और उनको आहार से रोक रखताहै सो यह भी बड़ा आश्चर्य है कि भगवत् ने तुझको यह स्वप्न परलोक की अवस्था का लखानेवाला बना

दिखाया है पर तू इससे भी अचेत है इसी कारण से सन्तजनों के वचनों बिषे आया है कि परलोक बिषे माया का आकार बुड्ढा कुरूपा स्त्री की नाईं होवेगा और सबही जीव उसे देखकर भयवान् होवेंगे और प्रार्थना करेंगे कि हे महाराज! इस महाराक्षसी से तू हमारी रक्षाकर तब आज्ञा होवेगी कि जिस मायाकी प्राप्ति के निमित्त तुम अपने धर्मको नाश करते थे सो यह वही मायाहै तब वह जीव ऐसी अपमानता और लज्जा को प्राप्तहोवेंगे कि आप को अग्निविषे जलाया चाहेंगे इस करके कि किसी प्रकार हम इस लज्जा से छूटें सो इस लज्जावानीका दृष्टान्त यह है कि एक समय बिषे किसी राजा ने अपने पुत्र का बिवाह किया था बहुरि वह राजपुत्र मदिरा अधिक पानकरके अपने गृह को चला सो मद की उन्मत्तता करके असावधान होगया और अपने गृहको भुलाकर किसी और स्थान बिषे जा निकला और वहां एक मन्दिर में दीपक जलतादेखा तब उस ने जाना कि मैं अपने घरमें आ प्राप्तहुआ हूं बहुरि जब उस स्थानके अन्दर गया तब उसमें उसको बहुत पुरुष पड़े सोवतेहुये दृष्टिआये सो उनको पुकारा तो कोई न बोला तब उसने जाना कि सब निद्राबिषे हैं बहुरि एक स्त्री को उसने उज्ज्वल वस्त्र पहिरे हुये सोवती देखा तिसको अपनी स्त्री जानकर उसके पासही शयन कररहा और उस स्त्री के शरीर से उसको सुगन्ध आनेलगी तब वह राजपुत्र उसके साथ क्रीड़ा करने लगा बहुरि जब सूर्य उदयहुये तब उस राजपुत्र का मद उतरा और जाग उठा और भली प्रकार देखा तो जाना कि जिनको मैं सोयाहुआ जानता था सो वह सब ही मृतक हैं और जिसको मैं अपनी स्त्री जानता था सो महाकुरूप बुड्ढा स्त्री है और मुझको जो सुगन्ध भासती थी सो उसके शरीर की दुर्गंध और मलिनता है बहुरि जब अपने अङ्गों को देखा तो सब बिष्ठा साथ लपटेहुये दृष्टि आये तब बड़ा मलिनचित्त होकर चाहनेलगा कि इससे तो मेरी मृत्यु आजावे तो भला है बहुरि यह भी भय करनेलगा कि कहीं मेरा पिता और उसकी सेना इस बिष्ठादिक में लपटाहुआ मुझको न देखलेवे सो वह ऐसेही मनमें बिचार कररहा था कि इतने में वह राजा अपने प्रधानों संयुक्त उसको ढूंढ़ता हुआ वहांही आ पहुँचा तब पुत्र को महामलिन अवस्था बिषे देखा और वह राजपुत्र लज्जा करके ऐसे बिचारनेलगा कि जो किसीप्रकार मैं धरती बिषे समा जाऊं तो भला है पर किसी भांति इस लज्जावानी से छूटूं-

तैसही बिषयी जीव परलोक बिषे माया के सुखभोग और इन्द्रियों के रसों को ऐसाही मलिन देखेगा पर उसके हृदय बिषे जो स्थूल भोगोंकी प्रीति शेष रहेगी तिस करके महादुर्गन्धता को प्राप्त होवेगा बहुरि जब बिचार करके देखिये तब भोगी मनुष्य इसी संसार बिषे अति निर्लज्जता को और दुःख को पाते हैं पर तौभी परलोक बिषे इस प्रकार यह जीव दुःख और लज्जावानी को प्राप्तहोते हैं कि तिसके निकट इस संसार के दुःख और लज्जावानी अल्पमात्र हैं और मैंने जिज्ञासुओं को लक्ष्य करावने के निमित्त कुछ संक्षेप करके वर्णन किया है सो इसका तात्पर्य यह है कि यह लज्जावानीरूपी अग्नि भी ऐसी तीक्ष्ण है कि केवल हृदय को तपायमान करती है और इस दुःख का प्रवेश शरीरको कुछ नहीं होता २ बहुरि तीसरी अग्नि यह है कि भगवत् के दर्शन से अप्राप्त रहना और उत्तम भोगों की प्राप्ति से निराशहोना सो यह मूर्खता भी इसी संसार से जीव के साथ जाती है काहे से कि इस लोक बिषे जिस पुरुषने सन्तजनों के उपदेश और पौरुष प्रयत्न करके ज्ञान को नहीं पाया और अपने हृदय को शुद्ध करके भगवत् के दर्शन का दर्पण नहीं बनाया और भोग और पापरूपी जंगार को हृदयरूपी दर्पण से नहीं छुड़ाया सो परलोक बिषे भी उसका हृदयरूपी दर्पण अन्धा ही रहता है और सर्वदा पश्चात्ताप को पाता है सो इस पश्चात्तापरूपी अग्नि का दृष्टान्त यह है कि जैसे तू अँधेरी रात्रि बिषे बहुत लोगों के साथ किसी बन में जाय निकले और उस बन में पत्थरों के टुकड़े बहुत पड़े होवें पर अन्धकार बिषे उनका स्वरूप कुछ न भासे बहुरि तेरे संगी इस प्रकार कहें कि हमने इन पत्थरों की बहुत बिशेषता सुनी है तातें यथाशक्ति इनको उठा लेवो बहुरि वह सबहीलोग यथाशक्ति कङ्कड़ उठालेवें और तू कुछ भी न उठावे और उनसे कहनेलगे कि यह तो बड़ीमूर्खता है कि अपने शरीर को प्रथम दुःख दीजिये और कङ्कड़ों का बोझ उठालेवें और यह वार्ताभी प्रसिद्ध नहीं जानीजाती कि यह कङ्कड़ हमारे किसी काम आवेंगे या नहीं आवेंगे पर तेरे संगी सबही उन कङ्कड़ों को उठालेवें और तू बिना कङ्कड़ों के उनके साथ खाली चलाजावे और उन सब को मूर्ख जानकर हास्य करने लगे और ऐसे कहै कि जो पुरुष बुद्धिमान् होताहै सो मेरी नाईं सुख से ही चला जाताहै और जो मूर्ख होता है सो गर्दभ की नाईं बोझ उठाताहै और जिस पदार्थ की हानि लाभ कुछ प्रसिद्ध

न भासे उसविषे यत्न करता है बहुरि जब अचानक ही सूर्य उदय होवें तब वह कङ्कड़ सब रत्न और लाल प्रत्यक्ष दृष्टि आवें और वह रत्न ऐसे होवें कि उनका मोल वर्णनविषे न आवे सो तेरे संगी देखकर प्रसन्न होवें और इस प्रकार पश्चात्ताप भी करें कि हम इससे भी अधिक उठालेते तो भला होता और तुझको तो इनके अप्राप्त रहने का अत्यन्त ही पश्चात्ताप होवेगा और उसकी अग्निविषे जलेगा बहुरि तेरे संगी रत्नों को पाकर धनी होवें और गज अश्व ऐश्वर्यादि उत्तमसुखों को भोगनेलगें और तू निर्धनताई करके भूखा और नग्न रहे और वह तुझको नीचटहल विषे लगावें और जो तू इनसे कुछ मांगने भी लगे तौ भी तुझको न देवें और इस प्रकार तुझसे कहें कि तू कल्ह हम को हँसता था सो तुझ को उस हँसने का फल प्राप्त हुआ है तिस करके तू पश्चात्ताप और दुःख विषे जलता है और हमको परमसुख प्राप्तहुआ है तैसेही जो पुरुष भगवत् के दर्शन से अप्राप्त रहे हैं सो परलोक विषे तिनकी अवस्था ऐसेही होवेगी इस करके कि यह संसार अँधेरी रात्रि की नाईं है और जप, तप, भजन आदिक साधनरूपी रत्न हैं सो इस संसारविषे इन रत्नों का स्वरूप और मोल नहीं भासता ताते संसारी जीव शुभकर्मों को अङ्गीकार नहीं करते और कहते हैं कि हम माया के प्रत्यक्ष सुखों को छोड़कर परलोक के सुख परोक्ष का काहे को यत्नकरें सो ऐसे पुरुष निस्सन्देह परलोक विषे दुःखी होवेंगे और पुकार करेंगे और कहेंगे कि साधन करनेवाले परमसुखके अधिकारी हैं और उनको देखकर जलेंगे सो सत्य है काहे से कि जिन पुरुषों ने साधन करके इस संसार विषे भगवत् की प्रीति और पहिंचान को प्राप्त किया है सो तिनको परलोक विषे भगवत् ऐसा उत्तम सुख देवेगा कि माया के सर्व भोग अमितकाल के उस सुख के क्षणसमान भी न लगेंगे काहे से कि वह आत्मसुख ऐसा अपार है कि उसके साथ कोई सुख का दृष्टान्त संभवित नहीं होता इस करके कि वह आत्मसुख सर्व सुखों का सार है जैसे कोई जौहरी कहे कि रत्न का मोल सौ मोहर है तब उस रत्न की तोल और आकार तो सौ मोहर के समान नहीं होता पर उसके कहनेका अर्थ यह है कि वह रत्न मोहर के स्वर्ण चांदी का सारहै तैसेही इन्द्रियादिक सुखोंसे आत्मसुख की जो अधिकता कही है सो मर्याद और आकारकरके नहीं कही पर वह आत्मसुख ऐसा है कि सर्व सुखों का सार है ताते उसको अधिक वर्णन कियाहै ॥

ग्यारहवां सर्ग ॥

स्थूल दुःख से मानसी दुःखों की तीक्ष्णता के वर्णन में ॥

ताते जब तूने तीन प्रकार की सूक्ष्म अग्नि को समझा तब ऐसे भी जान कि इस सूक्ष्म अग्नि की तपन स्थूल अग्नि से महातीक्ष्ण है क्योंकि शरीरको भी आप करके दुःख का ज्ञान नहीं होता ताते शरीर का दुःख भी तबही भासता है जब जीव की वृत्ति शरीर विषे आ फुरती है और जो दुःख केवल जीव के अन्दर में ही स्थित होवे तब वह दुःख सो निस्सन्देह ही अधिक होताहै ताते यह तीन प्रकार की अग्नि जो कही है सो इसकी अग्नि जीव के अन्तरही उत्पन्न होती है और शरीर के दुःख की नाईं बाहर से आके नहीं प्रवेश करती इसी कारण से सूक्ष्म अग्नि की जलन महाप्रबल है और सर्व दुःखों का कारण यह है कि जो पदार्थ शरीर के स्वभाव को इष्ट होते हैं सो जब उन पदार्थों का विरोधी प्राप्त होता है तब यह जीव अधिक दुःख को पाता है सो शरीर का इष्ट पदार्थ यह है कि तत्त्वों की वृत्ति समानहोवे सर्व अङ्गों का सम्बन्ध परस्पर बना रहै बहुरि जब अकस्मात् किसी विघ्न अथवा शस्त्र की चोटकरके अङ्गों की हीनता होजावे तब अवश्य ही दुःखी होता है और शस्त्रादिकों करके तो किसी एक अङ्ग का बियोग होताहै पर अग्नि करके सर्वअङ्ग जलने लगते हैं इसी कारण से अग्नि की पीड़ा शस्त्रादिकों से अधिक है तैसेही जो पदार्थ केवल इसको इष्ट होता है जब उसका विरोधी पदार्थ प्राप्तहोवे तब उसका दुःख भी जीव को अधिक पीड़ा देता है सो इस जीव का स्वतःस्वभाव भगवतकी पहिंचान और उसका दर्शन है जब अज्ञान करके भगवत की पहिंचान और दर्शन से दूर रहता है तब निस्सन्देह ऐसे दुःख को पाता है कि उस दुःख का अन्त कदाचित नहीं होता पर जब इस संसारविषे इस जीव को सुचेतता होती है तब इस दुःख को कुछ जानता है पर यह जीव माया के भोगों विषे ऐसा शून्यचित्त रहता है कि सूझ बूझ कुछ नहीं आती बहुरि जब परलोकविषे भोगों की शून्यता दूर होती है तब वह दुःख इसको प्रत्यक्ष भास आता है जैसे किसी पुरुष का शरीर अधाङ्ग रोग करके शून्य होजावे तब उसको अग्नि की उष्णता नहीं भासती पर जब अर्धाङ्ग की शून्यता दूर होजाती है तब अग्नि की ताप उसको तीक्ष्ण लगती है और उस तपन करके महादुःखी होताहै तैसेही इस मनुष्य का हृदय

माया करके शून्य हो रहा है इस कारण से अनेक दुःख को भी नहीं जानता पर परलोक बिषे जब इसकी शून्यता दूर होती है तब अपने हृदयकी अग्नि के दुःख बिषे तपायमान होता है और जलने लगता है सो यह अग्नि जीव को बाहर से नहीं आ जलातीहै इस करके कि इस अग्नि का बीज यहांही इस जीव के अन्तर स्थित था और प्रतीति की हीनता करके इसको जानता न था और जब वह बीज विस्तार करके वृक्ष हुआ तब प्रत्यक्ष भासनेलगा और उसके फल को पाताभया इसीपर महाराजने भी कहा है कि जब तुम्हारी प्रीति दृढ़ होती तब तुम नरकको यहांही प्रत्यक्ष देखते पर धर्मशास्त्र बिषे स्थूलनरकों और स्वर्ग का अधिक वर्णन जो किया है सो इसका कारण यह है कि संसारी जीव इसही को समझसक्ते हैं और जब मानसी नरकों की वार्त्ता को श्रवण करते हैं तब बुद्धि की हीनता करके इस दुःख को तुच्छ जानते हैं जैसे किसी बालक से कहिये कि तू विद्या पढ़ और जो विद्या न पढ़ेगा तो पिता के ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होवेगा और महामूर्ख रहेगा तब वह बालक इस वचन को समझताही नहीं और पिता के ऐश्वर्य से अप्राप्त रहने के दुःख को जानताही नहीं पर जब बालक को ऐसे कहिये कि जब तू विद्या को न पढ़ेगा तब पाधा तेरे कानों को मरोड़ेगा तब इस करके वह बालक भयवान् होता है और इस दुःख को सुगमही समझ लेता है सो जैसे विद्या के न पढ़ने करके पाधा की ताड़ना भी सत्यहै पर पिता के ऐश्वर्य से अप्राप्तरहना भी सत्य है तैसेही स्थूल नरक भी नरक सत्य है और मूर्खता करके भगवत् के दर्शन से अप्राप्त रहने की अग्नि भी सत्य है पर महाराज के दर्शन से अप्राप्त रहने का दुःख ऐसा है जैसा पाधा बालक के कान मरोड़ताहै ॥

बारहवां सर्ग ॥

पूर्वपक्षोत्तर के वर्णन में ॥

बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्नकरे कि तुमने ऐसे वर्णन कियाहै कि मानसी नरक को अनुभव की दृष्टिकरके देखसक्ते हैं और विद्यावान् पण्डित इस प्रकार कहते हैं कि शास्त्रोंबिषे ऐसे वर्णन किया है कि परलोक की वार्त्ता को प्रतीतिही करके समझ सक्ते हैं और अपनी दृष्टिकरके देखना असम्भवहै सो इनदोनों वचनों का परस्पर विरोध होताहै तब इसका उत्तर यह है कि कुछ इस वचनका बखान मैंने आगेभी वर्णन किया है और भली प्रकार देखिये तो इस वचन का विरोध भी कुछ

नहीं और जिस प्रकार शास्त्रोंविषे परलोक का वर्णन किया है सो ऐसेही प्रमाणहै पर इसविषे इतना भेद है कि कितने परिडत तो ऐसे हुये हैं कि उनकी बुद्धि इन्द्रियादिक देशसे बाहर नहीं निकलती और चैतन्य देश को उन्होंने जानाही नहीं और केते बुद्धिमान् ऐसे भी हुये हैं कि उन्होंने परलोक की अवस्था और मानसी नरक को प्रत्यक्ष देखा है और उन्होंने इस निमित्त प्रसिद्ध नहीं कहा कि बहुत लोग इस मानसी दुःख को समझ नहीं सक्के और सब किसी की बुद्धि विषे ऐसा बल भी नहीं होता कि अल्पबुद्धि जीवोंको चैतन्यदेश का भेद वर्णन करके हस्तामलकवत् कर दिखावै अथवा जिसको भगवत् अपनी कृपाकरे वह आपही इस भेद को देख लेता है और अपर जीवों को भी युक्तिकरके समझाय सक्का है पर ऐसे पुरुष भी इस जगत विषे दुर्लभ पाये जाते हैं ताते स्थूल नरकों का भेद शास्त्रों के श्रवण करके ही समझसक्के हैं और मानसी नरकों का अर्थ अपने आपकी पहिंचान करके जानाजाता है सो अपने आपका पहिंचानना और बुद्धि के नेत्रों करके चैतन्यरूप को देखना इस अवस्था को भी पुरुषार्थ और यत्न के मार्गकर पहुँचसक्का है ताते इस परमपद को सोई पाता है जो अपने देश से अटन करके किसी और देश को गमनकरे और जिस स्थान विषे इस जीव की उत्पत्ति और स्थिति हुई है उसको त्यागकर आगे चलने का उद्यम करे पर यह जो मैंने अपने देश और गृह का त्यागना कहा है सो इसका अर्थ यह नहीं कि स्थूलदेश और मन्दिरों को त्याग आवे काहे से कि स्थूल मन्दिर और नगर तो शरीर का देश है ताते स्थूलदेशके त्यागने करके कुछ फल नहीं प्राप्त होता पर मैंने जीव के देश का त्यागना विशेष कहा है अर्थ यह कि वास्तव जीवका देश और है और इस शरीर देशविषे कार्यमात्र आया है पर इस जीव ने अपना देश यही जानलियाहै पर तौ भी अवश्यही इस मनुष्य को स्थूलदेश से गमन करना है और सूक्ष्मदेश विषे पहुँचना है बहुरि मार्गविषे कई मंजिलहैं सो सब मंजिलों का भिन्न २ व्यवहार है पर प्रथम जो जीव की स्थिति का स्थान है सो इन्द्रियादिक देश है १ और दूसरी मंजिल संकल्पदेश की है २ और तीसरा देश संकल्प का कारण जगत की प्रतीति है सो इसको स्थूलबुद्धि भी कहते हैं ३ बहुरि चौथा सूक्ष्म बुद्धिका देश है ४ पर जब यह जीव सूक्ष्मदेश विषे पहुँचता है तब इस को अपने स्वरूपकी बूझ प्राप्त होती है और प्रथम तीनों देश विषे अज्ञान करके

आवरण कियाहुआ रहता है पर यह जो चार मंज़िलें मैंने कही हैं सो दृष्टान्त करके समझ में आसकी हैं सो प्रथम इन्द्रियादिक देश का दृष्टान्त यह है कि इन्द्रियादिक देशविषे इस जीव की अवस्था पतङ्ग की नाईं है जैसे पतङ्ग नेत्रों के विषयकर दीपक के ऊपर आन पड़ताहै पर उस बिषे संकल्प और चिन्तन कुछ नहीं होते ताते अन्धकार से भागकर दरवाजे खिड़की के मार्ग से निकलना चाहता है और वह दीपकही उसको खिड़की भासती है इस कारण से आप को दीपक के ऊपर आन डालता है बहुरि धुयें की प्रबलता करके पीछे गिर पड़ता है और उसके चित्त बिषे इतनी भी समझ नहीं कि धुयें के दुःख को स्मरणबिषे रक्खे और ऐसे जाने कि इस दीपक की तपन करके मैंने आगे भी दुःख पाया है सो यों नहीं समझता ताते बहुरि दीपक की ओर जाता है और इसी प्रकार मृत्यु को पावता है सो यह वार्ता प्रसिद्ध है कि जब उसको स्मरण अथवा चितवनी होती कुछ भी तो एकबार दुःख पाकर फेर दीपक की ओर न जाता १ दूसरा देश संकल्प का पशुओं की नाईं है इस करके कि पशुओं को जब कोई पुरुष लाठी मारता है तब दूसरी बार लाठी को देखकर भयवान् होते हैं और उस पहली लाठी का दुःख उनके स्मरण बिषे रहता है ताते लाठी को जब फिर देखते हैं तब भागजाते हैं तात्पर्य यह कि प्रथम इन्द्रियादिक देश की मंज़िल है और दूसरी मंज़िल संकल्प के देश की है सो जब यह मनुष्य संकल्प के देश बिषे होता है तो भी पशुओं के समान है इस करके कि जब लग किसी पदार्थ से दुःखी नहीं होता तबलग उस पदार्थ का त्याग नहीं करता पर जब एक बार किसी से दुःख पाता है तब दूसरी बार उसको देखकर भागा चाहता है २ बहुरि तीसरी मंज़िल संकल्प का कारण स्थूलबुद्धि है सो जब यह मनुष्य इस देश बिषे पहुँचता है तब घोड़ों और बकरी की अवस्था को प्राप्तहोताहै अर्थ यह कि दुःख पाये बिनाही दुःखदायक पदार्थों से भयवान् होता है और यों जानता है कि इस करके मुझको दुःख प्राप्त होवेगा जैसे आगे अजाने भेड़िये को देखा नहीं और घोड़े ने सिंह को भी आगे नहीं देखा पर जब अचानकही सिंह और भेड़िये को देखते हैं तब घोड़ा और बकरी भागजाते हैं और अपने शत्रु को पहिंचानलेते हैं सो यद्यपि ऊंट और हाथियों को देखते हैं तब नहीं डरते और नहीं भागते इस करके कि उनको अपना शत्रु नहीं जानते सो यह अपने शत्रु का

पहिचानना भी सूक्ष्मदृष्टि से है कि भगवत् ने यह दृष्टि उनके हृदयविषे रक्खी है ताते शत्रु और मित्र को सुगमही पहिचान लेतेहैं पर तौ भी यह घोड़ा और अजा इस भेद को नहीं जानते कि कल्ह क्या होवेगा ? ताते आगे के दुःखको पहिचानना और उससे भय करना यह अवस्था चौथी मंजिलविषे प्राप्त होती है और वह मंजिल सूक्ष्म है कि जब वह मनुष्य इस अवस्था को प्राप्तहोता है तब पशुओं के पद से उल्लङ्घित होता है और जब प्रथम तीन मंजिलों विषे होता है तबलग पशुओं के समान होताहै और जब सूक्ष्मबुद्धि के देश को प्राप्त होता है तौभी सम्पूर्ण मनुष्य के पद को प्रथम अवस्था को पाता है और ऐसे पदार्थों को देखता है कि जिस विषे इन्द्रियां और संकल्प और स्थूलबुद्धि का प्रवेश न होवे और जिसकरके आगे दुःख होवेगा उससे भयकरताहै और करतूतों के सारे भेद को समझता है बहुरि भेद को समझ कर करतूति के आकार को भिन्न करता है और उसके तात्पर्य को भिन्न करता है और सर्व पदार्थों की मर्याद को पहिचानता है और इस प्रकार जानता है कि जेते पदार्थ इस जगत् विषे दृश्यमान भासते हैं सो सबही अन्तवन्त हैं इस करके कि जो कुछ इन्द्रियों के विषय हैं सो स्थूल हैं और इन्द्रियादिक व्यवहार की क्रिया ऐसे है जैसे पृथ्वीपर चलना फिरना सुगम होता है और संकल्प के देश की क्रिया ऐसी है जैसे नदीविषे नौकापर चढ़कर चलना होता है अर्थ यह कि नौकापर चढ़नेसे बालक डरता है और बड़े पुरुषों को कुछ भय नहीं होता बहुरि स्थूलबुद्धि जो संकल्पों का कारण है तिसकी क्रिया तैरनेकी नाईं है अर्थ यह कि जल विषे वही पुरुष तैरसक्ता है कि जिसको तैरने की विद्या परिपक्क होती है और सूक्ष्मबुद्धि जो चौथी मंजिल है उसका गमन ऐसे है जैसे मेघमण्डल विषे उड़ना होवे सो तिसविषे कोई बिरला शक्तिमान् ही उड़सक्ता है तैसेही सूक्ष्मबुद्धि की चिदाकाश विषे गति होती है और यद्यपि इस अवस्था का प्राप्त होना महाकठिन है तौभी ज्ञानवान् पुरुषों का जो पद है और सन्तजनों का पद है सो इससे भी परे है सो इस परमपद की गति ऐसी है जैसे कोई महाकाश विषे उड़नाकरे इसीकारण से महापुरुष से किसी ने कहाथा कि महात्मा ईसा जलविषे चलते हैं तब महापुरुष ने कहा कि यह वार्ता भी सत्य है पर जब उनकी प्रतीति अत्यन्त दृढ़ होती तब वह आकाश विषे भी उड़ने को समर्थ होते पर यह मनुष्य सब मंजिलोंविषे जो चलताहै सो सूक्ष्म-

ही के देशविषे इसकी गति चली जाती है बहुरि पशुओं की अवस्था से लेकर देवतों के स्वभाव को जा पहुँचता है इसी कारण से कहाहै कि अधोगति और ऊर्द्धगतिविषे जाना इसी मनुष्य का अधिकार है ताते यह मनुष्य सर्वदा इसीभय विषे स्थित है कि देखिये मत अधोगति रसातल विषे जाऊं अथवा ऊर्द्धगति देवलोक को प्राप्तहोऊं और भय का अर्थ यह है कि जेते जड़ पदार्थ हैं तिनकी अवस्था कदाचित् नहीं बदलती इस करके कि उन विषे चैतन्यता नहीं डाली-गई ताते निर्भय हैं और ईश्वरकोटि जो देवता हैं सो अपने शुद्धपद से कदाचित् नहीं गिरते ताते वे निर्भय हैं ताते शुभकर्मों करके ऊर्ध्वगति को प्राप्तहोता है और अपकर्मों करके अधोगति विषे जाता है इसी कारण से मनुष्य को भय विषे स्थितरहना कहा है और ऐसे जो कहा है कि भगवत की प्रीति और प्रेम की अमानता मनुष्यविषे ही राखी है सो इसका भी अर्थ येही है पर मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि परदेशी और नगरवासियों की अवस्था भिन्न २ होती है ताते बहुत मनुष्य तो नगरवासियों की नाईं अपने स्वभाव विषे ही स्थित होते हैं और परदेशी जो जिज्ञासुजन हैं सो बिरले हैं और जिस पुरुष की स्थिति इन्द्रिय और संकल्पों के देशविषे ही है तिसको यथार्थभेदकी बूझ प्राप्ति नहीं होती और निश्शरीर पद को नहीं पाता और शरीर से रहित अवस्था को भी नहीं जानता इसी कारण चैतन्य सत्ता का अधिक बखान शास्त्रों विषे नहीं किया ताते मैं भी इस वचन को यहांही पूर्ण करता हूं कि स्थूल बुद्धि जीव इतने वचन को भी नहीं समझसक्के तब इससे अधिक भेद उनकी बुद्धि क्योंकर पा सक्की है ॥

तेरहवांसर्ग ॥

नास्तिकों के मत के खण्डन के विषयमें ॥

बहुरि केते पुरुष तो ऐसे मूर्ख होते हैं कि वह परलोक की गति को अपनी बुद्धिकरके नहीं देखसक्के और सन्तजनों के वचनपर प्रीति भी नहीं करते ताते परलोकके निश्चय विषे संशयवान् होते हैं बहुरि भोगोंकी प्रबलताकरके परलोक का प्रसिद्ध नतकार करते हैं सो उनको उनका मनही ऐसी ढीठता दिखावे है तब वह जानते हैं कि सन्तजनों ने जो नरकों का वर्णन कियाहै सो जीवोंको भय देनेके निमित्त कहा है और ऐसे ही स्वर्गों का वचन भी लालच देनेके निमित्त कहा है पर वास्तव में नरक और स्वर्ग कुछ नहीं सो ऐसे जानकर भोगों विषे

आसक्तरहते हैं और सन्तजनों की आज्ञा से विमुख होते हैं इसी कारण से जो पुरुष शास्त्र की मर्याद बिषे वर्त्तते हैं तिनको मूर्ख जानकर हँसते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि यह मूर्ख मर्याद की रस्सीबिषे बँधे हुये हैं सो ऐसे बुद्धिहीन नास्तिकवादियों को परलोक की गति को किसी प्रकार समझा नहीं सके पर जब कुछ श्रद्धा किसी पुरुष बिषे देख ले तब इस प्रकार उनसे कहना प्रमाण है कि सन्तजन असंख्य और बहुत से आचार्य तो ऐसे हुये हैं कि तुम्हारे निश्चय के अनुसार उनके वचन सबही झूठे होतेहैं और छले हुये सिद्ध होते हैं तब तुमने मूर्खता करके गुह्यभेद को क्योंकर यथार्थ समझा है ताते जाना जाता है कि वह महापुरुष नहीं भूले और झूठे भी नहीं पर तुम मूर्ख हो कि तुमने यथार्थभेद को नहीं समझा और नरकों के दुःखों को भी नहीं जाना बहुरि आत्मा अनात्मा की भिन्नता को भी तुमने नहीं पहिंचाना पर जब वह मूर्ख अपनी भूलको न माने और हठ करके इस प्रकार कहनेलगे कि हमतो इस वार्त्ता को प्रत्यक्ष हस्तामलकवत् जानतेहैं कि अब भी इस शरीरबिषे चैतन्यता का निश्चय करना मिथ्या है ताते मरने के पीछे भी जीव को अविनाशी जानना व्यर्थ है काहे से कि शरीर का व्यवहार प्राणवायु कर सिद्ध होना होताहै और जो परलोक का दुःख सुख कहते हैं सो यह भी कल्पनामात्र है सो जब इनका निश्चय ऐसाहै तब तिनकी बुद्धि मूलही से नष्ट है और उनको समझाने से निराशहुआ चाहिये काहेसे कि वह महामूर्ख हैं इसीपर किसी सन्त को आकाशवाणी हुई थी कि तुम नास्तिकों को उपदेश मतकरो इस करके कि यह मूर्ख वचनों करके समझने के अधिकारी नहीं पर जब वह इस प्रकार प्रश्न करे कि यद्यपि परलोक की गति निस्सन्देह सत्य होवेगी तौभी हमसे बहुत दूर है क्योंकि प्रथम तो हस्तामलकवत् नहीं भासती ताते ऐसे संशय के वचन करके प्रकटभोगों का त्याग काहेको करिये और अपनी सर्व आयुष् वैराग्यके दुःखबिषे क्यों लगावें तब तिसको इस प्रकार कहिये कि जब तूने परलोक की वार्त्ता को कुछ माना तब तुझको बुद्धि की आज्ञा करके प्रमाणहुआ कि सन्तजनों की मर्याद बिषे स्थित होवो काहेसे कि जिसकार्य बिषे अत्यन्त भय होताहै तब उस कार्य को संशयकर भी त्यागना भला है जैसे तू भोजन करने की इच्छा करे और कोई पुरुष तुझको अचानकही संशय डाले कि इस भोजन बिषे सर्पने मुखडाला है तबतू अवश्यमेव उस भोजन का त्याग

करता है यद्यपि तुझको यह निश्चय भी होवे कि यह मनुष्य झूंठ कहता है अथवा अपने लोभ के निमित्त तुझको डरवाता है पर तौभी तू उस भोजन को अङ्गीकार नहीं करता इसी करके कि यह पुरुष सत्य भी कहता होवे तब मरने के दुःख से भूख का दुःख तो अल्प है बहुरि जब तुझको कुछ रोग होताहै तब यन्त्र लिखनेवाला पुरुष तुझको कहताहै कि मैं यन्त्र लिख देऊंगा तब तेरा दुःख दूर होजावेगा सो यद्यपि तुझको प्रतीति भी होती है कि यन्त्र और रोग का सम्बन्ध ही नहीं तौ भी तू चित्त बिषे ऐसा अनुमान करताहै कि यद्यपि मैं यन्त्रवाले को कुछ धन भी यन्त्र के बदले देऊंगा तौभी मेरी क्या हानिहै? पर जब मेरा रोग दूर होजावे तब यह तो बड़ालाभ होगा ऐसेही ज्योतिषियों के वचन भी प्रमाण करके तू देवपूजा करने लगता है इस करके कि जब इसका वचन सत्यभी होवे तब तुझ को बड़ासुख प्राप्त होवेगा और जब यह झूठही कहता है तो मुझको देवपूजा बिषे कितना कष्ट है तैसेही असंख्य जो सन्तजन हैं और अवतार महापुरुष हैं और आचार्य अवधूत हैं सो तिनके वचन बुद्धिमानों के निकट ज्योतिषी और यन्त्र लिखनेवाले के वचन से तुच्छ तो नहीं होते ताते जिज्ञासुजन सन्तों के वचनों पर प्रतीति करके यत्न करके स्थित होते हैं और निस्सन्देह परलोक के दुःखों से छूटते हैं बहुरि परलोक के दुःख के निकट वैराग्यादिक दुःख किञ्चिन्मात्र होजाते हैं काहेसे कि जब विचारकर देखिये तो प्रथम इस जगत् बिषे जीवना ही तुच्छमात्र है और परलोक की अवस्था का कदाचित् अन्त नहीं आता ताते परलोक के दुःख से मुक्त होने के निमित्त जो इस जगत् बिषे यत्न कियाजाता है सो उस दुःख की मर्याद क्या है अर्थात् किञ्चिन्मात्र है इसीकारण से इस जीव को चाहिये कि सन्तों के वचनोंपर प्रतीति करे और यों जाने कि जब मैं इनके वचन से विमुख होऊंगा तब चिरकाल पर्यन्त दुःख को भोगता रहूंगा और मेरी मुक्ति कदाचित् न होवेगी और इन्द्रियादिक भोग जो अल्पकाल बिषे विरस होजातेहैं इन करके मुझको क्या लाभ होवेगा? काहे से कि परलोक का दुःख अनन्त है और शास्त्रों बिषे इस प्रकार कहाहै कि जब सर्व ब्रह्माण्ड को राई के दानों से भरपूर करिये और कोई ऐसा पक्षी होवे कि सहस्रवर्ष पर्यन्त एक दाना भक्षण करै तब उस अनाज का भी अन्त आजाता है परन्तु परलोक के दुःख का अन्त कदाचित् नहीं आता सो ऐसा

चिरकाल पर्यन्त यद्यपि मानसी दुःख होवे अथवा स्थूलदुःख होवे पर उसका सहना महाकठिन है और उस दुःख के निकट इस संसार की आयुष् क्या है? ताते जो बुद्धिमान् पुरुष है सो विचार करके समझता है कि विचारकी मर्याद विषे चलना और दोषदृष्टि करके अपकर्मों का त्याग करना प्रमाण है इस करके कि जिस कार्य विषे अत्यन्त कष्ट होवे सो अनुमान करके भी उससे अपनी रक्षा करनी भली है और यद्यपि उसके यत्न विषे कुछ दुःख भी होवे तो भी विशेष है काहे से कि सबलोग अपने व्यवहार के निमित्त जहाज़ोंपर बैठकर देशान्तर को जाते हैं सो उनकी सर्व क्रिया अनुमान करके सिद्ध होती है ताते परलोक की गतिपर जिस पुरुष की एकप्रतीति नहीं और अनुमानमात्र ही परलोक को मानता होवे सो वह भी जब दुःख से अपनी रक्षा चाहे तब धैर्य करके वैराग्यादिक दुःखों को अङ्गीकार करे इसीपर एक वार्ता है कि किसी नास्तिकवादी के साथ में एक महात्मा सन्तकी चर्चा हुई थी तब वह नास्तिक कहताथा कि परलोक का सुख दुःख सब कोई अनुमान करके मानता है और प्रत्यक्ष किसी ने देखा नहीं तब अली कहने लगे कि जो तेराही कहना सत्य है तो हम और तू दोनों मुक्तहुये और जो मेरा वचन सत्य है कि परलोक सत्य है तो परलोक विषे तू चिरकाल पर्यन्त दुःखी होवेगा और हम मुक्त होवेंगे सो यह जो वचन संशयसंयुक्त अली सन्तने कहा जो उस नास्तिकवादी की बुद्धि अनुसार कहा है कि वह पुरुष अनुमानमात्र परलोक को प्रमाण करता था नहीं तो परलोक के सुख दुःख विषे अलीसन्त को कुछ संशय न था पर वह यह जानता था कि जिस प्रकार परलोक को भलीभांति देख सके हैं तिस प्रकार यह मूर्ख न समझसकेगा ताते ऐसे जान तू कि जो इस संसारविषे तोशा नहीं बनावते परलोक का और २ कार्यों विषे मग्न रहते हैं वे निस्सन्देह महामूर्ख हैं और इस मूर्खता का कारण विषयों की प्रीति है ताते भोगों की प्रीति विषे ऐसे लीनरहते हैं कि कदाचित् परलोक का विचार ही नहीं करते पर जो परलोक को दृढ़ प्रतीति करके मानते हैं तिन सब को परलोक के दुःख से भयमान होना प्रमाण है बहुरि संयम और भय के मार्ग विषे चलना विशेष है सो अब अपनी पहिंचान और परलोक की पहिंचान का वचन पूराहुआ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः॥ ४॥

सूचना ॥

हे भाई ! जब तूने अपने स्वरूप, भगवत, माया और परलोक के स्वरूप को इनचारों अध्याय करके पहिंचाना और योंभी जाना कि इस जीव की भलाई सम्पूर्ण भगवत् के भजन और उसकी पहिंचानबिषे है तौ अब इससे आगे भगवत् का भजन और जिस प्रकार भगवत् की आज्ञा माननी योग्य है तिसको श्रवण करना चाहिये सो यह युक्ति चार प्रकरणकरके प्राप्तहोतीहै सो प्रथमप्रकरण यह है कि आपको भगवत् के भजन और सत्कर्मों बिषे स्थितकरे १ बहुरि दूसरा प्रकरण यह है कि अपने सर्वशरीर की क्रिया विचार की मर्याद अनुसार करे २ और तीसरा प्रकरण यह है कि अपने चित्त को मलीन स्वभावों से शुद्ध करे ३ और चौथा प्रकरण यह है कि अपने हृदय को भले स्वभावों के साथ सुन्दर बनावे सो चारों प्रकरण विस्तारपूर्वक भिन्न २ वर्णन होवेंगे और इन चारों प्रकरणही के बखान में यह पुस्तक पूर्ण होगी अब आगे समस्त शेष ग्रन्थ बिषे इन चार प्रकरणही का बखान है ॥

प्रथम प्रकरण

पहिलासर्ग ॥

भगवत् की प्रतीति के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सर्वजीवों को इतनाही अधिकार है कि जैसे सब कोई कहता है कि भगवत् एक है सो इसके अर्थकोभी चित्तबिषे समझे और इस पर ऐसी प्रतीति करे कि जिसमें भ्रम और संशय का किंचित् प्रवेशभी न होनेपावे और जब इस प्रकार चित्त में निश्चय करलिया और बाल के बराबर भी संशय न रहा तौ सद्धर्म के मूल को इतनाही प्रतीति रखना विशेष है पर विद्या पढ़ना और प्रश्नोत्तर का व्यवहार करना सब किसी का अधिकार नहींहै इसी कारण से सन्तों और महापुरुष ने हृदय की सचाई और प्रतीति की दृढ़ता का उपदेश कियाहै कि संसारीजीवों का इतनाही अधिकारहै बहुरि ऐसे परिडतभी बहुत होते हैं कि व- चनों के भेद को समझते हैं और युक्ति करके इतरजीवों को समझा सक्ते हैं और प्रश्नोत्तर करके लोगों के संशय को भी दूर करते हैं सो तिनको परिडत कहाजाता

है और ऐसे जो विद्यावान् हैं सो संसारीजीवों की प्रतीति की रक्षा करनेवाले हैं बहुरि पहिंचानने का जो भेदहै और पहिंचान का जो वास्तवस्वरूप है सो वह केवल पण्डित वक्ता होने से और संसारीजीवों के वल प्रतीतिवालोंकी अवस्था से भिन्न है पर उसके मार्ग को पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त होसक्ता है और जबलग यह मनुष्य परमार्थ के मार्गविषे दृढ़ पुरुषार्थ और यत्न न करे तबलग वह पहिं-चान की पूर्ण अवस्था को नहीं पहुंचसक्ता और इसका अभिमानी होना भी उसको अयोग्य है और ऐसे पुरुषको विद्या और शास्त्रों के व्यवहारों का पढ़ना फलदायक नहीं होता और उसको अधिक अवगुणही होता है जैसे कोई रोगी पुरुष होवे जो औषध खाकर कुपथ्य का त्याग न करे तब वह रोगी अधिक तो मृत्यु को पाता है अथवा उसका रोग बढ़जाता है क्योंकि पथ्य विना औ-षधभी रोग को बढ़ावता है ताते मैंने पहिंचानने के चारों अध्याय प्रथमही वर्णन किये हैं और इस वचन के यथार्थ भेद को वह पुरुष प्राप्त होता है जिसका चित्त माया के किसी पदार्थविषे आसक्त नहीं होता और अपनी सर्व आयुष् भगवत् की प्रीति विषे बितावता है सो ऐसे परमपद का पावना महादुर्लभ है और कठिन यत्न करके प्राप्त होताहै ताते मैं सर्व जीवोंके अधिकार का उपदेश वर्णन करताहूं सो सबजीव इस प्रतीति को अपने हृदय विषे दृढ़ करें तब यह प्रतीतिही उनके उत्तम भागों का बीज होवे (अथ प्रकट करना भगवत् की प्रतीति का) ताते जान तू कि तू उत्पन्न कियाहुआ है और तेरा उत्पन्न करने वाला भगवत् है और सर्व विश्वका उत्पन्नकर्ता भी वही है बहुरि वह एक है और उसकी नाईं और समर्थ कोई नहीं और वह किसी जैसा भी नहीं बहुरि वह अनादि है और अविनाशी है कि उसका अन्त कदाचित् नहीं आता और सर्व कालविषे सत्यस्वरूप है और कदाचित् असत्यभाव को प्राप्त नहीं होता बहुरि अपने आप करके स्थित है और सर्व पदार्थों की स्थिति उसके आश्रित है अर्थ यह कि उसको किसी पदार्थ की अधीनता नहीं और सर्व पदार्थ उस-ही के अधीन हैं बहुरि उसका स्वरूप सब से निर्लेपहै ताते उसको कारण और कार्य नहीं कहा जासक्ता और शरीर से रहित है और उसके स्वरूप के समान कोई आकार और दृष्टान्त नहीं सम्भवता कि वह रूप और रङ्ग से बिलक्षण है इसी कारण से जो कुछ इस मनुष्य के संकल्प विषे आता है सो भगवत्

उससे परे है काहे से कि संकल्प और बुद्धिविषे आनेवाले पदार्थ सबही उस के उत्पन्न किये हुए हैं और उत्पन्नहुई वस्तु से उसका स्वरूप भिन्न है ताते संकल्प और बुद्धिविषे जिसका स्वरूप और चिह्न दृढ़ होता है सो वह भगवत् उन सबों का उत्पन्न करनेवाला है बहुरि मर्याद और बढ़ना घटना उस विषे नहीं पायाजाता क्योंकि यह सबही शरीर के स्वभाव हैं और वह शरीर से रहित है इसीकारण से उस महाराज को किसी स्थानविषे नहीं कहाजाता और किसी स्थान के ऊपरभी नहीं कहसके और उसका स्वरूप स्थानकी कुछ अपेक्षा ही नहीं रखता और स्थान का ग्रहण करनेवालाही नहीं इस करके कि देहादि॰ कों के साथ उसका सम्बन्ध कुछ नहीं ताते यह सर्व सृष्टि ईश्वरों के आश्रितहै और ईश्वर सब उस महाराज के अधीन हैं और महाराज को जो वैकुण्ठके ऊपर कहा है सो ऐसा नहीं कि जैसा कोई स्थूल किसी स्थूलपर होवे काहे से कि वह स्थूल नहीं ताते वैकुण्ठ उसको उठायेहुए नहींहै पर वैकुण्ठ व वैकुण्ठवासी सब देवते पार्षद उसकी शक्ति के आश्रित हैं बहुरि वह भगवत् जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति के आगे था तैसेही अब है और अन्तमें भी एकरस बनारहेगा काहे से कि उसके स्वरूप विषे तौ परिणाम करके घटना बढ़ना कुछ प्रवेश नहीं कर सक्ता और जो घटजावे तब भगवत् कहना उसको अयोग्य है व जो वृद्धता को प्राप्तहोवे तब ऐसे कहिये कि मानो आगे न्यून था अब पूर्ण हुआ है सो यह बात भी अयोग्य है बहुरि उस महाराज का स्वरूप सब सृष्टि से निर्लेप है पर तौ भी इसलोकमें बुद्धि करके पहिंचानने योग्यहै और परलोक विषे देहादिक अभि॰ मान दूर हुए दर्शन उसका होताहै पर जिस प्रकार बुद्धि करके रूप रङ्गसे रहित उस महाराज को समझा जाताहै तैसेही उसलोक विषे उसका दर्शन भी रूपरङ्ग से विलक्षण है इस करके कि उसका दर्शन स्थूल दर्शनकी नाईं नहीं॥ (अथ शा॰ सामर्थ्य) बहुरि वह ऐसा सम्पूर्ण समर्थ है कि उस विषे दीनता और पराधीनता प्रवेश नहीं करसक्ती ताते जो कुछ उसने चाहाहै सो किया है और जो कुछ चाहेगा सो करेगा बहुरि चौदहलोक और वैकुण्ठादिक पुरियां उसीकी सामर्थ्य विषे स्थित हैं उसीकी आज्ञा के अधीन हैं ताते और किसी के हाथ कुछ नहीं कुछ आप करके समर्थ होवे कोई भी इसी कारण से और कोई भगवत् के समान और उसकी नाईं और उसका विरोधी नहीं (अथ ज्ञान) बहुरि वह भगवत्

अपने ज्ञान करके सर्व पदार्थों का ज्ञाता है और जो कुछ जानने योग्य है उसको आगेही जानता है बहुरि उसी के ज्ञान का अंश सर्व पदार्थों विषे भरपूर है ताते आकाश और पाताल विषे कोई पदार्थ उसके ज्ञान से बाहर नहीं इस करके कि सबही उसके उत्पन्न कियेहुये हैं और उसही कर स्थित हैं इसी कारण से पृथ्वी के अणु और वृक्षों की पाती और जीवों के श्वास और हृदयों के संकल्प इत्यादिक और सबही पदार्थ भगवत् के ज्ञान विषे हस्तामलकवत् प्रसिद्ध हैं जैसे हमारी दृष्टि विषे आकाश और धरती प्रसिद्ध भासती है (अथ इच्छा) बहुरि सब कुछ उसकी इच्छा और आज्ञा के अधीन है जैसे सूक्ष्म, स्थूल, लघु, दीर्घ, विधि, निषेध, पुण्य, पाप, सम्मुखता, विमुखता, लाभ, हानि, सुख, दुःख, रोग, आरोग्यता, धन और निर्धनता सो यह सबही पदार्थ महाराज की आज्ञा और इच्छा विना कदाचित् वर्तमान नहीं होते ताते जब सर्वसृष्टि अर्थात् भूत, प्रेत, मनुष्य, देवता आदिक सब ही जीव एकत्र होकर भगवत् की रचना को कुछ विपर्यय किया चाहें तब वह महाराज की आज्ञा विना कोई कुछ कर नहीं सके और असमर्थ हैं ताते जो कुछ भगवत् किया चाहता है सोई होता है और जो कुछ नहीं चाहता वह नहीं होता और उसकी आज्ञा ऐसी प्रबल है कि उस को कोई अन्यथा नहीं करसक्ता इसी कारण से भूत, भविष्यत्, वर्तमान विषे जितने पदार्थ स्थित हैं सो सबही स्वभाव भगवत् की सत्ता और विद्या के साथ रचे हुये हैं (अथ श्रवण और दृष्टि) बहुरि वह सब कुछ सुनता, देखता और जानता है पर उसके सुनने विषे निकटता और दूरता नहीं है तैसे ही उसकी दृष्टि विषे तम और प्रकाश समान है अर्थ यह कि तम करके उसकी दृष्टि विषे आवरण नहीं होता ताते जब अँधेरी रात्रि अथवा दिन विषे पृथ्वीमें चींटी चले तब वह महाराज उसके चलने के शब्द को भी सुनता है पर उसका सुनना और देखना भी चिन्तन और विचार करके नहीं होता बहुरि उसका उत्पन्न करना आरम्भ और सामग्री कर नहीं होता (अथ भगवद्वचन) बहुरि उस की आज्ञा माननी सर्वजीवों को प्रमाण है क्योंकि जो कुछ उसने वचन कि है सो निस्संदेह सत्य है पर उसका वचन रसना, अधर, दांतों और कण्ठ करके नहीं होता जैसे जीवके मनविषे किसी वचन वार्त्ता का जो संकल्प फुरताहै तब उस फुरना के वचन विषे शब्द और अक्षर नहीं होता और वह शब्द अखण्ड

होताहै तैसेही उस महाराज का वचन इससे भी सूक्ष्म अधिक है ताते सन्तजनों के हृदय बिषे जो आकाशवाणी हुई है सो सब ही भगवत् के वचन हैं और परावाणी से उत्पन्न हुये हैं बहुरि वही वचन सन्तजनों के मुख से जगत् बिषे प्रकटे हैं और वह वचन महाराज के निर्मल स्वभाव हैं और उसके स्वभाव सब ही अनादि हैं और अविनाशी हैं जैसे भगवत् के स्वरूप की जानता का प्रतिबिम्ब जीवों की बुद्धि बिषे भासता है और सर्व जीवों की रसना बिषे उसकी स्तुति होती है पर जाननेवाली जो बुद्धि है सो उत्पन्न की हुई है और भगवत् का स्वरूप उत्पन्न कियाहुआ नहीं बहुरि जीव जो उसका रसनासे स्मरण करते हैं सो यह स्मरण उत्पन्न किया हुआ है और जिसको स्मरण करता है सो वह महाराज अनादि और अबिनाशी है तैसेही उस महाराज के वचन जो उस ही के स्वतःस्वभाव हैं सो यह भी अनादि हैं पर जीवों के हृदय बिषे गुप्त कररक्खे हैं और रसनाबिषे उन वचनोंका उच्चारण होताहै और कागज की पोथियोंबिषे लिखेजाते हैं सो वह हृदय की गुप्तता उत्पन्न की हुई है और लिखना पोथी का और उच्चारण करना रसना से सो यह सब उत्पन्न कियेहुये हैं पर हृदय में जो गुप्त उन वचनों का स्वरूपहै और पोथी में जो वस्तु लिखित है और रसना से उच्चारण हुये उन वचनों का जो अर्थ है सो उत्पत्ति से रहित है ऐसेही वेदों के अक्षर और कागज और शब्द उत्पन्न कियेहुये हैं और उन बिषे जो भेदहैं सो उत्पत्ति से रहित हैं वह भगवत् के स्वभाव से है (अथ कारीगरी के वर्णन में) बहुरि जो कुछ यह रचना मन और इन्द्रियों करके भासतीहै सो सब भगवत् की कारीगरी है और इस कारीगरी को उसने सर्व अङ्गों करके पूर्ण ऐसा बनाया है कि उस बिषे कुछ ऊनता नहीं और जब किसी के चित्त बिषे ऐसा संकल्प फुरे कि अमुक पदार्थ ऐसे नहीं बनावना योग्य था ऐसा संकल्प उस मनुष्य की मूर्खता है इस करके कि जिस भेद के निमित्त भगवत् ने उसको बनाया है सो यह मनुष्य उस के भेद और गुण को नहीं समझता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अन्धा पुरुष किसी के गृह बिषे जावे और उस गृह बिषे सब सामग्री अपनी २ ठौरपर रक्खी हुई होवें पर वह अन्धा पुरुष यों न जाने कि यह वस्तु अपने उचित स्थानबिषे धरी है ताते अजानता करके ठोकर खाकर गिरपड़े तब कहनेलगे कि यह वस्तु तुमने मार्ग बिषे काहे को रखदी है पर ऐसे नहीं समझता

कि मैं आपही मार्ग से भूलाहूं तैसेही भगवत ने जो कुछ बनाया है सो यथार्थ विधि संयुक्त उत्पन्न किया है और जिस प्रकार चाहिये था तैसा ही रचा है काहे से कि जब इससे कुछ विशेषकरना होसक्ता है और महाराज ने नहीं किया तब ऐसे जानाजावेगा कि भगवत् ने वह विशेषता अपनी कृपणता अथवा असमर्थता करके उत्पन्न नहीं करी सो भगवत् विषे ऐसा अनुमान करना महा अयोग्य है ताते प्रसिद्ध हुआ कि दुःख, रोग, निर्धनता, मूर्खता, पराधीनता आदिक जो कुछ भगवत् ने रचा है सो यथार्थ भेद ही के निमित्त बनाया है काहे से कि उस महाराज से अन्याय कदाचित् नहीं होता इस करके कि अधिकार विना दण्ड देने का नाम अन्याय है सो वह महाराज किसी को अधिकार विना दण्ड नहीं देता क्योंकि अन्याय तो वह करता है जो दूसरे की प्रजा और राज्य को प्रथम अपने अधीन करता है सो महाराज में यह वार्त्ता संभवतीही नहीं अर्थात् महाराज के संग किसी दूसरे का ईश्वर होना असंभव है इस करके कि जो कुछ सृष्टि आदि में थी और वर्तमान विषे है और भविष्यत् काल में होनेवाली है तिस सब का उत्पन्नकर्ता और सबका परमेश्वर एक महाराज ही है और वह किसीके अधीन नहीं और अवर के समान भी नहीं न कोई उसके समान है (अथ परलोक निरूपण) बहुरि दो प्रकारकी सृष्टि उसने रची है सो एक स्थूल है और दूसरी सूक्ष्म है और यह स्थूल सृष्टि जो देहादिक है सो जीव की मंज़िल बनाई है कि इस मंज़िल विषे आकर कार्य को सिद्धकरे बहुरि शरीर के आयुष् की मर्याद रक्खी है तिस उपरान्त शरीर का मृतकहोना बनाया है सो यह आयुर्बल मर्याद से अधिक अथवा अल्प नहीं होती ताते काल पाकर शरीर और जीव की भिन्नता होजाती है बहुरि परलोक विषे जीव को शरीर पहिरावते हैं और जैसी २ किसी की करतूति होती है सो प्रकट दिखावते हैं तब यह मनुष्य अपनी भलाई और बुराई को पहिचानता है बहुरि परलोक का जो कठिन मार्गहै तिसके ऊपर चलावते हैं और वह एक पुलहै सो वह सेतु बाल से विशेष सूक्ष्म और तरवार से अधिक तीक्ष्ण है पर जो पुरुष इस संसार विषे विचार की मर्याद विषे दृढ़ होताहै सो उस मार्ग को सुगमही लांघ जाताहै और जिसने विचार की मर्याद का त्याग किया है सो नरकों विषे गिरपड़ताहै ताते परलोक विषे उस सेतु पर खड़ा होकर सच्चों के सत्य की परीक्षा लेवेंगे और विमुखों को लज्जायमान करेंगे

बहुरि केते महापुरुष कष्ट विना ही परमसुख को प्राप्त होवेंगे और कितनों को अल्प दण्ड होवेगा केते अधिक दण्ड और ताड़ना को पावेंगे पर जिन पुरुषों को आचार्य और सन्तों की सहायता होगी वे दुःखों से मुक्त होवेंगे और तामसी जीव चिरकाल पर्यन्त नरकों विषे दुःखों को भोगेंगे तात्पर्य यह कि पाप और पुण्य की मर्याद के अनुसार सब किसी को दण्ड और सुख प्राप्त होवेगा (अथ आचार्य और सन्त स्वरूप वर्णन) सो भगवत् ने यह संकेत रचा है कि कर्म अनुसार सब जीव फल को भोगेंगे और इस संकेतविषे केते भाग्यहीन और केते भाग्यवान् बनाये हैं पर यह मनुष्य अपनी भाग्यहीनता और उत्तम भाग्यों को पहिंचान नहीं सक्ता इसकारण से आचार्यों और सन्तजनों को भेजा है और अपनी दया करके उनको इस प्रकार आज्ञाकरी है कि जीवों को शुभ और अशुभ मार्ग को लखावें और भाग्यवान् पुरुषों को शुभमार्ग विषे लगावें बहुरि शुभ और अशुभ मार्ग के प्रकट कराने का हेतु यह है कि महाराज के ऊपर किसी का निहोरा न रहे और ऐसे न कहें कि हम शुभमार्ग को न जानते थे ताते सन्तजनों ने अपनी दया करके जिस प्रकार भलाई और बुराई का मार्ग प्रसिद्ध किया है सो उस विषे संशय कुछ नहीं और इस प्रकार की प्रतीति सर्व मनुष्यों को रखना अवश्यही प्रमाण है ॥

दूसरा सर्ग ॥

पवित्रता के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि भगवत् ने इस प्रकार अपने वचनों विषे कहा है कि जैसे वैरागी पुरुष मुझको अतिप्रियतम हैं तैसेही पवित्र मनुष्य मुझको प्रियतम लगते हैं पर तू अपने मनविषे ऐसे न जानना कि यह विशेषता शरीर और वस्त्रों की पवित्रता की कही है काहेसे कि यह पवित्रता जलकरके होती है सो महास्थूल है ताते पवित्रता का अर्थ तुझको इस प्रकार समझना चाहिये है कि पवित्रता भी ४ प्रकार की है सो प्रथम जीवात्मा की पवित्रता है और इस पवित्रता का अर्थ यह है कि अनात्मा से भिन्न और जुदा होना और सर्वपदार्थों को विस्मरण करना और भगवत् के स्वरूप विषे अपने चित्तकी वृत्तिको लीनकरना सो यह महापुरुषों की अवस्था है पर जबलग यह जीव अनात्मा से शुद्ध नहीं होता तब-लग भगवतके भजन विषे स्थित नहीं होसक्ता १ बहुरि दूसरी हृदयकी पवित्रताहै

सो इस पवित्रता का अर्थ यह है कि मलिन स्वभावोंसे शुद्ध होना जैसे ईर्षा अभिमान पाखण्ड तृष्णा वैरभाव इत्यादिक सबही बुरेस्वभावों का त्यागकरे और भले स्वभावों की सुन्दरता के साथ अपने हृदय को सुन्दर बनावे जैसे नम्रता, संयम,त्याग, धैर्य,भगवत्काभय, भगवत्की आशा, भगवत्की प्रीति इत्यादिक जो उत्तम स्वभाव हैं सो यह जिज्ञासुजनों की पवित्रता है २ बहुरि तीसरी पवित्रता यहहै कि सब इन्द्रियों को पापोंसे शुद्धकरना जैसे निन्दा झूठ अशुद्ध जीविका चोरी परनारी पर दृष्टिकरना सो ऐसे अपकर्मों का त्याग करना और सर्व इन्द्रियों को संयम और सन्तजनों की आज्ञा विषे रखना सो यह सात्त्विकी मनुष्यों की पवित्रता है ३ बहुरि चौथी पवित्रता यह है कि अपने वस्त्रों और शरीर को मलिनता से शुद्धकरना और अपवित्र होकर अपने इष्ट की पूजा और जाप विषे सावधान न होना ४ ताते प्रसिद्ध हुआ कि पवित्रता की चार अवस्था हैं पर सब किसी ने जो अपना मुख शरीर और वस्त्रों को पवित्रता की ओर किया है और सर्वदा इसही शुचिता के यत्न विषे लगते हैं सो यह पवित्रता महा नीच है इस करके कि प्रथम तो सुगम है और दूसरे इस विषे मनको भी प्रसन्नता होती है इसी कारण से सब कोई इसीको पवित्रता जानते हैं बहुरि हृदय की पवित्रता जो मलिन स्वभावोंसे कहीथी और पापकर्मोंके त्याग विषे जो इन्द्रियों की पवित्रता है सो इस पवित्रताविषे मन को कुछ स्थूलसुख नहीं प्राप्त होता और इस सूक्ष्म पवित्रता को और लोग देखते भी नहीं काहे से कि यह हृदय की पवित्रता को भगवत्‌ही देखता है और इतर जीव नहीं जानसक्के इसीकारण से इस पवित्रता की ओर मनुष्यों की प्रीति कुछ नहीं होती और इस को महा कठिन जानते हैं पर यह जो स्थूल शरीर की पवित्रता है सो यद्यपि यह महा नीच है तो भी जो इस पवित्रता को युक्तिके साथ करिये तब यह भी भलीहोती है और जब इसही संशय के समुद्र विषे बह जावे तब उलटा पापी और अभिमानी होजाता है जैसे इन आचारी वैष्णवों का स्वभाव होजाताहै कि सर्वदा वासनों और वस्त्रों को धोते रहतेहैं और पवित्रजल को ढूंढ़ा करतेहैं और वासनों को भिन्न रखते हैं जिसमें किसीका हाथ न लगनेपावे सो यद्यपि इस पवित्रता के विषे भी और दोष कुछ नहीं पर यह भी तबहीं भली होतीहै जब यह शुचिता पदयुक्तिके साथ होवे सो प्रथम युक्ति यह है कि जेते शुभ करतूति करने योग्य

अवश्यही हैं तिनसे दूर न रहे जैसे विद्या का पढ़ना और सन्तजनों के वचनों को विचारना अथवा अपने शरीर और संबन्धियोंके निमित्त शुद्ध जीविका का उद्यम करना कि किसी से कुछ मांगने की इच्छा न रहे और किसी का आशा न होवे ताते यह सबही करतूति लाभदायक है इसी कारण से चाहिये कि ऐसे कार्यों को त्यागकर पवित्रता की अधिकता बिषे अपना समय न बितावे काहे से कि विद्या और विचार और शुभजीविका का उद्यम करना पवित्रतासे अधिक उत्तम है ताते श्रीतिमार् और जिज्ञासु जो आगे हुए हैं सो शरीर की पवित्रता विषे आसक्त और लीन नहीं हुये हैं और शुद्ध जीविका, विद्या, बिचार और भजन आदिक शुभ करतूतों बिषे सावधान रहते थे और हृदय की शुद्धता के निमित्त अधिक पुरुषार्थ करते थे पर जिस पुरुष की ऐसी अवस्था होवे उसके ऊपर वैष्णव को दोषदृष्टि रखना प्रमाण नहीं और जो कोई आलस और भोगों के निमित्त पवित्रता का त्यागकरे तिसको वैष्णवोंके ऊपर दोष रखना अयोग्य है १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि कपट और अभिमानसे अपने चित्तको बचाय रक्खे इस करके कि जिस पुरुष की वृत्ति स्थूल पवित्रता बिषे अधिक है वह स्वाभाविक ही अपनी शुचिता और बड़ाई को पड़ा दिखाताहै इसी कारण से अभिमानी होजाताहै बहुरि जब अकस्मात् उसका चरण पृथ्वीपर छूजाताहै अथवा किसी और के बासनसे जल लेताहै तब लोगोंकी निन्दासे भयवान् होताहै ताते ऐसे पुरुषको चाहिये कि लोगोंके देखतेहुये नंगेपाँव चले अथवा किसी और के बासनोंका पानीभी पीलियाकरे इसप्रकार अपनी परीक्षाके निमित्त बर्ते तो भला है तात्पर्य यह कि अपनी बड़ाई को प्रकट न करे और जब उसका मन ऐसी करतूति बिषे वर्तमान न होसके तब जाने कि मुझको कपट और दम्भने घेरलियाहै तब उसको अवश्य ही उचितहै कि उस पवित्रताका त्यागकरे और लोगोंकी नाईं सहज बर्ते क्योंकि स्थूल पवित्रता भी जगत् की कीर्ति है और दम्भ करके इसकी बुद्धि का नाश होजाताहै ताते दम्भ और कपट को दूर करने के निमित्त स्थूल पवित्रता का त्याग करनाही विशेषहै २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि सर्वदा अधिक संशय बिषे आसक्तभी न होजावे ताते चाहिये कि जिस प्रकार का संयोग आवने तिसी भांति बर्तलेवे काहेसे कि अपनी वृत्तिको संशय बिषे दृढ़करना अयोग्यहै और आगे जेते सन्तजन हुयेहैं उन्होंने भी संशय और ग्लानि बिषे आपको बध्यमान

नहीं किया और लोगों की नाईं समान आचार बिषे बिचरे हैं ताते जो महापुरुषों के आचार का त्यागकरे और उनको भ्रष्टजाने तब जानिये कि वह पुरुष यह पवित्रता अपने मन की प्रसन्नता के निमित्त करता है ताते निस्सन्देह ऐसी पवित्रता का त्यागकरना प्रमाण है ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि जिस पवित्रता बिषे किसी मनुष्य को दुःख पहुँचे तब उस कर्मको अवश्यमेव त्यागदेवे इस करके कि जीवों का दुखावना महापाप है और स्थूलपवित्रता के त्यागने में कुछ पाप नहीं होता जैसे कोई मित्र इसको मिलनेलगे और यह पुरुष उसके शरीर और अङ्गों के पसीने करके सकुचारहे तब यह भी अयोग्यहै क्योंकि उस मित्र को भाव संयुक्त मिलना और उसका आदरकरना सहस्र पवित्रता से विशेष है ऐसेही जब कोई पुरुष इसके आसन के ऊपर चरणरक्खे अथवा इसके बासन से जल लेवे तब चाहिये कि उसको बरजे नहीं और ग्लानिभी न लावे पर बहुत पुरुष तो शरीर की पवित्रता करनेवाले ऐसे सूक्ष्म भेद को नहीं समझते ताते जब कोई मनुष्य अचानकही उनके आसन अथवा बासन को छूलेवे तब उसका निरादर करते हैं और कठोर वचन कहकर उसका हृदय दुखावते हैं सो ऐसी क्रिया और पवित्रता सबही अयोग्य है काहे से कि ऐसी क्रिया से अभिमान प्रकट होता है और अभिमान करके ऐसे उन्मत्त होजातेहैं कि मानों इन्हों ने लोगों पर बड़ा उपकार किया है और जब किसीका निरादर करते हैं अथवा किसीसे सकुचरहते हैं तब इसको भला कर्म जानते हैं और अपनी पवित्रता को प्रकट दिखावते हैं और बड़ाई करते हैं और औरों को भ्रष्ट जानकर ग्लानि करते हैं सो मानों महामूढ़ हैं और उनका हृदय क्रोध और अभिमान करके महाअपवित्र है सो ऐसे कर्मों करके उनके हृदय की अपवित्रता प्रकट होती है और इस अपवित्रतासे अपने हृदय को शुद्ध करना अवश्यही प्रमाण है काहे से कि अपलक्षण की अपवित्रता करके बुद्धिकाही नाश होजाता है ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि जैसे शरीर को शुद्ध रखता है तैसेही आहार और व्यवहार को भी शुद्ध करे और वचनभी शुद्ध बोले इस करके कि वचन और आहार की शुद्धता वस्त्रों और बासनों की शुद्धता से अधिक विशेष है और जो पुरुष आहारादिकों की पवित्रता का तो त्यागकरे और शरीरही की पवित्रता बिषे डूबजावे तब जानिये कि वह पुरुष शरीर की पवित्रता भी दम्भ और कपट

के निमित्त करता है जैसे कोई पुरुष भूंख विना अधिक आहारकरे और हाथ पांव धोये विना स्थित भोजनविषे होवे नहीं सो वह इतनाभी नहीं समझता कि जब वह आहार अपवित्र है तो विशेष भूंख विना क्यों खाताहूं और जो पवित्र है तो मैं उसको भोजन करके हाथ पांव क्यों धोताहूं तात्पर्य यह कि भोजन की शुद्धता अवश्यही उचित है और भोजन अशुद्ध हुआ तो हाथ पांव धोने की पवित्रता भोजन विषे गुणदायक न होगी इसी प्रकार जब लोगों के वस्त्र बिछौना पर बैठने में और उनके साथ खानपान विषे भेदरखता है तब उनके बनायेहुये भोजन को क्यों खालेता है और उनके घर का अन्न आदिक क्यों ग्रहण करता है इस विषे भेद और विचार क्यों नहीं रखता क्योंकि आहार की शुद्धि करनी अधिक विशेष है ताते आहार का संयम न करना और शरीर की पवित्रता विषे आसक्त रहना यह सचेपुरुषों का लक्षण नहीं है ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि पवित्रता की क्रियाविषे ऐसा आसक्त न होवे कि जिससे और किसीविषे विशेष कार्य की हानि होजावे जैसे किसी के साथ कुछ वैन कियाहोवे और शरीर की पवित्रताविषे लगेरहने से उसवचन के पूराकरने और उसका कार्य करने का सावकाश न पाकर उस पुरुष को आशा विषे चिरकालपर्यन्त रक्खे और तिसकरके उसको विशेष दुःख पहुँचे सो यह सब ही निन्द्यहैं और जीविका की उत्पत्ति और वचन अनुकूल दूसरे का कार्य कर देना इत्यादिक कर्म अवश्यमेव करणीय हैं बहुरि जब किसी भजन के स्थान विषे अपना आसन बहुत लम्बाकरके बिछाले कि जिसमें किसी दूसरे भजनी का वस्त्र छू न जावे सो यह भी अयोग्य है काहेसे कि प्रथम तो अपनी मर्याद से अधिक स्थान को रोकना ही भला नहीं दूसरे इसकरके और मनुष्यों को संकोच होताहै और प्रीतिमानों की निकटता से ग्लानि करनी भी निन्द्य है ताते अधिक पवित्रता की आसक्ति विषे इसी प्रकार अनेक विघ्न हैं और जो मनुष्य मूर्ख होते हैं सो इन पापों को नहीं समझते और अजानता करके प्रीतिमानों का निरादर करके पापी होते हैं और यह उनकी बाह्य पवित्रता इन पापों और विघ्नों का प्रायश्चित्त नहीं होसक्ती ६ सो जब इस प्रकार तूने भलीभांति समझा कि स्थूल पवित्रता भिन्न है और सूक्ष्म पवित्रता तीनप्रकार की जो हम ने ऊपर वर्णन करी सो भिन्न है अर्थात् एक इन्द्रियों को अशुभकर्मों से पवित्र रखना

दूसरे मलिन स्वभावों से हृदय को शुद्ध रखना तीसरे सर्व अनात्मा को त्यागकर अपने आपको शुद्ध करना तब जिज्ञासुजनों को इस प्रकार चाहिये है कि अधिक पुरुषार्थ सूक्ष्म पवित्रता विषेही करे और स्थूल पवित्रता विषे कार्यमात्र वर्त लेवे ॥

तीसरा सर्ग ॥

दानदेने की युक्ति के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जैसे भजन करने का एक आकार है और एक उसका जीव है सो हृदय की एकाग्रता भजन का जीवहै और सर्व इन्द्रियों को रोक बैठना यह भजन का आकार है पर जैसे जीव बिना आकार मृतक होताहै तैसे ही एकाग्रता बिना भजन भी व्यर्थ है बहुरि इसी प्रकार दान देने का भी एक जीव है और एक उसका आकार है सो जबलग ऐसे भेद को न समझे तबलग वह दान देना भी जीव बिना मृतक शरीर की नाईं होता है ताते दान देने के तात्पर्य तीन हैं प्रथम यह है कि सब कोई ऐसे मानताहै कि मेरी प्रीति भगवत् के साथ है और भगवत् के साथ प्रीति की परीक्षा यह है कि भगवत् बिना और किसी पदार्थ में अधिक प्रीति न होवे सो सबही मनुष्य इसी प्रकार जानते हैं कि हमको सर्व पदार्थों से अधिक भगवतही प्रियतम है ताते इसकी परीक्षा करनी सब किसी को अवश्यमेव प्रमाण है क्योंकि परीक्षा बिना अभिमान करना व्यर्थ होताहै सो परीक्षा यह है कि अपने सर्वप्रियतम पदार्थ भगवत पर वारि देवे सो धन इस जीव का अधिक प्रियतम है ताते परीक्षा के निमित्त धन का देना प्रमाण कहा है कि इस करके अपने हृदयविषे भगवत की प्रीति को पहिंचाने पर जिन्होंने इस भेद को समझाहै सो वह मनुष्य भी तीनप्रकार के होते हैं प्रथम पुरुष तो ऐसे सच्चे हैं कि उन्होंने अपने सर्वस्व को भगवत के ऊपर वाराहै काहेसे कि वह दशांश के दान देने को भी कृपणता जानते हैं ताते उन्होंने सर्व त्याग कियाहै जैसे एक समय बिषे अबूबक्र सद्दीक नामी सन्त अपना सर्वस्वधन महापुरुष के पास ले आये थे तब उन्होंने पूछा कि अपने सम्बन्धियों के निमित्त तुम क्या छोड़ आये हो ? तब उन्होंने कहा कि महाराज सर्व जीवों का प्रतिपालक है और मुझसे अधिक उनको प्रतिपालन करेगा बहुरि जब उमर नामी दूसरे सन्त महापुरुष के पास आये तब उन्होंने भी कुछ धन महापुरुष के आगे आ रक्खा तब महापुरुष ने पूछा कि तुम अपने सम्बन्धियों के निमित्त क्या रख आये

हो ? तब उन्होंने कहा कि जेता कुछ यहां ले आयाहूं तेताही सम्बन्धियों को दे आयाहूं तब महापुरुष ने कहा कि जैसे तुम्हारे और अबूबक्र के धन ले आवने विषे भेद हुआहै तैसेही तुम्हारी अवस्था विषे भी भेद है १ बहुरि दूसरे पुरुष ऐसे हैं कि उनमें एकबारही सर्वस्व देने की सामर्थ्य भी नहीं ताते धन का संग्रह रखते हैं पर तो भी अर्थी जीवों को उदारता सहित देते हैं जैसे अपने सम्बन्धियो को प्रतिपाल करते हैं तैसेही अभ्यागतों को भी प्रीति संयुक्त देते हैं बहुरि तीसरे पुरुष ऐसे हैं कि उनमें ऐसी उदारता की भी सामर्थ्य नहीं ताते भगवत के निमित्त दशांश देते हैं पर भगवत् की आज्ञा जानकर दशांश के देने विषे प्रसन्न होते हैं और जिनको देते हैं तिनके ऊपर अपना उपकार नहीं जानते काहेसे कि उस दान देने विषे अपनीही भलाई समझतेहैं सो यह कनिष्ठ अवस्था है पर जिस मनुष्य को दशांश देना भी कठिन होवे भगवत् के निमित्त तब जानिये कि उसको भगवत् की प्रीति ही कुछ नहीं इसकरके कि यद्यपि प्रसन्नतासहित दशांश भी देवे और उससे अधिक देने विषे समर्थ न होवे तौ भी प्रीतिमानों की सभा विषे उसको कृपण कहा जाताहै १ बहुरि दान देनेका दूसरा तात्पर्य यह है कि दान करके कृपणतारूपी मलिनता दूर होती है और जीवका हृदय शुद्ध होताहै काहे से कि भगवतके निकट पहुँचने विषे यह कृपणताही बड़ा पटलहै अथवा बाह्यमलिनता जैसे शरीर को अपवित्र करती है तैसे ही कृपणतारूपी अपवित्रता से हृदय मलिन और अपवित्र होजाताहै और जैसे बाह्यमलिनता से भजन पूजा की योग्यता नहीं रहती तैसेही कृपणता से हृदय में भगवत् की निकटता की योग्यता नहीं रहती बहुरि जिस प्रकार जलके धोये विना शरीर मलिनता से पवित्र नहीं होसक्ता तैसेही कृपणतारूपी अपवित्रता से दान दिये विना हृदय शुद्ध नहीं होता पर सन्त महात्माओं को दशांश आदिक दान अङ्गीकार अयोग्य है काहे से कि दशांश धन की रक्षाके निमित्त होताहै ताते महामलिन है २ बहुरि तीसरा तात्पर्य यह है कि दान देने करके भगवतके उपकार का शुक्र होताहै इस करके कि यह धन भी दोनों लोक में सुख का हेतु है ताते जैसे व्रत और भजन करना शरीर के सुख का शुक्र है तैसेही दान देना धन का शुक्र है इसी कारण से प्रीतिमान् पुरुष जब आपको सुखी देखता है और किसी मनुष्य को निर्धनता करके दुःखी देखता है तब इस

प्रकार चित्त विषे विचार करताहै कि यह भी महाराज का जीव है और मैं भी उसी महाराज का जीव हूं ताते सर्वप्रकार महाराज का शुक्र है कि मुझको तो धनादिक करके सुखेन कियाहै और इसको दीन और अर्थी बनाया है ताते सर्वप्रकार दया करनी इसके साथ विशेष है क्योंकि यह भी मेरी परीक्षा मत होवे और मैं इस परीक्षा से अचेत होजाऊँ तब महाराज उसको मेरी नाई सुखेन करें और मुझ को उसके अधीन करदेवें तब मेरा क्या बल चले ताते सब किसी को उचित है कि दान के भेदों को समझे तब उसका दान देना व्यर्थ न होवे २ बहुरि जब किसीको दान देवे तब उस विषे इतनी युक्तियां हैं प्रथम यह कि दशांश देने में विलम्ब न करे तब इस करके तीन लाभ होते हैं प्रथम यह कि उदारता की रुचि प्रकट होती है और जब सम्पूर्ण वर्ष पर्यन्त व्यतीत होजावे तब उसको दशांश देना अवश्यमेव प्रमाण है और जब न देवे तब पापी होता है सो पाप के भय करके दान देने विषे प्रीति का लक्षण कुछ नहीं भासता और जो टहलुवा प्रीति करके स्वामी की टहल न करे और भय करके कुछ सेवा करे तब वह टहलुवा बुरा कहावता है १ बहुरि दूसरा लाभ यह है कि शीघ्र दशांश देने में अर्थियों के चित्त विषे प्रसन्नता प्राप्त होती है और दानी को अशीष देते हैं तब अचानक ही इसके चित्त को भी प्रसन्नता पहुँचती है २ बहुरि तीसरा लाभ यह कि विघ्नों से वे शोच होजावेगा और जब दशांश देने में ढील करता है तब आधि व्याधि आदिक विघ्न आन उपजते हैं और जब शीघ्र देता है तब सर्वदुःखों से निर्भय होताहै अथवा जब कोई अचानकही संकट आन उपजे और यह पुरुष संकट विषे दान देने को समर्थही न होसके तो भी पुण्यकर्म से अप्राप्त रहजाता है ताते सर्वप्रकार शीघ्रही दान देना भला है काहे से कि जब इस मनुष्य के हृदय विषे दान देनेकी रुचि उपजै तब उसको भगवत् की दया जाने और अपने चित्तविषे इस प्रकार भयवान् होवे कि मत इस धर्म की रुचिको बुरा संकल्प गिरादेवे ताते इस धर्म की रुचि को शीघ्रही पूर्ण किया चाहिये १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि दानको गुप्तही देवे और प्रसिद्ध न करे तब दम्भ और कपट से दूरहोवे और इसका दान देना निष्कामहोवे और सन्तजनों के वचनों विषे भी आया है कि गुप्तदान करके भगवत् की दया को पावता है और जब परलोक विषे अधिक तपन होवेगी तब गुप्तदान करनेवाले पुरुष भगवत् की छाया तले रहेंगे और

जब कोई दान देकर आपही वर्णन करने लगता है तब वह दानही व्यर्थ हो जाता है इसी कारण से जिज्ञासु जनों ने गुह्यदान देने निमित्त बहुत यत्न किये हैं ताते जब किसी नेत्रहीन को देते थे तब मुख से बोलतेही न थे जिसमें वह पहिंचानेही नहीं अथवा जब निर्धन पुरुष को निद्रा बिषे सोयाहुआ देखते थे तब जो कुछ देना होता था उसके वस्त्र में बांध जाते थे अथवा जब किसी अर्थी को आवता देखते थे तब दानकी वस्तु को मार्ग बिषे डालदेते थे अथवा किसी और के हाथ से देते थे सो इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा गुह्यदान दीजिये जो देनेवाले को अर्थी भी न पहिंचाने और गुह्यदान देनेका प्रयोजन यह है कि प्रकट देने बिषे दम्भ होताहै सो कृपणता और दम्भ दोनों को इकट्ठा ही तोड़ते थे काहे से कि यह दोनों स्वभाव दुःखदायक हैं पर कृपणता बिच्छू की नाईं है और दम्भ महाअजगर है ताते दोनों को दूर करना विशेष है कि मलिन स्वभावों का दुःख परलोक बिषे प्रकट होवेगा २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि जिस पुरुष ने दम्भ को अपने चित्तसे दूर किया है तब उसको प्रत्यक्ष देनाही भला है काहे से कि उसकी उदारता को देखकर इतर जीवों को भी रुचि उपजती है पर यह अवस्था उस पुरुष की होती है जिसको निन्दा और स्तुति समान होवे और भगवत् को अन्तर्यामी जाने ताते लोगों की ओर दृष्टि न करे ३ बहुरि चौथी युक्ति यहहै कि जब यह पुरुष दान देनेके समय अर्थी को कठोर वचन बोलताहै अथवा क्रूरदृष्टि देखे तब इस करके भी दान देना निष्फल होताहै और ऐसी मूर्खता दो कारण करके उपजती है सो प्रथम यह है कि जिसको धन का देना कठिन होताहै तब वह दान देने के समय क्रोधवान् और अप्रसन्न होताहै ताते दुर्वचन कहने लगता है सो यह भी बड़ी मूर्खता है काहे से कि जिसको एक दाम देकर सहस्र दाम लेने की आशा होवे और देती बार सकुच जावे तब भी मूर्खता कहावती है तैसेही दान देने करके नरकों से इस जीव की रक्षा होती है और बड़े सुखों को प्राप्त होताहै सो जिसकी प्रतीति इस वचन पर दृढ़होवे तब उसको दान देना क्योंकर कठिन होगा और दूसरा कारण यहहै कि मूर्खता करके आपको अर्थी से विशेष मानताहै कि, यह निर्धन और मैं धनवान् हूं और ऐसे नहीं जानता कि परलोक बिषे निर्धन पुरुष सुख को प्राप्त होवेंगे और धनवान् दण्ड को पावेंगे काहेसे कि इसलोक बिषे निर्धन पुरुष दुःख को

भोगते हैं और धनवान् सुखों को भोगतेहैं बहुरि धनवान् अभिमानी होते हैं और निर्धनों का हृदय दीन होताहै ताते भगवत् को दीन मनुष्यही प्रियतम लगते हैं और जब विचार करके देखिये तब इसलोक बिषे भी धनवान् बहुत दुःखी हैं कि नाना प्रकार के व्यवहारों की विशेषता बिषे चिन्तावान् रहते हैं और खान पान इतनाही करते हैं जितनी कुछ शरीर की मर्याद होतीहै बहुरि धनवानों पर यहभी दण्ड रक्खाहै कि अर्थी जीवों को यथाशक्ति दान देवें और जो न देवें तो पापी होवेंगे ताते प्रसिद्धहुआ कि धनवानों को इसलोक बिषे भगवत् ने निर्धनों का टहलुआ बनाया है और परलोक बिषे तो धनवानों से निर्धन पुरुष निस्सन्देह अधिक सुखी होवेंगे ताते चाहिये कि दान देने बिषे सकुच और कठोरता न करे और आपको अर्थियों से विशेष भी न जाने ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यहहै कि जिसको कुछ दान देवे तब उसके ऊपर अपना उपकार न राखे काहेसे कि उसके ऊपर तबहीं उपकार रखता है जब ऐसे जानता है कि मैंने उसको बड़ा पदार्थ दियाहै और यह मेरे अधीन है सो ऐसा जानना भी बड़ी मूर्खता है इस करके कि जब इस पुरुष के चित्तबिषे ऐसा अभिमान दृढ़ होताहै तब इस प्रकार चाहताहै कि यह अर्थी पुरुष मेरी टहल बिषे सावधान होवे अथवा मेरा सन्मान करके प्रथमही नमस्कार करे बहुरि जब वह अर्थी पुरुष ऐसे नहीं करता तब दान देनेवाला चित्त बिषे रोष करताहै और इस प्रकार कहने लगता है कि मैंने इसके साथ ऐसा उपकार किया था पर इसने मेरा सन्मानही न किया सो यह सब मूर्खता के लक्षण हैं काहेसे कि जब भली प्रकार विचार करके देखिये तो जानाजाता है कि अर्थी पुरुष ने इसके ऊपर उपकार किया है कि दान को अङ्गीकार करके इसको नरकोंकी अग्नि से बचायाहै और दान देनेवाले पुरुष के हृदय से कृपणता के मैल को छुड़ाया है जैसे कोई नाऊ किसी पुरुष का बिकारी रुधिर निकाले और लेवे कुछ नहीं तब वह पुरुष निस्सन्देह उस नाऊ का उपकार मानता है काहेसे कि इसके दुःखदायक रुधिर को उसने दूर किया है तैसे ही कृपणतारूपी मैल भी मनुष्य के हृदय को दुःख देनेवाला है सो जिस अर्थी के सम्बन्ध करके दूरहोवे तिसका उपकार जानना चाहिये बहुरि सन्तजनों के वचनों बिषे भी आया है कि जब कोई पुरुष किसी को दान देता है तब वह दान प्रथम भगवत के हाथ में जा पहुँचताहै पीछे अर्थी को प्राप्त होता है अर्थ यह कि

उस दानका फल भगवतही देताहै सो जब ऐसेहै तब चाहिये कि अर्थी पर उपकार न राखे और अपने ऊपर उसका उपकार जाने और जब भली प्रकार दान के भेद का विचार करे तब जानिये कि अर्थी के ऊपर उपकार रखना मूर्खता है ताते जो आगे जिज्ञासुजन हुये हैं सो उन्होंने अर्थियों और अभ्यागतों का सन्मान किया है और अधीनता सहित उसके आगे स्थित होकर कहने लगते थे कि तुम इस दानको अङ्गीकार करो अथवा किसी ने ऐसे भी किया है कि अपने हाथों विषे कुछ सोना चांदी रखकर उनके आगे किया है इस करके कि वह आपही उठाय लेवें और हमारे हाथ से उनका हाथ ऊंचा रहे इसी कारण से अर्थियों से अशीष की भी चाहना नहीं करते थे इस करके कि अशीष की चाह करके भी इसका उपकार सिद्ध होताहै और विचार करके देखिये तो उपकार करनेवाला अर्थी है जिसने इस तेरे दान को अङ्गीकार किया ५ बहुरि छठी युक्ति यह है कि दान का पदार्थ उत्तम और निर्दोष होवे काहेसे कि पाप सहित उत्पन्न किये पदार्थ को भगवत् के अर्थ देना विशेष नहीं इस करके कि भगवत् भी शुद्ध स्वरूप है ताते शुद्ध पदार्थ का ही देना विशेष है और अशुद्ध को भगवत प्रमाण नहीं करता इसीपर महाराज ने भी कहाहै कि जिस पदार्थ को तुम प्रथमही मलिन चित्त साथ उत्पन्न करते हो तब उस मलिन वस्तु को मेरे अर्थ क्यों लगाते हो और जैसे कोई प्रियतम किसी के गृह विषे आवे तब उसको नीच वस्तु देनी हँसी होती है तैसेही नीच और मलिन वस्तु भगवत् के अर्थ देनी और उत्तम वस्तु अपने अर्थ लगावनी यह भी महा अयोग्य है काहेसे कि इस विषे श्रद्धा का चिह्न नहीं भासता और ग्लानि सहित देना पाया जाता है सो जिस दानविषे अधिक श्रद्धा और प्रीति न होवे तब वह दान व्यर्थ होता है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि पाप रहित एक दान श्रद्धा सहित देना विशेष है और उसका फल सहस्र दान देने से भी विशेष होताहै ६ (अथ प्रकट करना दान के अधिकारियों का) ताते जान तू कि दानदेना भी अधिकारी प्रति भला है सो उत्तम अधिकारी तो उसको कहते हैं कि जिसको परलोक के मार्ग की चितवनी होवे और माया के व्यवहारों का उसने त्यागकिया होवे तब ऐसे पुरुष को देना अत्यन्त फलदायक होता है ताते वैरागी पुरुषों की आहार और वस्त्र करके सेवा करनी महा विशेष है इस करके कि जब उनके शरीर विषे

कुछ बल होताहै तब भजनबिषे दृढ़ होते हैं तब सेवा करनेवाला पुरुष भी उनके भजन का भागी होता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक पुरुष उदार धनवान् था और सर्वदा सात्त्विकी मनुष्यों की सेवा बिषे सावधान रहता था और इस प्रकार कहता था कि यह जिज्ञासुजन सर्वदा भगवत् के भजन बिषे लीन हैं और जब इनको किसी वस्तु की अपेक्षा होती है तब इनका चित्त वि- क्षेपता को प्राप्त होताहै सो जब मैं व्यवहार का त्यागकरके अपने चित्त को एकत्र करूं तब इससे भी मुझको इनकी सेवा अधिक प्रियतम लगती है काहेसे कि मैं तो अकेलाही व्यवहार की विक्षेपता बिषे रहूंगा और जब इनकी सेवा करूंगा तब तो यह अनेक पुरुष भजन बिषे एकत्र रहेंगे ताते अनेक हृदयों का एकत्र होना एक हृदय की एकत्रता से मैं विशेष जानता हूं सो यह वचन एक सन्त ने सुना तब कहने लगा कि यह वचन किसी गम्भीर चित्तवाले और महापुरुष का है बहुरि अकस्मात् वह उदारपुरुष निर्धन होगया इसकरके कि अभ्यागतलोग उससे जो कुछ लेते थे तब वह सबोंको सन्तुष्ट करता था और वस्तु देकर मोल कुछ न लेताथा सो जब उसकी निर्धनता एक सन्त ने सुनी तब उन्होंने उनके पास कुछ धन भेजा और कहला भेजा कि धनको अङ्गीकार करके फिर भी व्य- वहार करो काहेसे कि तुमसे पुरुषको व्यवहार करने में भी कुछ अवगुण नहीं १ बहुरि दूसरे अधिकारी वे हैं कि जिनको विद्या पढ़ने की इच्छाहोवे तब उनको भी दान देना विशेष है और दान देनेवाला पुरुष भी उस विद्या का भागी होताहै २ बहुरि तीसरे अधिकारी वे हैं कि जिन्होंने अपनी निर्धनताई को गुप्त कियाहै और मांगने से रहितहुये हैं सो ऐसे पुरुषोंकोभी दानदेना महाउत्तमहै ३ बहुरि चौथे अधिकारी वे हैं कि जिनका कुटुम्ब बड़ा होवे और धनसे हीन होवें अथवा रोगी होवें सो तिनको भी देना अति विशेष है इस करके कि जितना किसीको अर्थ अधिक होताहै तितनाही उसको देनेका फल भी अधिक होताहै ४ बहुरि पांचवें अधिकारी वे हैं कि कोई इसका संबन्धी निर्धन होवे तब उसको देनाभी भलाहै काहे से कि उसको देने करके संबन्धीसे भी सम्मुख होता है और पुण्य को भी पाता है अथवा जो कोई धर्म का मित्रहोवे तब उसको देने करके अधिक फलको प्राप्तहोताहै पर यह जो मैंने अधिक उसके पांच लक्षण कहे हैं सो जिस बिषे यह पांचों लक्षण सभी पायेजावें अथवा कुछ अल्प होवें तब ऐसे

अधिकारी को दान देना विशेषहै और उनकी अशीषों करके इसको भी लाभ प्राप्त होताहै ताते चाहिये कि दानदेने के निमित्त बड़े महन्तों और कुलवन्तों को न ढूंढे और अधिकारीही को देवे ५ (अथ प्रकट करना युक्ति दानलेने की) ताते जान तू कि दान लेनेवाले को भी पांच युक्ति चाहिये हैं सो प्रथम युक्ति यहहै कि यह पुरुष अपने चित्त बिषे इस प्रकार विचारकरे कि जैसे भगवत् ने मनुष्यों को धनके अधीन बनाया है इसीकारण से बहुते मनुष्यों को धनभी दियाहै पर तौ भी जिनके ऊपर भगवत् की दया है तिनको माया के व्यवहार की विक्षेपता से बचा लियाहै और धनके संग्रह का बोझा और उसकी रक्षा का क्लेश धनवानों के ऊपर डाला है बहुरि उनको आज्ञा करी है कि मेरे प्रियतम धनसे जो रहितहैं तिनकी सेवाकरो तब वह माया के व्यवहारों से भी मुक्त होवें और सर्वदा मेरे ही भजन बिषे स्थित होवें ताते चाहिये कि जब यह पुरुष किसी से कुछ दान लेवे तब हृदय बिषे यही मंशा रक्खे कि मैं शरीरके आहारमात्र कुछ अङ्गीकार करके भजन बिषे सावधान होऊं और इस उपकार को भी जाने कि भगवत् ने धनवानों को मेरा टहलुवा बनायाहै सो इस निमित्त जो मुझको भजनमें विक्षेपता न होवे और इसका दृष्टान्त यहहै कि जिसके ऊपर किसी राजा की दया होती है तब उसको अपनी टहल के निमित्त अपने निकट रखता है और अवर सभी प्रजा राजा की सेवा के अधिकारी नहीं ताते उनको अपने निकटवर्त्तियों के अधीन करदेता है तब वह प्रजा उनके आगेही दण्ड भरती है ताते वह निकटवर्त्ती आराम के साथ सुख को भोगताहै और राजा की सेवा बिषे सावधान रहता है तैसेही भगवत् ने भी सर्व मनुष्यों को अपने भजन के निमित्त उत्पन्न किया है ताते चाहिये कि जब असंग्रही पुरुष किसी से कुछ लेवे तब इसी मंशा साथ लेवे तो भलाहै इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि दान देनेवाले से लेनेवाला विशेष तो नहीं होता पर जब वह संयम संयुक्त लेकर भजन बिषे स्थित होवे तो भला है और धनवानों को उनकी सेवाकरनी प्रमाण है ताते प्रसिद्ध हुआ कि धनवान् और निर्धन पुरुष सबही भगवत् के भजन और उसकी आज्ञा मान के निमित्त उत्पन्न हुये हैं १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जब किसी से कुछ ले तब उस दानको भगवतही का उपकारजाने और देनेवाले को महाराज की प्रेरणा के अधीन समझे काहे से कि जब भगवत् ने प्रथमही उसके हृदय बिषे

प्रेरणाकरी है तब उसने मुझको दान दिया है सो भगवत् की प्रेरणा श्रद्धा है इस करके कि जब उस विषे श्रद्धा और निश्चय की दृढ़ता न होती तब वह एक दाम भी न देता ताते सर्व प्रकार भगवत् ही का शुक्र है कि हृदयों का प्रेरक वही है बहुरि जब ऐसे जाना कि देनेवाला भगवत् है पर तौभी दान देनेवाले का संबन्ध बीच में रक्खा है कि उसके हाथों करके पहुँचता है ताते उसकी भलाई को भी जानना चाहिये इसकरके कि उसको भी दया का स्थान बनाया है इसहेतु से वहभी भगवत् का प्रियतम है और उसका भला चितवना प्रमाण है और यह भी चाहिये है कि जब वह इसको थोड़ी वस्तु देवे तब उसको अल्प न जाने सो यह भी शुक्र होताहै जैसे देनेवाले को इस प्रकार चाहिये है जितना कुछ किसी को देवे उसको किञ्चिन्मात्रही जाने तैसेही लेनेवाले को भी उचित है कि किञ्चिन्मात्रही को अधिक करके देखे २ बहुरि तीसरी युक्ति यहहै कि अशुद्ध धन को अङ्गीकार न करे अर्थात् पापकर्मियों का दान न लेवे ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि अपने कार्यमात्र से अधिक न लेवे काहेसे कि कार्यमात्र से अधिक लेना अयोग्य है और जब कोई पदार्थ गृह विषे रखताहोवे तब दान दशांश का अङ्गीकार करना प्रमाण नहीं ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि प्रथमही दान देनेवाले से पूछलेवे कि तू यह दान रोगियोंके निमित्त का देताहै अथवा निर्धनियों के निमित्त का देताहै अथवा हमको साधु जानकर किसी कामना के निमित्त देता है सो वह जब कुछ उत्तर देवे तब चाहिये कि कामना के निमित्त का अङ्गीकार न करे और जब वह कहे कि यह निर्धनों के निमित्त का है सो जब इसको अत्यन्तही चाहना होवे तब लेलेवे अन्यथा नहीं ॥ ५ ॥

चौथा सर्ग ॥

व्रत के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि भगवत् ने इस प्रकार आज्ञा करी है कि जो पुरुष मेरे निमित्त व्रत और तप करके भोगों का त्याग करते हैं तिनको फल देनेवाला मैंही हूं बहुरि व्रत भी तीन प्रकार का होताहै सो प्रथम यह कि अपने चित्त को संकल्पों से रोकरखना और चित्त की वृत्ति को भगवत् के स्वरूप विषे स्थित करना सो यह व्रत ऐसा कठिनहै कि जब भगवत् बिना कुछ संकल्प भी इसके हृदय विषे फुरे तब वह व्रत खण्डित होजाता है जो दिन विषे रात्रि के आहार का संकल्प

लावे तो भी प्रमाण नहीं इस करके कि प्रतिपाल करनेवाला भगवत है ताते चाहिये कि यह मूर्ख अपनी जीविका की चिन्ता न करे और महाराज का भरोसा करके अचिन्त्य होरहे सो यह अवस्था सन्तजनों को प्राप्त होती है और उत्तम व्रतभी यही है १ और दूसरा व्रत यहहै कि सर्व इन्द्रियों को पापकर्मों से रोक राखे सो प्रथम अपनी दृष्टि नेत्रों की बुरी भावना से बचा रक्खे काहे से कि इस करके काम उत्पन्न होताहै इसी कारण से सन्तजनों ने कहा है कि नेत्रों की दृष्टि रोम का विष भरा तीर है बहुरि यह उसही के ऊपर विष लपेटा हुआहै ताते जो पुरुष भगवतके भय करके इसका त्याग करता है तब उसको धर्मका शिरोपाव प्राप्त होताहै और अपने चित्त विषे प्रसन्नता को पाता है २ इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि पांच कर्मों करके व्रत खण्डित होजाता है निन्दा और झूठ बोलना और झूठी दुहाई कठोर वचन काम की दृष्टिकर देखना सो यह पांच पाप व्रत को तोड़ डालते हैं ताते कामदृष्टि का रोकना यह नेत्रों का व्रतहै १ दूसरा व्यर्थ वचनों से रसना को रोक राखे अर्थात् जिस वचन विषे प्रयोजन कुछ सिद्ध न होवे उस वचनसे मौन होरहे अथवा भगवत के वचन और सन्तों के वचनों विषे मन को लगावे और वाद विवाद विषे आसक्त न होवे परनिन्दा और झूठ तो ऐसे महापाप हैं कि इन करके संसारी जीवों का स्थूल व्रतभी खण्डित हो जाता है इसीपर एक वार्त्ता है कि दो स्त्रियों ने निराहार व्रतकिया था तब भूख की अधिकता करके व्याकुल होनेलगीं और व्रत खोलने के निमित्त महापुरुष से पूछनेलगीं तब महापुरुष ने उनको जल का कटोरा भरदिया सो जब उन्होंने जलपान किया तब उनको वमनहुआ और उस वमनमें सब रुधिर ही गिरा सो यह देखकर सबलोग विस्मय को प्राप्तहुये तब महापुरुष ने कहा कि इन स्त्रियों का ऐसा स्वभाव और अवस्था है कि जिस खान पान को भगवत् ने शरीर का आहार बनाया है तिससे तो इन्हों ने व्रत राखा और जिसको महाराज ने महा पाप कहाहै तिसको अङ्गीकार करती हैं अर्थात् निन्दा विषे आसक्त हैं और इनके मुख से जो रुधिर निकसा है सो निन्दा करके मानों इन्हों ने मांस खायाहै २ बहुरि तीसरे श्रवणों को भी मर्याद विषे रक्खे तात्पर्य यह कि जो वचन बोलने विषे निन्द्यहैं तिनका श्रवण करना भी निन्द्यहै जैसे निन्दा और झूठ वचन विषे निन्द्यहै तिसका सुननेवाला भी कहनेवाले की नाईं पापका भागी होता

है ३ बहुरि ऐसेही अशुभ कर्मों से हाथ और पांवों को रोकरक्खे काहेसे कि व्रत रखनेवाला पुरुष रोगी की नाईं होताहै सो जब वह रोगी फल मूल आदिकों को कुपथ्य जानकर तो त्यागकरे और विषको पान करे तब शीघ्रही मृत्यु होताहै तैसेही पापकर्म विषकी नाईं हैं और खान पान फल मूल की नाईं हैं इस करके कि इसकी अर्थात् आहार की अधिकता में पापहै वास्तव में कुछ आहार पाप-रूप नहीं ताते खान पान का त्याग करना और इन्द्रियों करके अशुभकर्मों में आसक्त रहना सो ऐसे व्रत करके लाभ कुछ नहीं होता इसी पर सन्तजनों ने भी कहा है कि केते पुरुषों को व्रत विषे केवल भूख प्यास का कष्टही प्राप्त होता है ४ पांचवें योंभी चाहिये कि अशुद्ध आहार का अङ्गीकार न करे और शुद्ध आहार को भी मर्याद के अनुसार अल्पही अङ्गीकार करे और भोजन बहुत न करे और इस प्रकार भी न करे कि दिनको व्रत रखकर रात्रिको दूना आहार करलेवे काहेसे कि व्रत रखने का प्रयोजन यह है कि भोगों को निबलकरें ताते जब व्रतको रखकर पारण समय नाना प्रकार के व्यञ्जनों को अङ्गीकार किया तब इस करके तो भोग और अधिक होते हैं और हृदय भी उज्ज्वल नहीं होता ५ पर जिस प्रकार मैंने इन्द्रियों का व्रत वर्णन किया है सो जिज्ञासुजनों का व्रत है इसको मध्यम कहते हैं २ बहुरि तीसरी प्रकार का व्रत संसारी जीवों का स्थूल है कि वह केवल खान पान का त्याग करते हैं और इन्द्रियों को पापों से नहीं रोक सकते सो यह व्रत महाकनिष्ठ है और इस विषे इतनाही गुण है कि उस समय विषे इन्द्रियां कुछ निबल होजाती हैं पर जिज्ञासुजन जो सर्व इन्द्रियों का व्रत रखते हैं और अशुभ कर्मों से अपनी वृत्तिको रोक रखते हैं तब उनको भी इस प्रकार चाहिये है कि सर्वदा भगवत् के भय विषे स्थितरहैं काहेसे कि न जानें भगवत् इस व्रतको प्रमाणकरे अथवा न करे ताते भय विषे स्थित रहना ही विशेष है पर निराश होकर शुभकर्मों को त्यागना प्रमाण नहीं काहेसे कि भगवत् किसी के किञ्चिन्मात्रभी करतूति को व्यर्थ नहीं करता है ॥ ३ ॥

पांचवां सर्ग ॥

पोथी पाठ करने के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सन्तजनों ने इस प्रकार कहा है कि पोथी का पढ़ना भी उत्तम भजन है और महापुरुष ने भी कहा है कि मनुष्यों के हृदय मलिन होरहे

हैं जैसे जंगार करके दर्पण मलिन होजाता है बहुरि लोगों ने पूछा कि ऐसे हृदय क्योंकर निर्मल होवें तब उन्होंने कहा कि भगवत् वचनोंके पाठ और मृत्यु के स्मरण करके हृदय निर्मल होताहै बहुरि महापुरुष ने योंभी कहाहै कि मेरेपीछे तुमको उपदेश करनेवाले दो बहुतहैं एक तो मौनी और दूसरा बोलनेवाला सो बोलनेवाले तो भगवत् और सन्तों के वचन हैं और मौनधारी मृत्यु है सो इन दोनों के उपदेश करके जीवों को भलाई प्राप्त होवेगी (अथ प्रकट करना अचेत मनुष्यों के पाठ के स्वरूप का) ताते जान तू कि जो कोई वचनों का पाठ करता है उसकी निस्सन्देह उत्तम अवस्था होती है पर तौभी उसको चाहिये कि वचनों की विशेषता समझकर आपको नीच कर्मों से बचाये रहै और सर्वकाल विषे भयसंयुक्त रहे और जो इस प्रकार न करे तो उसमें यह भय होती है कि वह वचनही उसको झूठा करते हैं इस पर महापुरुष ने कहा है कि बहुत कपटी तो विद्या पढ़नेवालेही होवेंगे इसी पर महाराज का भी वचन है कि हे मनुष्यो! तुमको लाज नहीं आवती कि जब किसी संबन्धी की पत्री तुमको पहुँचती है तब एकाग्रचित्त होकर पढ़ते हो और बारंबार उसको विचारकर वही कार्य करते हो और यह जो मेरे वचन हैं सो मानों तुम्हारी ओर पत्री मेरी आई है कि इसको विचार कर इसके अनुसार करतूति करो सो तुम इससे विपर्यय वर्त्तते हो और यद्यपि कुछ पाठ भी करतेहो तौभी उसका विचार नहीं करते कि इस पत्री विषे क्या लिखा है बहुरि और एक सन्त ने कहाहै कि हमसे आगे के जिज्ञासु जन ऐसे हुये हैं कि सन्तों के वचनों को पत्री जानते थे ताते रात्रि विषे उनका पाठ और विचार करतेथे और दिनको उसके अनुसार करतूति करतेथे और अब तुमलोग इस काल में केवल पाठको ही करतूति जानते हो बहुरि अक्षर और मात्राही को सुधारते रहते हो और जो कुछ इन विषे लिखाहै तिसके तात्पर्य की ओर तुम चित्त नहीं देते ताते इस प्रकार समझना चाहिये कि पढ़ने का फल पढ़नाही नहीं इसका फल यह है कि वचन के भेद को समझकर उसके अनुसार करतूति करे और जो पुरुष वचनों को पढ़कर उनकी आज्ञा न माने तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी दास की ओर उसका स्वामी कोई पत्री पठावे और उस पत्री विषे किसी कार्य की शिक्षा होवे कि यह काम तुम करना और वह दास उस पत्री को उत्तम स्थान विषे बैठकर तो पढ़े और भली प्रकार अक्षरों

को सुधारे पर जो कुछ उस विषे लिखा होवे तिस कार्य को न करे तब निस्सन्देह दुःखका अधिकारी होताहै (अथ प्रकट करनी युक्ति पाठकी) ताते जान तू कि जब वचनोंको पट्युक्ति साथ पढ़ताहै तब वह पढ़ना अधिक फलदायक होताहै सो प्रथम युक्ति यहहै कि जैसे टहलुवा स्वामी के आगे स्थित होताहै तैसेही नम्रतासहित बैठकर वचनों को पाठकरे और पवित्र होकर स्थित होवे १ बहुरि दूसरी युक्ति यहहै कि धीरे २ पाठकरे शीघ्रता न करे और उसके अर्थों को विचारता जावे ऐसे न चाहे कि किसीप्रकार शीघ्रही पाठ पूर्ण करलूं २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि पाठकरनेके समय भय और प्रीतिसंयुक्त रुदन करे और जो नेत्रों में आंसू न आवें तो चित्त को कोमलकरे इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि यह भगवत् वचनके ग्रन्थ भय प्रकटावने के निमित्त हैं ताते भयसंयुक्त पाठकरो और जो कोई इनको विचारताहै तो निस्सन्देह उसको भय उत्पन्न होताहै और अपने को दीन पराधीन जानलेता है तब शोकवान् भी होता है परन्तु यह अवस्था भय और शोककी तबही प्राप्तहोती है जब असावधानता और अचेतता को दूर करके पाठ करे ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि वचनों के तात्पर्य को भिन्न २ करके विचारे अर्थ यह कि जब ताड़ना का प्रसंग आवे तब भगवत् से अपनी रक्षाचाहे और जब भगवत् की कृपाका वचन आवे तब आशावन्त होवे ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि कपट और विक्षेपता को दूरकरे अर्थात् जब दम्भ का आभास जानपड़े अथवा किसी दूसरेके भजनमें विक्षेप होता देखे तब ऊंचे स्वर से न पढ़े काहेसे कि गुप्त पाठकरने का ऐसा माहात्म्य है जैसे गुप्तदान देने का विशेष फलहै परन्तु जो दम्भ न फुरे और किसी के भजन में विक्षेप भी न होता होवे तब प्रत्यक्ष और ऊंचे स्वर सेही पढ़ना भलाहै काहेसे कि इस रीति से पढने में निद्रा और आलस दूर होता है और सुननेवालों को भी गुण होता है और सोवनेवाले जाग पड़तेहैं बहुरि देखकर पोथी को पढ़े तो अतिविशेषहै कि नेत्र भी इसी काममें लगजावें तो नेत्रों का भी भजन हुआ और अपर दृष्टिसे नेत्र बचे रहेंगे इसी पर एक वार्ता है कि एक रात्रि विषे महापुरुष चले जाते थे तब एक जिज्ञासु को गुप्त पाठ करते देखकर पूछनेलगे कि तुम गुप्त क्यों पढ़ते हो? तब उसने कहा कि मैं जिस को सुनावता हूं वह गुप्त पाठ भी सुनताहै बहुरि महापुरुष आगे को चले तब एक दूसरे प्रेमी सन्तको देखा कि वह ऊंचे स्वर से पढ़ते

हैं तब उनसे पूछा कि ऊंचे स्वरसे क्यों पढ़ते हो ? तब उसने कहा कि अपनी ओर सोवते हुये पुरुषों की निद्रा और विशेषता को दूर करताहूं तब महापुरुष ने कहा कि दोनों की भावना निर्मल है काहेसे कि करतूति की भलाई और बुराई मंशा करके होती है ताते जिसकी मंशा शुद्ध होतीहै तिसकी करतूतिभी शुद्ध ही होती है ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि कोमल ध्वनिसहित पाठकरे काहेसे कि जितना कोमल ध्वनि सहित पाठ करताहै तितनाही चित्तबिषे वचन अधिक प्रवेश करते हैं ६ सो ये जो षट्युक्ति मैंने कही हैं सो स्थूल हैं और इसी प्रकार षट्युक्ति सूक्ष्म भी चाहिये है सो प्रथम यह है कि वचनों की वड़ाई को समझे और ऐसे जाने कि यह वचन आप भगवत् ने कहे हैं और भगवत् के सहज स्वभावरूप अविनाशी हैं और इनका तात्पर्य भगवत् के ज्ञान बिषे स्थित है और रसना पर जो स्फुरित होते हैं सो ये अक्षर हैं और जिस प्रकार अग्नि का नामलेना मुख से सुगम है और अग्नि की तपन का सहना कठिन है तैसे ही अक्षरों का अर्थ ऐसा प्रबल है कि जब वह अर्थ प्रकट साक्षात्कार होवे तब उस के प्रकाश बिषे चौदहों लोक लीन होजावें और उस तेज को सह न सकें पर उन वचनों के अर्थ की सुन्दरताई को और उनकी बड़ाई को शब्द और अक्षरों के परदे में गुप्त कररक्खा है कि जिस करके उस परदेकरके मन और रसनाको भी वचनों की प्राप्ति होवे और इस परदेके बिना वचनों का तात्पर्य मनुष्योंको समझा नहीं सके ताते जिज्ञासु अपने चित्त बिषे इस प्रकार विचार करे कि वचनों को तात्पर्य अक्षरोंसे परेहै सो जैसे बैलआदिक पशुओं को मनुष्योंके शब्दों का अर्थ नहीं भासहोता और मनुष्य अपनी सहज बोली करके उनसे काम नहीं लेसके ताते उनको चरस और हलमें चलावनेके निमित्त पशुओं की नाईं शब्द किया जाता है तब वह श्रवण करके सुचेत होतेहैं और कार्य को सिद्ध करतेहैं पर तौ भी तात्पर्य को नहीं समझ सकें कि हलको किस निमित्त पृथ्वी बिषे चलाते हैं और धरती को क्यों खोदते हैं सो धरती के खोदने का प्रयोजन यह है कि वह कोमल होवे और उस बिषे पवन प्रवेश करे फिर जल सींचने करके उस बिषे बीज की वृद्धता होतीहै पर बैलोंके हृदय बिषे यह ज्ञान कुछ नहीं होता तैसेही बहुत पुरुष पाठ करनेवाले भी ऐसे होते हैं कि वह भगवत् और सन्तोंके वचनों को शब्दमात्र और अक्षरमात्रही जानते हैं सो अत्यन्त बुद्धि की हीनताहै और

इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष ऐसे जाने कि अग्नि का अर्थ आगनही है और यों न जाने कि अग्नि तो कागज़ को जलानेवाली है पर यह तीनों अक्षर तो सर्वदा कागज़ पर लिखे रहते हैं और कागज़ को कुछ आंच नहीं पहुँचती ताते जिस प्रकार सब शरीरके एक जीव होताहै और उस जीव करकेही शरीर स्थित रहता है और जीवही के प्रभाव से शरीर की बड़ाई है तैसेही अक्षर शरीरवत् हैं और अर्थ इनका जीवहै और अर्थों करकेही शब्द और अक्षरोंकी बड़ाई है ताते इस प्रकार प्रथम वचनों की बड़ाईको जानना चाहियेहै १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि जिस महाराज के ये वचनहैं तिसको पाठके समय विषे अपने सामने विद्यमान देखे और ऐसे जाने कि ये वचन मुझ से महाराजही कहते हैं ताते भय संयुक्त स्थितहोवे और जैसे पोथी को पवित्र हाथ से स्पर्श करता है तैसेही वचनों को हृदय की पवित्रताई के साथ ग्रहण करे और हृदय की पवित्रता यह है कि बुरे स्वभावों से शुद्धहोवे और भगवत् वचन के आदर और बड़ाई के प्रकाश करके सुन्दर प्रकाशित होवे जैसे अकमानामा एक बाईथी सो जब वह भगवत् वचनों के पाठकरने को बैठकर पोथी खोलती तब कहती कि यह महाराज सर्वेश्वर का वचनहै और ऐसा कहकर मूर्च्छित भय और प्रीति के सम्बन्ध से होजाती ताते जबलग भगवत् की बड़ाई को नहीं पहिंचानता तबलग उसके वचनोंकी महिमा को भी नहीं जानसक्ता और भगवत् की बड़ाई भी उसकी कारीगरी और गुण के जाने विना जानी नहीं जासक्ती सो कारीगरी यह है कि आकाश, पाताल, धरती, देवता, मनुष्य, पशु, कीट, वृक्ष और पर्वत आदिक जो सर्व सृष्टि है सो सब महाराज के उत्पन्न किये हुये हैं और उसी के अधीन हैं और जब वह इन सबको नाश करडाले तौभी उसको कुछ भय नहीं और उसकी पूर्णताई में कुछ ऊनता नहीं आती बहुरि सर्व जीवों का उत्पन्न और पालन और रक्षा करनेवाला भी वही है इस प्रकार विचार करने से किंचित् बड़ाई महाराज की हृदयमें भास आवती है सो विचारे कि ऐसा जो ईश्वरों का ईश्वर महाराजहै तिसही के वचनों का मैं पाठ करताहूं तब ऐसे जानने करके भय उत्पन्न हो आवती है २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि पाठ विषे चित्त को एकाग्र रक्खे और विक्षेपता को दूरकरे और जब कुछ अचेतता सहित पढ़ जावे तब उसही को फेर पाठकरे क्योंकि अचेतता सहित पाठ करना ऐसा होता है जैसे कोई पुरुष फूलों के देखने के

निमित्त बाग विषे जानेकी मंशा करे और जब वहां जावे तब विक्षेपता करके ऐसा अचेत होवे कि नाना प्रकार के फूलों की रचना को कुछ न देखे और योंहीं फिरकर बाहर चला आवे तब उसका वहां जाना व्यर्थ होता है तैसेही भगवत् वचन जिज्ञासुजनों का बाग है और इन में नाना प्रकार के जो भेद रहस्य हैं सो मानों परमविचित्र सुखद मनमोहन फल फूल हैं सो जब कोई इनका विचार करे और एकाग्र चित्त होवे तब निस्सन्देह ऐसे परमानन्द को प्राप्त होताहै कि फिर किसी पदार्थ की ओर रुचि नहीं होती इसी कारण से कहा है कि जब पाठ करनेवाला पुरुष वचनों के अर्थ को न जाने तब उसको पाठ का गुण अल्प ही होता है ताते चाहिये कि वचनों की बड़ाई और सुन्दरताई को अपने हृदय में विद्यमान राखे तब आनसंकल्पों से रहित होवे ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि सर्व वचनों को विचारे और जो समझ न सके तो वारंवार उनका अभ्यासकरे तब इस करके रहस्य उपजताहै बहुरि उसही रस विषे मग्न होवे सो ऐसे रससहित पढ़ने से अधिक लाभ को प्राप्त होताहै इसी पर एक सन्तने कहा है कि जब कोई पुरुष रसना विषे किसी वचन को उच्चारण करता है और चित्त विषे किसी और वस्तु का विचार करता है तब उस प्रथम वचन के अर्थों से दूर पड़जाता है बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि जब भजन अथवा पाठ विषे मुझको कोई व्यवहार का संकल्प फुरता होवे तब उस संकल्प से मैं अपना मरना विशेष जानताहूं ताते इस पुरुष को चाहिये कि जब किसी वचन का पाठ करनेलगे तब चित्त बिषे और संकल्प का चिन्तवन न करे यद्यपि वह संकल्प सात्त्विकी होवे तो भी उसको विस्मरण करना विशेष है बहुरि जब भगवत् की स्तुति का पाठ करने लगे तब इस प्रकार विचार करे कि वह महाराज सब से निर्लेप हैं संकल्प से परे हैं सबों के ऊपर समर्थ हैं परमदेव हैं बहुरि जब महाराज की कारीगरी का वचन होवे तब इस प्रकार विचार करे कि धरती और आकाश को उसहीने उत्पन्न किया है ऐसे नाना प्रकार की रचना को देखकर महाराज की विद्या और सामर्थ्य और बड़ाई को पहिंचाने और जिस पदार्थ की ओर दृष्टि करे तब उस विषे भगवतही की सत्ताको देखें बहुरि जब इस वचन को पढ़े कि महाराजने इस जीव को एक पानी की बूंद से उत्पन्न किया है तब ऐसे जाने कि वह वीर्य की बूंद तो एकही रङ्गकी थी पर भगवत् ने उससे नानारंग के चिह्न बनाये हैं जैसे

त्वचा और मांस नाड़ी हाथ पांव नेत्र रसना कर्ण इत्यादिक जो अनेक अङ्ग हैं सो तबही आश्चर्य रूप हैं बहुरि यह शरीर मांस के पुतले की नाईं है सो इस विषे देखना सुनना बोलना और चैतन्यता किस प्रकार प्रकट हुई है पर इस प्रकार सर्व वचनों का बखान करना कठिन है ताते इसका तात्पर्य यह है कि जिस वचन का पाठकरे उसही वचन के अर्थ विषे विचार और अभ्यास को सावधानकरे और जिस पुरुष की वृत्ति किसी महापाप विषे आसक्त होती है अथवा जो पुरुष मनमत करके किसी क्रिया को अङ्गीकार करताहै अथवा किसी मत और पन्थ के निश्चय विषे ऐसा दृढ़ होजाता है कि उस पन्थ की प्रतीति विना यथार्थ वचन को श्रवणही न करे तब ऐसे पुरुष को महाराज के वचनों का अर्थ कदाचित् प्रकट नहीं होता ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि जिस प्रकार वचनों का अर्थ भिन्न २ भाव को प्राप्तहोताहै तैसेही चित्तकी वृत्ति को भी उसके अनुसार उलटावता जावे जैसे भय और ताड़ना के वचन का जब पाठकरे तब भयवान् और अधीन होजावे और जब महाराज की क्रिया का वचन पढ़े तब आशावन्त और प्रसन्न चित्त होवे और जब महाराज की अपारता का वचन आवे तब महादीनभाव को ग्रहणकरे और ऐसे जाने कि महाराज की स्तुति और बड़ाई के वर्णन करनेकी मेरी बुद्धि ही नहीं ताते लज्जित होकर स्तुति करनेलगे इस प्रकार सर्व वचनों के अनुसार चित्तकी अवस्था बनावे ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि वचनों विषे इस प्रकार प्रतीति करे कि यह वचन मैं भगवत् के मुख से सुनताहूं इसी पर एक सन्तजन ने कहा है कि आगे मुझको भजन का कुछ रहस्य न आताथा तब मैंने इस प्रकार प्रतीति करी कि मैं यह वचन महापुरुष के मुख से सुनता हूं तब मुझको रस आवनेलगा बहुरि मैंने इस प्रकार अनुमान किया कि यह वचन मुझको आकाशवाणी होती है तब मैंने उससे भी अधिक स्वाद को पाया फिर मैंने यह अनुमान करलिया कि यह वचन मुझ को आप भगवत् विद्यमान सुनाते हैं तब मैंने ऐसा रस और आनन्द पाया कि जिसका वर्णन नहीं करसक्ता ॥ ६ ॥

छठवां सर्ग ॥

स्मरण के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सर्व साधनों का फल भगवत् का स्मरण है जैसे पाठ

वचनों का भी उत्तम कहाहै पर इसका तात्पर्य भी यही है कि भोगों से विरक्त होकर स्मरण बिषे स्थित हूजिये काहेसे कि भोगों की प्रबलता बिषे भजन का कुछ रहस्य नहीं उपजता ताते प्रसिद्धहुआ कि सर्व कर्मों का सार भगवत का भजन है और सर्व साधन भजन की दृढ़ता के निमित्त कहे हैं इसी पर महाराज ने भी कहा है कि तुम मेरा स्मरणकरो तब मैं तुम्हारा स्मरण करूं पर जब स्मरण की ऐसी अवस्था को न पहुँचसके तब अधिककाल बिषे तो भजनही का अभ्यास चाहिये काहे से कि इस जीव की मुक्ति का कारण भजनही है ताते जो पुरुष बैठते, उठते, जागते, सोवते, चलते किसी अवस्था बिषे भगवन् के भजन से अचेत नहीं होते सो तिनकी महिमा महाराज ने भी कही है और योंभी कहा है कि भय और दीनता सहित गुप्त ही स्मरणकरो बहुरि संध्या और प्रभात पर्यन्त किसी काल बिषे अचेत न होवो और किसीने महापुरुष से भी पूछा था कि सर्व करतूतों से कौनसी करतूति विशेषहै तब उन्होंने कहा कि मृत्यु के समय बिषे जिस की सुरति प्रबल अभ्यास करके भगवत् की ओर होवे सो यह स्मरण सब भजनों से विशेषहै और महापुरुष ने योंभी कहा है कि अचेत मनुष्यों बिषे भजन करनेवाले पुरुष ऐसे विशेषहैं जैसे मृतकों बिषे सजीव पुरुष होवे अथवा जैसे सूखे वृक्षों में सफल वृक्ष होताहै और जैसे कायरों बिषे कोई शूरमा शत्रुओं के सम्मुख होकर युद्धकरे बहुरि एक और सन्तने भी कहा है कि परलोक बिषे सर्व मनुष्यों को पश्चात्ताप होवेगा कि हमने भगवत् का भजन सर्वकाल क्यों न किया ? और संसारबिषे अपने समय को व्यर्थ क्यों बिताया और जिन्हों ने भजन कियाहोगा वेभी कहेंगे कि हमने अधिक भजन क्यों न किया और एक क्षण भी अचेत क्यों हुये (अथ प्रकट करनी अवस्था भजनकी) ताते जान तू कि भजन की भी चार अवस्था हैं सो प्रथम अवस्था यह है कि रसना से भगवत् का नाम उच्चारण करना और हृदय से अचेत रहना सो यह कनिष्ठ अवस्था है ताते इस का गुण भी अल्प है पर तो भी गुण से रहित नहीं काहे से कि जब यह रसना विवाद मिथ्या बिषे आसक्त होवे तब इससे तो भगवत् का नाम लेना निस्संदेह उत्तमहै १ बहुरि दूसरी अवस्था यहहै कि चित्त से भजन करना और जब भजन बिषे चित्तकी एकाग्रता न होवे तब भी हठ करके संकल्प को दूरकरना और मन को भजन बिषे स्थित करना सो यह मध्यम अवस्था है २

बहुरि तीसरी अवस्था यह है कि इस पुरुष का हृदय भजन बिषे स्थित होजावे और भजन का रस चित्त बिषे ऐसा प्रबल होवे कि जब कोई कार्य अवश्यही करना होवे तौ भी यत्न करके उसी ओर लावै सो यह उत्तम अवस्था है ३ बहुरि चौथी अवस्था यह है कि जिस वस्तु को स्मरण करता है तिसके स्वरूप बिषे चित्त की वृत्तिका लीन होजाना सो वह वस्तु परमात्मा स्वरूप है और उस बिषे लीनता का अर्थ यहहै कि परमात्मा के स्वरूप की मग्नता बिषे भजन की सुधि न रहै और सत्तारूप भजनही शेष रहजावे क्योंकि भजन जाप और अक्षरकर होताहै सो निस्सन्देह स्थूलहै और संकल्परूप है और परम अवस्था यह है कि संकल्प और अक्षरों का अभाव होजावे और केवल ब्रह्मसत्ता बिषे स्थित होवे सो यह अवस्था पूर्ण प्रेमकर होती है जैसे किसी पुरुष का प्रेम किसी पुरुष के साथ ऐसा प्रबल होवे कि अपने प्रियतम के स्वरूप की मग्नता बिषे आपा और सर्व पदार्थों को बिस्मरणकरे और प्रियतम का नामही उसको भूलजावे तैसेही यह पुरुष महाराज के दर्शन बिषे आप और सर्व पदार्थों को बिस्मरण करे तब सन्तों की आदि अवस्था को प्राप्त होवेगा सो सन्तलोग इस अवस्था का नाम जीवन्मृतक कहतेहैं अर्थ यह कि सर्व पदार्थों की जानसे मृतक होजाताहै जैसे और जो अनेक ब्रह्माण्ड भगवत् ने उत्पन्न किये हैं पर उनका भान हमको कुछ नहीं होता और हमको वही पदार्थ सत्यस्वरूप भासते हैं जिनको हम प्रत्यक्ष इन्द्रियों कर देखते हैं सो जिस पुरुष को यह इन्द्रियादिक पदार्थ सबही बिस्मरण होजावें तब उसके निकट नहीं हैं अर्थात् असत्यस्वरूप होजाते हैं बहुरि जब आप को भी बिस्मरण करे तब इस भाव करके आपभी अपने जान में नेस्त होगया इसी को जीवन्मृतक कहते हैं और जब सर्व पदार्थों की सत्ता इसके निकट दूर हुई तब केवल महाराज ही उसके निकट सत्यस्वरूप और विद्यमान हैं जैसे तू धरती और आकाश को देखकर कहताहै कि सर्व जगत इतनाही है और तुझ को और कुछ नहीं भासता तैसेही उस जीवन्मृतक स्वरूप को किसी और पदार्थ की जान नहीं रहती केवल महाराजही को देखता है और कहता है कि रामही राम हैं राम बिना और कुछ नहीं तब ऐसी अवस्था बिषे वह पुरुष महाराज से अभेद होता है अर्थ यह कि एकता बिषे लीन होजाताहै और भेदभावना नष्ट होजाती है सो यह ज्ञानवानों की आदि अवस्था है पर जब यह अवस्था जीस

को प्राप्त होती है तब निकटता और दूरी की और द्वैत की कुछ सुधि ही नहीं रहती क्योंकि निकटता और दूरी और भेदभाव की उसको सुधि होती है जिस को दो दृष्टि आवें कि यह मैंहूं और वह महाराज हैं मो ऐसे पुरुष को तो सर्वथा अपना आपा विस्मरण होगया है तब निकटता और दूरी को क्योंकर देखे और द्वैतबुद्धि करे ताते इस अवस्था विषे जिज्ञासुजन को चैतन्यस्वरूप की प्रत्यक्षता प्रकट होतीहै और चिदाकाश की गतिविषे नाना प्रकार के आश्चर्यों को देखता है और आदि मध्य अन्त का ज्ञान उसको प्राप्तहोता है बहुरि सन्तजनों और अवतारों के पद को प्रत्यक्ष देखताहै और हस्तामलकवत् पहिंचानता है और इस प्रकार के आश्चर्यों को देखता है कि वचन करके उनका वखान नहीं होसक्ता बहुरि यद्यपि ऐसी समाधिसे जब उसको उत्थान होताहै तौभी एकत्रता का रस उसके हृदय से दूर नहीं होता और सर्वदा उसके चित्त की वृत्ति उसही रसकी ओर खिंची रहती है और माया के सर्व पदार्थों को विरस जानता है और यद्यपि संसारी जीवों विषे स्थित दृष्टि आवता है तौभी हृदय करके निर्लेप रहता है और यह मनुष्य जो माया के व्यवहारों विषे आसक्त रहते हैं सो तिनकी अवस्था को देखकर आश्चर्य मानताहै और दयादृष्टि से देखकर कहताहै कि यह अल्पबुद्धि जीव कैसे सुखसे अप्राप्त हैं और जगत् के जीव उसकी अवस्था को देखकर इस प्रकार कहतेहैं कि यह पुरुष मायाके व्यवहार को भली प्रकार क्यों नहीं करता ताते उसको बावरा और उन्मत्त जानते हैं पर जब जिज्ञासु जन ऐसे परमपद को पहुँच न सके और सूक्ष्मभेद उसको प्रकट न होवे तौ भी निराश न होवे काहे से कि केवल भजनही की प्रबलता भी जीव को उत्तम भोगोंका बीजहै इसकरके कि भजनकी दृढ़ता विषे प्रेम की अधिकता होतीहै और प्रेम करके सर्व पदार्थों से विरक्तचित्त होताहै ताते महाराजही को अपना अधिक प्रियतम रखताहै सो उत्तम भोगों का बीज यही है काहेसे कि इस जीव को अवश्यमेव भगवत् के निकटही पहुँचनाहै और सर्व संसार को त्याग जाना है ताते चाहिये कि इस मनुष्य की प्रीति सर्वथा भगवत् ही के साथ होवे इस करके कि जितनी किसी की प्रीति अधिक होती है उतना ही उसको अपने प्रियतम के दर्शन विषे आनन्द अधिक होताहै तैसेही जिसका भगवतके साथ पूर्ण प्रेमहै तिसको महाराज के स्वरूप विषे पूर्णही आनन्द प्राप्त होता है और जिसके हृदय विषे माया की

प्रीति दृढ़ होती है तब वह माया के पदार्थों के वियोग करके सदा दुःखी रहता है तात्पर्य यह कि जब जिज्ञासुजन भगवद्भजन बिषे दृढ़ होवे और सिद्धता आदिक का ऐश्वर्य इसके हृदय बिषे कुछ न फुरे तब भी भजन का त्याग न करे काहे से कि परमपद की प्राप्ति सिद्धता और ऐश्वर्य के आश्रित नहीं ताते जब इस पुरुष का चित्त शुभ गुणों सहित निर्मल हुआ तब स्वाभाविकही परम पद का अधिकारी होताहै इसी कारण से इस जीव को चाहिये कि सर्वदा अपने चित्त बिषे अभ्यास करे कि किसी प्रकार मेरा चित्त भगवत् के भजन से एक क्षण भी अचेत न होवे काहेसे कि भजनही महाराज के दर्शन और सूक्ष्म भेदों की कुञ्जी है इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जब कोई पुरुष वैकुण्ठ आदिक सुख को भोगना चाहै तब भगवद्भजन बिषे ही लीन होवे काहेसे कि भजनही परम वैकुण्ठ है ताते प्रसिद्ध हुआ कि सब गुणों का सार यहहै कि निन्द्यकर्मों से इस जीव की रक्षा होवे और जो कुछ भगवत् ने करणीय कर्म कहे हैं तिन को श्रद्धा सहित करे और जब निन्द्य कर्मों बिषे आसक्त रहे और शुभ कर्मों बिषे सावधान न होवे तब ऐसे जानिये कि उस पुरुष का भजन करना भी मनका संकल्प है और उस बिषे यथार्थ कुछ नहीं ताते यथार्थ भजन वही है जो पाप कर्म के समय जीव की सहायता करे और भगवत्के स्मरण करके भयवान् होवे ॥

इति नियमवर्णननाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ॥

दूसरा प्रकरण ॥

पहिला सर्ग ॥

भगवत् के मिलाप की युक्ति के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह संसार परलोक के मार्ग की मंज़िलहै और सर्व मनुष्य इस मंज़िल बिषे परदेशी हैं और सबको एकही ओर जाना है जैसे सबही परदेशी आपस में संबन्धी की नाईं होते हैं तैसेही इस जीव को सब मनुष्यों के साथ प्यार और शुभ भावना चाहिये है पर जिस जिस प्रकार भाव और संगति करने का अधिकार है तिसका तीन सर्ग बिषे वर्णन किया जायगा प्रथमसर्ग बिषे जो जिज्ञासुजन भगवत् मार्ग के संगी हैं तिनके संगकी विशेषता प्रकट करेंगे और दूसरे सर्ग में सन्तों के मिलाप का अधिकार और युक्ति वर्णन होगी

बहुरि तीसरे सर्ग बिषे संबन्धी और सेवक और सखाओं के भावकी युक्ति का वर्णन किया जायगा ताते जान तू कि भगवत् के निमित्त जिज्ञासुजनों के साथ मित्रता करनी उत्तम भजन है और सर्व कर्मों से विशेष है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष को भगवत् मार्ग की प्रीति होवे तिसको भगवद्भक्तों का मिलाप बड़े भागों मे प्राप्त होताहै काहे से कि जब किसी समय बिषे वह पुरुष भगवद्भजनसे अचेतभी होताहै तब उसको वह दूसरा भक्त सचेत करता है बहुरि जब दोनों सचेत होते हैं तब एक मार्ग के संगी होतेहैं और यों भी कहाहै कि जिज्ञासुजनों की संगति करके ऐसा सुख उत्तम प्राप्त होताहै कि और जनों करके नहीं पाया जाता और योंभी कहाहै कि जब कोई भक्तोंके साथ प्रीति करता है तब वह भी भगवत् का प्रियतम होताहै और भगवतने भी कहा है कि मेरी प्रीति उन पुरुषों को प्राप्त होती हैं जो मेरे निमित्त मेरे प्रियतमों के साथ प्रीति करते हैं और तन धनादिक करके उनकी सेवा करते हैं और उनके सर्व कार्यों की सहायता बिषे सावधान रहते हैं और महापुरुष ने योंभी कहा है कि परलोक बिषे भगवत् इस प्रकार कहेंगे कि जिन्होंने केवल मेरे निमित्त प्रीति और मिताई परस्पर करीहै सो पुरुष कहां हैं कि उनको अब हम अपनी छाया तले राखें और योंभी कहा है कि ७ प्रकार के पुरुषों को परलोक बिषे भगवत् की छायातले ठौर मिलेगा और परमसुखी होवेंगे सो प्रथम नीति और विचार की मर्याद बिषे वर्त्तनेवाला राजा है १ दूसरा वह पुरुष है जो बाल्यअवस्था से लेकर अपनी आयुष् भगवद्भजन बिषे लगावे २ और तीसरा वह है जो यद्यपि शुभस्थान से बाहर भी निकसे तौभी व्यवहार की विक्षेपता बिषे आसक्त न होजावे और उसके चित्तकी वृत्ति सर्वदा शान्तिकी ओर रहै ३ चौथा वह है जो एकान्त बिषे बैठकर भगवद्भजन बिषे सावधान रहै और प्रीति सहित रुदन करे ४ पांचवां वहहै कि जब उसको एकान्त ठौर बिषे स्त्रीका मिलाप होवे और वह भगवत् के भय करके उसका त्यागकरे ५ छठवां वह है कि निष्काम गुप्तदान देवे ६ सातवां वह है जो भगवतही के निमित्त भगवद्भक्तों के साथ मैत्री करे और जो किसी पुरुष की प्रीति का त्यागकरे तौभी उसमें भगवत् संबन्धही कारण होवे अर्थात् मिलाप और त्याग दोनों भगवत् निमित्त होवें और अपने स्वार्थ का संबन्ध उस में कुछ न विचारे ७ इसीपर एक वार्त्ताहै कि कोई पुरुष किसी प्रियतम

के दर्शन को जाताथा उसको मार्ग विषे एक देवता मिला और कहनेलगा कि तू कहां जाता है तब उस पुरुष ने कहा कि अपने मित्रके दर्शन को जाता हूं बहुरि उस देवता ने कहा कि उसके साथ तेरा कुछ अर्थहै अथवा उसने तेरे ऊपर कुछ उपकार कियाहै तब उस पुरुष ने कहा कि मैं केवल भगवतही के निमित्त उसके दर्शन की इच्छा रखताहूं तब उस देवता ने कहा कि मुझको भगवत् ने तेरे पास भेजा है सो मैं तुझको प्रसन्नताका संदेशा पहुँचावता हूं कि इस श्रद्धाही करके भगवत्ने तुझको अपना प्रियतम किया है और महापुरुष ने योंभी कहा है कि धर्म का दृढ़ चिह्न यही है कि धर्मात्मा पुरुषों से मिलाप और भगवत विमुखों के संगको त्याग करना और एक सन्तको आकाशवाणी हुईथी कि यद्यपि तू सर्व मनुष्यों और सर्व देवतों के तुल्य अकेला भजन भी करे तो भी जबलग मेरे निमित्त मेरे भक्तों के साथ मिताई और मनमुखों का त्याग न करेगा तबलग तू परमपद को प्राप्त न होवेगा और एक सन्त से जिज्ञासुजनों ने पूछा था कि संगति किसकी करें तब उन्होंने कहा कि जिसके दर्शन करके तुमको भगवत् का भजन दृढ़होवे और जिसकी करतूति देखकर तुमको शुभ करतूतिकी इच्छा उपजे तब उसकी संगति करो और एक और सन्तको भी आकाशवाणी हुईथी कि तैंने किस निमित्त एकान्त ग्रहणकिया है तब उसने कहा कि हे महाराज! जगत् के मिलाप करके तेरी प्रीति विषे घटल होताहै तिस निमित्त एकान्त को विशेष प्रिय मानता हूं बहुरि आज्ञाहुई कि इस एकान्त करके तो अपना सुख स्वार्थ अर्थात् व्यावहारिक क्लेशनिवृत्ति और भजन से प्रतिष्ठा की चाहना प्रसिद्ध है ताते मेरे भक्तों के साथ प्रीतिकर और विमुखों के संग का त्याग कर बहुरि एक और सन्त ने भी कहा है कि भगवद्भक्त जब परस्पर मिलकर प्रसन्न होते हैं तब जैसे शरदऋतु में वृक्षों के पात झड़ पड़ते हैं तैसेही उनके सर्व पाप नष्ट होजाते हैं (अथ प्रकट करना इसका कि भगवत के निमित्त मिताई किस प्रकार होती है) ताते जान तू कि जो मित्रता किसी संबन्ध करके होती है वह भगवत् निमित्त नहीं कहावती है जैसे चटशाला विषे अथवा पड़ोस करके जो स्वाभाविक ही मित्रभाव होजाता है सो यह सब स्थूल प्रीति है अथवा जिस का रूप सुन्दर होवे और जिसकी वाणी मधुर होवे अथवा जिसके साथ धन और मान का अर्थ कुछ होवे सो यह भी अज्ञानही प्रीति कहावती है ताते भगवत

के निमित्त मित्रताका अर्थ यहहै कि जिस प्रीति विषे कोई प्रयोजन और स्थू-
लता कुछ न होवे और केवल धर्महीके निमित्त होवे सो यह प्रीतिभी दो प्रकार
कीहै प्रथम यहहै कि वह प्रीति प्रयोजन करके होती है पर उस विषे सात्त्विकी
प्रयोजन होवे जैसे विद्यार्थी की प्रीति पढ़ानेवाले के साथ होती है सो जब वह
पढ़ना परमार्थ के मार्ग निमित्त होवे तब यह भी भगवत् के निमित्त गिना
जाता है और जब उसमें धन और मान का प्रयोजन होवे तब वह आन प्रीति
होजाती है और ऐसे ही पढ़ानेवाले की प्रीति पढ़नेवाले के साथ जब निष्काम
होवे और भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त उसको पढ़ावे तब यह भी भगवत्के
निमित्त प्रीति होती है और जब पढ़ानेवाले को मान का प्रयोजन होवे तब
अशुभ कामना होजाती है तैसेही जब कोई दान देनेवाला पुरुष अपने टहलुवे
को इस निमित्त प्रियतम राखे कि यह टहलुवा भली प्रकार अर्थियों को दान
पहुँचाता है अथवा उत्तम भोजन कर अभ्यागतों को खवावता है तब यह भी धर्म
की संबन्धी प्रीति है १ बहुरि दूसरी प्रकार की प्रीति यह है कि जिसके साथ
इसका प्रयोजन कुछभी न होवे केवल ईश्वरही के संबन्ध की प्रीति होवे और
उसको भगवत् प्रियतम जानकर उसके साथ मित्रता करे सो यह उत्तम प्रीतिहै
और जब इस प्रकार किसी के साथ प्रीति करे कि वह भगवत् का जीव है और
यद्यपि उस विषे गुण की कुछ भावना न होवे तो भी उसको प्रेमदृष्टि कर देखे
सो यह पूर्ण प्रेमकी अवस्थाहै जैसे किसी पुरुषके साथ किसी मनुष्य की अधिक
प्रीति होवे तब वह अपने प्रियतम के मन्दिर और गलीको भी प्रियतम रखताहै
उसके संबन्धियों और दासोंको देखकर प्रसन्न होताहै तात्पर्य यह कि उसके
कूकरको भी और कूकरों से विशेष जानताहै और प्रियतमके मित्रोंको तो अधिक
प्रियतम रखताही है तैसेही भगवत् के साथ जिसका पूर्ण प्रेम होता है तब सब
जीव उसको प्रियतम लगते हैं और वैष्णवों और जिज्ञासुजनों के साथ तो
निस्संदेह उसकी अधिक प्रीति होतीहै और सर्वपदार्थों को भी इस करके प्रियतम
रखता है कि यह सब मेरे प्रियतम के रचे हुये हैं इसी पर एक वार्त्ता है कि जब
बसन्तऋतु विषे महापुरुष के आगे कोई नवीन फूल आन रखता था तब उस
फूलको नेत्रोंपर मर्दन करते थे और इस प्रकार कहते थे कि यह मेरे प्रियतम मि

है २ पर भगवत् के साथ जो प्रीति होतीहै सो भी दो प्रकार की होती है एक प्रीति इस लोक और परलोक के सुखों की कामना करके होती है १ और दूसरी निष्काम होतीहै सो पूर्ण प्रीति इसही का नाम है २ ताते जितना जिस मनुष्य का निश्चय दृढ़होताहै तो उतनाही भगवत्के साथ इसको प्रीति अधिक होतीहै बहुरि उसी प्रीतिकरके महाराज के प्रियतमों कोभी प्रियतम रखताहै और प्रीति की मर्याद धन और मान के अर्पण कर प्रकट होती है अर्थ यह कि जितना धन और मान उनके ऊपर वारता है उतनाही प्रीतिका चिह्न प्रकट होताहै सो एक पुरुष ऐसे होतेहैं कि वह अपने धन और मानको अर्पण करदेते हैं सो पूर्णप्रेमी हैं और जो कुछ धन अर्पण करते हैं सो अल्पप्रेमी हैं (अथ प्रकट करना इस का कि भगवत् के निमित्त किस प्रकार विरुद्ध करना चाहिये) ताते जान तू कि जिस प्रकार सात्त्विकी मनुष्यों के साथ भगवत् के निमित्त प्रीतिमानों की मिताई होती है तैसेही राजसी और तामसी मनुष्यों के साथ जिज्ञासुजनों का स्वाभाविकही विरुद्ध होता है क्योंकि वे भगवत् से विमुख हैं और उनकी संगति करके यह भी अचेत होजाता है सो यद्यपि विरुद्ध का अर्थ यह नहीं कि उनकी क्रिया को देखकर अपने चित्त को तपायमान करे पर तो भी मनमुखों की संगति से जिज्ञासुजन संकुचित रहते हैं सो इसही का नाम विरुद्ध है और इस विषे एक और भी भेदहै कि जब कोई पुरुष सात्त्विकी होवे और उस विषे कुछ राजसी गुणकी प्रबलता भी होवे तो चाहिये कि उस पुरुष के साथ सात्त्विक गुण साथ मिताई राखे और जो गुण की प्रबलता के अनुसार उससे विरुद्ध रहे सो इस प्रकार करके एकही मनुष्य के साथ मित्रता और विरुद्ध इकट्ठा होताहै जैसे किसी पुरुष के तीन पुत्र होवें सो एक आज्ञाकारी और बुद्धिमान् भी होवे और दूसरा पुत्र मूर्ख और आज्ञा से विमुख होवे और तीसरा मूर्ख भी होवे और आज्ञाकारी भी होवे तब आज्ञाकारी और बुद्धिमान् पुत्रके साथ पिता की प्रीति स्वाभाविक ही अधिक होती है और दूसरा पुत्र जो मूर्ख और आज्ञा से विमुख होता है सो स्वाभाविक ही दण्ड का अधिकारी होता है और तीसरा पुत्र जो मूर्ख और आज्ञाकारी होताहै सो तिसके साथ आज्ञा मानने के भावकरके पिता की प्रीति होती है और मूर्खता के निमित्त उसको ताड़ना करताहै तैसेही जो पुरुष भगवत् की आज्ञा से विमुख होवे सो तिस विमुखता के अनुसार तिसका

त्यागकरना योग्य है और जितना कुछ भगवत् की आज्ञा बिषे सावधान होवे तितनीही प्रीति उसके साथ राखे सो इस मिताई और विरोध का चिह्न करतूति बिषे प्रकट होताहै कि जब किसी पुरुष बिषे तुझको कुछ अवगुण भासता है तब उस पुरुष से तेरा चित्त विरुद्ध करता रहताहै और जब अधिक अवगुण भासता है तब उससे चित्त की वृत्तिही उलट जाती है और वचन वार्त्ता का मिलाप भी थोड़ा होजाता है बहुरि जब लम्पटता करके सन्तजनों की मर्याद को त्याग देताहै और ढीठ होकर विचरता है तब उसके साथ प्रीति और वचन और कर-तूति का संबन्ध कुछ नहीं होता पर तो भी भोगी मनुष्यों से तामसी की गति महानीच होतीहै ताते तामसी मनुष्य के साथ प्रीति करना सर्वथा अयोग्य है काहे से कि वह सर्वजीवों का घातक होताहै पर जब कोई तामसी मनुष्य ऐसा होवे जो केवल तुझही को दुखावे तब उसके ऊपर दयाकरनी प्रमाण है पर यह जो तामसी मनुष्यों से विरुद्ध करना प्रमाण कहा है सो इस बिषे भी जिज्ञासु जनों की अवस्था दो प्रकार की हुई है सो एक तो ऐसे हुये हैं कि उन्होंने विचार और धर्म की मर्याद के निमित्त पापी जीवों को दण्ड दिया है और एक ऐसे हुये हैं कि उन्होंने सर्वजीवों के ऊपर दयादृष्टि राखी है जगत् से संबन्ध ही उन्होंने तोड़ा है पर इसका तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष की मंशा शुद्ध है और अपनी वासना से रहित है सो तिसका सबही करतूति शुभ और नीक होताहै ताते जिस पुरुष ने ऐसे जानाहै कि सर्वजीवों का प्रेरक भगवत् है और आपसे यह जीव सबही पराधीन है तिस कारण से वह पुरुष सबों के ऊपर दया-दृष्टि से देखता है सो यह उत्तम अवस्था है और पापीजीवों को पापसे वर्जना यह भी भलाहै पर केते मनुष्य ऐसे भी मूर्ख होते हैं कि वह पापकर्मोंका त्याग नहीं करसके और पापी जीवों की संगति का अवगुण पहिचान भी नहीं सके और मुखसे इस प्रकार कहते हैं कि हम किसी को बुरा नहीं जानते काहेसे कि सर्व जीवों का प्रेरक भगवत् है और हृदय बिषे राग द्वेष कर जलते रहते हैं सो जबलग भगवत् की एकता जानने का चिह्न प्रकट न होवे तबलग ऐसा अभिमान करना व्यर्थ होता है सो एकता का चिह्न यह है कि जब कोई इसका धन हरलेजावे अथवा दुर्वचन बोले अथवा कुछ दण्ड देवे तो भी क्रोधवान् न होवे और उसके ऊपर दयादृष्टिसे ही देखता रहै तब जानिये कि इसके हृदय

विषे एकता दृढ़ हुई है जैसे एक समय विषे मनमुखों ने महापुरुष के दांत तोड़े थे और रुधिर चलने लगा तब महापुरुष कहने लगे कि हे महाराज ! यह लोग मुझ को जानते नहीं ताते तूही इनके ऊपर दयाकर पर जो पुरुष अपने प्रयोजन करके राग द्वेष विषे दृढ़ होवे और धर्म की मर्याद के निमित्त मौन होरहे अर्थात् पापियों को पाप से न बर्जे और उन से अपना संबन्ध भी न तोड़े तब यह भी बड़ी मूर्खता है ताते जबलग इस मनुष्य के हृदय विषे एकताकी अवस्था दृढ़ न होवे और कुसंगी पुरुषों को बुरा जानकर उनकी मित्रता का त्याग न करे तब जानिये कि इसका धर्मही दृढ़ नहीं जैसे किसी पुरुष का कोई मित्र होवे और कोई पुरुष उसके मित्रको दुर्वचन कहै और वह उसको ताड़ना न करे तब जानिये कि उस पुरुष के साथ इसकी मिताईही नहीं बहुरि पापी मनुष्य जो कहे हैं सो तिनके विषे भी भिन्न २ भेद होता है और उनके ऊपर दण्डकरना भी अधिकार प्रति चाहिये सो प्रथम तो एक ऐसे मनुष्य होतेहैं कि वह भगवत् को नहीं मानते और परलोकपर भी प्रतीति नहीं करते और सर्वदा तमोगुण विषे स्थित हैं सो ऐसे मनुष्यों के साथ जिज्ञासुजन को मिलाप करना नहीं चाहिये काहे से कि जब बड़े ईश्वरों और अवतारों ने शस्त्रोंकरकेभी उनका प्रहार कियाहै ताते उनके साथ किंचित् व्यवहार रखना भी अयोग्यहै बहुरि जो पुरुष लोगों को सत्कर्मों से भ्रष्टकरे और मनमतकरके नास्तिकवादियों का मत दृढ़करावे सो ऐसे मनुष्य के साथ संबन्ध रखना भला नहीं और उसका निरादर करनाही विशेष है काहेसे कि निरादर को देखकर लोगोंकी प्रतीति उनसे दूरहोवे बहुरि जो पुरुष और लोगों को भ्रष्ट न करे और आपही सत्कर्मों से हीनहोवे तब प्रकट निरादर उसका करना भला नहीं और मिताई करना भी अयोग्य है बहुरि जो पुरुष निन्दा और झूठ और कपट और दुर्वचन और अनीति करके लोगों को दुखावता होवे तब उसके साथ कठोरता और विरक्तता करनाही भलाहै और उसके साथ प्रीतिकरना अयोग्यहै बहुरि जो मनुष्य भोगी होवे अथवा मद्यपान करनेहारा होवे पर और किसी को दुखावे नहीं तब उसको उपदेशकरना विशेषहै पर जब कुछ श्रद्धावान्होवे और जब कुछ श्रद्धा न देखिये तब लज्जा करके उसकी क्रिया से नेत्र मूंदने अच्छे हैं ॥

दूसरा सर्ग ॥

संगति और अधिकार के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि सबही मनुष्य मिताई करने के अधिकारी नहीं इसीकारण से जिज्ञासुजन को चाहिये कि जिस पुरुष विषे तीन लक्षण पाये जावें उसके साथ मिताई करे सो प्रथम लक्षण यह है कि बुद्धिमान् पुरुष होवे काहे से कि मूर्ख की संगति निष्फल होतीहै और उसकी मिताईका निर्वाह नहीं होता और मूर्ख मनुष्य जब तेरे साथ उपकार किया चाहता है तब भी मूर्खता करके ऐसा करतूति करता है जो तेरे कार्य को बिगाड़ देवे और यों भी नहीं जानता कि मैंने इस कार्य को बिगाड़ा है ताते मूर्ख की संगति से दूर रहनाही भगवत् की निकटता है और मूर्ख का देखनाही पापका कारण है पर मूर्ख तिसको कहतेहैं कि जो कार्य के भेद को न जाने और यद्यपि उसको समझा कर कहिये तौभी न समझ सके १ बहुरि दूसरा लक्षण यह है कि जिसका स्वभाव कोमल होवे सो तिसही के साथ मिताई करनी विशेष है काहे से कि जिसका स्वभाव कठोर होताहै सो कठोरता करके मित्रता को दूर करदेताहै और निडर होकर प्रीतिकी रीति को बिगाड़ देताहै २ बहुरि तीसरा लक्षण यहहै कि जिसकी वृत्ति सत्कर्मों विषे दृढ़होवे तब उत्तम अधिकारी मिताई का वही है काहे से कि पापकर्मी मनुष्य के हृदय विषे भगवत् का भय कुछ नहीं होता ताते जो पुरुष भगवत् के भय से रहित होवे तिसके साथ प्रीति और प्रतीति करनी महाअयोग्य है इसी पर महाराजने भी कहाहै कि जो पुरुष मेरे भजन से अचेत हैं और अपनी वासना विषे वर्तते हैं तिनके साथ प्रीति और प्रतीति न करो ३ और जो कोई नास्तिकवादी होवे तिसकी संगति न करनाही विशेषहै काहेसे कि उसकी रहनि रीति का प्रवेश इसके हृदय विषेभी दृढ़ होजाताहै ताते यहभी अपकर्मी होजाता है और यह भी नास्तिकवादियों का लक्षण है कि वह इस प्रकार कहते हैं कि किसी को धर्म का उपदेश करना प्रमाण नहीं पाते और भोगोंसे भी किसीको वर्जना योग्य नहीं काहेसे कि लोगों के साथ हमको क्या प्रयोजनहै ? सो यह वचनभी मन्दभागों और दुःखों का बीज है और मनमतियों का चिह्न है ताते इनकी संगति का त्याग करना भलाहै इस करके कि यह वचन मनकी वासना का हितकारी है और जब यही निश्चय दृढ़ होताहै तब प्रकट ही ढीठ होकर

अपकर्म करने लगता है इसी पर एक सन्तने कहा है कि पांच प्रकारके मनुष्यों की संगति न करिये सो प्रथम तो झूठे मनुष्य की संगति बुरी है काहे से कि झूठ कहनेहारा पुरुष कपट करके सर्वदा छलही देताहै १ और दूसरा वह पुरुष जो मूढ़ता करके तेरे लाभ को गँवाय देता है २ बहुरि तीसरा वह जो कृपण मनुष्य है सो वह भी तेरी शुभ अवस्था को व्यर्थ करडालता है ३ और चौथा पुरुष वहहै जो पुरुषार्थसे हीन होवे सो वहभी तेरे किसी कार्य का निर्वाह नहीं करसक्ता ४ बहुरि पांचवां पुरुष जो लम्पटहै सो वह भी तेरी मिताई को एक ग्रास से अल्प बेंचता है और लोगोंसे पूछा कि ग्राससे अल्प बेंचना क्या है? तब उन्हों ने कहा कि लोभ करके ग्रास को अङ्गीकार करताहै और तेरी मिताई को त्याग देताहै ताते मिताईको ग्रासके समान भी नहीं जानता ५ बहुरि एक और सन्त ने कहाहै कि मैं कठोर मनुष्य विद्यावान् से भोगी पुरुष कोमल चित्तकी संगति को विशेष मानताहूं पर ऐसे जान तू कि सर्व मनुष्यों बिषे शुभ गुण दुर्लभ पाये जाते हैं ताते प्रथम संगति के प्रयोजन को पहिंचानना चाहिये कि जब तुझको केवल शुभगुण का प्रयोजन होवे तब कोमल मनुष्य और धीर मनुष्यों की संगतिकर और जब कुछ माया का प्रयोजन होवे तब उदार पुरुष के निकट जावो ऐसे ही सब मनुष्यों का स्वभाव भिन्न २ है सो एक पुरुष की संगति आहार की नाईहै अर्थ यह कि उनका मिलाप सर्वदा चाहिये और एक पुरुष की संगति औषध की नाई है अर्थ यह कि उनका मिलाप किसी अवस्था बिषे चाहिये है और एक पुरुषों की संगति रोग की नाई है अर्थात् किसी समय भी उनका मिलाप नहीं चाहिये और जब अकस्मात् उनका संयोग भी होजावे तौ भी धैर्य और पुरुषार्थ करके उनसे मुक्त हुआ चाहिये पर सर्वदा उसही की संगति करनी योग्य है जिसकी संगति बिषे परस्पर शुभगुणों का लाभ होवे (अथ प्रकट करनी युक्ति मिताई के संबन्ध की) ताते जान तू कि मिताई और प्रीति का जो नाता है सो संबन्ध की नाई है इसी कारण से संबन्ध की युक्तियें भी चाहिये इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रीतिमानों का मिलाप इस प्रकार सुख-दायक होताहै कि जैसे दोनों हाथ परस्पर एक दूसरे का मैल उतारते रहतेहैं ताते उनकी संगति करनी युक्ति के साथ विशेष होती है सो प्रथम युक्ति यह है कि अपने से खान पान वस्त्र मित्रको अधिक देवे और जो पदार्थ इसको भी चाहता

होवे तब अपनी अभिलाषा का त्याग करके उसके कार्य को पूर्ण करे बहुरि अपने धन और सामग्री को अपने से मित्र भिन्न नहीं जाने ताते कहे बिना ही उसके कार्य विषे सावधान होवे और जब मित्र को इससे कुछ मांगना पड़े और आप करके उसकी सुरति न लेवे तब इस करके प्रीति मन्द होजाती है काहे से कि इसका हृदय उसकी सुरति और सहायता से अचेत रहा तब यह देखादेखी की प्रीति होजाती है इसी पर एक वार्त्ता है कि दो प्रीतिमान् परस्पर मित्र थे तब एक मित्रने कहा मुझको चारसहस्र रुपया चाहिये तब दूसरे मित्र ने कहा कि दो सहस्र रुपया लेलेव तब उस मित्र ने कहा कि तुझको लाज नहीं आवती कि मिताई का अभिमान करता है और मुझसे माया को अधिक प्रियतम रखताहै बहुरि एक और वार्ता है कि किसी नगरविषे केते प्रीतिमान् रहते थे किसी दुष्ट ने राजा से जाकर कहा कि ये सब शास्त्र की मर्याद से उल्लंघित रहते हैं और लोगों को भ्रष्ट करते हैं तब राजा ने उनको पकड़वाकर मारडालने की आज्ञा करी बहुरि जब मारनेलगे तब एक प्रीतिमान् सबसे आगे गया और कहने लगा कि मुझ को प्रथम मारो तब राजाने पूछा कि तू शीघ्रही आगे काहे को आया है तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि ये सब मेरे प्रियतम हैं ताते इस प्रकार चाहता हूं कि कोई क्षण अपनी आयुर्बल इनपर वारों तब राजा ने कहा कि जो इनके हृदय विषे ऐसी प्रीति और प्रतीति है तिनको मारना प्रमाण नहीं ताते सबों को छुड़ाय दिया बहुरि एक और वार्ता है कि एक प्रीतिमान् अपने मित्र के गृह विषे आया और वह मित्र अपने गृह विषे न था तब उस प्रीतिमान् ने मित्र की दासी को बुलाकर धन का संदूक मँगाया और उसको आपही खोलकर जो कुछ चाहिये था सो लेलिया बहुरि जब वह मित्र अपने गृह विषे आया तब यह वार्ता सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रसन्नहोकर उस दासी को भी मुक्त करदिया ॥ बहुरि एक और वार्ता है कि एक सन्तके पास एक पुरुष आकर कहने लगा कि मैं तुम्हारे साथ मिताई किया चाहताहूं तब उन्होंने कहा कि तू मिताई की युक्तिको जानताहै तब उस पुरुषने कहा कि मैं तो नहीं जानता बहुरि सन्त जनने कहा कि जब धन और सर्व सामग्री को मुझसे अधिक प्रियतम न राखे तब प्रीतिकी युक्ति पूर्ण होती है तब उस पुरुष ने कहा कि मुझको यह अवस्था तो प्राप्त नहीं है तब उस सन्तने कहा कि तू प्रीतिका अधिकारी नहीं ताते अपने

गृहको जानो॥ बहुरि एक वार्ता है कि एकबार महापुरुष वनबिषे गयेथे और एक और संगी भी उनके साथ था तब महापुरुषने एक वृक्षमेंसे दो दन्तधावन तोड़ीं सो सीधी और कोमल दँतौन तो उस संगी को दी और कठोर दँतौन आपने ली तब उस संगीने कहा कि हे महाराज! आपने सीधी दँतौन क्यों न ली तब महापुरुष कहनेलगे कि हे भाई! जब एक क्षणभी किसीकी संगतिकरिये तबभी उस की मिताईका निर्वाह करना प्रमाण है और मिताई का निर्वाह यहहै कि अपने आपे से मित्र को अधिक सुख दीजिये १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि मित्र के सर्व कार्यों बिषे सहायता करे और मित्र के कहे बिनाही उसके कार्य बिषे सावधान होवे और चित्तकी प्रसन्नता सहित निर्वाह करे काहे से कि आगे ऐसे प्रीतिमान् हुये हैं कि अपने मित्र के कार्य को संबन्धियों से भी अधिक जानते थे इसी पर एक सन्तने कहाहै कि भगवत् मार्ग के मित्र मुझको स्त्री पुत्रादिकों से भी अधिक प्रियतम हैं काहे से कि वह धर्मकी दृढ़ता बिषे सचेत करनेवाले हैं बहुरि एक और सन्त ने भी कहा है कि जब मेरे साथ मेरे शत्रु को कुछ प्रयोजन होताहै तब मैं उसके भी प्रयोजन को शीघ्रही कियाचाहता हूं फिर मैं अपने प्रियतमों के अर्थ बिषे क्योंकर सावधान होऊंगा २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि रसना करके मित्र का गुणही वर्णन करे और अवगुण को प्रसिद्ध न करे और जब कोई इसके मित्र की निन्दा करे तब उसको भी बर्जे और ऐसे जाने कि मेरा मित्र अबभी मेरे निकट है ताते जिस प्रकार मित्र के सम्मुख वचन कहता है तैसेही पीछे भी मित्र की भलाई चिन्तन करे बहुरि मित्र का वचन सुनकर खण्डन न करे और उसकी गुप्त वार्ता को प्रकट न करे और जब वह मित्र इसके कार्य बिषे कुछ अवज्ञाकरे तौ भी उसको कुछ न कहे और रोष न करे और ऐसे करके जाने कि यह मनुष्य सदैवही भूला हुआ है और मुझ से भी तो कितनी अवज्ञा भगवद्भजन बिषे होजाती हैं ताते इस प्रकार समझ करके रोष को मिटावे और जब सर्वथा ऐसेही मनुष्य को ढूंढ़े कि जिस बिषे अचेतता और अवगुण कुछ भी नहीं पायाजावे तब यह वार्ता भी महादुर्लभ है और इस करके किसी के साथ प्रीति न करेगा ताते मिताई से अप्राप्त रहेगा है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रीतिमान् लोग गुणकी ओर दृष्टि रखते हैं और यद्यपि किसी के कुछ अवगुण भी देखतेहैं तौ भी जानते हैं कि अकस्मात

किसी कारण करके इससे भी यह अवज्ञा हुई होवेगी और जो कपटी मनुष्य होता है सो सर्वदा अवगुण की ओरही देखता है ताते चाहिये कि जिस बिषे एक गुणभी देखे तब उसके दश अवगुणों का विचार न करे इसी पर महा-पुरुष ने भी कहा है कि कुसंगी मनुष्यों से भगवत् रक्षा ही करे॥ सो कुसंगी मित्र वह है जो अवगुण देख कर प्रसिद्धकरे और शुभगुणों को दुरायराखे ताते चाहिये कि मित्र के अवगुणों को विचारे नहीं और मित्र के ऊपर भला अनु-मान करे काहे से कि बुरा अनुमान करना महानिन्द्य है इसी पर एक सन्तने भी कहा है कि मित्र के अवगुणों को प्रसिद्ध करने का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने मित्र को सोवता देखकर उसका वस्त्र उतार लेवे और उसको नग्न करे सो जिसप्रकार करतूति महानिन्द्य है तैसेही मित्रका अवगुण प्रकट करना इससे भी अधिक निन्द्य है ताते बुद्धिमानों ने कहा है कि जिसप्रकार भगवत् तेरे गुणों और अवगुणों को जानता है और अवगुणों को प्रकट नहीं करता तैसेही मित्र भी वही है जो अवगुणों को जानकर प्रकट न करे तब उसकी संगति भी लाभदायक होती है इसी विषयपर एक वार्त्ता है कि किसी मित्र ने अ-पने मित्र के आगे गुप्तभेद प्रकट कहा था और फिर कहनेलगा कि तुमने यह बात हृदय बिषे राखी है तब उस मित्र ने कहा कि मैंने तो बिसार दी है इस करके कि लोभ क्रोध और अपनी वासना करके अथवा और किसी अवसर बिषे अकस्मात् जो मित्रका त्याग करता है सो मिताई का अधिकारी नहीं होता ताते मिताई की युक्ति यह है कि मित्रके भेद को प्रकट न करे और मित्रके आगे भी किसी की निन्दा न करे बहुरि झूठा वचन भी न कहे और मित्र के वचन का खण्डन भी न करे बहुरि कोई कर्म अपना मित्र से दुरावे नहीं ताते ऐसे जान तू कि मित्र के वचनको विपरीत वचन करके खण्डन करनेमें मिताई शीघ्रही नष्ट होजाती है काहेसे कि वचन को उलटने का अर्थ यह है कि मित्र को मूर्ख करना और आप को बुद्धिमान् जनावना सो यह मिताई के चिह्न नहीं इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब तेरा मित्र तुझ को ऐसे कहे कि उठ खड़ा हो तब यों भी पूछना प्रमाण नहीं कि कहां चलोगे काहे से कि प्रीतिकी उत्तम रीति यही है कि इसकी सर्व करतूति मित्रकी आज्ञा और प्रसन्नता अनुसार होवे २ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि सर्वदा अपने मित्रकी स्तुति करे और मधुर वचन करके

उसके गुह्य भेद को पूछे बहुरि प्रसन्नता और शोक विषे उसका संगी होवे अर्थ यह कि मित्रकी प्रसन्नता और शोक अपने से भिन्न न जाने और मित्रको शुभ वचन करके बुलावे और जब मित्र से कुछ भलाई देखे तब प्रसन्न होवे और महाराज का उपकार जाने ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि मित्र को परस्पर धर्म की विद्या सिखावें क्योंकि संसार के दुःखों से नरक के दुःखों की रक्षा करनी विशेष है ताते चाहिये कि वह शुभ करतूति विषे जो कुछ अवज्ञा करे तो भी भला उपदेश करके उसको धर्म विषे दृढ़ करावे और भगवत के भय का निश्चय दृढ़ावे पर मित्र को उपदेश करना एकान्त ठौर विषे प्रमाण है इस करके कि प्रसिद्ध ताड़ना करने विषे मित्र का अपमान होता है ताते मित्र को कोमलता और दयासंयुक्त सिखावे इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि प्रीतिमान् का दर्पण प्रीतिमान् होताहै अर्थ यह कि उस करके अपने अवगुणको देखताहै ताते यों चाहिये है कि जब वह मित्र एकान्त ठौर विषे दया करके समझावे तब मित्र का उपकार जाने और क्रोधवान् न होवे काहे से कि अवगुण जनावने का दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी के वस्त्र विषे सर्प होवे और उसने देखा न होवे और कोई मित्र उसको लखादेवे कि तेरे वस्त्र विषे सर्प है तब इस करके क्रोधवान् होना प्रमाण नहीं और उसका उपकार जानना प्रमाण है तैसेही सभी मलिन स्वभाव सर्प हैं और जीव को डसनेवाले हैं और इनके विषय का प्रवेश परलोक विषे प्रत्यक्ष होवेगा ताते जो पुरुष इसके अवगुण लखावे सो इसका परम मित्र है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् सन्तके निकट एक और सन्त आया और उससे पूछनेलगा कि हे मित्र! तैंने मेरा बुरा स्वभाव कौन सुना है तब उसने कहा कि मुझसे मत पूछ बहुरि उसने अतिदीनता सहित कहा कि तुम संकोच त्याग कर मेरा अवगुण मुझको लखावो तब वह सन्त कहने लगा कि मैंने तुम्हारे आहार और वस्त्रकी अधिकता सुनी है सो यह सुनकर उसने कहा कि अब फिर मैं यों भी न करूंगा पर जो और कुछ भी सुनाहोवे सो भी कहो तब उसने कहा कि और तो कोई अवगुण तुम्हारा मैंने नहीं सुनाहै इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जो पुरुष उपदेश करनेवाले को प्रियतम नहीं राखे तब जानिये कि उसकी बुद्धिपर अभिमान की प्रबलता है ताते चाहिये कि मित्रको प्रीतिसहित धर्म उपदेश करिये और पाप से बरजि रखिये पर जब वह मित्र तोरही किसी

कार्य विषे अवज्ञाकरे तब उसको क्षमाही करना योग्यहै बहुरि जब ऐसी अवज्ञा हो जावे कि उस करके मित्रताकी नष्टता होती होवे तब एकान्त में समझा देना प्रमाण है मित्रता का त्यागना प्रमाण नहीं पर जब वह कोमल वाणी करके न समझे और हृदय की तपायमानी करके कठोर वचन कहना पड़े तब इससे तो मित्रता का त्याग देना विशेष है काहे से कि मित्रता और संगति का प्रयोजन यही है कि शुभगुणों की वृद्धि होवे और सहनशीलता प्राप्त होवे सो जब संगति विषे स्वभाव की कठोरता होने लगी तब उसको त्यागनाही भला है ५ बहुरि छठीं युक्ति यहहै कि अपने मित्र के निमित्त भगवत् के आगे प्रार्थना किया करे और उसका भला चितवे इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब कोई अपने मित्र के निमित्त प्रार्थना करताहै तब इसको भी भलाई प्राप्त होती है ६ बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि मित्रकी मित्रता का निर्वाहकरे सो निर्वाह का अर्थ यह है कि जब कोई इसके मित्र की निन्दा करे तब निन्दकको शत्रु जाने और निन्दा सुनकर मित्रकी मित्रता का त्याग न करे ७ बहुरि आठवीं युक्ति यह है कि मिताई में दम्भ न करे अर्थात् बहुत स्तुति करनी और अपना प्यार प्रकट दिखावना सो यह सब निंद्य और दम्भ होताहै ताते चाहिये कि जिस प्रकार अपने आपसे बड़ाई कोई नहीं चाहता तैसेही मित्रमें भी समानता होवे और केवल हृदयही की प्रीति होवे इसीपर एक सन्त ने कहा है कि जिस मित्र की मंशा के निमित्त कुछ उद्यम और क्लेश करना पड़े तब वह मित्रही भला नहीं होता ८ बहुरि नवीं युक्ति यह है कि अपने आपको मित्र से नीचजाने अर्थात् मित्र से उपकार और सेवा की चाह न करे इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष ने एक सन्त के निकट कई बार कहा कि इस समय में धर्ममार्ग का प्रियतम महादुर्लभ है तब सन्तने कहाहै कि जब तू ऐसे मित्र को चाहे कि जो सबप्रकार तेरा सेवक होवे और तू उसका सेवक न होवे तब ऐसे मित्र तो निस्संदेह दुर्लभ हैं और जब तू सेवक हुआ चाहे तब स्वामी होनेवाले तो मेरी सभा में बहुत हैं ताते बुद्धिमानों ने इस प्रकार कहा है कि जो अपने आपको मित्र से विशेष जानता है सो पापी होताहै और जब आपको उसके समान देखता है तब भी दुःखी रहता है और जब सब से नीच जानता है तब उत्तम लाभ को पावता है ९ ॥

तीसरा सर्ग ॥

संसारी मित्रों और सम्बन्धियों और पड़ोसियों और दासोंके मिलाप के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जितना किसी का संबन्ध व्यवहार में अधिक होता है तितनाही उसका निर्वाह करना प्रमाणहै पर सब संबन्धों से जो उत्तम संबन्ध है सो भगवत् मार्ग की मित्रताहै और उस मित्रता की युक्ति मैंने पूर्व वर्णन करी है बहुरि जिस मनुष्य के साथ अधिक प्रीति न होवे और कुछ एक सात्त्विक धर्म का संबन्ध पायाजावे तो उसके मिलाप विषे भी कई युक्तियां चाहिये हैं सो प्रथम युक्ति यहहै कि जो पदार्थ इसको अनिष्ट होवे तब उस पदार्थ की प्राप्ति दूसरेको भी न चाहे इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि सर्वजीवोंका संबन्ध एक शरीरके अङ्गोंकी नाईं है सो जब एक अङ्गको कुछ दुःख होताहै तब सर्व शरीर को दुःख पहुँचता है तैसेही चाहिये कि किसी जीव का दुःख न चितवे १ बहुरि दूसरी युक्ति यह है कि मन वचन कर्म करके किसीको दुखावे नहीं पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जिस पुरुषकी रसना और हाथों करके कोई दुःख न पावे वह धर्मवान् कहाता है ताते अपने रसना और कर्म को ऐसी मर्याद विषे रखिये कि किसी प्रकार किसी मनुष्य को दुःख न पहुँचे २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि अभिमान करके आपको किसी से बड़ा न जाने काहे से कि अभिमानी मनुष्य भगवत् की ओर से बिमुख होताहै इसीपर महापुरुष को आकाशवाणी हुई थी कि दीनता और नम्रता को अङ्गीकार करो और अभिमानी न होवो ताते चाहिये कि किसी को नीच न देखे काहे से कि जिस को नीच देखता है सो जब वह सन्त होवे और यह उस को जानता न होवे तब क्या आश्चर्य है क्योंकि बहुत सन्त ऐसे गुप्त रहते हैं कि उनको भगवत् विना और कोई नहीं जानता ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि जब कोई इसको किसी की निन्दा सुनावे तब उसको श्रवण न करे काहे से कि यथार्थीपुरुष के वचन पर प्रतीति करनी प्रमाण है और निन्दकपुरुष यथार्थी नहीं होता इसी पर एक सन्त ने कहा है कि पिशुन और निन्दक अवश्यही नरकगामी होते हैं और योंभी जानना चाहिये कि जो पुरुष प्रयोजन विना किसी का छिद्र तुझको सुनावता है वह तेरा छिद्रभी लोगों के आगे अवश्यही वर्णन करेगा ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि सबको आगेही प्रणामकरे और किसी के साथ विरोध न राखे और

क्रोध की गांठकरके किसी से मौनभी न कालेवे ताते जब किसी से कुछ अवज्ञा होजावे तबभी क्षमाही करे ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि सब किसी के साथ यथाशक्ति भाव और उपकार करे और उसकी भलाई बुराई की ओर न देखे काहेसे कि जो वह उपकार का अधिकारी नहीं तौ तू तौ उपकार करने का अधिकारी है ताते तूही उपकारकर और धर्म की दृढ़ता यही है कि सबों के ऊपर दया करनी ६ बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि जो आपसे बड़ा होवे तिसकी बड़ाई राखे और जो आपसे लघु होवे तिसके ऊपर दयाकरे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब कोई अपने से बड़ों की बड़ाई रखता है तब उसकी बड़ाई महाराज औरोंसे रखता है ७ बहुरि आठवीं युक्ति यह है कि सब किसी से प्रसन्नवदन साथ मिले और वचन भी मीठा कहे ८ बहुरि नवीं युक्ति यह है कि जिसको कुछ वचन देवे तब उस का अवश्यही निर्वाह करे इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जब कोई पुरुष व्रत और भजन में सावधान होवे पर यह तीन अपलक्षण उसमें पाये जावें कि मुखसे झूठ बोले और वचन का निर्बाह न करे और चोर होवे तब वह प्रीतिमान् नहीं कहाजाता और उसका भजन पाखण्ड निमित्त होता है ९ बहुरि दशवीं युक्ति यह है कि किसी के छिद्र को प्रकट न करे काहे से छिद्र को गुप्त रखने करके इसके पापों को भी परदा होता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि धर्म तुम्हारा तबहीं दृढ़होवेगा जब लोगोंके अवगुणों को छिपावोगे और किसी के छिद्रकी खोज न करोगे काहेसे कि जब कोई किसीका छिद्र उघारताहै तब महाराज उस का भी छिद्र उघारते हैं और जब कोई किसीसे पाप का वर्णन करता होवे तबभी सुरति देकर श्रवण न करे १० बहुरि ग्यारहवीं युक्ति यह है कि आपभी अपकर्म न करे काहेसे कि जब इसका अपकर्म प्रकट होताहै तब केतेलोग इसकी निन्दा करते हैं अथवा इसको देखकर उनका चित्त चपल होजाताहै तब इस करके यह भी अधिक पापी होता है ११ बहुरि बारहवीं युक्ति यह है कि जब इसके वचन करके किसी को सुख प्राप्तहोवे तब आलस्य न करे १२ बहुरि तेरहवीं युक्ति यह है कि जब कोई किसी को दुखावे अथवा कोई किसी का धन चुरावे और धन वाला पास न होवे तौभी उसके धनकी रक्षाकरे काहेसे कि जब यह किसी दीन पुरुष की सहायता करताहै तब भगवत् इसके ऊपर सहायता करताहै १३ बहुरि चौदहवीं युक्ति यह है कि जब कोई पुरुष किसी कुसंग में अटक जावे और उस

को कुसंग से छुड़ायाचाहे तब कोमल वचन कहकर समझावे और उसको देख कर कठोर वचन न कहे १४ बहुरि पन्द्रहवीं युक्ति यह है कि निर्द्धनों के साथ प्रीतिकरे काहेसे कि धनवानों के संगसे इसको भी अचेतता प्राप्तहोती है ऐसेही एक सन्तने भगवत् के आगे प्रार्थना करी थी कि हे महाराज ! तुमको मैं कहां ढूंढ़ों तब आकाशवाणी हुई कि जिनके हृदयमें अधीनता होवे तिनके हृदय विषे ही मेरा निवासहै १५ बहुरि सोलहवीं युक्ति यह है कि सब किसीको सर्वप्रकार सुख पहुँचावे और उद्यम करके भी अर्थियों का अर्थ पूर्णकरे क्योंकि अर्थियों की सेवा भी भगवत् की सेवाहै और एक मुहूर्त्त भी किसी अर्थी के कार्य विषे सावधान होना सौ वर्ष की समाधि से विशेष है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि सबल और निर्बल की सहायता करो तब लोगों ने पूछा कि सबल की सहायता क्योंकर करिये तब महापुरुष बोले कि उसको निर्बल के दुखाव से बरजि रखना यही उसकी सहायता है और योंभी कहाहै कि किसी के चित्त को प्रसन्न करने के समान और भजनही कोई नहीं और योंभी कहाहै कि दो लक्षण सर्वगुणों का मूल हैं सो एक तो हृदय की प्रतीति दूसरे जीवों को सुखदेना और दो पाप सर्व पापों का मूल हैं सो एक प्रतीति की हीनता दूसरा जीवों को दुखावना ॥ इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् रुदन करताथा तब लोगों ने पूछा तुम क्यों रोते हो तब उसने कहा कि एक पुरुष ने मुझ को दुखाया है सो मैं इस निमित्त रोताहूं कि परलोक में जब उससे पूछेंगे तब वह बिचारा क्या उत्तर देवेगा १६ बहुरि सत्रहवीं युक्ति यह है कि जब किसीको कुछ रोग होवे तब उस मे जाकर पूछे और यद्यपि उसके साथ मित्रता कुछ न होवे तबभी रोगी की सुरति लेना प्रमाण है और सर्वप्रकार रोगी मनुष्य की सेवा और सहायता करे बहुरि रोगी को चाहिये है कि जब कोई उसको आकर पूछे तब भगवत् का धन्यवाद करे और दुःख का अधिक बखान न करे और ऐसे जाने कि इस दुःख से मेरे पाप खण्डित और नष्ट होवेंगे और रोगका दूरहोना औषधके आश्रित नहीं ताते सर्व प्रकार भगवत् का भरोसा करे १७ बहुरि अठारहवीं युक्ति यह है कि जिस प्रकार यह युक्तियें मैंने वर्णन करी हैं तिन विषे सावधान होवे और ऐसे पड़ोसियों पर भी दया राखे काहेसे कि जिसके साथ व्यवहार में इसका अधिक सम्बन्ध होताहै तब उसके मिलाप में भी भाव और दया रखनी प्रमाण है ताते

चाहिये कि निकट रहनेवाले को भी किसी प्रकार दुखावे नहीं और उसके साथ भलाईकरे अथवा जब उसको निर्द्धन देखे तब उसकी सुरति लेवे तैसे ही संबन्धियों और दास दासियों परभी सर्वदा दयाकरे तात्पर्य यह है कि सर्व मनुष्यों का अधिकार देख कर बर्ते और जिसके साथ व्यवहार अथवा परमार्थ कुछ निकटता होवे तब उसकी युक्ति को पहिंचाने कि यह कितने भाव और सत्कार उपकार का अधिकारी किस रीति से है तिसके साथ उसी भांति वर्ते ईर्षा और अभिमान कृपणता आदिक मलिन स्वभावों से रहित होवे और किसीका कृतघ्नी न होवे बहुरि भाव और दया और सहनशीलता बिषे अपनी आयुष् बितावे इसी पर महापुरुषने भी कहाहै कि जब कोई तुम्हारा विरोधी होवे तौभी उसके साथ भलाईही करो और जब तुमको कुछ देवे नहीं तब तुमही उसको कुछदेवो ॥

चौथा सर्ग ॥

एकान्त के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि इस वार्त्ताविषे बुद्धिमानोंने परस्पर चर्चा कियाहै सो कितनों ने तो आचार्यों की सङ्गति को विशेष कहाहै और कितनों ने एकान्त रहनेको प्रमाण किया है पर जो जिज्ञासु अन्तर्मुख हुये हैं तिन्हों ने एकान्तको अङ्गीकार किया है इसीपर एक सन्तने कहा है कि जिसने भोगों से संयम किया है तिसको जगत्की कामना कुछ नहीं रही और जिसने ईर्षा का त्याग किया है सो दयावान् होताहै और जिसने कुछ दिन पुरुषार्थ कियाहै सो अविनाशी सुख को प्राप्त हुआहै और जिसने एकान्त को अङ्गीकार किया है सो जगत् के जञ्जालोंसे छूटाहै और एक और सन्त ने कहा है कि भजन के अभ्यास का मूल मौन और एकान्तहै और एक और सन्तने कहाहै कि जो पुरुष मुझको प्रमाण न करे और जब मैं रोगी होऊं तब मुझको आकर न पूछे तब मैं उसका उपकार जानताहूं और किसी जिज्ञासुने एक सन्तसे कहाथा कि मैं तुम्हारी संगति किया चाहता हूं तब उसने कहा कि जब मेरी मृत्यु होवेगी तब तू किसके सङ्ग रहेगा तब उसने कहा कि तब मैं भगवत्के आश्रित रहूंगा तब उसने कहा कि तू अब हीं भगवत्का सङ्गी हो सो एकान्त और सङ्गति की महिमा बिषे ऐसे ही वचन बहुत आयेहैं पर जबलग इनके गुण और अवगुण को प्रकट न किया जावे तबलग समझना इस भेद का कठिन है ताते मैं एकान्तके षट्गुण वर्णन करताहूं

फिर संगति के षट्गुण वर्णन करूंगा सो एकान्त का प्रथम गुण यह है कि भजन और विचार की सिद्धता एकान्त विषे होती है और सर्व भजन का मूल यह है कि भगवत्की कारीगरी का विचार करना और इससे भी उत्तम अवस्था यह है कि अपने चित्तकी वृत्तिको भगवत् के स्वरूप विषे लीनकरना और आप सर्व पदार्थों को विस्मरण करना सो ऐसी एकत्रता एकान्त विना सिद्ध नहीं होती काहेसे कि माया के सर्व पदार्थ इस जीव को बध्यमान करनेवाले हैं और जिज्ञासुकी बुद्धि में ऐसा बल दुर्लभ होता है जो संसार विषे निर्लेप रहे ताते अभ्यासके निमित्त एकान्तमें रहनाही विशेष है काहेसे कि महापुरुषभी आदि अवस्था में पहाड़ की कन्दरा में जाय रहेथे बहुरि जब पूर्ण अवस्था को प्राप्त हुये अभ्यास करके तब ऐसे निर्लेपहुये कि शरीर करके लोगों में रहे और चित्त उन का भगवत् के चरणों में रहा और महापुरुष ने यों कहा भी है कि मुझको भगवत् की प्रीतिने और सबकी प्रीति से विरक्त किया है सो इस अवस्था का प्राप्त होना आश्चर्य नहीं इस करके कि यह जीव परमपद का अधिकारी है इसीपर एक सन्तने कहा है कि मैं तीसवर्ष से भगवतही के साथ वचन कहताहूं और यह लोग ऐसे जानते हैं कि हमारे साथ बोलता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि इस अवस्था की प्राप्ति असम्भव नहीं काहे से कि जब किसी मनुष्य को किसी स्थूल पदार्थ की अधिक प्रीति होती है तौ भी ऐसा लीन होजाता है कि लोगों में बैठा हुआ भी उनके वचनों को नहीं सुनता और उनको देखता भी नहीं पर ऐसी अवस्था का अभिमान करना अयोग्य है क्योंकि बहुत से पुरुष तो ऐसे होते हैं कि लोगों के मिलाप विषे उनकी बुद्धि पसरजाती है इसीपर एक वार्त्ता है कि जैसे एक तपस्वी से किसी ने पूछा था कि तू अकेलाही रहता है तब त- पस्वी ने कहा कि मेरा संगी भगवत् है ताते मैं अकेला नहींहूं॥ बहुरि एक और सन्त ने किसी एकान्ती से पूछा था कि तू अकेला क्यों रहता है और तैंने संग का किस निमित्त त्याग किया है तब उसने कहा कि मैं अपने कार्य में ऐसा मग्नहूं कि किसी के मिलाप की इच्छा मुझको नहीं फुरती बहुरि उस सन्तने पूछा कि वह कार्य क्या है ? तब उसने कहा कि क्षण २ में सर्वदा भगवत् के उपकार होते रहते हैं और मुझ से पाप होते रहते हैं ताते मैं अपने पापों को क्षमा करावता हूं और महाराज के उपकारों का धन्यवाद करताहुआ रहता हूं

इसीकारण से मुझको किसी के मिलाप का सावकाश नहीं रहता और न अभिलाष करसक्ताहूं बहुरि उस सन्तने कहा कि तू धन्य है ॥ बहुरि एक जिज्ञासु किसी सन्त के निकट गया था तब उन्हों ने पूछा कि तू किस निमित्त आया है तब उसने कहा कि आप के संग में विश्राम के निमित्त आयाहूं तब उन्होंने कहा कि जिसने भगवत् को पहिचाना है वह और किसी के मिलाप में क्योंकर विश्राम चाहता है बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि जब रात्रि आवती है तब मैं प्रसन्न होता हूं कि प्रभातपर्यन्त एकान्त होकर भगवत् के भजन में स्थित रहूंगा बहुरि जब सूर्य उदय होते हैं तब मुझको शोक होता है कि दिन में अवश्यही लोगों का विक्षेप होवेगा बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि लोगों के वाद विवाद से जिसकी प्रीति महाराज के भजन में अधिक नहीं होती वह पुरुष बुद्धिहीन है और उसका हृदय भी मलिन है अपनी आयुष् व्यर्थ बितावता है बहुरि एक और बुद्धिमान् ने कहा है कि जिस पुरुष को किसी मनुष्य के मिलने और देखने की अभिलाष उपजती है तब जाना जाता है कि इसके हृदय में आत्मसुख का रस कुछ नहीं ताते स्थूलपदार्थों की सहायता चाहता है और योंभी कहा है कि लोगों के मिलाप में जिस पुरुष की प्रीति है वह अत्यन्त निर्द्धन है ताते प्रसिद्ध हुआ कि उत्तम भजन हृदय का अभ्यास है और अभ्यासही करके भजन का रहस उपजता है बहुरि विचार और ज्ञान की प्राप्ति अभ्यासही करके होती है सो यह सर्व साधनों का फलहै काहे से कि इस जीव को परलोक में अवश्य जाना है सो जब यह पुरुष महाराज के भजन की एकत्रता के साथ वहां जाता है तब उत्तम भाग्यवान् कहाता है पर भजन का रहस और विचार का अभ्यास एकान्त बिना हो नहीं सक्ता १ बहुरि दूसरा गुण यह है कि एकान्त करके कितनेही पापों से छूटता है काहे से कि लोगों के मिलाप में चार पाप तो अवश्यमेव उपजते हैं और इन पापों से कोई बिरलाही छूटता है सो प्रथम पाप निन्दा है कि निन्दा करके धर्म नष्ट होताहै और दूसरा पाप यह है कि जब किसी मनुष्य का अपकर्म देखकर उसको उपदेश न करे तब शास्त्रों की मर्याद से बिमुख होता है और जब उपदेश करके उसको पाप से बर्जना चाहे और उसकी रुचि न होवे तब उस पुरुष के साथ बिरोध होताहै बहुरि तीसरा पाप दम्भ और कपट है सो दम्भ से छूटना भी महाकठिन है काहे

से कि जब किसी की मनोहार में और उसकी प्रीति में दृढ़ होवे तब विशेषता को पाता है और जब ऐसे न करे तब उनके विरोधसे नहीं छूटसक्ता बहुरि थोड़ा सा पाप तो यह है कि जब अचानकही किसी को मिलता है तब ऐसे कहताहै कि मुझको तुम्हारे दर्शन की बहुत अभिलाप थी सो जब इसके हृदयमें उसकी प्रीति ही कुछ न होवे तब ऐसा कहना झूठहोता है और जब इस प्रकार न कहे तब उसकी मनोहार नहीं होती बहुरि मनोहार के निमित्त उससे पूछता है कि तेरा क्या हाल है? और तेरे संबन्धी कैसे हैं पर हृदय में उसकी प्रीति कुछ नहीं रखता तब यह केवल पाखण्ड होताहै इसी पर एक सन्तने कहा है कि जब किसी के साथ इसका प्रयोजन होता है तब अपने मनोरथ के निमित्त इतनी स्तुति करताहै कि अपने धर्महीसे भ्रष्ट होजाता है और वह प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता बहुरि कपट करके भगवत् की ओरसे बिमुख होता है इसी पर एक और वार्त्ता है कि एक पुरुष किसी सन्तके पास आया था तब सन्त ने पूछा कि तू किस निमित्त आया है तब उसने कहा कि तुम्हारे दर्शन की प्रीति करके आया हूं तब उन्होंने कहा कि तू तो प्रीतिके दूर करने को आया है काहेसे कि तू मेरी होती और अनहोती स्तुति करेगा और मैं तेरी बड़ाई को प्रकट करूंगा सो यह सबही झूंठ और पाखण्ड है ताते जो पुरुष आपको संसार के मिलाप में भी बचाय रखता है उसको मिलाप करके कुछ विघ्न नहीं होता पर यह अवस्था महादुर्लभ है इसीकारण से जो आगे प्रीतिमान् हुये हैं वह परस्पर एक दूसरे के व्यवहार की वार्त्ता नहीं पूछते थे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् ने एक प्रीतिमान् से पूछाथा कि तेरी क्या अवस्था है? तब उसने कहा कि सुख और आनन्द है तब दूसरे सन्त ने कहा कि सुख आनन्द तो तबहीं होवेगा जब आत्मसुख को प्राप्तहोगे बहुरि एक और सन्तसे भी किसी ने पूछा था कि तुम्हारी क्या अवस्था है? तब उन्होंने कहा कि जिसपद करके सुख प्राप्त होता है तिसका प्राप्तहोना मेरे हाथ नहीं और जिन कर्मों करके दुःख प्राप्त होता है तिनका निवृत्त करना भी मुझसे नहीं होसक्ता बहुरि मैं सर्वदा अपनी चितवनी में बध्यमान रहता हूं और कार्य मेरा महाराज के हाथ है ताते मुझसा दुःखी और अनाथ कोई नहीं॥ बहुरि एक और सन्त से किसी ने पूछा था तब उन्होंने कहा कि मैं महापापी और निर्बल हूं ताते अपनी प्रारब्ध को पड़ा भोगता हूं और काल की ओर खड़ा

निहारता हूं ॥ बहुरि इसी प्रकार किसी ने एक और सन्त से पूछा था कि तेरी क्या अवस्था है ? तो उन्होंने कहा कि सुख है तब उसने कहा कि सुख तो तब होवे जब नरकों के दुःख से निर्भय हूजिये बहुरि एक और सन्त से किसीने पूछाथा कि तुम्हारी क्या अवस्था है ? तब उन्होंने कहा कि जो पुरुष प्रभात समय उठै और इतना भी न जानसके कि मैं रात्रिपर्यन्त जिऊंगा अथवा न जिऊंगा तब उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये ? बहुरि एक सन्त से किसी ने पूछा कि तुम्हारी क्या अवस्था है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुष की आयुर्बल तो घटती जावे और पाप बढ़तेजावें उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये ? बहुरि एक और बुद्धिमान् से किसीने पूछाथा कि क्या अवस्था है ? तब उन्हों ने कहा कि दिया तो महाराज का खाताहूं और आज्ञा मन की मानताहूं बहुरि एक और सन्त से किसी ने अवस्था को पूछा तब उन्होंने कहा कि जिसकी आयुर्बल क्षण २ घटती जावे और वह जाने कि मैं बड़ा होता जाताहूं तब उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये ? बहुरि एक और सन्त से किसीने पूछा था कि तुम्हारा क्या हाल है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुष को अवश्यही मरनाहोवे और परलोक में दण्ड का अधिकारी होनाहोवे तब उसकी कौन अवस्था कहिये बहुरि एक सन्त से किसी ने पूछा कि तुम्हारी क्या अवस्था है ? तब उन्होंने कहा कि जो मेरा एक दिन भी सुखसे बीते तौभी भला है तब उसने कहा कि क्या अब तुमको सुख नहीं ? तब उन्होंने कहा कि जिस दिन मुझसे कोई पाप न होवे तब मैं सुख का दिन वही जानताहूं बहुरि एक प्रीतिमान् से मृत्युसमय किसी ने पूछाथा कि तुम्हारी अब क्या अवस्था है ? तब उन्होंने कहा कि जिसको दूरदेश जाना होवे और उसके पास तोशा कुछ न होवे और महाघोर अँधेरे में जिसका मार्ग होवे तिस समय मार्ग में जाना जिसको होवे और संगी भी कोई न होवे बहुरि न्याय करनेवाले महाराज के सम्मुख पहुँचना होवे और वहां आपको बचने का आश्रय भी कुछ न होवे तब उसकी क्या अवस्था वर्णन करिये ॥ बहुरि एक और सन्त ने किसी पुरुष से पूछाथा कि तेरा क्या हाल है तब उसने कहा कि मुझको पांचसौ रुपये देने हैं तिसके शोच में रहताहूं तब उन्होंने सहस्र रुपये उसको देकर कि पांच सौ तौ देना देवो और पांचसौ रुपये से अपनी जीविका करो और फिर इस प्रकार कहनेलगे कि जब प्रीति करके किसी की अवस्था पूछिये और उसका

दुःख सुनकर सहायता न करिये तब वह पूछनाही कपट होता है ताते इसप्रकार चाहिये कि जब किसीसे कुछ पूछिये तब उसका प्रतिपाल करिये अथवा पूछेही नहीं ताते आगे जो प्रीतिमान् सन्त हुये हैं तिनकी ऐसी अवस्था थी कि यद्यपि व्यवहार में परस्पर अपनी प्रीति प्रकट करते थे तौभी हृदय करके एक दूसरे को ऐसा प्रियतम रखते थे कि जब किसी को कुछ अर्थ होताथा तब अपनी कुछ सामग्री दुराय नहीं रखते थे और इस समय विषे अब ऐसे लोग प्रकट हुये हैं कि एक दूसरेकी मनोहार के निमित्त उनके सम्बन्धियों और पशुवों की भी बात पूछते हैं और जब उसको एक पैसे का भी अर्थ होताहै तो विमुख होजाते हैं सो यह सांची प्रीति नहीं कहाती इसी का नाम कपट की प्रीतिहै ताते इस जगत् के मिलाप का ऐसाही स्वभाव है कि जब हृदयपूर्वक इनके साथ मिलाप करिये तब कपट और पाखण्ड के समुद्र में डूबना होता है और जब उनको मिलकर ऐसे मनोहार न करिये तब यह लोग विरोधी होजाते हैं और इस का छिद्र ढूंढ़ने लगते हैं और इस करके अपना धर्मभी खोवते हैं और इसके धर्म को भी नष्ट किया चाहते हैं बहुरि जगत के मिलाप में चौथा पाप यह है कि यह मनुष्य जिनकी संगति करता है तब अवश्यही उसका स्वभाव इसके हृदय में दृढ़ होजाता है और यद्यपि इसको उस स्वभाव का ज्ञानही कुछ नहीं होता तौ भी निस्संदेह वह स्वभाव बढ़जाता है और उस करके कितनेही पाप उपजते हैं और अचेत पुरुषों की संगति में यह भी अचेत होजाता है बहुरि जब मायाधारियों की संगति करता है तब इस को भी माया की तृष्णा उपज आती है और यद्यपि किसी भोग को निन्द्यही जानता है पर भोगी मनुष्यों की संगति करके उस कर्म की दोषदृष्टि नष्ट होजाती है बहुरि जब किसी अपकर्म की वार्त्ता सुनता है तब इसके हृदय में भी उसकी मलिनता प्रवेश करजाती है जैसे महापुरुषों की वार्त्ता सुनकर इसका हृदय कोमल होजाता है तैसेही भोगियों और पापियों की वार्त्ता सुनकर इसको भी रुचि उपजआती है ताते प्रसिद्धहुआ कि जिसकी वार्त्ता सुनने से इसका हृदय मलिन होवे तब उसकी संगति में क्यों न मलिनता उत्पन्न होवेगी ? इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि कुसङ्गी मनुष्यों की संगति ऐसीही है जैसे कोई लुहार के निकट जाबैठे अर्थ यह कि यद्यपि अपने वस्त्र को जलने से बचा राखे तौभी उष्णता और धुवां तो अवश्यही पहुँचेगा

बहुरि सात्त्विकी मनुष्यों की सङ्गति जो है सो गन्धी के हाट की नाईं है कि यद्यपि उससे मोल करके सुगन्ध न लेवे तौभी उसकी सुगन्धता तो निस्सन्देह नासिका में पहुँचती है तात्पर्य यह है कि मनमुखों की संगति से अकेलाही रहना भला है और अकेला रहने से सात्त्विकी मनुष्यकी संगति विशेष है इसी पर सन्तजनों ने कहा है कि जिस पुरुष की संगति में माया की प्रीति दूर होवे और भगवत् की प्रीति उत्पन्न होवे तब उसकी संगति को उत्तम जानो और कदाचित् उसका त्याग न करो बहुरि जिसकी संगति से तुमको विषयों में प्रीति होवे तिसका त्यागनाही भला है पर वह विद्यावान् जो माया का लोभी होवे और उसकी करतूति वचन के अनुसार न होवे तब उसकी संगति का त्यागना अवश्यही प्रमाण है काहे से कि उसकी संगति करके जिज्ञासु की प्रीतिही घटजाती है क्योंकि जिज्ञासुकी बुद्धि आदि अवस्था में परिपक्व नहीं होती सो विद्यावान् को देखकर जिज्ञासु भी ऐसा अनुमान करता है कि जब माया का त्यागना विशेष होता तब यह विद्यावान् क्यों नहीं त्याग करता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष प्रीतिसंयुक्त मिठाई को खाताजावे और मुख से इस प्रकार कहे कि यह मिठाई हालाहल अर्थात् विष है ताते इसके आहार की अभिलाष न करो तब उसके वचनपर किसी को प्रतीति नहीं आवती काहे से कि उसकी प्रीति करके खानाही तृष्णा को उपजाता है और इसमें यही सिद्ध होता है कि यह पुरुष अपने लोभ के निमित्त मिठाई को विष बताता है तैसेही ऐसे मनुष्य भी बहुत से हैं कि उनको आदि में अशुद्ध आहार और पापों विषे दोषदृष्टि होती है पर विद्यावानों को निःशङ्क देखकर उनकी दोषदृष्टिभी नष्ट होजाती है और निडर होकर बर्तने लगते हैं इसी कारण से विद्यावानों का छिद्र प्रकटकरना महाअयोग्य है इस करके कि प्रथम तो निन्दा होती है दूसरे उसकी वार्ता सुनकर और लोग भी ढीठ होजाते हैं ताते इतरजीवों का अधिकार यह है कि जब किसी विद्यावान् के छिद्र को देखे तब दो प्रकार करके ग्लानि को निवारण करे सो प्रथम तो ऐसे जाने कि यद्यपि इस विद्यावान् से यह अवज्ञा हुई है तौ भी उसकी विद्याही पापों को क्षमा करानेवाली है पर जो मनुष्य विद्या से भी हीन होवे तो उसकी अवज्ञा क्योंकर क्षमा होवेगी और दूसरे ऐसे जानना प्रमाण है कि विद्या करके जो पापकर्म को बुरा जानता है और उस

बिषे वर्त्तमान भी होता है तो उसका वर्तना संसारी जीवों की नाईं नहीं होता काहे से कि विद्यावानों की युक्ति को संसारीजीवों की बुद्धि पा नहीं सक्की ताते इतरजीवों को चाहिये कि विद्यावानों के ऊपर दोषदृष्टि न राखें तब उनका धर्म नष्ट न होवे तात्पर्य यह कि बहुत से मनुष्यों की संगति भी इसके धर्म को नाश करनेवाली है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि जगत् के मिलाप से एकान्तही रहै तो विशेष है २ बहुरि तीसरा गुण यह है कि सब संसार में वैरभाव और ईर्षा और पन्थों के विरोध आदिक विघ्न बड़े उपजते हैं सो एकान्त रहनेवाला पुरुष उन सब विघ्नों से मुक्त रहता है और जिसने जगत् के मिलाप को अङ्गीकार किया है तिसके धर्म के नाश होने का भय होता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि लोगों की संगति त्यागकर अपने घर में बैठरहो और रसना को अधिक बोलने से वर्ज राखो और जिसको तुम भलाई समझतेहो तिसको अङ्गीकार करो और जिस करतूति के भेदको तुम समझ न सको उसको त्यागकरके आत्मधर्म बिषे स्थित होवो और संसार के कार्यों को विस्मरण करो ३ बहुरि चौथा गुण यह है कि एकान्त रहनेकरके यह पुरुष लोगों की उपाधि से मुक्त रहताहै काहेसे कि जब लोगों के साथ मिलाप करता है तब निन्दा और दोषदृष्टि और लोभ से रहित नहीं होसक्ता और जब संसारी जीवों के सुख दुःख का संगी होता है तब इसकी सर्व आयुर्बल व्यर्थ होती है और जब ऐसे न करे तब वह लोग इसको बुरा जानकर दुर्वचन कहते हैं बहुरि जब किसी के साथ तो मिलापकरे और किसी से एकान्त रहे तौभी विषमता होती है और वह भी एक दूसरे को देखकर बिरोधी होते हैं ताते जब सर्वत्याग करके एकान्त में स्थित होता है तब सब विघ्नों से मुक्त रहता है और कोई मनुष्य भी अप्रसन्न नहीं होता इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् सर्वदा भगवत् वाक्य की पोथी को लेकर श्मशान में रहता था तब किसी ने पूछा कि तुम अकेले क्यों रहते हो तब उसने कहा कि एकान्त के समान सुखस्थान और कोई मैंने नहीं देखा और श्मशान समान उपदेष्टा भी और कोई नहीं और पोथी के समान सुखदायक मित्र भी और कोई नहीं देखा ४ बहुरि पांचवां गुण यह है कि एकान्ती पुरुष से सबलोग भी निराश होजाते हैं और वह भी सब से निराश होजाता है और यह आशाही सर्व दुःखों का मूल है क्योंकि जब धनवानों

के साथ मिलाप करताहै तब अवश्यही इसको भी तृष्णा उपजती है बहुरि जब तृष्णा उत्पन्न हुई तब निरादर और अपमान को पाता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि मायाधारी जीवों की सुन्दरताई को न देखो इस करके कि वह माया ही उनको छलनेवाली है बहुरि योंभी कहा है कि जब तुम धनवानों के सुखकी ओर देखोगे तब भगवत् के उपकार से बिमुख होवोगे और अधिक सुखों की अभिलाष विषे दुःख पावोगे ५ बहुरि छठवां गुण यह है कि एकान्त करके मूर्खों और पापियों की संगति से छूटजाता है सो मूर्खों की संगति कैसी है कि उनका देखनाही चित्त को मलिन करता है इसी पर एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि जैसे ज्वर करके शरीर दुःखी होताहै तैसेही मूर्खों की संगति करके हृदय तपायमान होता है ताते एकान्त बिषे ऐसे परमदुःख से मुक्त रहता है और स्वाभाविक ही इसके गुण औ अवगुण की ओर दृष्टि नहीं पड़ती ६ (अथ प्रकट करना संगति के गुणों का) ताते जान तू कि जितने अर्थ और परमार्थ के लाभ हैं सो परस्पर मिलाप करके प्राप्त होते हैं और एकान्त करके उनको पा नहीं सक्ने सो प्रथम लाभ यह है कि विद्याभी संगति करके प्राप्त होतीहै और जबलग यथार्थविद्या का वेत्ता न होवे तबलग एकान्त रहना भी फलदायक नहीं होता काहेसे कि जो पुरुष विद्या पढ़े विना एकान्त बिषे स्थित रहताहै तब निद्रा और व्यर्थ संकल्पों में उसका समय बीतजाता है और यद्यपि यत्न करके भजनमें सदा लगारहै तौभी यथार्थविद्या के समझे विना अभ्यास नहीं होता और छलों से रहित नहीं हो सक्ना बहुरि जब अभिमान से भी रहित होवे तब जिसप्रकार भगवत् को जानना चाहिये सो यथार्थविद्या विना किसी प्रकार जान नहींसक्ना और किसी ऐसे विपरीत निश्चय को अङ्गीकार करता है कि उस करके भगवतही से विमुख होजाता है अथवा मन्मथ करके किसी कुमार्ग को अङ्गीकार करलेता है और उस कुमार्ग के अवगुण को जान नहींसक्ना तात्पर्य यह कि एकान्तमें रहना भी किसी विद्यावान्ही को फलदायक होताहै इसी कारण से इतरजीवों को एकान्त प्रमाण नहीं कहा काहेसे कि इतरजीवों की बुद्धि रोगी की नाईं है अर्थ यह कि रोगी को वैद्यकी संगति का त्यागकरना प्रमाण नहीं और जब वह रोगी आपही अपना उपचार करनेलगे तब शीघ्रही मृत्यु को पावता है इसीकारण से शुभ उपदेश और विद्या का फल भी अधिक है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष

यथार्थविद्या को समझा होवे और उसके अनुसार उसकी करतूति भी होवे बहुरि और लोगों को भी उपदेशकरे तब उसकी अवस्था महाउत्तम कहीजाती है सो किसी को उपदेश करना भी एकान्त में नहीं होसक्ता ताते प्रसिद्ध हुआ कि किसी को उपदेश करना और किसीसे कुछ उपदेशलेना यह दोनों एकान्त में नहीं सिद्ध होसके पर उपदेश करने का अधिकारी वह है जिसकी मंशा निष्काम होवे और धनवान् के प्रयोजन रहितहोवे बहुरि विद्या भी वही सिखावे जिस करके धर्मकी प्राप्ति होवे और जिज्ञासु के अधिकार अनुसार उपदेशकरे पर जब वह विद्यार्थी यथार्थ की युक्ति को अङ्गीकार न करे तब जानिये कि वह भी मानके निमित्त ही पढ़ता है ताते जिज्ञासु को यही उपदेशकरना योग्य है कि उत्तम पवित्रताई हृदय की शुद्धताहै सो हृदय तबहीं शुद्ध होता है जब मायिक पदार्थों से विरक्त होता है ताते सर्वमन्त्रोंका बीजमन्त्र यही है कि स्थूलपदार्थ सब नाशवन्त हैं और भगवत् सर्वदा सत्यस्वरूप है ताते सर्वप्रकार महाराजही का दासहुआ चाहिये और २ किसी पदार्थ में सक्त न होवे क्योंकि जो पुरुष अपनी वासना में बध्यमान है वह अपनी वासनाही का दास है और उसने यथार्थभेद को समझा नहीं ताते यथार्थभेद यह है कि मलिन स्वभावों से मुक्त होना और उत्तम स्वभाव को ग्रहण करना और उत्तम विद्या बिषे जिसकी प्रीति न होवे और नाना प्रकारके प्रवृत्ति मार्गोंकी विद्या पढ़नाचाहै तब जानिये कि यह विद्यार्थी धन और मान के निमित्त विद्या को पढ़ता है ताते उसको पढ़ावना प्रमाण नहीं काहेसे कि उसकी विद्या विघ्नोंका कारण है तात्पर्य यह कि मनही इस पुरुष का परममित्रहै और मन सर्वदा इसको दुःखों में डालता है पर जो पुरुष मन को विरुद्ध और विपरीत करके जीतने का यत्न नहीं करता और और पन्थों के वाद विवाद और विरुद्ध बिषे आसक्त होता है तब ऐसे जानिये कि उसका मनही उसको नचावता है बहुरि इसके हृदय में जो मलिन स्वभाव हैं जैसे ईर्षा, अभिमान, दम्भ, धनकी प्रीति आदिक जितने अवगुण हैं सो इस जीव की बुद्धि को नाश करनेवाले हैं और हृदय को भ्रष्ट करदेते हैं पर जो पुरुष ऐसे स्वभावों के दूर करने का यत्न न करे और प्रवृत्तिमार्ग की क्रिया को सावधान होकर वारम्बार विचारा करे तब किस प्रकार निर्मल नहीं होता ताते जिस पुरुष की मंशा निष्काम न होवे तब उसको विद्या पढ़ावनी ऐसी है जैसे कोई पुरुष

किसी चोर को तलवार देवे बहुरि जब इस प्रकार कोई प्रश्नकरे कि तलवार तो चोर को शुभमार्ग में नहीं लगाती पर विद्या का पढ़ना ऐसा है कि यद्यपि इस की मंशा सकाम होवे तौभी विद्या के बल करके अकस्मात् निष्काम होजाता है तब इसका उत्तर यह है कि नाना प्रकार के मतों और पन्थों की जो विद्या है सो इस विद्या करके कदाचित् निष्कामता नहीं उपजती काहेसे कि जिस विद्या करके निष्कामता उत्पन्न होती है और भोगों से मुक्त होता है सो विद्या सन्तजनों के वचन हैं और यह विद्या ऐसी है कि सर्व मनुष्यों का अधिकार है और सब किसी को लाभदायक है और जब कोई पुरुष कठोरचित्त होवे और उसकी मंशा मलिनहोवे तब वह पुरुष अकस्मात् लाभसे अभाग्र भी रहताहै पर जो पुरुष इस उत्तम विद्या का ज्ञाता है और वह अपने हृदयमें कुछ अभिमान की अभिलाषा देखे तब उसको चाहिये कि किसीको उपदेश न करे काहेसे कि यद्यपि उपदेश करके और मनुष्यों को गुणहोता है पर मान की अधिकता करके उसको भगवत् की ओरसे अवगुण होजाता है तब इसका दृष्टान्त यहहै कि जैसे दीपक करके मन्दिर में तो प्रकाश होताहै पर वह दीपक क्षण २ विषे घटता जाताहै तैसेही मानी के उपदेश करके औरों को गुण होवे पर उसकी परमहानि का कुछ उपाय उस करके नहीं और वृद्धि होती जाती है इसीपर एक सन्तने कहाहै कि मैंने सात संदूक पोथियों के पृथ्वी में दबवादिये और उपदेश लोगों को नहीं किया जब किसीने पूछा कि आप उपदेश क्यों नहीं करते तब उन्होंने कहा कि मेरे हृदय में जब मौनकर रहने की अभिलाष होती तब मुझको उपदेश करना प्रमाण था पर मैं अपने हृदय में उपदेश करने की अभिलाष अधिक देखता हूं ताते उपदेश करने को त्यागकरके मैंने मौन को अङ्गीकार कियाहै इसीपर एक सन्तने एक जिज्ञासु से कहाथा कि तेरी अवस्था तो उत्तम है पर जब तुझको माया की प्रीति न होती तब उसने पूछा कि माया के साथ मेरी प्रीति क्योंकर है बहुरि उस सन्तने कहा कि जगत के मिलाप और उपदेश करने की तेरे में अधिक रुचि है तब उस जिज्ञासु ने कहा कि मैंने अब इससे आगे को उपदेश करने का त्याग किया तात्पर्य यह है कि विद्या का पढ़ने और पढ़ाने द्वारा निष्कामी कोई विरला होताहै ताते अधिकारी विना विद्या का पढ़ावनाही पाप है और पाढ़वना भी उसी को प्रमाण है जिसको अपने का कुछ प्रयोजन न होवे तब ऐसे उपदेश

करनेवालेको एकान्त रहने से उपदेश का करना विशेष है परउपदेश सुननेवाले को इस प्रकार चाहिये है कि उपदेश करनेवाले पर दोषदृष्टि न लावे और ऐसा जाने कि यह मुझको मेरे कल्याणके निमित्त उपदेश करता है अपने मानके निमित्त नहीं करता सो अपने कल्याण के निमित्त यथार्थ उपदेश को अङ्गीकार करे और उसके ऊपर भावना शुद्धकरे पर जिसका हृदय मलिन होता है वह औरों पर भी भावना मलिन रखताहै और उसको भी अपनी नाईं जानताहै १ बहुरि दूसरा लाभ यह है कि जीवों को प्रसन्नता पहुँचावनी भी संगति करके प्राप्त होती है क्योंकि जिस पुरुष ने एकान्त को ग्रहणकिया है वह किसीकी सेवा नहीं करसक्ता और जो पुरुष किसी को सेवा करके प्रसन्नकरता है उसको प्रसन्नता पहुँचती है २ बहुरि तीसरा लाभ यहहै कि सहनशीलता आदिक जितने गुण हैं सो यह भी संगति विषे प्राप्तहोते हैं क्योंकि जिस पुरुष का मिलापही किसी के साथ न होवे वह सहनशीलता किस प्रकार करे पर जिज्ञासु को सहनशीलता और धैर्य आदिक शुभगुण अवश्यमेंही चाहिये हैं और अधिक लाभदायक हैं इस करके कि इस पुरुष का स्वभाव तबहीं भला होता है जब दुष्टों के वचनों को सहता है इसी कारण से जिज्ञासु जनों ने भिक्षा आदिक कर्मोंको अङ्गीकार किया है और ऐसी क्रिया करके प्रथम तो अभिमान दूर होता है दूसरे लोगों के ताड़ना और दुर्वचनों को सुनकर क्षमा और सहनशीलता की वृद्धि होती है सो यद्यपि इस समय में लोगों की कामना धन और मानके निमित्त होती है पर पहले जिज्ञासु जन इसी मनोरथ से संग करते थे कि जिस से अभिमान टूटे और सन्तों की सेवा करके कृपणता भी दूर होवे और उनकी अशीष को प्राप्त करें और आदि अवस्था में महापुरुषों ने भिक्षा आदिक कर्म इसी कारण करके प्रमाण किये हैं काहेसे कि जिसका स्वभाव सहनशील नहीं होता वह लोगों के वाद विवाद में आसक्त होजाता है तात्पर्य यह कि क्षमा और सहनशीलता जो जिज्ञासु के धर्म को दृढ़ करनेवाली है तिसको एकान्त विषे पाय नहीं सक्ता पर जो पुरुष किसीका वचन सह न सके उसको एकान्तमें रहनाही भलाहै और जो पुरुष तितिक्षा भिक्षा आदिक और सन्तसेवा करके भली प्रकार करचुका है और तिस करके निरभिमानता और सहनतादिक गुण पायचुका है तिसको भी एकान्तही रहना योग्यहै काहे से कि तितिक्षा आदिक साधनों से यह प्रयोजननहीं

है कि सदा दुःख और कष्टही उठावै जैसे औषध में केवल कटुता प्रयोजन नहीं और रोग की निवृत्ति होना उसमें प्रयोजन है जब रोग सर्वप्रकार दूर हुआ तब ओषधियों की कटुता का कष्टसहना व्यर्थ है इसी प्रकार सब साधनों से श्रीभगवत् पदारविन्द में प्रेमभक्ति की प्राप्ति प्रयोजन है और जो पदार्थ भक्ति के बाधक हैं उनका दूर होना जिस करके निर्विघ्न और निश्चित महाराज के स्मरण में परायण रहे बहुरि जो पुरुष उपदेश करनेवाला है उसको भी एकान्त रहना प्रमाण नहीं सो जैसे शिष्य को श्रीगुरु की संगति का त्याग आदि में अयोग्य है तैसे ही गुरु को भी जिज्ञासुओं के वियोग करके एकान्त रहना प्रमाण नहीं पर मिलाप में भी जब दम्भ और मान का आवरण न होवे तबहीं ऐसी संगति एकान्तसे विशेष है ३ बहुरि चौथा लाभ यह है कि नानाप्रकार के संशय और संकल्प भी संगति करके दूर होते हैं काहे से कि जब यह पुरुष एकान्त में स्थित होता है तब अकस्मात् ऐसे संकल्प उत्पन्न होते हैं कि उन करके भगवद्भजन में पटल होता है सो वे संशय आप करके दूर नहीं होते तातें उनके दूर करने का उपाय सात्त्विकी मनुष्यों की संगति है इसी पर एक सन्त ने कहा है कि चित्त का खुलना सात्त्विकी संगति करके होता है काहे से कि इस मन का ऐसाही स्वभाव है कि जब इसको एकही क्रिया में स्थित करिये तब शून्यता करके अन्ध होजाता है बहुरि सात्त्विकी संगति में जब पहुँचता है तब वह शून्यता दूर हो जाती है इसी कारण से चाहिये कि नित्यप्रति किसी सात्त्विकी मनुष्य की संगति करे बहुरि उससे अपना अवगुण प्रकट करके कहे और जीविका आदिक क्रिया पूछलेवे तौ भला है पर अचेत पुरुष की संगति एक घड़ी भी बुरी है काहे से कि सारे दिनभर में अभ्यास करके जितना हृदय निर्मल होताहै वह निर्मलता मूर्खों की संगति से दूर होजाती है इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि जब यह पुरुष किसी मनुष्य के साथ प्रीति करता होवे तब चाहिये कि प्रथमही इस प्रकार विचार करे कि मैं इसके साथ किस गुण के निमित्त प्रीति करता हूं ४ बहुरि पांचवां लाभ यह है कि परस्पर भाव और प्रीति की रीति भी संगति में प्राप्त होती है और जो पुरुष एकान्त में स्थित रहता है वह सात्त्विकी मनुष्यों की प्रीति और भावरूपी लाभ को नहीं पाता ५ बहुरि छठवां लाभ यह है कि लोगों के मिलाप और उनकी नाईं बर्तने करके दीनता और नम्रता प्रकट होती है और एकान्त

करके चित्तमें अभिमान की वृत्ति फुरती है अथवा यों भी होता है कि कितने पुरुष स्वामी होने के निमित्त एकान्त को अङ्गीकार करते हैं ताते किसी महापुरुष के दर्शन को भी नहीं जाते और ऐसेही चाहते हैं कि लोग हमारे दर्शन को आवें सो ऐसा अभिमान महाअयोग्य है इसी पर एक वार्त्ता है एक नगर में कोई ऐसा बुद्धिमान् हुआ था कि उसने तीनसौ साठ ग्रन्थ बनाये थे और ऐसे जाननेलगा कि मैं भगवत् के निकट प्राप्त हुआ हूं तब उसको आकाशवाणी हुई कि तैंने आपको जगत् में प्रकट किया है सो मैं इस बड़ाई को प्रमाण नहीं करता तब वह बुद्धिमान् इस वचन को सुनकर सब त्यागकर एकान्त में रहनेलगा और ऐसे जाना कि अब मेरे ऊपर भगवत् प्रसन्न हुआ है बहुरि आकाशवाणी हुई कि मैं तेरे ऊपर अब भी प्रसन्न नहीं हुआ क्योंकि अब भी तैंने आपको स्वामी बनाया है तब वह बुद्धिमान् एकान्त को त्यागकर बाहर आया और खान पान आदिक लोगों की नाईं बर्तनेलगा और अभिमान से रहित होकर समान भाव विषे स्थित हुआ तब आकाशवाणी हुई कि अब तू मेरी प्रसन्नता को प्राप्तहुआ है तात्पर्य यह कि जिस पुरुष की मंशा सकाम है और एकान्त को इस कारण अङ्गीकार किया है कि लोगों के मिलाप करके मेरा मान घटजावेगा अथवा मेरी विद्या और करतूति के छिद्र को कोई देखलेगा तब ऐसे जानाजाता है कि उस ने अपने छिद्र दुरावने के निमित्त एकान्तरूपी परदा डाला है क्योंकि उसको नित्यप्रति यही अभिलाषा दृढ़ होतीहै कि लोग मेरा आकर दर्शनकरें और मुझ को दण्डवत् करें सो ऐसा एकान्त रहना केवल दम्भ है ताते चाहिये कि जब यह पुरुष एकान्त विषे रहै तब भजन और विचार से किसी समय भी अचेत न होवे अथवा विद्या और पाठ में चित्त को लगावे बहुरि जिस पुरुष की संगति में कुछ धर्म का लाभ होवे उसकी संगतिकरे और प्रीति रहित मनुष्य जो मृतक की नाईं हैं तिनकी संगति को न चाहे इसी पर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष बड़ा बुद्धिमान् एक सन्त के निकट आकर कहनेलगा कि मैं तुम्हारे दर्शन को शीघ्र नहीं पहुँचसक्ता हूं ताते मैं अपनी अवज्ञा क्षमा करावता हूं तब उस सन्त ने कहा कि तू इस वार्त्ताको अवज्ञा न जान काहे से कि जैसे और पुरुष लोगों के मिलने को उपकार जानते हैं तैसे मैं न मिलनेवाले का उपकार मानता हूं इस करके कि मुझको सर्वदा काल के आवने की चितवनी रहती है ताते मैं

और किसी के आवने और मिलने की चाह नहीं करता इस करके प्रसिद्ध हुआ कि मान और दम्भ के निमित्त एकान्त रहना बड़ी मूर्खता है क्योंकि जिज्ञासु को ऐसे चाहिये कि यह अपने मन में विचारे कि मेरा कार्य किसी मनुष्य के हाथ नहीं और सब लोग पराधीन हैं बहुरि यों भी है कि जब यह पुरुष पहाड़ की कन्दरा में जाबैठेगा तौ भी दुष्ट मनुष्य योंही अनुमान करेंगे कि यह दम्भ ही के निमित्त कन्दरा में स्थित हुआ है और जो कोई पुरुष महाअशुभ स्थान विषे जावे तौ भी सुहृद् मनुष्य ऐसे जानते हैं कि यह धर्मात्मा पुरुष आप को लोगों के दुरावने के निमित्त ऐसे ठौर में गया होवेगा तात्पर्य यह कि सबलोग दो प्रकार के होते हैं एक मित्र दूसरे शत्रु सो जो इसका मित्र है सो सब कार्यों में इसके ऊपर भला अनुमान करता है और जो शत्रु होता है वह सर्वदा दोष दृष्टि रखताहै ताते जिज्ञासु को जिस प्रकार चाहिये है कि अपने चित्त की वृत्ति को परमधर्म की दृढ़ता में सावधान करे और लोगों के अशुभ वचनों की ओर सुरति न राखे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सन्त ने अपने जिज्ञासु से किसी कार्य के करने को कहा था तब उसने कहा कि लोगों के भय करके इस कार्य को नहीं करसक्ता हूं वह सन्त कहनेलगे कि जबलग जिज्ञासु को दो अवस्था न प्राप्त होवें तबलग यथार्थ भेद को नहीं पहुँचसक्ता सो प्रथम अवस्था यह है कि इस पुरुष की दृष्टि से सब जगत् नष्ट होजावे और भगवत् विना कुछ और न देखे और दूसरी अवस्था यह है कि जब इसका मन मरजावे ताते जिसप्रकार जगत् इसको कुछ कहे तब इसके चित्त में ग्लानि कुछ न आवे और मान अपमान का भय कुछ न रहै बहुरि एक और सन्त से किसी ने कहाथा कि कितने मनुष्य जो तुम्हारे वचन सुनकर बाहर जाते हैं तब निन्दा करने लगते हैं तब उस सन्त ने कहा कि मेरे चित्त की वृत्ति तो परमपद के पावने की ओर लगी हुई है ताते मुझको लोगों की निन्दा का भय कुछ नहीं है और जिस पुरुष ने लोगों की निन्दा और स्तुति की अभिलाषा का त्याग किया है वह मुक्तरूप है ताते जिज्ञासु को निन्दा और स्तुति की ओर सुरति देनाही अयोग्य है क्योंकि जगत् की निन्दा से रहित नहीं होसक्ता अब इस वचनके निर्णय में मैंने एकान्त और मिलाप के गुण और दोष वर्णन किये हैं ताते जिज्ञासु इस वचन को सुन कर प्रथम अपने अधिकार को विचारे बहुरि जैसा इसका अधिकार होवे तैसीही

वृत्ति को अङ्गीकार करे (अथ प्रकट करनी युक्ति एकान्त रहने की) ताते जान तू कि जब यह पुरुष एकान्त में स्थित हुआ चाहे तब प्रथम ऐसी मंशा करे कि मैं एकान्त को इस निमित्त अङ्गीकार करता हूं कि मेरे वचन और कर्म करके किसी को खेद न पहुँचे और जगत् की उपाधि से मैं भी दुःखी न होऊं बहुरि सर्व जंजालों से मुक्त होकर भगवद्भजन में सावधान होऊं तात्पर्य यह कि एकान्ती पुरुष को भजन और विचार विना रहना किसी समय प्रमाण नहीं अथवा विद्या और शुभ करतूतों में दृढ़ होवे बहुरि लोगों के मिलाप की अभिलाषा करनीभी उसको अयोग्य है और प्रयोजन विना किसीसे नगर की वार्त्ता भी न पूछे काहे से कि यह मनुष्य जैसी बात सुनता है तैसाही संस्कार उसके हृदय में दृढहोताहै फिर भजन की एकत्रता में वही संकल्प फुरने लगताहै और एकान्त रहने का प्रयोजन यही है कि सब संकल्पों का निरोध होवे ताते एकान्ती को चाहिये कि आहार और वस्त्र का संयम राखे क्योंकि जबलग यह पुरुष संयमको अङ्गीकार नहीं करता तबलग लोगों की पराधीनता से नहीं छूटता बहुरि जब कोई इसको वचन अथवा कर्म करके दुःख देवे तौ भी सहनशीलता करके उस को क्षमाकरे और अपनी स्तुति और निन्दा को श्रवण न करे और धर्म कार्य मे सावधानरहे क्योंकि जब अपनी स्तुति और निन्दा की ओर सुरति देताहै तो भी उसका समय व्यर्थ होताहै और एकान्त रहने का प्रयोजन यह है कि इस समय में यह पुरुष अपने उत्तम कार्य को सिद्ध करलेवे ॥

पांचवां सर्ग ॥

राजनीति के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि राजनीति करनी भी महाउत्तम है और जो पुरुष विचार संयुक्त राज्य विषे वर्तता है वह भगवत् का निकटवर्त्ती होता है पर जो पुरुष राज्य में धर्म की मर्याद को त्याग देता है वह अपने मनकी वासना का दास है उस को महाराज की ओर से धिकार होती है काहेसे कि सर्व उपायों का मूल धर्मज्ञ राजा है और धर्मात्मा वही होता है जिसको विचारकी बुद्धि होती है और उस का स्वभाव सात्त्विकी होता है सो राजनीति की विद्या भी अपार है और इस विद्या का तात्पर्य यह है कि प्रथम वह राजा इस भेद को जाने कि मैं इस जगत् में किस कार्य के निमित्त आया हूं और किस अवस्था विषे जाऊंगा और यों भी

जाने कि यहां मैं परदेशी हूं और यह संसार एक मंज़िल है और इस मंज़िल की आदि तो पारना है और अन्त श्मशान है बहुरि दिन मास वर्ष मार्ग के योजन और कोस हैं सो इस प्रकार काल बीतने करके सर्वदा मैं परलोक के निकट पहुँचता जाताहूं बहुरि जिस स्थान में मुझे जाना है वह स्थान इस संसार की जाग्रत से भिन्न है ताते जैसे किसी पुरुष का मार्ग पुलों के ऊपर होवे और वह पुरुष सारादिन पुलके बनावने में लगारहै और अपने मार्ग की मंज़िल को बिसारदेवे तब वह महामूर्ख कहाजाता है तैसेही यह संसाररूपी पुल है सो जो मनुष्य मूर्ख होता है वह इस संसार के कार्यों को सम्पूर्ण किया चाहता है और जो पुरुष बुद्धिमान् है वह और किसी कार्य की ओर सुरतिही नहीं देता और सर्वदा परलोक मार्ग के तोशे को बनाया चाहता है और माया के पदार्थों को कार्यमात्र अङ्गीकार करता है और कार्यमात्र से अधिक जो भोग विलास है तिसको विष की नाईं जानता है और यों समझता है कि जितना सोना चांदी कोई इकट्ठा करता है वह मृत्यु के समय सब खज़ाने भस्म होजावेंगे अर्थ यह कि किसी काम न आवेंगे और अन्तकाल में चित्तको उनके वियोग का दुःख प्राप्त होवेगा ताते माया की सर्व सामग्री का सार यह है कि जिसकरके शरीर का खानपान आदिक कार्य सिद्ध होवे और इससे अधिक सब सामग्री पश्चात्ताप और दुःखों का बीज है पर पदार्थों के वियोग का और पश्चात्ताप का जो दुःख है तिसके दुःख से रहित भी शुद्ध और पाप से रहित माया के संचने करके होता है और जो पुरुष पापसहित माया को जोड़ता है उसको परलोक में भी ताड़ना होती है और तमोगुण करके जिसके धन को हरा है उसका ऋणी रहता है और यह बात तो निस्संदेह है कि हठ और पुरुषार्थ बिना किसी प्रकार भोगों से रहित नहीं होसक्ता पर जिस पुरुष की प्रतीति और बुद्धि दृढ़ होती है वह ऐसे समझता है कि यह इन्द्रियादिक भोग कुछ काल पीछे सब विरस होजावेंगे और अब भी दुःखरूप हैं बहुरि परलोक का सुख जो आत्मरहस्य है वह सर्वदा परमानन्दस्वरूप है और सच्ची बादशाही है और सब विघ्नों से रहितहै सो जिस पुरुष की प्रतीति दृढ़ होती है उसको भोगों का त्यागना सुगम होता है और इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी पुरुष का कोई प्रियतम होवे और उस पुरुषसे इस प्रकार कहिये कि जो तू अब एकरात्रिभर अपने प्रियतमके मिलाप

का त्यागकरे तौ सर्वदा वह प्रियतम तेरे पासही रहेगा और तेरा विरोधी भी कोई न होवेगा सो यद्यपि उस प्रियतमके साथ उस पुरुषकी प्रीति अधिक होती है तौ भी एक रात्रि के मिलने के त्यागने में कुछ खेद नहीं मानता और नित्य मिलाप की आश करके उसको सुखसहित भोगता है तैसेंही बुद्धिमान् पुरुष को ऐसे समझना चाहिये कि प्रथम तो इसलोकमें आयुष् तुच्छमात्र है दूसरे जितने भोग्य पदार्थ हैं वह क्षण २ में परिणामी होते जाते हैं और आत्मा का आनन्द ऐसा है कि उस सुख का कदाचित् अन्त नहीं आवता और जिस सुख का अन्तही न होवे उसका प्रमाण क्योंकर वर्णन करिये और इस मनुष्य की आयुष् का प्रमाण तो सौ वर्ष का है और कदापि इससे अधिक होवे और उदय अस्त पर्यन्त निष्कण्टक राज्य को भी पाजावे तौ भी आत्मसुख जो अनन्त है तिसकी अपेक्षा करके यह आयुष् और सुख सब तुच्छमात्र हैं बहुरि जब किसी को इस संसार के सुख और चक्रवर्त्ती राज्य सर्वदा भी प्राप्त होवे तौ भी महामलिन और विरस है क्योंकि यह सब सुख दुःखों के साथ मिले हुये हैं ताते ऐसे सुख-स्वरूप दुःखरहित आत्मसुख को त्यागकर इन्द्रियादिक सुखों में जो महामलिन है आसक्त होना बड़ी मूर्खता है ताते धर्मात्मा राजा और उसके मन्त्रियों को इस वार्त्ता को सर्वदा समझना चाहिये सो जब ऐसी समझ करके भोगों से रहित होवे तब उनको राजनीति और प्रजा को सुखी रखना और जीवों पर दया करनी सुगम होवे और राज्य करना उसी को प्रमाण है जिसको सन्तों के वचनों की समझ होवे और माया के पदार्थों की तृष्णा न होवे क्योंकि धर्म और नीति सहित राज्य करनेको सब जप और तप से अधिक भगवत् प्रियतम रखते हैं इसी पर महापुरुषने भी कहा है कि एक दिन विचार की मर्यादसहित न्याय करना साठि वर्ष के तपसे विशेष है और योंभी कहा है कि धर्मात्मा राजा परलोककी तपनि विषे भगवत्की छाया तले शीतल रहेगा और धर्मात्मा राजा भगवत् का प्रियतम है और धर्महीन भगवत् से विमुख है बहुरि महापुरुष ने भगवत् की दुहाई देकर कहाहै कि धर्मात्मा राजाको सब प्रजाके भजन का फल होता है और जो वह एक बार भगवत् का नाम लेताहै तौ उसको सहस्रनाम का फल होताहै सो जब राजनीति का ऐसा लाभ हुआ तब चाहिये कि वह राजा भगवत् के उपकार को जाने और धर्म से विमुख न होवे और जब इस

उपकार का कृतघ्नी होकर अनीति विषे बर्त्ते और अपने मन की बासना का दास होवे तब दुःखों का अधिकारी होताहै ताते मैं राजनीति के धर्मकी कुछ युक्तियां वर्णन करताहूं सो प्रथम युक्ति यह है कि जैसे दुःख और अपमान आपको भला नहीं लगता तैसेही सब विघ्नों से प्रजा की रक्षा करनी प्रमाण है और जब ऐसे न करे तब राजा धर्म से भ्रष्ट होताहै इसी पर एक वार्त्ता है कि एक बार महापुरुष छायातले बैठे थे और औरलोग धूप में बैठे थे तब महापुरुष को आकाशवाणी हुई कि तुमको ऐसे बैठना प्रमाण नहीं तात्पर्य यह कि इस किञ्चिन्मात्र कर्म की भी ताड़ना हुई ताते चाहिये कि राजा जिस बात में आप प्रसन्न न होवे उसको प्रजा के ऊपर भी प्रमाण न करे और जिस राजा की मंशा ऐसी निष्काम न होवे वह राजा धर्महीन है १ बहुरि दूसरी युक्ति यह कि अर्थी को नीचदृष्टि से न देखे और उसके दुःखी होने से भयवान् होवे और यद्यपि उस समय कुछ नियम अथवा जाप करता होवे तो भी उस नियम को छोड़कर अर्थी के मनोरथ को पूर्णकरे क्योंकि अर्थी के अर्थ को पूर्ण करना सब नियमों से विशेषहै इसीपर एक वार्त्ता है कि एक महाधर्मात्मा राजा था सो एकबार सारेदिन प्रजा के कार्यों को करके विश्राम करने के अर्थ जब चारघड़ी दिन रहा तब गृह में जाकर शयन कररहा तब उस राजा का पुत्र आकर कहनेलगा कि हे पितः! तुम अचिन्त होकर क्यों सो रहेहो? मैं तो इस वार्त्ता से अधिक भय मानता हूं कि मत अबहीं काल आकर तुमको मारलेवे और कोई अर्थी तुम्हारे दरबारपर अप्राप्त रहजावे और तुम उससे अचेतरहो तब राजा ने कहा कि हे पुत्र! तू सत्य कहता है बहुरि वह राजा उसी समय उठ खड़ा हुआ और प्रजा के कार्य में सावधान हुआ २ बहुरि तीसरी युक्ति यह है कि अपने ऊपर अधिक भोगों का स्वभाव प्रबल न करे और खानपान आदिक विषे संयमसहित बर्त्ते क्योंकि जब राजा संयमरहित होकर अधिक भोगों विषे बर्तता है तब उससे धर्म की मर्याद नष्ट होजाती है इसी पर एक धर्मात्मा राजाने किसी अपने मन्त्री से पूछा था कि तुमने मेरा कोई अवगुण सुना होवे सो कहो तब उसने कहा कि तुम रात्रि और दिन का पोशाक भिन्न २ रखते हो और भोजन दो तरकारी के साथ खाते हो तब उन्होंने कहा कि मैं फिर अब यह भी न करूंगा ३ बहुरि चौथी युक्ति यह है कि यथाशक्ति सब कार्यों को दयासंयुक्त निर्बाह करे और क्रोध तब करे

जब कोई ऐसाही कठिन कार्य होवे जो विना क्रोध किये उसमें निर्बाह न होवे इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रजा के ऊपर जिस राजा की सर्वदा दया होती है उसके ऊपर भगवत् भी दया करता है और यों भी कहा है कि तबहीं राज्य करना भला होता है जब धर्म की मर्याद के अनुसार होवे और जो राजा धर्म मर्याद से भ्रष्ट होता है तब वह राज्यही उसको नरकगामी करता है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक राजा ने किसी विद्यावान् से पूछा था कि राजनीति में मुक्तिदायक धर्म कौन है ? तब उसने कहा कि पापरहित धनको उत्पन्न करना और यथार्थही के मार्ग में उसको लगावे तब वह राजा कहनेलगा कि यह बात किससे होसक्ती है तब उन्होंने कहा कि जिसको नरक के दुःखों का भय होवेगा और परमसुखों को प्राप्त हुआ चाहेगा उसको यह करतूति करना भी सुगम होगा ४ बहुरि पांचवीं युक्ति यह है कि हृदय से सर्वदा यही यत्न करे कि शास्त्र की मर्याद के अनुसार सब प्रजा सुखी होवे और यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि राजा के निकट जो स्तुति लोग करते हैं सो सब भयकरके करते हैं और वह जानता है कि मेरे ऊपर प्रसन्न अतिशय करके हैं ताते बुद्धिमान् राजाको इस प्रकार चाहिये कि मन्त्री और दूतों के द्वारा प्रजा की सुरति लेवे और अपनी भलाई बुराई को जाने और लोगों से स्तुति सुनकर अभिमान न करे ५ बहुरि छठीं युक्ति यह है कि जब कोई पुरुष दुष्ट और धर्महीन होवे तब उसकी प्रसन्नता को न चाहे क्योंकि उसकी प्रसन्नता करके और जीवों को दुःख होता है और यथार्थ नीति अनुसार जब वह दुष्ट अप्रसन्न होवेगा तब उसकी अप्रसन्नता का पाप राजा को स्पर्श नहीं करेगा ताते दुष्ट मनुष्यों की प्रसन्नता चाहनी और भगवत् की प्रसन्नता से बिमुखहोना बड़ी मूर्खता है इसी पर एक सन्तने कहा है कि जो पुरुष सब प्रकार भगवत् ही की प्रसन्नता चाहता है तब महाराज उसके ऊपर लोगों को भी प्रसन्न कर देता है और जो पुरुष लोगोंकी प्रसन्नता के निमित्त भगवत् से बिमुख होता है तो भगवत् भी उससे प्रसन्न नहीं होता और लोग भी अप्रसन्न रहते हैं ६ बहुरि सातवीं युक्ति यह है कि राजा को सर्वदा राजनीति का भय चाहिये क्योंकि राजनीति बिषे यथार्थ बिचरना बड़ा कठिन है ताते जो पुरुष सब प्रकार प्रजा को धर्म बिषे बर्तावे और सुखीराखे और आपभी धर्ममें सावधानरहै तब निस्सन्देह वह राजा परमभाग्यवान् होता

है और जब इससे बिपरीतहोवे तब ऐसा अभागी होता है कि उससे अधिक भाग्यहीन और कोई नहीं होता इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब कोई भगवत् की दया चाहे तब सब जीवोंपर आपही दयाकरे और जो राजा अपने तेज को चाहे वह धर्मनीति में दृढ़ होवे और जैसा वचन आप कहे तैसी करतूति करे और जब ऐसे न करे तब देवता भी उसको धिकार करते हैं और महाराज की ओर से भी बिमुख होताहै और जिस राजा से प्रजा का पालन न होवे और वह यद्यपि पूजा पाठ के नियम में सावधान रहे तौ भी उसको लाभदायक कुछ नहीं होता ताते तू विचारकरके देख कि धर्म की मर्याद से रहित होकर राजनीति का वर्त्तना ऐसाहै जिस करके कोई शुभ करतूति लाभदायक नहीं होती इसी पर बहुरि महापुरुष ने कहा है कि जब कोई पुरुष दोपुरुषों बिषे सुखिया होवे और बिचार की नीति साथ न बिचरे तो भी धिकार का अधिकारी होता है और यों भी कहा है कि अधिक करके तो राजाही नरक को प्राप्तहोवेंगे और उनमें से कोई वही मुक्त होवेगा जो सदा भगवत् के भय करके डरता रहेगा और बिचार की युक्ति को अङ्गीकार करेगा और यों भी कहा है कि जब कोई इस लोक में किसी के ऊपर कोप करता है तब भगवत् भी उसके ऊपर क्रोध करेगा बहुरि यों भी कहा है कि जो इस लोक में किसी को सुख देगा वह आप भी सुख को प्राप्तहोवेगा बहुरि कहा है कि जब इस लोक में राजा अपनी प्रजापर दण्ड कर-लेवे और उनकी रक्षा न करे और जो चौधरी नगर में समान भाव न वर्ते अर्थात् किसी का पक्षकरे किसी की सुरति न लेवै बहुरि जो पुरुष अपने सम्बन्धियों को धर्ममार्ग न सिखावे और अशुद्धजीविका करके उनकी उदरपूर्णताकरे बहुरि जो पुरुष किसी से अपना कार्य कराकर उसकी मजदूरी न देवे सो ऐसे पुरुष सबही नरकगामी होते हैं ताते राजा को चाहिये कि सन्त जनों के वचनों को अपना दर्पण बनावे और जो वचनों में अनीति की निन्दा वर्णनहुई है तिसको समझकर सर्वदा भयवान् रहे ७ बहुरि आठवीं युक्ति यह है कि राजा सदा वि-द्यावान् पुरुषों की संगतिकरे और उनसे धर्मकी मर्याद पूछतारहे और जो वि-द्यावान् धनके अर्थी होवें उनकी संगति न करे काहे से कि सकामी पण्डित राजा को प्रसन्नकरके अपने प्रयोजन को सिद्धकिया चाहते हैं और यथार्थ उपदेश को नहीं सुनासक्के ताते उनकी संगति ही बुरी है और राजा को उसी विद्यावान्

की संगति करनी प्रमाण है जो अपने प्रयोजन और राजा के मान के निमित्त यथार्थ को दुरावते नहीं इसी पर एकवार्त्ता है कि किसी राजा ने किसी सन्त से पूछाथा कि अमुक तपस्वी तुमहीं हो तब उन्हों ने कहा कि अमुक तो मैं हूं पर तपस्वी तू ही है क्योंकि जो अधिकवस्तु को त्यागकर अल्प वस्तु को अङ्गीकार करे उसको तपस्वी कहते हैं सो तैंने आत्मसुख को त्यागकर माया के सुख को अङ्गीकार किया है ताते तपस्वी भी तूही है बहुरि राजा ने कहा कि मुझको कुछ उपदेश करो तब सन्त ने कहा कि तुझको भगवत् ने धर्म के सिंहासन पर बैठाया है ताते महाराज तुझसे परलोक में धर्म की मर्याद पूछेंगे बहुरि भगवत् ने तुझको नरकों के द्वार का पँवरिया बनाया है अर्थ यह कि तू नरकों से प्रजाकी रक्षा करने का अधिकारी बनायागया है ताते जो पुरुष जीविका के निमित्त पाप करताहोवे तो तू उसको जीविकामात्र धन दे और जो कोई धर्म मर्याद से मनमत करके रहित होवे तब उसको ताड़ना करके पाप से वर्जना कर और जब कोई अपनी सबलता करके जीवोंका संहार करता होवे तब उसको खड्ग करके दण्डदे और जब तू ऐसे न करेगा तब प्रथम तूही नरकगामी होगा बहुरि राजा ने कहा कुछ और उपदेश करिये तब सन्त बोला कि हे राजन् ! तू नदी की नाईं है और प्रधान तेरे प्रवाह हैं अर्थ यह कि जो तू निर्मल होगा तो वह भी निर्मल होवेंगे और जब तेराही हृदय मलिन होगा तब प्रधान भी मलिन क्रिया विषे वर्त्तेंगे बहुरि एक और राजा किसी सन्त के दर्शन को गया था सो वह सन्त यह वचन पढ़रहाथा कि यथाशक्ति शुभ करतूति ही को अङ्गीकार करो क्योंकि उत्तम और नीच की गति समान नहीं होती सो जब राजा ने यह वचन सुना तब अपने चित्तमें विचार करनेलगा कि सन्तों का एक वचन सर्व उपदेश का मूल है पर दर्शन की अभिलाषा के निमित्त राजा के प्रधान ने किवाड़ीको खड़काया और कहनेलगा कि हे महाराज ! किवाड़ को खोलो तब सन्त ने पूछा कि तुम कौनहो बहुरि प्रधान ने कहा कि अमुक राजा तुम्हारे दर्शन को आया है तब सन्त ने कहा कि हमारे साथ राजा का क्या प्रयोजन है बहुरि राजा के प्रधान ने कहा कि राजा का निरादर करना प्रमाण नहीं है तब सन्तने किवाड़ को खोला और गृह में जो दीपक जलताथा उसको बुझाय दिया तब उस राजा ने भीतर जाकर सन्त के चरणोंपर मस्तक

धरा और हाथों करके चरणों को पकड़ा तब सन्त ने कहा कि यह तेरे हाथ तो बहुत कोमल हैं पर जब नरकों की अग्नि से इनकी रक्षा होवे बहुरि राजासे इस प्रकार कहनेलगे कि हे राजन्! जो तू अबहीं यथार्थ विषे बिचरे तो भलाहै काहे से कि परलोकमें तुझसे एक २ जनकी बात पूछेंगे तब यह वचन सुनकर राजा रुदन करनेलगा और मूर्च्छित होगया तब प्रधान ने कहा कि हे महाराज! अब इस वचनसे मौनकरिये क्योंकि राजा तुम्हारे वचनकरके मृतकहुआ जाता है तब सन्तने कहा हे कुमन्त्री! राजा तो तुमलोगोंकी संगति करके मृतकहुआ है और तू हम से कहता है कि राजा को तुमने मारा है बहुरि वह राजा सचेत होकर सन्त के आगे तीन सहस्र रुपया रखताभया और कहनेलगा कि हे महाराज! यह धन पापरहित उत्पन्न कियाहुआ है तब सन्तने कहा कि मैं तुझको माया से विरक्त किया चाहताहूं और तू मुझकोही माया विषे डाला चाहता है ऐसे कहकर वह सन्त उठखड़ेहुये और गृहसे बाहर निकलआये और धनको अङ्गीकार न किया बहुरि और एक राजाने किसी सन्तसे कहाथा कि तुम मुझको धर्मनीति का उपदेश सुनाओ तब सन्तने कहा कि जो तुझ से लघु मनुष्य हैं उनको पुत्र की नाईं जान और जो तुझसे बड़े हैं तिनको पितावत् जान और जो समहैं तिनके संग बान्धवोंकी नाईं बर्त्तावकर और जो किसीको कुछ दण्ड देवे तोभी जितना उसका अपराध होवे उतनाही उसका दण्ड ताड़नाकर और चित्तमें यही भावना रख कि मैं ताड़ना भी उसको भलाईहीके निमित्त करताहूं बहुरि जब किसीको क्रोध करके एक छड़ी भी मारेगा तब नरकगामी होवेगा इसीपर एक बुद्धिमान् राजा ने कहाहै कि एक बार मेरे टहलुवे से कोई काम बिगड़ा था तातें मैं क्रोध करके उसको मारनेलगा तब टहलुवे ने कहा कि तुम परलोक की ताड़नाका स्मरण करो अर्थ यह कि क्रोध से रहितहोवो सो जब यह वचन मैंने सुना तब मुझको भगवत् का भय उत्पन्न हुआ तात्पर्य यह कि राजा को चाहिये कि सदा ऐसेही वचन सुनतारहे ८ बहुरि नवींयुक्ति यह है कि राजा को ऐसा अभिमान न चाहिये कि मैं तो किसी को दण्ड नहीं करताहूं क्योंकि मन्त्रियों, प्रधानों और सेनापतियों के पापकर्म करके भी राजाही को ताड़ना होवेगी तातें उनको पाप से वर्जितकरे इसी पर एक धर्मज्ञ राजा ने अपने प्रधान की ओर पाती लिखी थी कि भाग्यवान् प्रधान वही होताहै जिसके राज्य

करके प्रजा सुखी रहतीहै और जिस राजाकी प्रजा धर्महीन होजावे और दुःख को प्राप्तहोवे वह राजा भी मन्दभागी होताहै ताते तुझको सचेतहोना उचितहै जब तू अचेत होकर भोगोंमें लम्पट होवेगा तब तेरी सेना भी प्रजाको दुःखदायक और लम्पट होजावेगी और अधिक भोगी पुरुष पशु की नाईं होताहै कि वह पशु हरे तृण को खाकर बड़ा स्थूल होताहै बहुरि उसके शरीर की स्थूलता ही उसके दुःख और नाश का कारण होती है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस राजा का कोई प्रधान पापकर्मी होवे और राजा उसको ताड़ना न करे तब उस पापका फल राजाको लगताहै ताते राजाको इस प्रकार जानना चाहिये कि माया में आसक्त होकर परमार्थ से विमुख होना बड़ी मूर्खता है और यह जितने मेरे मन्त्री और प्रधान हैं सो सब अपने प्रयोजन के अर्थी हैं और अपने मनोरथों के निमित्त मेरा धर्म नष्ट किया चाहते हैं सो जब मैं इनके वशीभूत होकर धर्म से विमुख रहूंगा तब मैं निस्सन्देह नरकगामी होऊंगा सो जब इस प्रकार विचार कर देखिये तो यह सब मेरे शत्रु हैं ताते जो राजा अपने मन्त्रियों और सेना को पापसे वर्जित न करे तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अपने स्त्री पुत्रादिकों को पापकर्मों में लगावे और उनके पाप का भागी होवे पर यह जो धर्म की मर्याद सन्तों ने कही है सो इसका पालन वही पुरुष करता है जिसने अपने शरीर को विचार के संयुक्त दृढ़ किया है और शरीर को धर्मनीति विषे रखना यह है कि बुद्धि के ऊपर क्रोध और भोगों को प्रबल न होनेदेवे पर बहुत से लोग तो ऐसे होते हैं कि अपने मनोरथ पूर्ण करने के निमित्त यत्न करते हैं और बुद्धि को भी इन्हीं कामों में लगाये रहते हैं सो जिसने बुद्धिरूपी देवता को क्रोधरूपी राक्षसके हाथ बांधदिया है ऐसे पुरुषसे किसीप्रकार धर्म की नीति नहीं हो सकी प्रजा के ऊपर तात्पर्य यह कि प्रथम विचाररूपी सूर्य हृदय में उत्पन्न होताहै फिर उसका प्रकाश इन्द्रियादिकों में वर्त्तमान होता है और इस से पीछे वही प्रकाश सब प्रजा के ऊपर उजियारा करता है ताते जो पुरुष ऐसे सूर्य विना प्रकाश की आशा रखते हैं सो अयोग्य हैं इसी कारण कहा है कि धर्म की बुद्धि से विचार उपजता है और परमबुद्धि उसका नाम है जो सब करतूतोंके भेदको समझे और इस बातको विचार करके देखे कि मैं धर्म और विचार मर्याद का त्याग किस निमित्त करता हूं सो जब नाना प्रकार के भोजनों के

निमित्त विचार की मर्याद को त्यागकरे तब ऐसे जाने कि खानपान की अभिलाषा तो पशुओं का स्वभावहै क्योंकि जिसको खानपान की अधिक तृष्णाहै वह यद्यपि देखने मात्रमें मनुष्य भासता है तौ भी आहारविषे पशुओं के समान है बहुरि जो सुन्दर वस्त्रोंके निमित्त धर्मका त्यागकरे तो शृंगार बनावना स्त्रियों का काम है और जो अपने क्रोध के निमित्त धर्म को त्यागा है तो सिंहों और भेड़ियों की नाईं होता है और जब लोगों की मान्यता के निमित्त विचार की मर्याद को त्याग दिया तौ भी बड़ी मूर्खता है काहेसे कि जब विचार करके देखिये तौ सब लोग अपने प्रयोजन के अर्थी हैं और अपने भोगों के निमित्त इसकी सेवा करते हैं सो इसकी परीक्षा यह है कि जब उनका स्वार्थ भङ्ग होता है तब सब इसके शत्रु होजातेहैं और इसके शत्रुओं की सेवा में सावधान होतेहैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि इसके सम्बन्धी, मित्र, टहलुवे और सबही लोग अपने स्वार्थके होते हैं और बुद्धिमान् पुरुष वही है जो ऐसे भेद को भली प्रकार समझे और पदार्थों की स्थूलता को देखकर अभिमानी न होवे पर जिस पुरुष को ऐसी समझ उत्पन्न नहीं हुई वह बुद्धिहीन कहाताहै और जिस पुरुष के बुद्धिही नहीं वह विचार की मर्याद में सावधान भी नहीं होसक्ता और जो विचार से रहित है वह निस्संदेह नरक का अधिकारी होताहै इसीकारण सन्तजनों ने कहा है कि सर्व शुभगुणों का मूल बुद्धि है ६ बहुरि दशवीं युक्ति यह है कि राजाओं में अवश्यही अभिमान अधिक होता है और अभिमान करके क्रोध उत्पन्न होता है सो क्रोधही इसकी बुद्धि का परमशत्रु है ताते राजा को इस प्रकार चाहिये कि प्रथम क्रोध के विघ्नों को पहिंचाने बहुरि जब अकस्मात् किसी अवसर में क्रोध उपजने लगे तब यत्न करके अपने स्वभाव को दया और सहनशीलता विषे दृढ़करे और यों भी जाने कि सहनशीलता सन्तों का धर्म है और क्रोध करना असुरों का स्वभाव है ताते जब कोई पुरुष वचन करके राजा की अवज्ञा करता है तब ऐसे समय उसके ऊपर अवश्य क्रोधही किया चाहता है सो राजा को ऐसे अवसरमें इसप्रकार समझना चाहिये कि जब दुर्वचन कहनेवाला पुरुष सत्य कहताहै तो उसका उपकार मानना प्रमाण है और जो झूठ कहता है तो अधिक उपकार जानना प्रमाणहै काहेसे कि जब उसके वचनको सुनकर सहनशीलता होवेगी तब उसके शुभ कर्मों का फल इसको प्राप्त होवेगा इसी पर एक

वार्त्ता है कि किसीने महापुरुष से कहाथा कि अमुक पुरुष ऐसा बलवान् है कि जिसके साथ युद्ध करता है तिसको गिराय देताहै तब उन्होंने कहा कि जिसने अपने क्रोधको जीताहै उसी को बलवान् कहाजाता है और मनुष्यों के पकड़ने और गिरानेवाले को बली कहना अयोग्य है और यों भी कहा है कि धर्मवान् पुरुष का लक्षण यहहै कि यद्यपि क्रोध के योग्य कोई पुरुष होवे तौ भी विचार की मर्याद को त्याग न करे और अनुचित वचन न कहे और जब किसी पर प्रसन्न होवे तौ भी यथार्थ को भुलाय न देवे यद्यपि समर्थ होवे तौ भी अपनी मर्यादसे उल्लंघित न होवे इसी पर एक सन्तने कहाहै कि जबलग किसी पुरुष के धैर्य और क्रोध की परीक्षा करके भली प्रकार न देखिये तबलग उसके ऊपर प्रतीति करनी अयोग्य है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक राजपुत्र पढ़ने के अर्थ पाठशालाको जाताथा सो एक दुष्ट आकर उसको दुर्वचन कहने लगा तब राजपुत्र को टहलुवा क्रोधवान् होकर उस दुष्टके मारने को उद्यत भया तब राजपुत्र ने अपने टहलुवे को वर्जित किया और उस दुष्ट से कहने लगा कि हे भाई! हम में तो ऐसे अवगुण हैं कि तू उनको जानता ही नहीं पर तुझको कुछ अर्थ होवे तो प्रसिद्ध कह बहुरि यह वचन सुनकर वह दुष्ट लज्जित हुआ तब राजपुत्र ने अपने गले का वस्त्र और सहस्र रुपया उसको दिया तब वह पुरुष लेकर इस प्रकार कहनेलगा कि निस्सन्देह तू महापुरुषकी सन्तान है बहुरि उसी राजपुत्रकी एक और वार्त्ता है कि एक समय दोबार अपने टहलुवे को पुकारा और वह टहलुवा चुप साध रहा बहुरि उसके निकट जाकर कहनेलगा कि मैंने तुझ को दोबार बुलाया और तैंने सुना भी नहीं तब टहलुवे ने कहा कि मैंने सुना तो था पर तुम्हारी सहनशीलता विचारकर निर्भय हो रहाथा कि इस अवज्ञाकरके ताड़ना न करेंगे तब वह राजपुत्र कहनेलगा कि हमारे ऊपर यह भी महाराज का बड़ा उपकार है कि मेरा टहलुवा तक मेरे क्रोध से निर्भय हुआ है॥ बहुरि किसी और सन्तके टहलुवेने गृहके पशुका पांव तोड़डालाथा तब सन्तने कहा कि तैंने इस बेचारे को क्यों दुःख दिया है बहुरि टहलुवा कहनेलगा कि तुम्हारे धैर्य और क्रोधकी परीक्षा के निमित्त यह अवज्ञा मैंने करी है तब सन्त ने कहा कि मैं सहनशीलता करके क्रोधही को लज्जावान् करूंगा इतना कहकर उस मोल लियेहुये टहलुवे को मुक्त करदिया बहुरि उसी सन्त को कोई दुष्ट दुर्वचन

कहनेलगा था तब सन्तने कहा कि मेरे और भगवत् के मध्य में कितनीही कठिन घाटी हैं सो जब मैं उनसे उल्लंघित हुआ तो तेरे दुर्वचनों का भय कुछ नहीं और जब मैं उनको न लांघसका तब जैसा तू कहता है तिससे भी मैं नीच हूं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि बहुते पुरुष क्षमा और सहनशीलता करके महागम्भीर पद को पावते हैं और यद्यपि गृहस्थधर्म विषे वर्तते हैं तौभी महाशूरमा विरक्तचित्त कहावते हैं बहुरि यों भी कहा है कि जो विचार के मर्याद से रहित होकर क्रोधके वशीभूत होते हैं सो निस्संदेह नरकगामी होते हैं और जो कोई समर्थ होकर अपने क्रोध को दमन करलेते हैं उनके हृदय को महाराज परमानन्द करके पूर करदेता है तात्पर्य यह कि जिस राजा की बुद्धि धर्म विषे स्थित होती है तिसको जितने मैंने वचन और युक्तियां वर्णन करी हैं इतनीही बहुत हैं और जिसका हृदय ऐसे उपदेश करके कोमल न होवे तब जानिये कि भगवत्पर उसकी प्रतीतिही कुछ नहीं अर्थ यह कि वचन करके भगवत् को सत्य कहना और है और हृदय में भगवत् को सत्य जानना और है काहे से कि जो पुरुष छल और दण्डकरके धन को उत्पन्न करे और पापोंविषे निश्शङ्क होकर बर्ते तब क्योंकर जानिये कि उसने भगवत् को प्रकट सत्य जाना है ताते धर्मात्मा पुरुष वही है जो सर्वदा विचारकी मर्याद विषे स्थित रहै ॥

इति व्यवहारवर्णनन्नाम द्वितीयप्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

तीसराप्रकरण ॥

प्रथमसर्ग ॥

मनके यत्न और कठोर स्वभावों के उपचार के वर्णन में ॥

प्रथम विभाग भले स्वभावों की स्तुति में ॥ ताते जान तू कि महाराज ने भी भले स्वभावों करकेही महापुरुष की प्रशंसा करी है और महापुरुष ने भी कहाहै कि भगवत् ने मुझको भले स्वभावों के पूर्ण करने के अर्थ इस जगत् विषे भेजा है और यों भी कहा है कि परलोक में महाउत्तम पदार्थ भला स्वभावही होवेगा बहुरि एक पुरुष ने महापुरुष से पूछा कि धर्म क्याहै महापुरुष ने कहा कि भला स्वभावही धर्महै ऐसेही एक और पुरुषने भी पूछा कि उत्तम करतूत क्याहै? तब उन्होंने कहा कि भलास्वभाव सब करतूतों से उत्तम है ॥ बहुरि एक और पुरुष

ने महापुरुष से कहाथा कि मुझको कुछ उपदेश करिये तब उन्होंने कहा कि जिसस्थान विषे तू होवे तहांही भगवत् के भय संयुक्त रहो बहुरि जब कोई तेरे साथ बुराई करे तब तू उसके साथ भलाईही कर और सब जीवों के साथ भले स्वभावों सहित मिलापकर और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि जिसको भगवत् ने भला स्वभाव दिया है और जिसका मस्तक प्रसन्नता सहित खुलारहता है वह नरकों की अग्नि में नहीं जलता और महापुरुष से किसीने कहा था कि अमुकी स्त्री दिनको व्रत रखती है और रात्रि को जागरण करती है और सर्वदा भजन में सावधान है पर उसका स्वभाव बुरा है कि पड़ोसियों को दुर्वचन करके दुखावती है तब महापुरुषने कहा कि निस्संदेह वह स्त्री नरक को प्राप्तहोवेगी॥ और योंभी कहाहै कि बुरास्वभाव भजन को इस प्रकार नाशकरताहै जैसे मधुको खटाई बिगाड़ देती है बहुरि महापुरुष महाराज के आगे यों प्रार्थना करते थे कि हे महाराज! अपनी दयाकरके जैसे तैंने मेरा शरीर सुन्दर बनाया है तैसेही मेरा स्वभाव भी भलाकर और यों भी कहते थे कि मुझको भलास्वभाव और नीरोगता देवो बहुरि किसी ने महापुरुष से पूछा कि भगवत् जो कुछ इस जीव को देताहै सो तिनमें भला पदार्थ क्या है? तब उन्हों ने कहा कि भला स्वभाव सब पदार्थों से विशेष है॥ बहुरि एक और सन्तने भी कहाहै कि मैं एकबार महापुरुष के सङ्ग था तब उन्होंने कहा कि मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा है कि एक पुरुष मुझको गिराहुआ दृष्टि आयाथा और भगवत् और उसके बीच में बड़ा पटलथा पर भला स्वभाव जो उसके हृदय में आया तिसने उस सब पटल को दूरकरदिया और उस पुरुष को भगवत् के साथ मिलाय दिया और यों भी कहा है कि यह पुरुष भले स्वभावों करके बिना कष्टही ऐसी अवस्था को प्राप्त होते हैं जो बड़े तप और जाग्रत् करके कोई उस अवस्था को प्राप्त होवे सो भले स्वभाव करके यत्न बिनाही मनुष्य पावता है पर इस भले स्वभाव की पूर्णता महापुरुष ही में पाई जाती है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक ठौर में महापुरुष बैठेथे तब वहां स्त्रियां निडर होकर ऊंचे स्वर से शब्द करने लगीं बहुरि जब वहां उमर उनके सङ्गी आये तब वे स्त्रियां चपलता को छोड़कर मौन हो बैठीं तब उमर कहनेलगे कि हे पुरुषाओ! तुमने महापुरुष का भय न किया और मुझको देखकर मौन हो बैठीं तब उन्हों ने कहा कि महापुरुष का स्वभाव अतिकोमल है और तुम्हारा

स्वभाव उनसे कठोर है ताते हम तुमसे डरती हैं बहुरि महापुरुष उमर से कहने लगे कि हे उमर ! तुझको जब माया न देखकर भी तेरे तेज के आगे भागजावे और ठहर न सके तब औरों की क्या चली इस प्रकार कहकर उनकी मनोहार करतेभये और प्रसन्न किया बहुरि एक और सन्त थे सो संयोग करके किसी पुरुष के साथ मार्ग में सङ्गीहुये बहुरि जब उससे बिछुड़े तब रोवने लगे तब लोगोंने पूछा कि तुम किस निमित्त रोवतेहो तब उन्होंने कहा कि यह पुरुष जो मुझसे बिछुड़ा है सो इसका बुरा स्वभाव इसके साथही रहा और दूर न हुआ ताते मैं रुदन करताहूं ॥ और अबूबक्र कितानीने भी कहाहै कि फ़क़ीरी भले स्वभावका नाम है ताते जिसका स्वभाव भला है सो उत्तम फ़क़ीरहै और एक और सन्त ने भी कहाहै कि कठोरस्वभाव ऐसा पाप है कि इसके होते हुये कोई शुभ गुण भी लाभदायक नहीं होता और कोमल स्वभाव ऐसा भजन है कि इस करके सर्व पापों का नाश होजाता है और कोई अवगुण विघ्न नहीं करसक्ता १

(दूसरा विभाग भले स्वभावों के वर्णन में) ताते जान तू कि इनके स्वभाव के निर्णय में बहुत प्रकार के वचन आये हैं पर भले स्वभावों की पूर्णता किसी ने नहीं कही जैसे किसीने कहा है कि मस्तक प्रसन्न रखनाही भला स्वभाव है और किसीने कहा है कि सहनशीलताही भला स्वभाव है सो इसकी नाईं और भी बहुत वचन हैं पर यह सब भले स्वभाव के अङ्ग हैं पूर्ण स्वभाव भला इसीका नाम नहीं ताते मैं भले स्वभाव की पूर्णता को प्रकट करके कहताहूं सो ऐसे जान तू कि इस मनुष्य को दो पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न किया है सो एक शरीरहै जो स्थूल नेत्रों करके देखा जाताहै और दूसरा जीवहै सो उसको बुद्धि करके पहिंचानसक्ते हैं सो शरीर और जीव की सुन्दरताई भी है और कुरूपता भी है पर शरीरकी सुन्दरता को स्थूलरूपवत् कहते हैं और जीव की सुन्दरताई भले स्वभाव करके होती है पर स्थूलरूपवान् भी उसीको कहते हैं जिसके नेत्र, मस्तक, नाक, कान, मुख और अवर सब अङ्ग और उदर समान होते हैं तैसेही जीव की पूर्ण सुन्दरताई भी तबहीं कहीजाती है जब इसी पुरुष में चार गुण समान पाये जावें सो एक विद्याहै दूसरा भोगों का जीतना तीसरा क्रोध का जीतना चौथा विचार सो विचार इन तीनों में वर्त्तताहै पर प्रथम जो विद्या कहीथी तिसका अर्थ बूझ है और विशेषता इसकी यह है कि बूझ करके

सत्य और असत्य को सुगमही पहिचान लेवे बहुरि वचन और करतूति की भलाई और बुराई के भेद को समझे और योंभी जाने कि यह प्रतीति झूठीहै और यह सत्य है सो जब वचन और करतूति और निश्चय को भलीप्रकार जानता है तब इसके हृदयमें अनुभव उत्पन्न होताहै सो अनुभव सर्वगुणों का मूल है जैसे महाराज ने भी कहा है कि जिस पुरुष को अनुभव प्राप्त हुआ है तिसको सब गुण प्राप्त होते हैं और दूसरा भोगों का जीतना यह है कि भोग भी इसके ऊपर प्रबल न होवें और बुद्धि की आज्ञानुसार बर्तें और विचारकी आज्ञा माननी इसको सुगम होवे बहुरि तीसरा क्रोध का जीतना यह है कि क्रोध भी विचार की आज्ञानुसार होकर उसकी आज्ञामें बर्ते और विचार की आज्ञा को उल्लंघनकरके किसीको दुखावे नहीं २ बहुरि चौथा जो विचारहै सो यह है कि विचार का बल इन तीनों में बर्ते अर्थ यह है कि भोग और क्रोध को वशीकार करे और विद्या को समान राखे और इनको धर्मशास्त्र की आज्ञा विषे बर्तावे क्योंकि क्रोध शिकारी कूकुर की नाईं है और भोग घोड़े की नाईं है और बुद्धिरूपी सवार है सो कभी ऐसा होता है कि घोड़ा सवार से प्रबल होजाता है और कभी आज्ञा विषे चलता है तैसेही कूकुर भी कभी आज्ञा विषे चलता है और कभी आज्ञा से विपर्यय होता है पर जबलग घोड़ा और कूकुर सवार की आज्ञा में न होवें तब लग सवार को शिकार हाथ नहीं लगता और सवार को यह भय रहता है कि कहीं घोड़ा प्रबल होकर मुझको गिराय न देवे अथवा कूकुरही फाड़डाले ताते विचार का काम यह है कि इनको वश में करे और इनको बुद्धि और धर्म की आज्ञा में बर्तावे सो क्रोधके ऊपर कभी भोगोंको प्रबल करके क्रोधके वेगको अपमान के द्वारे हटावे और कभी क्रोधको भोगोंपर प्रबल करके मान का लालच देकर भोगोंकी अभिलाषाओं के वेग को मिटावे इस प्रकार इन दोनों को अपने आधीन राखे सो जिस मनुष्यमें ये चारों लक्षण समान होते हैं तिसको सम्पूर्ण भले स्वभाववाले कहतेहैं और जब कोई लक्षण होवे और कोई न होवे तब उस का सम्पूर्ण भला स्वभाव नहीं कहाजाता जैसे कोई पुरुष सुन्दर होने पर उसके नेत्र अथवा नाक अथवा और कोई अङ्ग कुरूप होवे तो उसको पूर्णरूपवान् नहीं कहते ताते जान तू कि इन लक्षणों की सुन्दरताईभी है और कुरूपता भी है सो सुन्दरता समानता में होती है और कुरूपता दो प्रकार करके होती है एक

मर्याद से अधिक होने में और दूसरे मर्याद से अल्प होने में और योंभी है कि जिस मनुष्यमें एक स्वभाव बुरा होताहै तब उस करके और भी अनेक बुरे स्वभाव उत्पन्न होते हैं पर इन लक्षणों की मर्याद जो कहीथी सो इस प्रकार है कि प्रथम जब विद्याही मर्यादसे अधिक होतीहै तब नाना प्रकारकी मलीनता बिषे भी पसर जाती है ताते चपलताई और चतुराई उत्पन्न होती है फिर अभिमानी होजाताहै और जब विद्या मर्याद से थोड़ी होतीहै तब मूर्खता और जड़ताको प्राप्त होताहै बहुरि जब विद्याही मर्यादअनुसार होती है तब उससे विचार और सुमति और शुद्ध संकल्प और उत्तम बूझ उपजती है तैसेही जब क्रोधका बल अधिक होता है तब अभिमान और अहङ्कार और दुर्वचन और बड़ावना और अपनी स्तुति करनी और निश्शङ्क होकर आपको भयानक स्थान में डालना इत्यादिक अवगुण उत्पन्न होतेहैं और जब यह क्रोध ही मर्याद से अल्प होता है तब निर्मानता और पराधीनता और कपट इत्यादिक बुरे स्वभाव उपजते हैं बहुरि जब क्रोध का बल मर्याद के अनुसार होताहै तब इसका चित्त दृढ़ होता है और पुरुषार्थ और बल और सहनशीलता और नम्रता और इसकी नाईं अनेक शुभगुण को पावता है इसी प्रकार जब भोगों का बल अधिक होता है तब तृष्णा और अशुद्धता और कृपणता और ईर्षा उपजती है और लोभ करके धनवानों के अपमान को सहता है और निर्धनों का निरादर करता है इत्यादिक अनेक अपलक्षण उत्पन्न होते हैं बहुरि जब सर्वथा भोगोंसे रहित होताहै तब आलस्य, कादरता, अस्थिरता उपजती है और भोगों का बल मर्यादअनुसार होता है तब संयम धैर्य संतोष भाव यह सब उत्पन्न होते हैं ताते विद्या और क्रोध और काम जो वर्णन किये हैं सो इनके दो २ किनारे हैं एक अधिकता दूसरा अल्पता सो यह दोनों निन्द्य हैं ताते इनकी मर्यादही विशेष कही है पर इनकी मर्याद बालसे भी सूक्ष्म और कठिनहै और उत्तम मार्ग भी यही है जैसे परलोक में पुलसरात अर्थात् बैतरणीका उतरना कठिन कहाहै तैसेही इनकी मर्याद में बर्तना भी कठिन है ताते जो पुरुष इस लोक में इनकी मर्याद अर्थात् समानता बिषे बर्तताहै वह पुलसरात से परलोक में निर्भय रहता है इसी कारण से श्रीमहाराज ने भी सब स्वभावों में समानताही प्रमाण कही है और उन पुरुषों की प्रशंसा करी है जो कृपणता और फ़जूली से रहित हैं और महापुरुषने भी कहाहै कि

न तो ऐसी कृपणता करिये जो किसीको कुछ न दीजै और न ऐसी फ़जूली करिये जो सब कुछ एकही बारमें लुटादीजै और आप निर्धनताई को प्राप्त हूजिये ताते जान तू कि हृदय की सुन्दरताई सम्पूर्ण तबहीं होतीहै जब यह सब गुण मर्याद के अनुसार होते हैं जैसे शरीर करके सुन्दर भी तबहीं होता है जब सब अङ्ग सुन्दर और समान होतेहैं पर इस हृदयकी सुन्दरता और कुरूपता विषेभी मनुष्य चार प्रकारके होतेहैं सो एक ऐसे मनुष्य हैं कि उनमें सम्पूर्ण शुभगुण पाये जा हैं तब उनको सम्पूर्ण सुन्दर कहाजाता है और सब जीवों को ऐसे महापुरुष की आज्ञाविषे वर्तना उचित है पर ऐसा पूर्ण सुन्दर कोई महापुरुष और सन्तही होता है जैसे शरीर के पूर्ण सुन्दर भी एक यूसुफ़ही हुये हैं तैसे हृदयका पूर्णसुन्दर भी कोई बिरला होताहै १ और दूसरे पुरुष ऐसे होतेहैं कि उनमें सब स्वभाव बुरेही पाये जातेहैं और हृदय उनका महाकुरूप और कठोर होताहै पर ऐसे पुरुष जगत् में न होवें तो भलाहै काहेसे कि वह मनमुख असुरोंकी नाईं हैं और असुरों को जो कुरूप कहाहै सो शरीर करके कुरूप नहीं कहा केवल सेवकहीके स्वभावों की बुराई करके कुरूप कहा है २ और तीसरे मनुष्य ऐसे हैं कि हृदय उन दोनों प्रकार के मनुष्यों के मध्यहैं पर उत्तम सुन्दरताई के अधिक हैं ३ और चौथे प्रकारके मनुष्य भी यद्यपि उन दोनों के मध्य हैं पर ते कुरूपता के बहुत निकट हैं सो जैसे शरीर करके भी सम्पूर्ण सुन्दर और कुरूप कोई बिरलाही होताहै पर मध्यम भाव विषे बहुत होते हैं हृदय की सुन्दरता और कुरूपता भी इसी प्रकार है ४ ताते सबको यही पुरुषार्थ करनाचाहिये कि जो हृदय की पूर्ण सुन्दरताको न पहुँच सके सम्पूर्ण सुन्दरता के निकट जो पदहै तिसको पहुँचे अर्थात् जब सब शुभगुणों को प्राप्त न होसके तो भी कुछ शुभगुणों को तो प्राप्तहोवे सो जैसे शरीर की सुन्दरता और कुरूपता अपार है तैसेही हृदय की सुन्दरता और कुरूपता भी अपार है काहेसे कि शुभगुणों की सुन्दरता एक वस्तुका नाम नहीं तौभी मूल इनका विद्या और भोगों का जीतना और क्रोध का जीतना और विचार है और अवर शुभ गुण इनकी शाखा हैं २ (अब तीसरे विभाग में यह वर्णन होगा कि पुरुषार्थ करके निस्संदेह भले स्वभावों को प्राप्त होसके हैं) ताते जान तू कि कोई पुरुष ऐसे कहते हैं कि जैसे शरीर का स्वरूप नहीं उलटसक्ता जैसे आदि में उत्पन्न हुआ है तैसाही रहता है अर्थात् लम्बा पुरुष छोटा नहीं होसक्ता और छोटा

यत्न करके लम्बा नहीं होता तैसेही हृदय का स्वरूप भी नहीं उलटता ताते जिसका स्वभाव बुरा है वह यत्न करके भला नहीं होता सो यह कहना उनका प्रमाण नहीं काहेसे कि वह भूल करके कहते हैं क्योंकि जो उनका कहना प्रमाण होता तौ उपदेश और समझावना सिखावना सन्तजनों का सब मिथ्या होता है जैसे महापुरुष ने भी कहा है कि अपने स्वभावों को भला करो ताते जाना जाता है कि स्वभावों का उलटावना असंभव नहीं इस कारण से कि महाकठोर पशु भी यत्न करके कोमल होजाते हैं और वह मृग जो मनुष्यों को देखकर भयवान् होकर भागजाते हैं सो भी प्यार करके मनुष्यों के साथ विना पकड़े चलेजाते हैं ताते स्वभाव का उलटावना शरीर के उलटावने की नाईं नहीं ताते सर्व कार्य दो प्रकार के होते हैं सो एक कार्य ऐसे हैं कि मनुष्यों के यत्न करके सिद्ध नहीं होते जैसे खजूर के बीज से सेब का वृक्ष मनुष्य के यत्नसे नहीं होता पर इतना कार्य मनुष्य के अधीन है कि खजूर के बीज को यत्न करके खजूर का वृक्ष करसक्ता है तैसे यह भी मनुष्य के अधीन नहीं कि खाना पीना आदिक जो शरीर के भोग हैं सो सर्वथा इनसे मुक्त होसकें पर इतना कार्य मनुष्य से होसक्ता है कि यत्न करके क्रोध और भोगों को मर्याद के अनुसार करलेवे सो यह बात निस्संदेह है पर इसमें इतना भेद है कि कोई पुरुष ऐसे होते हैं जिनका स्वभाव उलटना कठिन होताहै और एक ऐसे होते हैं कि उनको सुगम होता है पर कठिनता भी इनकी दो कारण से होती है सो एक यह है कि जिस मनुष्य का स्वभाव आदि उत्पन्न विषे यही प्रबल होता है वह भी कठिनता करके उलटता है और दूसरा यह है कि जिस स्वभाव में चिरकालपर्यन्त बर्त्ताव होता है वह भी सुगम नहीं उलटता और प्रबल होजाता है बहुरि सर्व मनुष्य स्वभाव के उलटने में चार प्रकार के होते हैं एक ऐसे हैं कि प्रथम उत्पत्ति विषेही कोरे कागज की नाईं हैं और उन्होंने सत्य और असत्य को अभी पहिंचानाही नहीं और किसी भले और बुरे स्वभाव में वर्त्तमान भी नहीं हुये सो ऐसे मनुष्य उपदेश के उत्तम अधिकारी हैं कि वह सुगमही भले स्वभाव को अङ्गीकार कर लेते हैं सो ऐसे पुरुष को कोई उपदेश करनेवाला सिखावे और उनको बुरे स्वभाव के विघ्नों को समझावे तब वह सीधे मार्ग विषे चलें सो आदि जन्म अवस्था में सभी बालक ऐसे होते हैं पर माता पिता उनको बुरे मार्ग में डालते हैं

और माया की तृष्णा में उनको लगावते हैं और कुछ भली बुद्धि नहीं सिखाते ताते वह खेलने और खाने की वासना में निश्शङ्क होकर बर्त्तते हैं सो उनके धर्म के नाश होने का पाप माता और पिता को होता है सो इसी कारण करके महाराज ने भी कहा है कि जो पुरुष अपने मन और सम्बन्धियों को पाप कर्म से बर्जते हैं और नरक की अग्नि से बचाते हैं वह पुरुष धन्य हैं १ और दूसरे मनुष्य ऐसे हैं कि उन्होंने यद्यपि अभी भले बुरे का निश्चय कुछ नहीं किया पर भोग और क्रोध में कुछ काल वर्त्तमान हुये हैं तौ भी इतना जानते कि ये स्वभाव भले नहीं सो ऐसे पुरुषों का कार्य कठिनता से होता है क्योंकि इनको दो यत्न चाहिये हैं एक बुरे स्वभावों का दूर करना दूसरे भले स्वभावों का बीज उनके हृदय में बोवना पर जब वह पुरुष श्रद्धा और पुरुषार्थसंयुक्त होवे तब तुरत ही भलाई को प्राप्त होसक्ते हैं और उनका बुरा स्वभाव नाश होजाता है २ और तीसरे मनुष्य इस प्रकार के हैं कि उनका स्वभाव पापों में दृढ़ हुआ है और यों भी नहीं जानते कि यह बुरे स्वभाव हैं और उनकी दृष्टि में पापकर्म सुन्दर होकर भासते हैं सो ऐसे पुरुषों का स्वभाव उलटना महाकठिन होता है ताते ऐसा कोई बिरला होता है जो अपने पाप स्वभाव का त्याग करे ३ ॥ और चौथे मनुष्य ऐसे हैं कि पापकर्म करके बड़ाई करते हैं और भला जानते हैं और कहते हैं कि हम इतनी मदिरा पान करजाते हैं और कामादिक भोगों बिषे हमको इतना बल है सो ऐसे पुरुष भलाई के उपदेश को अङ्गीकार नहीं करते पर जिस किसी पर अकस्मात् भगवत्‌ही की दया होजावे तिसकी दूसरी बात है और उसका स्वभाव बुरा दूर होजाता है सो इस भगवत्‌दया में मनुष्य का बल और यत्न कुछ नहीं चलता ४ (और चौथे विभाग में भले स्वभाव के प्राप्त होने का उपाय वर्णन करते हैं) ताते जान तू कि जो कोई पुरुष यों चाहे कि मेरा बुरा स्वभाव दूर होवे तब इसका उपाय यह है कि अपने स्वभाव के अनुसार न बर्त्ते काहे से कि भोगों का नाश करना विपर्यय हुये विना सिद्ध नहीं होता क्योंकि विरोधी पदार्थ अपने विरोधी ही से दूर होता है जैसे क्रोधरूपी रोग की औषध सहनशीलता है और अभिमानरूपी रोग की औषध नम्रता है और कृपणता की उदारता औषध है और इसी की नाईं सर्व रोगों की औषध उसकी विरोधी वस्तु है ताते जो कोई पुरुष शुभ करतूति की साधना में आपको लगावे तब उसका

स्वभाव सहजही भला होजाता है और धर्मशास्त्र में जो शुभकर्म करने की आज्ञा है इसका कारण यह है कि शुभकर्म करके हृदय का स्वभाव शुभ होता है सो जो कुछ यह पुरुष प्रथम यत्न करके करता है तिसके हृदय का स्वभाव भी उसीके अनुसार दृढ़ होजाता है जैसे आदि में बालक पढ़ावनेवाले और चटशाला से भय करके भागता है पर जब उसको दण्ड करके पढ़ने में लगावते हैं तब तिसका वही स्वभाव बनजाता है बहुरि जब बड़ा होता है तब सम्पूर्ण रहस्य विद्याही को समझता है और विद्या के रस को छोड़ नहीं सक्ता इसी प्रकार जब कबूतर शतरंज जूवा खेलने का स्वभाव पकड़ता है तब ऐसा स्वभाव होजाता है कि सब सुख माया के और अवर जो कुछ संग्रह रखता है सो उसीमें खर्च करता है और उसका त्याग नहीं करसक्ता ताते उसके स्वभाव के विपर्यय भी बहुत स्वभाव हैं पर जब उन स्वभावों में वर्त्तमान होता है तब ऐसा दृढ़ होजाता है कि उन करके दुःख और दण्ड को सहना भला जानता है जैसे बहुत मनुष्य जिनका चोरी करना दृढ़ स्वभाव होगया है वह नाना प्रकार के दण्ड और हाथ कटवाने पर भी धैर्य धरते हैं पर चोरी नहीं छोड़सके और उस दण्ड के सहने में अपनी विशेषता मानते हैं इसी प्रकार हिजड़े अपनी निर्लज्जता करके ही परस्पर प्रसन्न होकर उसकी अधिकता पर बड़ाई करते हैं ताते जो विचार करके देखिये तब नाऊ और श्वपच भी आपस में ऐसी बड़ाई करते हैं जैसे विद्यावान् और जो गुणीलोग बड़ाई करते हैं सो यह सब स्वभाव के बर्त्तने का फल है कि वह ऐसा ही दृढ़ होजाता है जैसे किसी का स्वभाव मिट्टी खाने का होता है और उसमें रोग और मृत्यु होने का भय भी उसको होता है तौ भी उसका त्याग नहीं करसक्ता ताते यही प्रसिद्ध है कि जो कुछ स्वभाव के विपर्यय है वह भी बहुत काल के वर्त्तमान होने करके दृढ़ होजाता है फिर जो कुछ इस मनुष्य के हृदय के स्वभावअनुसार है वह तो इसका जीवनरूप है जैसे आहार और जल शरीर का जीवनरूप है पर जब यह पुरुष अपने शुद्ध स्वभाव को ग्रहण करे तब वह स्वभाव तो सुगमही दृढ़ होजाता है सो तैसेही भगवत् का पहिंचानना और भजन और काम क्रोध का अधीन करना सो यह मनुष्य के हृदय के स्वतः स्वभाव हैं इस कारण करके कि यह मनुष्य भी देवताओं की नाईं उत्पन्न हुआ है जैसे देवताओं का आहार

भगवत का पहिचानना और बूझ है तैसे मनुष्यों के हृदय का आहार भी और जीवनरूप यही है प. ...स मनुष्य का स्वभाव जो भोगों में अधिक दृढ़ हुआ है इस कारण करके उसमें नहीं रुचि करता सो उन भोगों करके इनका हृदय रोगी होगया है जैसे रोगी पुरुष अपने दुखदायक आहार में प्रीति करता है और सुखदायक आहार को बुरा जानकर त्याग करता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि जो पुरुष भगवत् की पहिचान और भजन के विना अन्यथा पदार्थों को प्रियतम जानता है वह रोगी है सो महाराज ने भी इसी प्रकार कहा है कि मनमुखों का हृदय रोगी है और जो पुरुष भगवत् की ओर आया है वही अरोग है और जैसे शरीर के रोग करके मृत्यु का भय होता है तैसे हृदय के रोगी होने करके भी परलोक में बुद्धि के नाश होने का भय होता है सो जैसे शरीर के रोग से भी तब छूटता है जब अपने स्वभाव से विपर्यय कटु औषध खावे और वैद्य की आज्ञा विषे वर्ते तैसे हृदय के रोग का उपाय भी यही है कि अपनी वासना और मनके स्वभाव से विपर्यय होवे जैसे सन्तजनों और शास्त्रों ने कहा है क्योंकि सन्त जन हृदय के वैद्य हैं सो प्रयोजन यह है कि जैसे शरीर के रोगों का वैद्यक है तैसे हृदयके रोगों का भी वैद्यक है और दोनों का एकही स्वभाव है जैसे शरीर के वैद्यक में गरमी की औषध शरदी कही है तैसे जिस पुरुषको अभिमान का रोग प्रबल होवे तिसको यत्न करके दीनस्वभाव करना चाहिये कि उसकी आरोग्यता यही है और जिस पुरुष का अत्यन्त दीन स्वभाव होवे उसको यत्न करके गम्भीर स्वभाव करलेना उचित है ताते जान तू कि सब शुभगुण तीन प्रकार करके प्राप्त होते हैं सो एक यह है कि वह पुरुष आदि उत्पत्तिमेंही गुणवान् होता है सो यह बात भगवतकृपा करके होती है जैसे किसी पुरुष को आदि उत्पत्ति से ही उदार अथवा नम्र भगवत उत्पन्न करे सो ऐसे पुरुषभी बहुतसे होते हैं १ और दूसरे मनुष्य इस प्रकार के हैं कि वह यत्न करके शुभ करतूतों के साधन में दृढ़ होते हैं तब उनका स्वभाव भी सहज स्वाभाविकही शुभ होजाता है २ और तीसरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि वह जब भले स्वभाव और शुभ करतूतिवालों को देखते हैं और उनका संग करते हैं तब उनका स्वभाव सहजही शुभ होजाता है और यद्यपि उनको ऐसी बूझ भी नहीं होती तो भी भलाई को प्राप्त होते हैं ३ पर जिस पुरुष को यह तीनों पदार्थ इकट्ठे मिलें कि आदि उत्पत्ति से भी शुभ गुणोंवाला

होवे और उसकी करतूति भी भली होवे और संगति भी उसको भली प्राप्त होवे तब वह पुरुष पूरा भाग्यवान् होताहै और जिस मनुष्यमें यह तीनों पदार्थ न होवें कि आदि उत्पत्तिमें भी उसके स्वभाव नीच होवें और करतूति भी बुरी करे और संगति भी कुसंगियों की होवे वह पूरा भाग्यहीन होता है सो इन भाग्यवान् और भाग्यहीन दोनों में बड़ा भेद है कि किसीको कोई पदार्थ प्राप्तहोता है और कोई नहीं होता सो जितना किसीमें शुभगुण पायाजाता है तितनाही भाग्यवान् कहाता है और जितना अवगुण होता है उतना मन्दभागी है ताते भगवतने भी कहा है कि जो पुरुष अल्पमात्र भी सुकृत करता है तिसको अवश्यही उसका फल प्राप्त होता है और जो किंचित भी बुराई करता है वह उतनाही दुःख भोगता है ताते जान तू कि सब करतूति इन्द्रियोंके साथ होती हैं और उन में प्रयोजन यही है कि हृदय का स्वभाव बुराई से उलटकर सीधा होवे क्योंकि परलोक में जीवही जाता है और शरीर यहांही रहजाता है ताते चाहिये कि जब जीव परलोक में जावे तब निर्मल और सुन्दर होकर जावे तो भगवत् के दर्शन का अधिकारी होवे और शुद्ध दर्पण की नाईं निरावरण होकर अपने हृदय में भगवत् की सुन्दरता को देखे सो वह सुन्दरताई कैसी है कि उसको देखकर स्वर्ग के सुख भी कुरूप और तुच्छ भासते हैं और यद्यपि परलोक में शरीरके साथ भी सम्बन्ध होता है तौ भी कर्त्ता और भोक्ता यह जीवही है और शरीर उसके अधीन है ताते जान तू कि शरीर और जीव भिन्न २ हैं क्योंकि जीवकी उत्पत्ति सूक्ष्म और अरूप है और शरीर आधिभौतिक है सो यद्यपि शरीर और जीव भिन्न है तौभी इनका परस्पर सम्बन्ध है सो जो भली करतूति शरीर से होती है उसका प्रकाश हृदय में जाय पहुँचताहै और वही प्रकाश उत्तम भागों का बीज होताहै और जो करतूति बुरी शरीर के साथ होती है तिसका अन्धकार हृदय को पहुँचता है और वही अन्धकार मन्दभागों का बीज होताहै सो इसी सम्बन्ध के निमित्त जीवको आधिभौतिक लोक में उत्पन्न किया है कि यह जीव शरीर को फांसी की नाईं बनावे और इस करके सम्पूर्ण भले स्वभावोंको शिकार करे जैसे लिखना जो है सो कारीगरी बुद्धिकी है पर तौभी करतूति लिखनेकी हाथों करके ही सिद्ध होतीहै ताते जब कोई चाहे कि मेरे अक्षर लिखने में सुन्दर होवें तब इसका उपाय यह है कि यत्न करके अक्षर

सुन्दर लिखे और हाथों की हथेली को बनावे तब उसके हृदयमें सुन्दर अक्षरों की मूर्त्ति दृढ़ होवे सो जब मूर्त्ति हृदय में दृढ़ होती है तब उसीके अनुसार अँगुली अक्षर को लिखती हैं तैसेही प्रथम इस मनुष्य की करतूति भली होती है तब इसके हृदय में भला स्वभाव दृढ़ होताहै फिर उस भले स्वभाव के अनुसार करतूति सहजही भले होते हैं ताते निस्सन्देह यही प्रसिद्ध हुआ कि बीज सब भलाई का यह है कि प्रथम यत्न करके शुभकर्म करे और शुभकर्मों का फल यह है कि हृदय में भला स्वभाव दृढ़ होवे और फिर भले हृदय के स्वभाव का प्रकाश शरीर में पसरता है तिस करके स्वाभाविकही प्रीतिसंयुक्त भले करतूति होने लगतेहैं सो जीव और शरीर के सम्बन्ध का भेद यही है कि शरीरके करतूति का गुण हृदय में प्रवेश करता है और हृदय के स्वभाव का प्रवेश शरीर में पहुँचता है सो इसी कारण करके जो करतूति अचेतता और अज्ञानता के साथ होती है वह निष्फल और व्यर्थ होती है क्योंकि उसका गुण अथवा अवगुण हृदय में प्रवेश नहीं करता ताते ऐसे जान तू कि जिस मनुष्य का शरदी का रोग गरम औषध खाने करके मिटै तिसको यांभी न चाहिये कि गरम औषध खायेही जावे जो गरमीही अधिक होकर रोगरूप होजावे ताते रोगकी औषध की जो मर्याद है तिसके अनुसार रहनाही फलदायक होता है इस प्रकार जानना चाहिये कि औषध करने का प्रयोजन यह है कि शरीर का स्वभाव समान होवे और गरमी अथवा शरदी अधिक न होवे सो जब यह पुरुष जाने कि मेरे शरीर का स्वभाव समान हुआ है तब आगे औषध का त्याग करे और स्वभाव के निमित्त आहार पथ्य भी समानही खावे और समानताही को अरोगता जाने तैसेही हृदय के स्वभावों के भी दो २ किनारे हैं एक अधिक होना दूसरा न्यून होना सो यह दोनों निन्द्य हैं ताते इनका प्रयोजन समानता है जैसे कृपण को उचित है कि धनको परमार्थ में खर्चै और जब लग उसके हृदय में उसकी सुगमता न होवे तबलग यत्न करके खर्च करे और जब उसको अधिकारी प्रति देना सुगम हुआ तो ऐसे भी न चाहिये कि व्यर्थही खर्चता रहे सो यह भी निन्द्य है सो जैसे शरीर के स्वभाव की मर्याद विपर्यय विषे प्रसिद्ध है तैसे हृदय के स्वभावों की भी सन्तजनों के वचनों करके समझी जाती है ताते चाहिये कि सन्तजनों की आज्ञानुसार बर्ते और जिस पदार्थ का संग्रह

करना कहा है उसका संग्रह करे और जिसका देना प्रमाण कहा है उसे देवे तब जानिये कि यह पुरुष समानता को प्राप्त हुआ है पर जबलग इस मनुष्य की शुभकर्मों में स्वाभाविक रुचि नहीं और यत्न करके करता है तबलग जानिये कि अभी रोगी है पर भला है कि यत्न करके औषध का अङ्गीकार करताहै इस का रोग दूर होरहेगा इसी कारण करके महापुरुष ने भी कहा है कि महाराज की आज्ञा को प्रीतिसंयुक्त अङ्गीकार करो और महाराज की आज्ञा पालन करने में हठ और धैर्य भी करना भला होता है ताते जान तू कि जो पुरुष विचार करके धन का संग्रह करता है वह कृपण नहीं कहाजाता क्योंकि कृपण वह होता है जिसकी प्रीति धनके संग्रह में स्वाभाविक अधिक होवे तैसेही जो पुरुष यत्न करके धन को खर्च करताहै वह संपूर्ण उदार नहीं कहाजाता ताते संपूर्ण उदार वही है जिसको धनका देना सुगम होवे सो इस पुरुष को ऐसे चाहिये कि सब स्वभाव इसके स्वाभाविक ही भले होवें यत्न और हठ दूर होजावे और संपूर्णता इस मनुष्य की यही है कि सब करतूति और स्वभाव इसके सन्तजनों के वचनों के अनुसार होवें और इसको अपनी अभिलाषा कुछ न रहे और सन्तजनों की आज्ञा माननी इसको सुगम होवे तब जानिये कि इसका रोग दूर हुआ है सो भगवत् ने भी महापुरुष से इसी प्रकार कहा है कि इन पुरुषों का धर्म तबहीं संपूर्ण होवेगा जब तेरी आज्ञा में स्वाभाविक प्रसन्नतासहित चलेंगे सो यह जो आगे बखान किया है सो तिसमें भी एक गुह्य भेद है पर वह भेद इस ग्रन्थ में संपूर्ण कहा नहीं जाता तौभी कुछ सूचनामात्र कहते हैं सो ऐसे जान तू कि यह म-नुष्य भाग्यवान् तब होता है जब इसका स्वभाव देवताओं की नाईं निर्मल होवे क्योंकि मनुष्य की उत्पत्ति भी देवताओं की नाईं शुद्धरूप है और इस जगत में परदेशी है और स्थान इसकी देवलोक है ताते जो स्वभाव स्थूल इस जगत का यह पुरुष अपने साथ परलोक में लेजाता है तब उस करके देवताओं के सम्बन्ध से दूर होता है ताते चाहिये कि जब यह पुरुष देवलोक में जावे तब देवताओं के स्वभावोंसे संयुक्त जावे और कोई स्वभाव इस विषे जगत् का न होवे सो स्वभाव जगत् का इस प्रकार होता है कि जिस पुरुषको धन संचने की तृष्णा है वह भी धन के साथ परचा हुआ है और जिसको धन खर्चने में प्रीति है वह भी धनके साथ परचा हुआ है तैसेही जिसको मान की इच्छा है वह भी लोगों के

साथ परचा हुआ है और जिसको दीनता और नम्रता विषे अधिक अभिलाषा है वह भी लोगों के साथ परचा हुआ है और देवता जो हैं वह किसी प्रकार धन और लोगों के साथ आसक्त नहीं हैं और केवल भगवत् के प्रेम में ऐसे मग्न हैं कि अन्यथा किसी ओर नहीं देखते ताते चाहिये कि मनुष्य के हृदय का सम्बन्ध भी धन और लोगों से टूटाहुआ होवे और इन सबसे शुद्ध और निर्लेप होवे पर यद्यपि मनुष्य जो यह शरीरधारी है सो शरीर के सब स्वभावों से रहित नहीं रह सक्ता तौभी चाहिये कि इनकी मर्याद और समानता विषे स्थित होवे सो जब यह पुरुष समानताविषे दृढ़ हुआ तब इस प्रकार जानिये कि अब सब स्वभावों से मुक्त हुआ अर्थात् कोई स्वभाव भी इस पर प्रबल नहीं है जैसे प्राणी जो शीत और उष्णता से रहित कदाचित् नहीं रहसक्ता पर जब समानभाव में रहता है और शीत उष्ण की अथवा अधिकता नहीं होती तब मानों दोनों स्वभावों से वह मुक्त है क्योंकि जल गरमी और शरदी दोनों से रहितभी नहीं पर उसको शीतल और उष्ण कुछ नहीं कहाजाता ताते सन्तजनों ने जो सब स्वभावों में मर्याद और समानता कही है सो इसी कारण कही है ताते चाहिये कि इस मनुष्य की दृष्टि सदैव समानताविषे रहे और सब स्वभावों के बन्धनों से मुक्त होवे तब इसका चित्त सर्वकाल भगवत्विषे लीन होवे सो महाराज ने भी इसी प्रकार कहाहै कि एक मुझको स्मरण करो और अवर सब बिसारो सो सबका बीज-मन्त्र यहीहै पर यद्यपि इस मनुष्य को शुद्ध परमपद विषे स्थित होना कठिनहै तदपि सब जप तप और भजन के अभ्यास का प्रयोजन यही है कि श्रीरामजी को एक पहिचाने और सर्व विषे उन्हींको देखे और उन्हींको चाहे उन्हींका दास होवे और कोई इच्छा हृदय में न फुरे सो जब इस मनुष्यकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि सम्पूर्ण भला स्वभाव इसको प्राप्त हुआ और मानुषी स्वभाव दूर होकर स्वस्वरूप को प्राप्त हुआ और महाराज को पहुँचा अब ऐसे जान तू कि यद्यपि यत्न और पुरुषार्थ इसके साधन का बड़ा कठिन है तौ भी जो सद्गुरु इसका वैद्य होवे और इसका औषध भली प्रकार करे तब यत्न और पुरुषार्थ करना भजनविषे इसको सुगम होजाता है सो भली प्रकार औषध करना यह है कि जिज्ञासु को प्रथमही तत्त्वज्ञान का उपदेश न करे क्योंकि जिज्ञासु को आदि अवस्थामें ऐसा बल नहीं होता जैसे प्रथम बालक को जब पाठशाला

में भेजिये और उससे कहिये कि तुझको विद्याके पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा सो वह बालक बड़ाई और मान के सुख को समझताही नहीं कि बड़ाई और मान कैसे होतेहैं ताते चाहिये कि प्रथम बालकसे ऐसे कहे कि अब तू चटशाला विषे जा और जब पढ़कर आवेगा तब तुझको गेंद दण्डा देवेंगे अथवा बुलबुल चिड़िया देवेंगे तब तू प्रसन्न होकर खेलियो तब वह बालक इस लोभ करके चटशालामें जाताहै बहुरि जब उससे कुछ बड़ा होवे तब कहिये कि जब तू खेलने का त्याग करे और विद्या पढ़े तब तुझको सुन्दर वस्त्र देवेंगे बहुरि जब उससेभी बड़ा होवे तब कहिये कि विद्या पढ़ने करके बड़ाई और मान प्राप्त होवेगा और सुन्दर रेशमी वस्त्र का पहरना स्त्रियों का स्वभाव है बहुरि जब सम्पूर्ण विद्या पढ़लेवे और बुद्धि उसकी उज्ज्वल होवे तब उससे कहिये कि इस जगत् की बड़ाई और मान निर्मूलहै अर्थात मृत्युके समय नष्ट होजातीहै बहुरि उससे पीछे जो अविनाशी पद सच्ची बादशाही और अमर है उसका उपदेश करे तैसेही प्रथम जिज्ञासुको शुद्ध निष्कामता का बल नहीं होता ताते चाहिये कि सद्गुरु प्रथम उससे इस प्रकार कहे कि अब तू शुद्ध करतूति विषे पुरुषार्थ कर क्योंकि शुद्ध करतूति करके जगत् में तेरी बड़ाई होवेगी और लोग तुझको भजनवान् जानेंगे तब इस बड़ाई की अभिलाष करके धन और भोगों से निवृत्त करे बहुरि जब जिज्ञासु धन और भोगों की अभिलाष से रहित होवे और इसी वैराग्य का अभिमान इसके हृदयमें फुरे तब चाहिये कि सद्गुरु उसके अभिमान को इस युक्ति करके दूर करे कि जिज्ञासु को भिक्षा मांगने की आज्ञा करे बहुरि जब इसमें भी जगत उसका आदर करे तब जिज्ञासु को नीच टहलमें लगावे अर्थात् मल मूत्र के स्थानको शुचि करावे इसीप्रकार जिज्ञासुको जैसा रोग होवे तैसा ही उपचार करे और शनैः २ करके सब रोगों को दूर करे क्योंकि जबलग जिज्ञासु में सम्पूर्ण बल नहीं होता तबलग मान और आदर के आश्रय करके तप और भजन को अङ्गीकार करता है सो और सब बुरे स्वभाव तो बिच्छू की नाईं हैं और मानरूपी अजगर सर्प है ताते मानरूपी अजगर और सर्व स्वभावों को भक्षण करलेता है और मान का स्वभाव सब स्वभावों से पीछे दूर होताहै ४ (और पांचवें विभाग में मानसी रोग और अवगुणों का वर्णन होवेगा) ताते ऐसे जान तू कि तन और इन्द्रियों की आरोगता इस करके जानी जाती है कि जिस कार्य

के निमित्त जो २ इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं तिसी कार्य को सावधान होकर ग्रहण करे जैसा नेत्र भली प्रकार देखें चरण भली प्रकार चलें तब जानिये कि नेत्र और चरण अरोग्य हैं तैसे हृदय की अरोगता तब पहिंचानी जाती जब इस हृदय का जो स्वतः स्वभाव है और जिस निमित्त जीव को उत्पन्न किया है तिसी कार्य में निर्यत्न सावधान होवे और अपने स्वतःस्वभाव में दृढ़ होवे सो यह सावधानता दो कारणों करके प्रकट होती है एक श्रद्धा दूसरे बल ताते श्रद्धा ऐसी चाहिये कि भगवत् बिना और किसी पदार्थ में प्रीति न होवे क्योंकि जैसे शरीर का आहार अनाज है तैसे भगवत् की प्रीति और पहिंचान हृदय का आहार होवे सो जिस पुरुष की क्षुधा मन्द होती है वह रोगी होता है तैसे जिस मनुष्य के हृदय में भगवत् की प्रीति न होवे तिसका हृदय रोगी और निर्बल होता है ताते महाराज ने भी इस प्रकार कहा है कि जबलग पुत्र और पिता और धन व्यवहार और सम्बन्धियों अथवा और किसी के साथ तुम्हारी प्रीति है तबलग तुम यह जानो कि जब मेरी आज्ञा आन पहुँचेगी और शरीर छूटनेका समय आवेगा तब तुम अधिक दुःखी होओगे॥ बहुरि बलकी अरोगता यह है कि जितनी शुभकरतूति भगवत् ने इस मनुष्यको करणीय कहीहैं तिनको सुगमही करे और उस करतूति करनेमें इसको यत्न कुछ न करनापड़े और शुभकरतूति मेंही इसको स्वाद विशेष उत्पन्न होवे सो ऐसेही महापुरुष ने भी कहा है कि महाराज का भजन मेरे नेत्रों की पुतली है अर्थात् महाप्रियतम है॥ ताते जो पुरुष श्रद्धा और बल अपने में न देखे तब जाने कि मेरा हृदय रोगी है और जिसने अपने रोग को पहिंचाना उस को चाहिये कि उस रोग के उपचार में सावधान होवे और ऐसेभी बहुत पुरुष होते हैं कि उनका हृदय तो रोगी है और वह अपने को अरोग्य जानते हैं सो इसका कारण यह है कि यह मनुष्य अपने अवगुणों के देखने में अन्धा है अर्थात् अपने अवगुण को आप नहीं देखसक्ता पर जो कोई अपने अवगुण को देखा चाहे तिसके चार उपाय हैं सो प्रथम यह कि जिज्ञासु ऐसे सद्गुरु के निकट रहे जो सर्व धर्मों का ज्ञाता होवे और वह अपनी दया करके जिज्ञासु के अवगुण को लखावे सो ऐसे सद्गुरु इस समय में दुर्लभ पाये जाते हैं १ ताते दूसरा उपाय यह है कि कोई मित्र अपनी रक्षा निमित्त करे और वह मित्र ऐसा होवे जो इसके अवगुण को दुरावे नहीं और ईर्षा करके अधिक भी न कहे सो ऐसा

मित्र भी कोई होता है जैसे दाऊदताई नामी सन्त से लोगों ने कहा कि तुम हमारे निकट बैठते क्यों नहीं हो तब उन्होंने कहा कि मैं ऐसे पुरुषों की संगति कैसे करूं जो मेरे अवगुण को प्रकटकरके न कहैं और दुराय राखें २ और तीसरा उपाय यह है कि जो कोई इस पुरुष का वैरी होवे सो वचन को सुने क्योंकि वैरी की दृष्टिभी सर्वदा इसके अवगुणों परही होती है सो यद्यपि वह वैरभाव करके अधिक भी कहता है तौभी उसके वचन में कुछ सत्यभी होताहै ३ और चौथा उपाय यह है कि जब किसी मनुष्य में कोई अवगुण देखे और वह अवगुण इसको बुरालगे तब आप भी उस अवगुण को त्यागकरे और यों जाने कि जैसे इस अपलक्षण करके यह पुरुष बुरा भासता है सो ऐसे मैं भी ऐसे स्वभाव करके बुरा होऊंगा तातें उसका त्याग करे जैसे एकनामी सन्त से लोगों ने पूछा कि ऐसा भला स्वभाव तुमने किससे सीखा है तब उन्होंने कहा कि यह भला स्वभाव मैंने इस प्रकार सीखा है कि जब किसी पुरुष में मैंने अवगुण देखा और मुझको बुरा भासा तब मैंने उस अवगुण का त्याग किया ४ तातें जान तू कि जो मनुष्य महामूढ़ होता है वह अपने को विशेष जानताहै और जो पुरुष विशेष बुद्धिमान् होताहै सो आपको बुरा जानता है जैसे उमर ने एक सन्त से पूछाथा कि महापुरुष ने तुमसे कपटियों के लक्षण कहे हैं सो तुम भली प्रकार जानते हो तातें मुझसे खोलकर कहो कि मुझमें कपटियों का कौन लक्षण है? तब मैं अपने अवगुण को पहिचानूं॥ तातें सब किसी को चाहिये कि अपने अवगुण के पहिचानने का उपायकरे क्योंकि जबलग अपने रोग को न पहिचानिये तबलग उपचार भी उसका नहीं होसक्ता और सब औषधियों का मूल यह है कि अपनी वासना से विपर्यय होना सो महाराज ने भी योंही आज्ञा की है कि अपने मन की वासना से विपर्ययकरो तब उत्तम सुख स्थान में तुम्हारा निवास होगा और महापुरुष ने भी जिस समय मनमुखों को युद्ध करके जीता तब अपने संगियों से कहा कि अब हम छोटी लड़ाई तो जीतआये अब बड़ी लड़ाई में आय प्राप्तहुए हैं तब संगियों ने पूछा कि बड़ी लड़ाई क्या है? तब उन्होंने कहा कि मनके साथ युद्ध करना यह बड़ी लड़ाई है और योंभी कहा है कि अपने मनको दुःख से बचाओ अर्थात् महाराज की आज्ञा का उल्लंघन करके मनको उसकी वासना अनुकूल आहार मत दो क्योंकि परलोक में यह

मनही तुम्हारा शत्रु होवेगा और सब इन्द्रियाँ तुमको धिक्कार कहेंगी ॥ और हस- नबसरी सन्त ने भी कहाहै कि कोई पशू कठोर और अजीत मनके समान नहीं और सिरीसक्र सन्त ने भी कहाहै कि चालीस वर्ष से मन मेरा मधु के साथ रोटी खाने की इच्छा करता है पर मैंने अबलग अङ्गीकार नहीं किया ॥ और इब्राहीम खवासने भी कहाहै कि मैं एक पहाड़पर चलाजाताथा तहां मुझ को अनार खाने की इच्छाहुई तब मैं एक अनार तोड़कर खाने लगा सो वह खट्टा निकला तब मैं उसको छोड़कर आगे को चला तहां एक पुरुष पड़ाहुआ था तिसको मैंने देखा कि उसको बहुत माखी डस रही हैं तब मैंने उसको बहुत नमस्कार किया तब उसने मेरा नाम लेकर मुझको बुलाया तब मैंने कहा कि तुमने मुझको क्योंकर पहिंचाना बहुरि उन्होंने कहा कि जिसने भगवत् को पहिंचाना है उस से कुछ गुप्त नहीं रहता तब मैंने उनसे कहा कि मैं देखता हूं कि महाराज के साथ तुम्हारा मिलाप है ताते तुम महाराज के आगे प्रार्थना क्यों नहीं करते कि जो माखियों को दूर करें और तुमको यह माखी दुःख न देवें तब उन्हों ने कहा कि तेरा भी तो महाराज के साथ मिलापहै ताते तू प्रार्थना क्यों नहीं करता जो तेरी अनार की अभिलाषा दूर करे क्योंकि अनार की वासना करके हृदय को दुःख पहुँचता है और माखियों के डसने का दुःख शरीर को होता है ताते जान तू कि यद्यपि अनार का खाना पाप नहीं तो भी बुद्धिमान् यों जानते हैं कि वासना के भोग पवित्र अथवा अपवित्र यह दोनों समान हैं और निन्द्य हैं क्योंकि जब पापरहित भोगों से मन को न बरजा जावे और कार्य निर्वाहमात्र पर न ठहराया जावे तो यह मन भोग वासना करके पापों बिषे बर्त्तने लगताहै इसी कारण से बुद्धिमानों ने पापरहित भोगों को त्याग किया है तब इस यत्न करके वासना से मुक्तहुये हैं सो ऐसेही उमर ने भी कहा है कि सत्तरबार मैंने पापरहित भोगों का त्याग किया है इस भय करके कि मत मन मेरा पाप भोगों में प्रवेशकरे और यों भी है कि जब मन राजसी भोगों में प्रीति संयुक्त बर्तता है तब इसी संसार को स्वर्ग जानता है और मरने को दुःख जानता है और इसी करके बुद्धि अचेत होती है और यद्यपि कुछ भजन और प्रार्थना करता है तौभी उसके सुख स्वादु को नहीं पाता ताते जब इस मन को पापरहित भोगों से भी बरज रखिये तब निर्बल और अधीन होताहै और इस लोक के सुखों से भागा

चाहता है और परलोक के सुख की श्रद्धा करने लगता है सो जब यह मन दुःख और अधीनता संयुक्त भगवत् का नाम लेवे तब इतना स्वाद और फलदायक होता है जो सुख में सौ बार नाम लेवे तौभी उसके समान नहीं होता ताते मन का दृष्टान्त बाज़ की नाईं है अर्थात् जब बाज़ पक्षी को पकड़ते हैं तब प्रथम नेत्र उसके मूंद कर घर में रखते हैं और यत्न करके उसको उड़ने के स्वभाव से बन्द करते हैं बहुरि तिसके पीछे उसको थोड़ा २ आहार देते हैं तब बाज़ उस पालने-वाले से मिलाप प्यार करने लगताहै और आज्ञाकारी होताहै बहुरि जब उसको उड़ावते हैं तब प्यार करके फिर आताहै तैसेही जबलग इस मनको सर्व वास-नाओं के स्वभावों से भिन्न न करिये तबलग इसको भगवत् में प्रतीति नहीं उप-जती और जबलग नेत्र कान रसना और सब इन्द्रियों को रोके नहीं और भूख और एकान्त और जाग्रत् और मौन करके इस मन को दण्ड न देवें तबलग मनका प्यार भगवत् विषे नहीं होता सो यह यत्न करना मनको प्रथम कठिन होता है जैसे बालक को माता का दूध त्यागना कठिन होताहै पर जब माता उसको यत्न करके दूध पीनेसे छुड़ाती है तब वह बालक ऐसा होजाता है कि जो उसको यत्न करके वह दूध दीजिये तौ भी नहीं पीता ताते जान तू कि तप करना यही है कि जिस पदार्थ में इस पुरुष को अधिक प्रीति होवे और उसकी प्राप्ति में बहुत प्रसन्नता होवे तब उसी पदार्थ को त्यागदेवे और जो स्वभाव इस पर प्रबल होवे तिसको विपर्यय करे यही उत्तम तप है ताते जिस पुरुष को मान बड़ाई में अधिक प्रीति होवे वह मानका त्यागकरे और जिसकी प्रीति धन के संग्रह में होवे वह धन का त्यागकरे और इसकी नाईं जिस पदार्थ को अपने सुख का स्थान भगवत् बिना जानता होवे तब चाहिये कि यत्न करके उस पदार्थ का त्यागकरे और उस पदार्थ के साथ सम्बन्धकरे जो कदाचित् इससे दूर न होवे और जो सामग्री मरने के समय इस से दूर होनेवाली है तिसको पुरुषार्थ करके आगेही त्यागकरे सो सदैव इसका सङ्गी एक महाराजही है और कोई नहीं जैसे महात्मा दाऊद को आकाशवाणी हुईथी कि हे दाऊद ! सङ्गी तेरा एक मैंहीं हूं ताते तू मेरेही साथ मिलाप कर और महापुरुष ने भी कहा है कि मुझसे भगवत् के मुख्य पार्षद ने इस प्रकार कहाहै कि मायाके जिस पदार्थ के साथ तू प्रीति करताहै वह निस्सन्देह तुझसे दूर होवेगा ५ (अब छठे विभाग

में भले स्वभावों के लक्षण वर्णन होवेंगे) ताते जान तू कि भगवत् ने भले स्वभावों के लक्षण इस प्रकार कहे हैं कि निस्सन्देह ऐसे जिज्ञासु संसार से मुक्त हुये हैं जो त्याग और भजन और शुकुर संयुक्त हैं और योंभी कहा है कि मेरी प्रीतिवाले मनुष्य ऐसे हैं जो सर्व व्यवहारों में धैर्य के साथ वर्तते हैं और जो कपटियों के लक्षण हैं सो सबही बुरे स्वभाव हैं जैसे महापुरुष ने कहा है कि प्रीतिमानों की श्रद्धा भजन और तप में होती है और मनमुखों की श्रद्धा आहार और भोगों में दृढ़ होती है ॥ और हातिमनामी सन्त ने कहा है कि गुरुमुख का हृदय विचार और आश्चर्य में रहना है और मनमुख आशा और तृष्णा विषे आसक्त रहता है बहुरि गुरुमुख सब संसार से निराश रहता है और एक महाराजही की आशा रखता है और मनमुख सब लोगों की आशा रखता है एक महाराज से निराश रहता है और गुरुमुख धनको धर्मपर निवछावर करता है और विमुख अपना धर्मही धनपर निवछावर करता है बहुरि गुरुमुख भजन करताहै और भयसंयुक्त रहताहै और मनमुख पाप करता है और निडर होकर हँसता है गुरुमुख की प्रीति एकान्त विषे होती है और मनमुख की प्रीति जगत् के मिलाप में होती है गुरुमुख यद्यपि सुकृतबीज बोवताहै तौभी डरता रहता है कि मेरी खेती विघ्न करके नष्ट न होजावे और मनमुख शुभ बीज बोवताही नहीं और फल की आशा करता है ॥ और सन्तजनों ने इस प्रकार से भी कहा है कि भले स्वभाव के लक्षण यह हैं कि मनुष्य लजावन्त और निर्दोष और शुभ चित्त होवे और सत्य बोले वचन थोड़ा कहे और भजन बहुत करे निष्पाप होवे संयमी होवे सब किसी का भला चाहे और सबका सुखदायक होवे दयावान्, गम्भीर, धीर, सन्तोषी, धन्यवाद करनेवाला, सहनशील, निर्लोभ होवे दुर्वचन और धिक्कार किसीको न कहे निन्दारहित होवे किसी के वचन का छिद्र न ढूंढे वचन शुभ बोले किसी कार्य में उतावली न करे हृदय में क्रोध की अग्नि न राखे ईर्षा न करे मस्तक प्रसन्न राखे मित्रता और वैर प्रसन्नता और क्रोध सब जिसका केवल धर्मही के निमित्त होवे पर ऐसे जान तू कि स्वभाव की भलाई सहनशीलता में ही विशेष होती है जैसे महापुरुष को जब मनमुखों ने दुःखदिया और दांत तोड़े तब उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि हे महाराज ! तू इनके ऊपर दया कर क्योंकि यह मुझको जानते ही नहीं और इबराहीम अदहमनामी सन्त

एक वन में चलेजाते थे तब एक सिपाही उनको मिला और उसने पूछा कि तू कौन है तब इन्होंने कहा कि मैं गुलाम हूं बहुरि सिपाही ने पूछा कि बस्ती कहां है तब इन्होंने श्मशान की ओर सैनकरी तब सिपाही ने कहा कि मैं बस्ती को पूछताहूं तब फिर इबराहीम ने कहा कि बस्ती तो यही है तब सिपाही ने उनके शिर में लाठी मारी और रुधिर बहनेलगा और उनको खैंच कर नगर में लेआया तब लोगोंने देखकर सिपाही से कहा कि हे मूर्ख ! तू जानता नहीं कि यह इबराहीम अदहम है तब वह सिपाही घोड़े पर से उतरकर इबराहीमजी के चरणोंपर गिरपड़ा और कहनेलगा कि मैंने भूलकर यह अपराध किया तुम क्षमाकरो तब लोगों ने सिपाही से पूछा कि तूने किस निमित्त इनको मारा तब उसने कहा कि मैंने इनसे पूछा था कि तू कौन है ? सो इन्होंने कहा कि मैं गुलाम हूं तब इबराहीमजी बोले कि मैंने तो सत्य कहा है क्योंकि मैं भगवत् का गुलाम हूं यह बात निस्संदेह है बहुरि सिपाही ने इबराहीम से कहा कि भला जब मैंने तुमसे पूछा था कि बस्ती किधर है तब तुमने श्मशान को क्यों बताया तब इबराहीमजी बोले कि यहभी हमने सत्य कहा क्योंकि लोग नित्यप्रति श्मशानही विषे आवते हैं बहुरि नगर उजड़ते जाते हैं और श्मशान बसताजाता है ताते बस्ती यही है फिर सिपाही ने कहा कि जब मैंने तुमको मारा था तब तुम ने मेरे ऊपर क्रोध हृदय में किया होगा तब इबराहीमजी बोले कि मैं महाराज के आगे प्रार्थनाकरके तेरा भला और कल्याण चाहा क्रोध नहीं किया बहुरि सिपाही ने पूछा कि तुमने मेरा भला किस निमित्त चाहा तब उन्हों ने कहा कि मुझको यह निश्चय दृढ़ है कि सहने में बड़ा फल होताहै सो जब मैंने जाना कि तेरा दण्ड सहने करके मुझको तो फल होगा परन्तु तुझको मेरे करके इसका पाप लगेगा ताते मैंने तेराभी भला चाहा ॥ और एक उसमानहैरीनामी सन्त थे सो वह एक समय किसी गली में चलेजाते थे तब किसीने अचानक छत परसे उन के ऊपर राख थाल भरके डालदी तब वह सन्त वस्त्र अपने झाड़कर महाराज का शुकुर करनेलगे बहुरि लोगों ने कहा कि यह शुकुर का कौन स्थान था तब उन्हों ने कहा कि मैं अग्नि में जलावने योग्य था पर महाराज ने राख परही दया करके निबेरा करदियाहै ताते मैं शुकुर करताहूं बहुरि इन्हीं उसमानहैरी की एक और वार्त्ता है कि किसी पुरुष ने प्रसाद पावनेके निमित्त इनका निमन्त्रण किया था

सो जब अपने घर लेगया तब भीतर घर में परीक्षाके कारण करके पैठने न दिया तब यह फिर चले बहुरि इनको उस पुरुष ने पुकारलिया तब फिर आये बहुरि उसने भीतर पैठते हुये बरजा तब फिर निकलचले इसी प्रकार उस पुरुषने बहुत बार इनका निरादरकिया और फिर २ बुलाया सो जब वह पुरुष बुलावे तब चलेआवें और जब बरजे तब निकल चलें तब उस पुरुष ने कहा कि हे महात्मा जी! मैं आप की परीक्षा लेता था सो निस्सन्देह आप उत्तमजन हैं तब उन्होंने कहा कि यह जो स्वभाव तैंने मेरे बिषे देखाहै सो यह तो कूकुरोंका भी स्वभाव है कि जब कूकुर को बुलाइये तब आवता है और जब बरजिये तब फिर जाता है तातें इस स्वभाव की क्या विशेषताहै? बहुरि एक और सन्त थे उनका श्यामरङ्ग था और सबलोगों में उनकी बड़ाई प्रसिद्ध थी सो जब वह हम्माम अर्थात् स्नान के स्थान में स्नानकरने को जातेथे तब हम्माम का टहलुवा हम्माम को खाली करदेताथा अर्थात् लोगों को दूर करके तिनको स्नान करावताथा बहुरि एकदिन वह स्नानको गयेथे और टहलुवा लोगों को दूर करके किसी कार्य को गया था और वह हम्माम में अकेलेही रहेथे तब एक पुरुष जंगली वहां आया और उसने इनको देखकर जाना कि हम्माम का टहलुवा यही है तब उस जंगली पुरुष ने उन को अपनी टहल में लगाया और आप स्नान करनेलगा और जैसी टहल वह इन से करवातारहा तैसीही यह करतेरहे बहुरि जब वह टहलुवा आया और जंगली पुरुष का बोलना उसने सुना तब टहलुवा भयवान् होकर निकलगया बहुरि जब जंगली पुरुष गया और यह सन्तभी स्नान करके बाहर आये तब लोगों ने कहा कि टहलुवा भयवान् होकर भागगया है तब उस सन्तने कहा कि टहलुवा क्यों डरताहै? यह अवज्ञा टहलुवे की न थी मेरे शरीरही की अवज्ञा थी क्योंकि मेरे शरीर का रङ्ग श्याम टहलुवों की नाईं है बहुरि एक और सन्त थे सो सीवने की क्रिया करके अपना निर्वाह करतेथे सो एक मनमुख उनसे अपने वस्त्र सि- लवाकर जब मजदूरी दे देताथा तब खोटाही रुपया देता था और वह ले रखते थे बहुरि एक दिन आप किसी कार्य को गये थे और टहलुवा वहां बैठा था तब वह मनमुख उस टहलुवे को खोटा रुपया देने लगा टहलुवे ने नहीं लिया जब वह सन्त अपने घर आये तब टहलुवे ने वह बात कही तब उन्होंने टहलुवे से कहा कि तूने रुपया क्यों नहीं ले लिया? आगे कई वर्ष से वह पुरुष मुझ को

खोटा ही रुपया देतारहा है पर मैंने उससे प्रसिद्ध करके नहीं कहा कि तू खोटा रुपया क्यों देता है ? ताते मैं उससे लेकर धरती विषे गाड़ देताहूं इस विचार से कि कोई और पुरुष न ठगाजावे और एक आवेसकरनी नाम करके एक सन्तथे सो वह जब नगर में जाते तब बालक उनको पत्थर मारते थे तब वह बालकोंसे कहते थे कि मेरे छोटे २ पत्थर मारो काहेसे कि जो मेरी टांगों में से रुधिर निकलेगा तो मैं भजन विषे खड़ा न होसकूंगा और एक कोई मूर्ख किसी सन्त को दुर्वचन कहनेलगा था और वह मार्ग में चलेजाते थे सो वह मूर्ख भी उन के सङ्ग में दुर्वचन कहता जाताथा और यह सन्त मौन होकर सुनते चले जाते थे सो जब सम्बन्धियों के स्थान के निकट पहुँचे तब खड़े हो गये और उस से कहनेलगे कि तुमको जो कुछ और भी कहना होवे सो सब हम को यहां हीं कहले काहेसे कि तेरे दुर्वचन जब मेरे सम्बन्धी सुनेंगे तब तुझको दुःख देवेंगे और मालिकदीनारनामी सन्त से किसी स्त्रीने कहाथा कि तू कपटी है तब उन्हों ने कहा कि मेरा नाम यही था पर इस नगरके लोग जानते न थे सो तैंने अब प्रसिद्ध किया है ताते जान तू कि सम्पूर्ण भले स्वभाव के लक्षण यही हैं जो इन सन्तजनों के लक्षण वर्णन किये गये सो यह स्वभाव उनको प्राप्तहुये हैं जिन्होंने पुरुषार्थ करके मन के स्वभावों को दूर किया है और हृदय को शुद्ध किया है ताते भगवत विना और कुछ नहीं देखते और जो कुछ देखते हैं तिस का प्रेरक भगवतही को जानते हैं ताते चाहिये कि जो पुरुष अपने में यह लक्षण न देखे वह अभिमानी होकर यों न जाने कि मुझको भला स्वभाव प्राप्त हुआ है ६ (अब सप्तम विभाग में यह वर्णन होवेगा कि माता पिता बालकों को इस प्रकार सिखावें) ताते जान तू कि बालक भी माता पिता के पास महाराज की थाती हैं और बालक का हृदय प्रथम मणि की नाईं शुद्ध होताहै और कोमल होता है और जो कुछ उसको सिखाइये उसका अधिकारी है और हृदय उसका शुद्ध भूमि की नाईं है जो कुछ बीज उसमें बोइये वह उग आवता है सो जब शुभ बीज बोइये तब इसलोक और परलोक की भलाई को प्राप्त होता है और तब माता पिता भी और गुरु भी उसके पुण्य में साझी हैं और जब बालक के हृदय में अशुभ बीज बोइये तब भाग्यहीन होताहै और फिर जो कुछ पाप कर्म वह करताहै तिस विषे भी माता पिता और सिखावनेवाले परलोक में साथी हैं

सो महाराज ने भी कहाहै कि अपने मन और सम्बन्धियों को नरक की अग्नि से बचावो ताते बालकों को इस नरक की अग्नि से बचावना स्थूल अग्नि की रक्षासे अधिक प्रमाण है सो नरक की अग्नि से बचावना इस प्रकार होताहै कि बालक को भयसंयुक्त राखे और उसको भले गुण सिखावे और कुसंग से रक्षाकरे कि कुसंग करके सर्व विघ्न उत्पन्न होते हैं ताते प्रथमही बालकको राजसी भोजन और वस्त्रका स्वभाव न डाले क्योंकि ये राजसी स्वभाव हैं सो जब इनका अभ्यास होजायगा तब पीछे भोगों विना रह न सकेगा ताते चाहिये कि बालक के प्रतिपाल करनेवाली दाई भी भली होवे और आहार भी शुद्ध पावनेवाली होवे क्योंकि बालक जैसा दूध पीवता है तैसा ही गुण अथवा अवगुण उसमें प्रवेश करता है और जब बालक की जिह्वा खुले तब प्रथम भगवत् का नाम ही सिखावे बहुरि जब ऐसा होवे कि बुरे कार्य से लज्जा करे तब जानिये कि भला होगा और इसके ऊपर बुद्धि का प्रकाश चमका है तब चाहिये कि यही लज्जा उसके विषे बढ़ावे और जब कुछ बुरा कार्य करे तब उसको ताड़ना करे और अरजे जो प्रथम ही बालक को खाने की तृष्णा उत्पन्न होती है ताते चाहिये कि उसको खानेकी युक्ति सिखावे सो युक्ति यह है कि जब भोजन खाने लगे तब प्रथम महाराज का नाम लेवे और धैर्यसंयुक्त खावे और अपनी दृष्टि किसी और के भोजन की ओर न करे बहुरि कभी २ बालक को रूखी रोटी भी खिलावे जिस में बालक का स्वभाव रसों में अधिक न होवे और बहुत खाने की उसको निषेधता सुनावे कि आहार बहुत खाना पशुओं और मूर्खों का काम है और जो बालक भय संयुक्त होवे उसकी प्रशंसा करे तब उसकी विशेषता सुनकर यह बालक भी उस स्वभाव को ग्रहण करेगा और वस्त्र श्वेत पहिरने की स्तुतिकर समझावे और रङ्गीन और रेशमी वस्त्र की निन्दा करे और कहे कि ऐसे वस्त्र सुन्दर पहिरना स्त्रियों का काम है अथवा अभिमानियों का पहरावा है और शरीर का शृङ्गार बनावना नाचनेवालों और हिजरों का काम है भले पुरुषों का स्वभाव ऐसा नहीं होता और जो बालक रेशमी वस्त्र और राजसी स्वभाववाला होवे तिसकी संगति से अपने बालक की रक्षाकरे क्योंकि ऐसी संगति करके बालक की बुद्धिका नाश होता है और भोगों की वासना उत्पन्न होती है ताते जिस बालक की रक्षा बुरी संगति से नहीं करते तब वह

बालक क्रोधी, निर्लज्ज, चोर, झूठा और निडर होजाता है सो वह स्वभाव उसका चिरकालपर्यन्त भी दूर नहीं होता बहुरि जब बालक चटशाला विषे जावे तब भगवत् के वचन उसको पढ़ावे और सन्तों की रहनि और बर्तावने का इतिहास पढ़ावे और जिस विद्या में स्त्रियों का शृङ्गार और उनकी प्रीति वर्णन होवे तिससे बरजे और पाठक ऐसे की संगति बालक को न करावे जो इस प्रकार कहे कि ऐसी विद्या के पढ़ने से बुद्धि चतुर होती है सो वह पढ़ावने-वाला असुर की नाईं है कि बालक के हृदय में पापों का बीज बोवना चाहता है बहुरि जब वह बालक कोई सुकृतकरे अथवा कोई भलास्वभाव उसमें प्रकट होवे तब उसकी प्रशंसाकरे और कुछ बालक को देवे कि उस करके बालक प्रसन्न होवे और जो कुछ बुराई करे तो प्रथम एक दोबार देखकर चुप होजावे क्योंकि बालक ढीठ न होजावे और जब ढीठ होता है तब प्रकटही बुराई करने लगता है बहुरि जब बालक का स्वभाव बुराई विषे अधिक होवे तब एकान्त में उसको ताड़नाकरे और कहे कि यह बुराई फिर मतकरना क्योंकि जब तू फिर करेगा तौ लोग देखेंगे और तू अपमानता को प्राप्तहोवेगा और पिता को चाहिये कि अपना भय उससे दूर न करे अर्थ यह कि पिता के होतेहुये बालक निर्लज्ज होकर न बर्ते व बालक को दिनमें बहुत न सुलावे जिस में आलसी न होजावे व रात्रिको भी कोमल शय्या में सोने न देवे जो शरीर बालक का दृढ़ होवे और दिनमें दोघड़ी पर्यन्त खेलने की भी छुट्टी देवे जिसमें बालक का चित्त अत्यन्त सकुचा न रहे क्योंकि सारे दिनके परिश्रमसे चित्त को मूर्च्छा प्राप्तहोती है और बालक को ऐसा स्वभाव सिखावे कि सब किसी को नम्रता सहित और दीनता सहित प्रणामकरे और अवर किसी बालक पर बड़ाई करके बढ़ावे नहीं और किसी बालक से कुछ लेवे नहीं और यों भी सिखावे कि नाक और मुख का मैल किसी के सम्मुख न डाले और किसी पुरुष की ओर पीठ न करे भय संयुक्त बैठे और डाढ़ी तले हाथ धरके न बैठे कि यह भी लक्षण आलसियों का होता है और बहुत बोले भी नहीं और किसी कार्य में भगवत् की दुहाई भी न करे और बुलाये बिना बोले नहीं और जो कोई उससे बड़ा होवे उसका अना-दर न करे और उसके आगे होकर न चले और दुर्वचन और धिक्कार से अपनी जिह्वाको रोकेरहे और जब बालक को पढ़ावनेवाला दण्डदेवे तब सहजावे पुकार

न करे क्योंकि सहना पुरुषों का काम है और पुकार करना स्त्रियों का काम है और जब बालक सात वर्ष का होवे तब उसको स्नान और भजन प्यार करके सिखावे और जब दशवर्ष का होवे और नियम में कुछ अवज्ञा करे तब उसको ताड़ना देवे और चोरी, झूंठ और अशुद्ध आहार की बुराई उसको लखावे सो जब बालक को इस प्रकार सिखाइये तब किशोर अवस्था में सब करतूतों के भेद को अपनी बुद्धि करके सुगम समझता है तब चाहिये कि उससे कहे कि भोजन करने का प्रयोजन यह है कि इस पुरुष को भजन करने का बल होवे और इस जगत् में जीवने का प्रयोजन यह है कि परलोक मार्ग का तोशा बनावे क्योंकि जीवन थोड़ा है और मृत्यु इसको अचानक ही ग्रसलेती है तातें बुद्धिमान् पुरुष वही है जो इसलोक में परलोक का तोशा बनालेवे कि इस करके उत्तम सुख और भगवत् की प्रसन्नता को पावे तातें पुण्य और पाप करके जो नरक और स्वर्ग और सुख दुःख की प्राप्ति होती है सो भली प्रकार बालक को समझावे सो जब प्रथम बालक को भली प्रकार सिखाया जाता है तब वह वचन उसके हृदय में मूर्ति की नाईं दृढ़ होजाता है और जो प्रथमही न सिखाइये तो फिर पीछे उसको यह उपदेश दृढ़ नहीं होता जैसे लवनी अर्थात् ऊसर की मट्टी की भीतिपर लेप नहीं ठहरता सो इसीपर सुहेलस्तरी नामी एक सन्त की कथा है कि उन्होंने इस प्रकार कहा है कि जब मैं तीन वर्ष का था तब रात्रिमें पिता को भजन करते देखता था सो एकबार उन्होंने मुझसे कहा कि हे पुत्र ! जिस भगवत् ने तुझको उत्पन्न किया है तिसका तू भजन क्यों नहीं करता तब मैंने कहा कि भजन किस प्रकार करूं तब पिताने कहा कि रात्रिको सोवने के समय यों कह लिया कर तीनबार कि महाराज मेरे साथ हैं और महाराज मुझ को देखता है और महाराज मेरा अन्तर्यामी है सो कई रात्रि में नित्य प्रति इसी प्रकार कहता रहा फिर पिता ने कहा कि अब यह वचन सातबार रात्रि को कहाकर तब मैं सातबार कहने लगा फिर ग्यारहबार कहने को कहा सो कुछ दिन मैं ग्यारह बार कहता रहा तब इस करके मेरे हृदयमें कुछ स्वाद सुख आने लगा बहुरि जब एक वर्ष बीता तब पिता ने कहा कि जो मैंने तुझको यह सिखाया है सो इसी को दृढ़ करले और मरने पर्यन्त न बिसारना कि यही भजन इसलोक और परलोक में तेरा सहायक होवेगा सो कितनेही वर्ष पर्यन्त मैं इसी

प्रकार कहता रहा तब मेरे हृदय में और अधिक रहस्य प्रकट हुआ फिर पिताने कहा कि हे पुत्र! महाराज जिसके साथ होवे और सदैव जिसके साथ होकर उसको देखता रहे और जिसके हृदय का अन्तर्यामी होवे सो वह पुरुष पाप क्योंकर करे? ताते तुझको भी चाहिये कि तू पापकर्म कदाचित् न करे बहुरि उस से पीछे मुझ को चटशाला में भेजा तब मैंने अपने चित्त में विचार किया कि पढ़ने में लगने करके कहीं मेरा चित्त पसर न जावे ताते मैंने पाठक के साथ वचन करलिया कि मैं तीन घड़ी पर्यन्त पढ़ूँगा और पीछे उसी भजन में स्थित होऊंगा इसीप्रकार मैं उस पाठकके पास पढ़नेलगा और भगवत् वाक्य सम्पूर्ण मैंने पढ़े बहुरि जब सात वर्ष का हुआ तब सदैव दिन को व्रत करनेलगा और रात्रि को आहार करता रहा बहुरि जब बारह वर्ष का हुआ तब मेरे हृदय में एक प्रश्न आया और उस प्रश्न का उत्तर नगर में किसी से न दियागया बहुरि पिता की आज्ञा लेकर बसरेनामी नगर में आया पर वहां भी उस प्रश्न का उत्तर किसी ने न दिया बहुरि मैं एक और नगर में हबीब नामी बड़े भजनी सन्त के पास गया तब उन्होंने उत्तर देकर मेरे संशय को निवृत्त किया तब कई बर्ष मैं उनके निकट रहा और मुझको उनकी संगति में बहुत लाभ प्राप्तहुआ बहुरि मैं अपने नगर तस्तर में आया और एकान्त रहकर भोजन इसप्रकार करनेलगा कि एक दिरम के जव मोल लेकर उसी में एक वर्ष पर्यन्त भोजन करता था और रात्रि के समय एकबार किंचित् भोजन कर लेता था बहुरि तीसरे दिन खाने लगा उससे पीछे सातवें दिन फिर पचीसवें दिन खानेलगा सो बीस वर्ष मैं इसी अवस्था में रहा और सम्पूर्ण रात्रि बिषे जागरण करता रहा सो इस वार्त्ता का प्रयोजन यह है कि जैसा अभ्यास बाल्यावस्था में होताहै वह निस्संदेह दृढ़ होजाता है ७॥ (अब अष्टम विभाग बिषे युक्तियां जिज्ञासु के अभ्यास और यत्नकी वर्णन होवेंगी कि जिस प्रकार जिज्ञासु आदि धर्म के मार्ग बिषे चलता है) ताते जान तू कि जो पुरुष भगवत् के दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ सो वह इस कारण प्राप्त नहीं हुआ कि प्रथमही उस मार्ग बिषे चला नहीं और जो कोई उस मार्ग में नहीं चला उसका कारण यह है कि उसने मार्गको नहीं खोजा और न खोजने का हेतु यह कि उसको बूझही न थी और प्रतीति भी उसकी दृढ़ न थी क्योंकि जिस पुरुष ने यह जाना है कि इसलोक के सुख दुःखदायक और नाशवान् हैं

और परलोक का सुख निर्मल और नित्य है उस पुरुष को परलोक मार्ग की श्रद्धा प्रकट होती है क्योंकि नीच पदार्थ को त्यागकर उत्तम पदार्थ का ग्रहण करना कठिन नहीं होता जैसे कोई पुरुष माटी का बासन देवे और उसको सोने का बासन उसके बदले में प्राप्तहोवे तब उस पुरुष को माटी का बासन देना कठिन नहीं होता ताते प्रसिद्ध हुआ कि परलोक मार्ग विषे विमुख होना प्रतीति की हीनता करके होती है और प्रतीति की हीनता इस कारण करके होती है कि विचारवान् और वैराग्यवान् पुरुष इस काल में दुर्लभहैं कि जिनकी संगति और उपदेश इतर जीव धर्ममार्ग को प्राप्त होवें इसी से इतर संसारी जीव अपनी भलाई से विमुख रहते हैं और जो कोई विद्यावान् पुरुष पाया भी जाता है उसके ऊपर माया की प्रीति प्रबल होती है और वैराग्य से हीन होताहै सो जिस पुरुष की प्रीति माया की तृष्णा विषे होवे वह और जीवों को माया का त्याग क्योंकर करासक्ता है ? और उसका उपदेश लोगों के हृदय में क्योंकर दृढ़ होगा कि जिसको सुनकर परलोक मार्ग विषे चलें क्योंकि परलोकमार्ग और इसलोक में परस्पर बड़ा विरोध है जैसे पूर्व दिशा और पश्चिम दिशा में अन्तराय है कि जितना पूर्व दिशा को जावे उतनाही पश्चिम दिशा से दूर होताहै ताते जिस पुरुष को भगवत् की श्रद्धा प्रकट होवे तिसकी ऐसी अवस्था होती है कि जैसी ऊपर वर्णन हुई सो महाराजने यों कहाहै कि जिस पुरुष को परलोक की श्रद्धा उत्पन्न हुईहै और उसके मार्ग विषे यत्न और करतूति करताहै सो धर्मात्मा पुरुष वही है और यत्न करना जो महाराज ने कहा है सो तिस यत्न को भी जानना चाहिये कि वह यत्न क्या है ? ताते उसको आगे नवें विभाग में कहते हैं ॥

(नवां विभाग धर्म मार्ग के यत्न की युक्ति के वर्णन में) ताते जान तू कि यत्न करना यह है कि धर्म के मार्ग विषे चलने का उद्यम करना और कितनी युक्ति ऐसी हैं कि जब जिज्ञासु प्रथम उनको जान लेवे और बर्तावकरे तब पीछे धर्म मार्ग में चलने का अधिकारी होता है बहुरि उससे पीछे अपनी रक्षा करनेवाले गुरुदेव का भरोसाकर और दृढ़ होकर उसका अञ्चल पकड़े बहुरि एक कोट है तिसकी ओट में जिज्ञासु स्थित होवे सो प्रथम जो कहाहै कि कई युक्ति का निर्वाह करे तब जिज्ञासु धर्ममार्ग का अधिकारी होता है सो उन में प्रथम युक्ति यह है कि भगवत् और इस जीव के विषय जो परदे और आड़ पड़ी है तिसको दूर

करे जिससे मनमुखों के संग में उसकी गिनती न होवे जैसे महाराज ने कहा है कि मैंने मनमुखों के आगे और पीछे परदे डाल दिये हैं अर्थ यह कि आपसे उनको दूर किया है सो,वह चार परदे हैं जिन करके जीवको पटल हुआहै एक १ धन दूसरा २ मान तीसरा ३ वेष चौथा ४ पाप सो धन को इस प्रकार परदा कहा है कि धन विषे चित्त लम्पट रहता है और जबलग चित्त निस्संकल्प न होवे तबलग धर्ममार्ग विषे चल नहीं सक्ता ताते चाहिये कि धन के संग्रह का त्याग करे और किंचित निर्वाहमात्र राखे पर उसमें चित्तको आसक्त न करे और जो यह पुरुष असंग्रही होवे और आकाशी वृत्ति करके उसका आहार होवे सब वह तो सुखेनही धर्ममार्ग विषे चलता है बहुरि मानके परदे को इस प्रकार दूर करे कि जहां पर इसका आदर और मान होवे तिस स्थानको त्याग जावे और ऐसे स्थान विषे जाय रहे कि जहां इसको कोई पहिंचाने नहीं क्योंकि जब इस पुरुष को जगत् विषे मान प्राप्त होता है तब यह पुरुष इस जगत् के मिलाप विषे सुख जानकर आसक्त होता है और जो कोई जगत् के मिलाप को सुख जानता है भगवत् को नहीं पहुँचता २ और वेष को जो परदा कहा है सो इस [illegible]रण करके है कि जब यह पुरुष देखादेखी करके किसी मत और पन्थ को [illegible]हण करता है तब औरों के मत को खण्डन करता है और अपने मतकी स्तुति [illegible]ता है ताते उस पुरुष के हृदय विषे सांचा वचन प्रवेश नहीं करता ताते [illegible]ाहिये कि जितने मत और पन्थ हैं सभों को बिसारे और भगवत् की एकता [illegible]र प्रतीति करे और चित्तको एकता विषेही दृढ़करे और एकता की दृढ़ता का [illegible]क्षण यह है कि भगवत् बिना और किसी का भरोसा न करे और किसी के [illegible]धीन न होवे सो जो पुरुष अपने मनकी वासना के अनुकूल चलता है वह [illegible]ासनाही का दास है और वासना ही उसका भगवत् है सो जिस पुरुष ने यों जाना है कि भगवत् एक है और भगवत् की आज्ञा विषेही चलना विशेष है [illegible]ब वह पुरुष अपनी मुक्ति के निमित्त यत्न करता है और जगत् के वाद विवाद [illegible] [illegible]षे नहीं परचता ३ और चौथा परदा जो पाप कहा है सो जीव को महाकठिन [illegible]ल होता है क्योंकि जिस पुरुष का स्वभाव पापकर्मों विषे दृढ़ होता है उस [illegible]हृदय अन्धकार करके मलीन होजाता है सो जिसका हृदय मलीन हुआ तिसको भगवत् प्रत्यक्ष नहीं भासता ताते अशुद्ध जीविका भी महापाप है और

शुद्धजीविका करके हृदय ऐसा उज्ज्वल होता है कि जैसा किसी कर्म करके नहीं होता इसी कारण करके तप का मूल यही है कि अशुद्ध आहार का त्याग करे और जीविका अपनी शुद्धकरे और जो पुरुष यों चाहे कि जैसे शुभ करतूति सन्तजनों के वर्णन किये हैं तैसी करतूति के किये विनाही मेरे गुह्य भेद खुलें तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष यह चाहे कि मैं विद्या के पढ़े विनाही शास्त्रके अर्थों का ज्ञाता होजाऊं सो यह बात किसी प्रकार हो नहीं सक्ती ताते जिसने यह चार पर्दे दूर किये हैं वह भजन का अधिकारी होता है बहुरि तिससे पीछे जिज्ञासु को गुरु की अपेक्षा होती है काहेसे कि गुरु विना इस जीव को धर्म का मार्ग नहीं खुलता क्योंकि भगवत् का मार्ग अतिगुह्य है और संसारी वासना का मार्ग प्रकट है बहुरि सचा मार्ग एक है और झूंठे मार्ग अनेक हैं ताते निस्सन्देह प्रसिद्ध है कि ऐसा मार्ग सद्गुरु विना प्राप्त नहीं होता सो जिज्ञासु को ऐसा चाहिये कि जब सद्गुरु साथ मिले तब अपने कार्य सद्गुरु को अर्पे और अपनी बुद्धि और बल का त्याग करे ताते जब इसको सद्गुरु कुछ आज्ञा करे और इसको कुछ संशय आवे तौ भी यों जाने कि यह मेरीही बुद्धिकी मलीनता है और मेरा कल्याण सद्गुरु की आज्ञा विषे है और जब इसको फिर संशय आवे तब जैसे जिज्ञासुओं ने आगे सद्गुरुओं की आज्ञा मानी है और अपनी बुद्धि के संशय दूर किये हैं तिनके चरित्रों को स्मरण करे क्योंकि सन्तजनों ने ऐसे भेद को बूझा है कि जिज्ञासु अपनी बुद्धि करके उस भेद को पाय नहीं सक्ता जैसे जालीनूसनामी एक बड़ा वैद्य हुआ है सो तिस समय में किसी पुरुष की दाहिने हाथ की अँगुली में पीड़ा हुई और अवर जितने वैद्य थे तिन्हों ने उस अँगुली पर औषध लगाई पर वह पीड़ा दूर न हुई बहुरि जालीनूसने बायें कांधे पर औषध लगाई तब और वैद्यों ने कहा कि अँगुलियों में पीड़ा होवे और कांधेपर औषध लगाई जावे सो यह कैसा सयानप है और जालीनूस के औषध लगाने करके अँगुली की पीड़ा दूर होगई सो जालीनूसने यों जाना था कि इस अँगुली में नाड़ी के मूल से रोग उठा है और सब नाड़ियां पीठ और शीश से निकल कर शरीर विषे पसरती हैं सो दाहिने ओर की नाड़ी बायें ओर जाती हैं और बायें ओर की नाड़ी दाहिने ओर को जाती हैं पर इस भेद को और वैद्य समझते न थे और जालीनूसही जानता था

सो इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि किसी प्रकार जिज्ञासु सद्गुरु की आज्ञा विषे चले और अपनी उक्ति और संशय न लावे और एक सन्त ने कहा है कि मैं अपने सद्गुरु के पास था सो एक स्वप्न मैंने देखा और उसको सद्गुरु के आगे कहा तब उन्होंने स्वप्न को सुनकर हृदय में मेरे साथ रोप किया और एक मास पर्यन्त मुझसे न बोले सो मैं इसका कारण समझता न था बहुरि उन्होंने ही कहा कि वह स्वप्न जो तैंने कहा था सो यह था कि मैंने तुझसे कोई कार्य करना कहा था और तूने कहा कि यह कार्य किस निमित्त करावते हैं तब मैंने जाना कि जाग्रत् में जब मेरी आज्ञा में तुझको संशय न होता तब तू स्वप्न विषे भी संशय न लावता ताते मैंने तुझको शिक्षा के निमित्त और मेरे वचन में संशय न लावने के अर्थ रोप किया था सो जब इस प्रकार जिज्ञासु सद्गुरु की आज्ञा मानने में दृढ़ होता है तब प्रथमही सद्गुरु उसको कोट में स्थित करते हैं क्योंकि जिज्ञासु को कोई विघ्न न लागे सो वह कोट की चार भीति हैं एक मौन दूसरी क्षुधा तीसरी एकान्त चौथी जाग्रत् क्योंकि क्षुधाकरके भोगों का बल क्षीण होता है और जाग्रत् करके हृदय उज्ज्वल होता है और मौन करके वाद विवाद की विक्षेपता दूर होती है और एकान्त करके जगत् के मिलाप का कुसंग और अन्धेरा दूर होता है और नेत्र और श्रवण भी रोके जाते हैं इसीपर सुहेलनामी सन्तने भी कहा है कि जो आगे सन्त हुये हैं वह इन चारों लक्षणों करकेही हुये हैं सो जब जिज्ञासु स्थूल पदार्थ विषे पसरने से सकुचा तब आगे सूक्ष्ममार्ग की आदि यह है कि उस मार्ग में कठिन घाटियां हैं सो प्रथम तिनको काटता है और चित्त में जितने मलिन स्वभाव हैं सोई कठिन घाटीहैं जैसे धन और मन की तृष्णा और भोगों की बासना और दम्भ और अभिमान और अवर इनकी नाई जो मलिन स्वभाव हैं सो सर्व अशुभ करतूतों के बीज हैं ताते इनको दूर करना चाहिये क्योंकि स्थूल पदार्थों में इनही करके पसरना होता है सो प्रथम जब इनको दूर किया तब हृदय शुद्ध होवेगा ताते सम्पूर्ण अशुभ वासना को नाशकरे और जिस प्रकार सद्गुरु की आज्ञा होवे उसीप्रकार पुरुषार्थ करे क्योंकि सब जीवों का अधिकार भिन्न २ है और अपने अधिकार को यह पुरुष अपने आप करके नहीं पहिचान सक्ता ताते सद्गुरु की आज्ञा करके हृदय शुद्ध होता है बहुरि जब हृदयरूपी धरती शुद्ध हुई तब उसमें महाराज का भजनरूपी बीज

बोवे सो प्रथम जब आन संकल्पों से रहित हुआ तब एकान्त ठौर बिषे बैठे और सदैव श्रीराम राम मन और जिह्वा से कहे बहुरि तिसके पीछे जिह्वाका बोलना ठहर जाता है और वह नाम मनही बिषे फुरने लगता है बहुरि मनभी ठहर जाता है और श्रीनाम का अर्थ हृदय में प्रबल होता है सो अर्थका रूप यह कि जिस बिषे वचन और वाणी नहीं पहुँचती क्योंकि मन बिषे स्मरण भी वाणी और अक्षरों करके होता है सो वाणी और अक्षर भी अर्थरूपी फलकी त्वचा हैं ताते चाहिये कि नाम का अर्थही हृदय में स्थित होवे सो ऐसा दृढ़ होवे कि उस में मन को यत्न न भासे और अर्थरूपी कमल पर मनरूपी भँवर होवे अर्थात् यत्न करके भी उससे दूर न होवे जैसे शिवलीनामी एक सन्तने अपने जिज्ञासु से कहा था कि जब तू मेरे पास आवे और तेरे हृदय में भगवत् बिना और संकल्प फुरे तब तेरा आवना व्यर्थ होवेगा ताते जब जिज्ञासु ने संकल्परूपी कण्टकों से हृदयरूपी धरती शुद्ध करी और नावरूपी बीज को उसमें बोया तब आगे इसके करतूति का बल नहीं चलता ताते भगवत् की दया का आश्रय करे और यों जाने कि देखिये इस बीज का फल क्या होता है ? और अधिक करके तो यह है कि यह बीज निष्फल नहीं होता इसी पर महाराजने भी कहा है कि जो पुरुष परलोक सम्बन्धी बीज बोवता है उसको मैं निस्सन्देह अधिक फल देता हूं और जब जिज्ञासु इस अवस्थाको पहुँचताहै तब अकस्मात् कभी ऐसा भी होता है कि भगवत् की माया करके इसके हृदय में झूंठे संकल्प आन फुरते हैं और किसी को नहीं भी फुरते पर जिसका हृदय शुद्ध होता है तिस पुरुष के देवतों और ईश्वरों का रूप प्रत्यक्ष भासने लगता है बहुरि यह भी है कि उनका सुन्दर स्वरूप स्वप्नबिषे देखे अथवा प्रकट प्रत्यक्ष देखे बहुरि ऐसी २ अवस्था प्रकट होती हैं कि उनका बखान नहीं कियाजाता और उनके वर्णन करने में कुछ लाभ भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि धर्म के मार्ग बिषे चलने करके कल्याण होता है और मार्ग की वार्त्ता करके स्थानको पहुँच नहीं सक्ता ताते जिज्ञासु की भलाई इसमें होती है कि इस अवस्था के ऐश्वर्यों को आगेही श्रवण न करे क्योंकि ऐश्वर्यों की आशा करके भी विक्षेपता को प्राप्त होता है ताते मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि जिज्ञासु ऐसी अवस्था बिषे संशयवान् न होवे क्योंकि बहुत पण्डित भी ऐसे होते हैं कि उनको अवस्था के प्राप्त होने में

प्रतीति नहीं होती ताते जिस अवस्था का बखान मैंने किया है सो जिज्ञासु तिस विषे संशय न लावे और दृढ़ प्रतीति करे ॥

दूसरा सर्ग ॥

अतिआहार और कामकी निषेधता के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह उदर भी सरोवर की नाईं है अर्थ यह कि जैसे सरोवर से प्रवाह निकलते हैं तैसेही उदर की पुष्टता करके सब इन्द्रियों को बल पहुँचता है तिससे अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं इस करके प्रसिद्धहुआ कि सब जीवों पर आहार का विषय अतिप्रबल है और प्रबलता इसकी यह है कि जब उदर पुष्ट होता है तब काम की अभिलाषा उत्पन्न होती है और काम की अभिलाषा तब पूर्ण होती है जब धन का संग्रह होताहै बहुरि धन की उत्पत्ति के निमित्त ईर्षा, बैरभाव, क्रोध, कपट और अभिमान आदिक अवगुण उपजते हैं ताते आहार की अधिकता विषे आसक्त होना सब पापों की मूल है और आहार का संयम करना सब शुभगुणों का बीज है सो मैं भिन्न २ करके तिसका बखान करूंगा (अथ प्रकट करनी स्तुति आहार के संयम की) इसी पर महापुरुष ने कहा है कि भूख और तृषा को अङ्गीकार करके अपने मन के संग युद्धकरो तब उत्तमफल को पावोगे और भगवत् के निकट संयम के समान और करतूति विशेष कोई नहीं ताते जो पुरुष अपने उदर को अतिपुष्ट करता है तिसको सूक्ष्मदेश की ओर मार्ग नहीं खुलता और किसी ने महापुरुष से पूछा था कि उत्तम पुरुष कौन है तब उन्होंने कहा कि जिस पुरुष का आहार, संयम सहित होवे और वचन भी संयमसहित होवें और नग्नता के ढकनेमात्र वस्त्र को पहरे और इसीपर सन्तुष्ट रहे सो वह मनुष्य महाउत्तम कहावता है बहुरि योंभी कहा कि आहार और वस्त्रों को संयमसहित अङ्गीकार करना भी महापुरुषों का लक्षण है और योंभी कहाहै कि जिस पुरुष का आहार संयमसहित है और हृदयभी विचार के अभ्यास में दृढ़ है वह भगवत् का प्रियतम है और जिस पुरुष का आहार और निद्रा मर्याद से अधिक है वह भगवत्से विमुख रहता है और योंभी कहा है कि अपने हृदय को मृतक न करो सो आहार की अधिकता करके हृदय मृतक होजाता है जैसे अधिक जल करके खेती मृतक होजाती है ताते शरीर के निर्वाह निमित्त अल्पमात्रही आहार सुखदाय

होता है और अधिक आहार की तृष्णा करके नाना प्रकार की मलिनता उपजती हैं ताते चाहिये कि इतनाही आहार करे जिसमें जल, श्वास और भजन का अवकाश रोका न जावे इसीपर ईसानामी महापुरुष ने भी कहाहै कि जब तुम अपने शरीर को भूखा और नग्न राखो तब निस्सन्देह भगवत् के दर्शन को प्राप्त होवोगे और महापुरुष ने भी कहाहै कि जैसे शरीर के सब अङ्गों में रुधिर भरपूरहै तैसेही सब शरीर विषे मनकी चपलताभी व्याप रही है ताते भूख करके चपलता के मार्ग को रोको तब स्वाभाविकही मनका निग्रह होवे और जैलनामी सन्त ने कहा है कि तुम कदाचित् ऐसा भय मतकरो कि हम भूखे रहैंगे सो यह भयकरना अयोग्य है क्योंकि महाराज भूख और अपमान तो अपने प्रियतमों को देते हैं अथवा ऐसे दुःख जिज्ञासुजनों पर भेजते हैं ताते तुम ऐसे अभागी जीवों को इस पद की प्राप्ति कब होती है तात्पर्य यह कि सब सन्तोंने विचार करके देखाहै और यही निश्चय किया है कि इस लोक और परलोक विषे सुख देनेको संयम के समान कोई पदार्थ नहीं और आहार की अधिकता के समान दुःखदायक भी कोई नहीं (अथ प्रकट करने लाभ संयम के) ताते जान तू कि जैसे औषध की कटुताही औषध का लाभ नहीं तैसेही संयम विषे जो शरीर को कष्ट होता है सो वह केवल कष्टही लाभ नहीं है ताते आहार के संयम विषे १० लाभ प्रसिद्धहैं प्रथम लाभ यह है कि संयम करके हृदय शुद्ध और उज्ज्वल होताहै और आहार की पुष्टता करके हृदय अन्ध होता है और जब कुछ विचार करनेलगताहै तब ऐसी विक्षेपता को प्राप्त होता है कि उसकी बुद्धि पसर जातीहै और अवर विचारने लगती है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि अपने हृदयको प्रीति और मौन से सजीव अर्थात् चैतन्यकरो और संयम करके शुद्धकरो और योंभी कहा है कि संयमी पुरुष का हृदय उज्ज्वल होता है और विचार की वृद्धता होती है इसी पर शिवलीनामी सन्त ने कहा है कि जिसदिन आहार का संयम मैं करता हूं उस दिन मेरे हृदय में नवीन विचार और अनुभव की युक्ति अवश्यही खुलतीहै १ बहुरि दूसरा लाभ यहहै कि संयम करकेभजन और प्रार्थना के रहस्यको पावताहै और आहार की पुष्टता करके हृदय कठोर होजाताहै ताते यद्यपि कुछ भजन भी करताहै तो भी हृदयमें उसका सुख स्वाद नहीं प्रकट होता इसीपर जुनैदसन्तने भी कहाहै कि जिसका उदर आहारसे भरपूरहै तिसको भजन

और प्रार्थना का आनन्द नहीं प्राप्त होता है २ बहुरि तीसरा लाभ यहहै कि संयम करके दीनता और नम्रता उपजती है और आहार की पुष्टता करके अचेतता और प्रमाद बढ़ता है सो प्रमाद ही नरक का द्वारा है क्योंकि जबलग यह पुरुष आपको अधीन और दीन न देखे तबलग भगवत् की सामर्थ्यता और पूर्णता को नहीं पहिंचानता इसी पर एक वार्त्ता है कि जब महापुरुष को भगवत् की ओर से सब पृथ्वी के खज़ाने समर्पणहुये और इस प्रकार आज्ञा हुई कि तुम इनको अङ्गीकार करो तब उन्होंने बिनती करी कि मुझको इन पदार्थों की अभिलाषा कुछ नहीं और मैं यही चाहताहूं कि कभी आहार की प्राप्ति होवे और कभी भूखाही रहूं तो भला है क्योंकि भूख विषे धैर्य और सहनशीलता करूंगा और आहार करके तेरे उपकार को पहिंचानूंगा ३ बहुरि चौथा लाभ यह है कि जिसको क्षुधा रहती है तिसको क्षुधित पुरुषों पर दया उपजती है और जब अति पुष्ट होताहै तब अर्थीजनों को बिसार देताहै और परलोक का दुःखभी विस्मरण होजाताहै बहुरि जब भूखा रहताहै तब परलोक के दुःखको भी स्मरण करताहै सो परलोक के दुःखों का स्मरण करना और अर्थीजीवों पर दयालु होना परम सुखों का द्वार है इसी पर यूसुफ़नामी महापुरुष से किसी ने पूछा था कि सब पृथ्वी के भण्डार तो तुमको महाराज से प्राप्तहुये हैं फिर तुम भूखे काहेको रहते हो तब उन्होंनें कहा कि जो अति उदर पूर्ण होनेसे मुझको भूखे याचकों का विस्मरण होजावे तो इसमें मेरा अति अकाज होवेगा ताते संयम और भूखको मैंने अङ्गीकार कियाहै ४ बहुरि पांचवां लाभ यह है कि मन का निग्रह करना सब शुभगुणों का मूल है और मनके वशवर्त्ती होना मन्दभागों का बीज है सो जैसे कठोर पशु भूख विना कोमल नहीं होता तैसेही मन भी संयम विना वशी नहीं होता सो मन को भोगों से वर्जित करनाही परमलाभ है क्योंकि पापोंका मूल भोग है और भोगों का मूल आहार की पुष्टताहै इसी पर जुलनूननामी सन्त ने कहाहै कि मैंने जिस दिन अघाय़कर भोजन किया है उस दिन निःसन्देह मुझ से कुछ पाप हुआ है अथवा पापकी मंशा हुई है ताते यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि आहार के संयम करके व्यर्थ वचन और काम की प्रबलता दूर होजाती है और जो पुरुष आहार का संयम नहीं करता उसके ऊपर वाद, विवाद, निन्दा, स्तुति और कामकी प्रबलता होती है बहुरि जब यत्न करके इन्द्रियों को

विकारों से रोंकराखे तब नेत्रों को नहीं रोंकसक्ता और जब नेत्रों को भी रोंक राखे तब चित्त के संकल्प का निग्रह नहीं करसक्ता और संयम करके स्वाभाविकही मन और सब इन्द्रियां निर्बल होजाती हैं ५ बहुरि छठवां लाभ यह है कि आहार के संयम करके निद्रा भी क्षीण होजाती है सो भजन और प्रार्थना और विचार का बीज रात्रि का जागरण है और जो पुरुष अपने उदर को पुष्ट करता है तब निद्रा की मूर्च्छा करके मृतक की नाईं होजाता है और स्वप्न भी मलिन देखताहै ताते सन्तजनोंने यों कहा है कि मनुष्य की उत्तम पूंजी आयुर्बल है और श्वासरूपी रत्न हैं क्योंकि आयुर्बल करकेही परलोक के लाभ को पायसक्ता है सो अधिक निद्रा करके आयुर्बल क्षीण होजाती है और संयम करके निद्रा का बल दूर होताहै ताते संयम ही उत्तमपदार्थ है इस करके कि आहार की पुष्टता करके कामादिक स्वप्न भी छलजाता है तब मन और शरीर मलिन होजाताहै ताते भजन बिषे सावधान नहीं होसक्ता ६ बहुरि सातवां लाभ यह है कि संयमी पुरुष का समय भी व्यर्थ नहीं बीतता और उसको व्यवहार की विशेषताभी अल्प होती है बहुरि जिस पुरुष को आहार की अधिक अभिलाष है तिसकी आयुर्बल भोजन की सामग्री बिषे ही बीतजातीहै और सर्वदा शरीर के प्रतिपाल बिषे रहताहै और आयुर्बल समान पदार्थ को व्यर्थ खोवनाही बड़ी मूर्खता है इसी कारण से जिज्ञासुजनोंने यवके सतुवा खाकर संतोष किया है और सर्वजञ्जालों से मुक्तहुये हैं इसी पर एक सन्तने कहाहै कि अधिक आहार करके षष्ठगुणों का नाश होताहै सो प्रथम तो भजन का रहस्य नहीं आवता १ दूसरे बचनोंका स्मरण नहीं रहता २ तीसरे दया क्षीण होजातीहै ३ चौथे आलस उत्पड़ता है ४ पांचवें भोगों की प्रबलता होती है ५ छठें सर्वदा खाने और मलत्यागने की इच्छाबिषे रहताहै ६ । ७ बहुरि आठवां लाभ यह है कि संयम करके शरीर आरोग्य रहताहै ताते वैद्यों की अधीनता और ओषधियों की कटुता से छुट जाताहै इसी पर बड़े आचार्यों और वैद्यों ने यही सिद्धान्त दृढ़ किया है कि सर्व रोगों का बीज आहार की अधिकता है और जिस करतूति बिषे सबही लाभ होवे और किंचिन्मात्र दोष न होवे सो आहार का संयम है और एक बुद्धिमान् ने कहा है कि सर्व आहारों बिषे अनार का भोजन महापथ्य है और कठोर अन्न अत्यन्त कुपथ्य है पर जब अनार ही अधिक भोजन

करे तो भी खेद को पावता है और जब कठोर अन्न को अल्प अङ्गीकार करे तब निःखेद रहता है ८ बहुरि नववां लाभ यह है कि संयमी पुरुष को जीविका भी अल्प चाहती है और धन की अधिक तृष्णा से मुक्त रहता है सो सब विघ्न, पाप और विक्षेप तृष्णाही से उपजते हैं क्योंकि जिसको नानाप्रकार के रसों और अधिक भोजनों की अभिलाष होवे तिसकी सर्व आयुर्बल धन की उत्पत्ति विषेही बीत जाती है और धन का उपजावना पापों विना कठिन है इसी पर एक बुद्धिमान् ने कहा है कि मैं तो अपने मनोरथ को इस प्रकार पूर्ण करता हूं कि प्रथमही मनोरथों की वासना को त्याग देता हूं ताते निश्चिन्त और सुख से रहता हूं ९ बहुरि दशवां लाभ यह है कि संयमी पुरुषका हृदय उदार होता है इस करके कि संयमी पुरुष को ऐसेही समझ रहती है कि जिस पदार्थ करके उदर पुष्ट करते हैं सो पदार्थ मलिनता को प्राप्त होजाता है और जो पदार्थ भगवत् के निमित्त दान करते हैं वह निस्सन्देह महाराज के हाथों विषे पहुँचता है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक बार महापुरुष ने किसी धनवान् को देखा था सो तिसका शरीर बहुत स्थूल था तब उसको देखकर कहने लगे कि जितना कुछ तैंने उदर विषे डाला है तितना जो तू भगवत् अर्थ देता तो भला था १० (अथ प्रकट करनी युक्ति आहार के संयम की) ताते जान तू कि प्रथम जिज्ञासु को पाप से रहित आहार किया चाहिये बहुरि जैसे आहार की अधिकता निन्द्य है तैसेही एकबारही अल्प करदेना भी निन्द्य है ताते चाहिये कि शनैः २ करके आहार को घटावे सो जब इस प्रकार करके क्रम से आहार को घटावे तो शरीर भी सुखी रहता है पर उत्तम पुरुषों की अवस्था तो यह है कि प्राणों के निर्वाहमात्र भोजन करते हैं पर आहार की अधिकता और अल्पता का भी शरीरों और समय और क्रिया के अनुसार भिन्न २ ही अधिकार होता है ताते सबों का तात्पर्य यह है कि अत्यन्त पुष्ट होकर भोजन न करे क्षुधा शेष बनी रहने देवे और क्षुधा का लक्षण यह है कि भोजन करने के पीछे भी इतनी रहजावे क्षुधा कि रूखे भोजन को भी अङ्गीकार किया चाहे इसी पर सुहेलनामी सन्त ने भी कहा है कि यद्यपि सर्व संसार पापरूप होजावे तो भी प्रीतिमान् को शुद्ध जीविकाही प्राप्त होती है अर्थ यह कि प्रीतिमान् शरीर के निर्वाह से अधिक अङ्गीकार नहीं करता ताते जिन पुरुषों को

परमपद की प्रीति उत्पन्न हुई है तिन्हों ने सर्वप्रकार के रसों का त्याग किया है और जो २ मनकी वासना है सो तिससे विपर्यय होकर बर्ते हैं क्योंकि जब यह मन अपनी वासना अनुकूल भोगों को पावता है तब प्रमाद करके अन्ध होजाता है बहुरि इसी संसार के जीवने को प्रियतम जानता है ताते चाहिये कि इस मन को संसार के भोगों से विवर्जित करके निग्रह करिये और वैराग्य करके ऐसा दुःखित करिये कि इस संसार को बन्दीखाना जाने और शरीर के मृतक होने की मुक्ति अपनी जाने इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि सबों में बुरे मनुष्य वही हैं कि जिनका चित्त भोगोंविषे आसक्त हुआहै और नानाप्रकार के रसों और वस्त्रों की अभिलाष करते हैं इसी पर मूसानामी महात्माको आकाशवाणी हुई थी कि हे मूसा! अन्त में तेरी स्थिति का स्थान श्मशान होगा ताते चाहिये कि तू अपने शरीरको भोगों से विवर्जित करे इसी कारण से जिन पुरुषों को अपनी वासना अनुसार भोग प्राप्त हुये हैं तिनको महापुरुषोंने मन्दभागी जाना है इसी पर एक सन्त ने कहा है कि मैंने दो देवता आकाश से उतरते देखे सो तब एक देवता बोला कि अमुक मनमुख ने मछली फँसावने के निमित्त जल विषे जालडाला है सो मैं उसके निमित्त जाल में मछली फँसावने जाताहूं और दूसरे देवता ने कहा कि अमुक प्रीतिमान् को घृत खाने की इच्छा हुई है सो मैं उसके हाथ से घृत के बासन को गिराने जाता हूं और उमरनामी सन्त को किसीने मिश्री और शरद जलका शरबत आनदिया था तब उन्हों ने अङ्गीकार नहीं किया और कहनेलगे कि इसको मुझ से दूर करो काहे से कि परलोक विषे इसका भी दण्ड होवेगा इसी पर एक सन्त की वार्त्ता है कि वह आटा भिगोकर भोजन करते थे और जल के घड़े को धूप में से उठाकर छाया विषे न रखते थे और एक और प्रीतिमान् को किसी वस्तु की इच्छा हुई थी सो जब अधिक यत्न करके वह वस्तु प्राप्तहुई तब कहने लगे कि इसको भगवत् अर्थ उठाय देवो तब किसी मित्र ने कहा कि इस वस्तु को तो तुम चाहते थे सो जब प्राप्त हुई तब अङ्गीकार क्यों नहीं करी बहुरि उन्होंने कहा कि मैंने महापुरुष के मुख से सुना है कि जब इस मनुष्यको किसी भोगकी वासना उठे और फिर उस वस्तु को पायकर भगवत् अर्थ उठाय देवे तब उसके ऊपर भगवत् दया करता है ऐसेही एक जिज्ञासु को दूध पान करनेकी इच्छा हुईथी तब उन्होंने चालीसबर्ष

पर्यन्त अङ्गीकार न किया तात्पर्य यह कि परमार्थ के मार्ग बिषे चलनेवाले जिज्ञासुओं के ऐसे लक्षण हुये हैं और जो ऐसे पद को प्राप्त न होसके तोभी चाहिये कि कुछ भोगों से तो रहित होवे और अधिक चिकने और मीठे और मांसादिक आहार तो अङ्गीकार न करे और योंभी कहाहै कि मांसादिक आहारों करके हृदय कठोर होजाताहै (अथ प्रकटकरना भेद यत्न का और अधिकार गुरु शिष्य का) ताते जान तू कि संयम और यत्न का तात्पर्य यह है कि यह मन कोमल और अधीन होवे बहुरि जब मन विचार की मर्याद बिषे स्थितहुआ तब हठ और यत्न की अपेक्षा नहीं रहती इसी कारण से सद्गुरु जिज्ञासु को यत्न और हठका उपदेश करते हैं और आप सहजवृत्ति बिषे वर्तते हैं क्योंकि उनका मन भोगों से मुक्त हुआहै बहुरि यत्न का प्रयोजन यह है कि संयम करके सुखीरहे अर्थात् ऐसी क्षुधा भी न राखे कि जिस करके अनाज की ओर सुरत खिंची रहे और भजन में विक्षेपता होवे और ऐसा उदर पूर्ण भी न होवे कि जिस करके आलस और अचेतता बढ़जावे तात्पर्य यह कि इस मनुष्य की पूर्णताई यह है कि इस का स्वभाव देवताओं की नाईं होवे सो देवताओं का स्वभाव यह है कि उनको भूख का खेद भी नहीं होता और अधिक आहार का बोझ भी नहीं होता पर यह मन ऐसी समानता बिषे प्रथम स्थित नहीं होसक्ता ताते प्रथम इसको हठ और यत्न करके दण्ड करना प्रमाण है क्योंकि यत्न करके जब इसका मलिन स्वभाव दूर होवे तब पीछे समानता को प्राप्त होता है इसी कारण से जिज्ञासु जनों ने सर्वदा अपने मन पर दोषदृष्टि राखी है और वैराग्यरूपी फांसी बिषे इसको फँसाया है और सदैवकाल मनके स्वभाव को विचारसहित देखते रहतेहैं बहुरि जब पूर्णपद को प्राप्त हुये तब समभाव बिषे स्थित हुये हैं इस पर दृष्टान्त प्रमाण यह है कि जब मारूफकरखीनामी सन्त के पास लोग अच्छा भोजन लेजाते थे तब वह उसको ग्रहण करलेते थे और जब बशरहाफ़ीनामी के पास लेजाते तो वह कदाचित् अङ्गीकार न करतेथे तब मारूफकरखी से लोगों ने पूछा कि तुम्हारा स्वभाव किस करके खुलाहुआहै और बशरहाफ़ी का स्वभाव किस करके संकुचा हुआहै तब उन्होंने कहा कि बशरहाफ़ी वैराग्य करके विधि निषेध का विचार करते हैं ताते विधि को अङ्गीकार करते हैं और निषेध का त्याग करते हैं और मैं ज्ञानकरके ग्रहण त्याग के बन्धन से मुक्त हुआहूं ताते मेरी

समझ यह है कि मैं महाराज के गृह विषे अभ्यागतहूं और सब विश्व महाराज का गृह है और जो कोई वस्तु कोई देताहै वह महाराजही की ओरसे और महाराजही की प्रेरणा से है ताते जो कुछ मुझको महाराज देता है वही अङ्गीकार करलेता हूं और जब कुछ नहीं देता तबभी प्रसन्न रहताहूं इसी कारण से मैं किसी पदार्थ को चाहताभी नहीं और किसी का निषेधभी नहीं करता पर यह अवस्था जो महाउत्तम और दुर्लभहै सो मूर्खोंके गिरनेका स्थानभी यही है अर्थ यह कि मूर्खलोग इस वचन को सुनकर आपको ज्ञानी मान लेते हैं और कहते हैं कि हमको ग्रहण त्यागका बन्धन कुछ नहीं रहा पर अवस्था उनकी ऐसी नीच होती है कि उनमें रञ्चकमात्रभी वैराग्य का बल नहीं होता और सर्वदा विषयों विषे आसक्त रहते हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि जिनका मन सर्व बन्धनों से मुक्त हुआ है सो ऐसे ज्ञानवानों से भी सहजही साधना रहजाती है और जो महाअज्ञानी हैं सो वह भी आप को ज्ञानवान् जानकर साधन और यत्न का त्याग कर देते हैं पर मारूफकरखी की जो वार्त्ता मैंने कही है सो उनकी ऐसी परम उत्तम अवस्था थी कि जब कोई उनको हाथों करके दुखावता था तौभी वह उसको महाराजही की ओरसे समझ करके शीतलचित्त और खेदरहित रहते थे तात्पर्य यह कि जिन के चित्त गम्भीर ऐसे हैं तिनहीं को ऐसे भजन शोभितहैं और बशरहाफी आदिक जो सन्त हुये हैं तिन्होंने अपने मन को यत्न से दूर नहीं किया क्योंकि मनके स्वभावों से कदाचित् निर्भय न होते थे पर यह वार्त्ता महाकठिन है कि मनके वशीकार होकर आपको ज्ञानवान् जानना बहुरि वैराग्य है और अभ्यास का त्याग करना सो यह बड़ी मूर्खताई है (अथ प्रकट करना स्थूल भोगों के त्याग विषे विघ्नोंका और उपाय विघ्नों के निवृत्त करने का) ताते जान तू कि अल्प बुद्धि जीवों को भोगोंके त्याग विषे दो विघ्न आन उपजते हैं सो प्रथम यह है कि जब यह मनुष्य भोगों का कुछ त्याग करताहै और उसके त्याग में समर्थ नहीं होसक्ता तब एकान्त विषे उसको भोग लेता है और इस प्रकार आहताहै कि लोग मुझको भोगता न देखें तौ भलाहै सो एकान्त विषे लम्पट होता है और दूसरा यह कि वह मनुष्य आपको वैरागी दिखावताहै सो यह भी केवल लम्पटता है और यह दोनों प्रकार के पुरुष अपने चित्त विषे ऐसा अनुमान करते हैं कि जब हमलोगों से दुरायकर भोगों को अङ्गीकार करेंगे तब इस लोक

विषे लोगों की भलाई होवेगी इस करके कि प्रथम तो निन्दा से बचेंगे और दूसरे भोगों विषे ढीठ होकर न वर्तेंगे सो यद्यपि उनको मन ऐसे सिखावता है तो भी विचार करके देखिये तो केवल दम्भ है क्योंकि जिन पुरुषों का हृदय वैराग्य और सन्तोष करके शुद्ध हुआ है तिनके ऐसे लक्षण वर्णन विषे आये हैं कि वह लोगों के देखते में खान पान आदिक पदार्थों को अपने गृह विषे ले आते थे और फिर उन पदार्थों को गुप्त भगवत् अर्थ दे डालते थे सो यह परम सांचे हृदयवालों की अवस्था है और यद्यपि ऐसी करतूति करना मनको महा कठिन होता है पर निष्कामता की परीक्षा भी यही है कि ऐसी करतूति विषे संकोच न आवे और जबलग ऐसी अवस्था प्राप्त न होवे अर्थात मनको इस प्रकार वर्त्तना सुगम और नियत सहजस्वभाव न होजावे तबलग जानिये कि मान और कपटसे मुक्त नहीं हुआ बहुरि जिस पुरुष के हृदय विषे मान की कामना है उसका सब करतूति और भजन मानही के निमित्त होता है और वह मानही का दास है पर जो पुरुष आहारादिक भोगों का संयम करके मान की अभिलाषा विषे आसक्त होजावे तब उसका दृष्टान्त यह कि जैसे कोई पुरुष मेघ की बूंदों से भागकर पनालेके नीचे जाय बैठे सो ऐसा पुरुष मूर्खही कहाता है ताते जब जिज्ञासु अपने विषे मान की अभिलाष देखे तब चाहिये कि लोगों के देखतेहुये अल्पमात्र रसादिक के भोजन को अङ्गीकार करलेवे पर तृष्णा करके अधिक न खावे तब इस विषे मान की क्षीणता होती है और भोगों से भी मुक्त रहेगा (अथ प्रकट करना कामादिक विघ्नों का) ताते जान तू कि कामादिक अभिलाष को जगत् की उत्पत्ति के निमित्त मनुष्यों पर प्रबल किया है पर जितनी इसकी अभिलाप अति प्रबल होवे तितनेही इस विषे विघ्न भी उपजते हैं और वह चित्त को अत्यन्त आवरण करते हैं इसीपर एक वार्ता है कि महात्मा मूसानामी महापुरुष ने कलियुग से पूछा कि तेरा अधिक निवास किस जगह में होता है तब उसने कहा कि जहां पर स्त्री और पुरुष एकान्त विषे मिलके बैठते हैं तहांहीं मेरा अधिक निवास है ताते तुझको चाहिये कि एकान्त विषे स्त्रियों से मिलाप मतकरे क्योंकि ऐसे स्थान विषे मैं निश्शङ्क होकर उत्पात और विघ्न डालताहूं पर केते मनुष्य ऐसे मूर्ख होते हैं कि कामादिक भोगों के निमित्त बलदायक औषधों का सेवन करते हैं सो तिनका दृष्टान्त यह है कि

जैसे कोई बिच्छुओं और बरों के छत्ता को हिलावे कि मैं इनके डसने का तमाशा देखूं सो ऐसा मनुष्य महाबुद्धिहीन कहाताहै तैसेही जो पुरुष ऐसे विकारों को उत्पन्न करके आपको दुःखित करता है सो महामूढ़ है क्योंकि जब इस विकारकी वृद्धिता होती है तब दुराचारादिक अपकर्मों बिषे बर्तताहै और इस करके और भी अनेक पाप उपजते हैं ताते जिज्ञासु को चाहिये कि प्रथमही काम के मार्ग को रोके और जब ऐसे न करे तब निस्संदेह विकारों की प्रबलता होती है सो काम की उत्पत्तिका मार्ग नेत्रों की दृष्टि है पर जब अचानक ही एकबार नेत्रों की दृष्टि किसी रूपवान् पर पड़े तब दूसरीबार नेत्रों के देखने से बर्ज राखे तब इस प्रकार काम का रोकना सुगम होताहै और जब नेत्रों को इस प्रकार न बर्जे तब पीछे मन को रोकना कठिन होताहै क्योंकि यह मन भी कठोर घोड़े की नाईं है अर्थात् जैसे घोड़ा किसी और ओरको चला चाहता है तब प्रथमही सचेत होकर उसको निग्रह करना सुगम होताहै और जब बल करके छूट जाताहै तब किसी प्रकार पकड़ नहींसके तैसेही मनके निग्रह करने का मार्ग नेत्रही हैं इसीपर एक सन्तने कहाहै कि महात्मा दाऊजी भी नेत्रों के मार्ग करकेही छलेगये थे ताते दाऊजी ने अपने पुत्र को उपदेश किया था कि बड़े अजगर और सिंहोंके सम्मुख जाना प्रमाण है पर स्त्री के सम्मुख जाना अयोग्य है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि स्त्रियों के रूप को देखना ऐसा है जैसे किसी के शरीर बिषे विष मिलाहुआ बाण लगे ताते जो पुरुष अपने नेत्र को रोक रखता है उसके चित्तविषे भजन का रहस्य उपजता है बहुरि यों भी कहा है कि जैसे काम इन्द्रिय करके काम का भोग होताहै तैसेही नेत्रों की दृष्टि भी काम का भोग है पर जो पुरुष अपने नेत्रों को रोक न सके तब उसको चाहिये कि तप और व्रतोंकरके शरीर के बल को घटावे बहुरि जब इस बिषे भी समर्थ न होवे तब विवाह करके गृहस्थ मार्ग बिषे विचरे तो भला है पर यह तो मैंने स्त्रियोंके संग की निन्दा कही है बहुरि रूपवान् लड़कों की ओर देखना भी बड़ा विघ्नहै क्योंकि जिसको यह देखने की अभिलाषा बढ़ती है तब वह पापों के समुद्र बिषे बह जाताहै और किसी प्रकार निर्दोष नहीं रहसक्ता क्योंकि जैसे पुष्पादिक और चित्रकारी की सुन्दरता को देखकर चित्त प्रसन्न होताहै और उसमें कामचेष्टा कुछ नहीं फुरती तैसेही जो पुरुष रूप को देखकर स्पर्शके विकार से

विरक्त रहे तिसको भी कोई दोष नहीं लगता सो यह किसी विरले पुरुष से हो सक्ता है इसी पर एक सन्त ने कहाहै कि जिज्ञासुजन जिस प्रकार रूपवान् लड़कों से भयकरते हैं तैसे गरजते सिंहसे भी भयवान् नहीं होते (अथ काम के बल को तोड़ने की महिमा का प्रकट करना) ताते जान तू कि जितनी जिस भोग की प्रबलता अधिक होती है उतनी ही उसके बल को तोड़ने की विशेषता भी अधिक होती है सो यह वार्ता प्रसिद्ध है कि काम की अभिलाषा महा प्रबल है और इस विषे विचरना मलिन है और केते पुरुष जो इस भोग से रहित होते हैं सो अधिक तो ऐसे होते हैं कि वह काम के वेग को लज्जावानी और दण्ड अथवा असमर्थता करके रोके रहते हैं ताते उनको कुछ अधिक फल नहीं होता क्योंकि लोगों से भयकरके सकुचे रहते हैं और भगवत् के भय करके उस से रहित नहीं हुये और जब असमर्थता अथवा लज्जा करके पाप से रहित होवे तो भी भला है क्योंकि दुःख भोगने का परलोक में अधिकारी तो नहीं होता पर जिसको पाप से रक्षा करनेवाला और कोई हेतु न होवे और केवल भगवत् के भय करके पापकर्मों को त्यागदेवे तब उसको अधिक फल ही प्राप्त होता है इसी पर एक वार्ता है कि यूसुफनामी एक सन्त अतिसुन्दर हुये हैं सो उनको जुलेखा नामी स्त्री ने मिलाप करके मोहित करना चाहा पर वह कामके बल को भली प्रकार तोड़कर उससे मिलाप न करते भये तब उत्तम पदवी को प्राप्तहुये बहुरि एक और वार्ता है कि दो प्रीतिमान् किसी देश को चलेजाते थे तब मार्ग विषे एक भाई किसी कार्य के निमित्त नगर में गया और दूसरा आसन पर बैठ रहा बहुरि दैव संयोग करके एक स्त्री सुन्दर आयकर उसको चपलता दिखावने लगी तब वह प्रीतिमान् नीचे को शीश करके रोनेलगा ताते वह स्त्री लज्जावती होकर चली गई बहुरि जब दूसरा प्रीतिमान् आया तब पूछनेलगा कि हे भाई! तू क्यों रोताहै? तब प्रथम तो उसने अपने वृत्तान्त को प्रकट न किया पर जब अति दीन होकर उसने पूछा तब उसने वार्ताको खोलकर कहा बहुरि वह वार्ता सुनकर वह प्रीतिमान् भी रोनेलगा तब पहले भाई ने पूछा कि तू क्यों रोनेलगा? तब उसने कहा कि मेरे रोने का प्रयोजन यहहै कि जैसे तुमने आपको स्त्रीके छलसे बचाया है तैसे मैं आपको बचा नहीं सक्ता बहुरि जब रात्रि विषे शयन करते भये तब स्वप्न विषे उनको आकाशवाणी हुई कि तुमने यूसुफ की नाई आपको बचाया है

ताते तुम धन्य हो बहुरि एक और वार्त्ता है कि तीन मनुष्य एकमार्ग विषे चले जाते थे सो जब रात्रि हुई तब मेघ की रक्षा के निमित्त एक पहाड़ की कन्दरा विषे जायरहे दैवयोग करके पहाड़ के शृङ्ग से एक बड़ा पत्थर आय गिरा और पहाड़ की कन्दरा के द्वार को रोकलिया तब तीनों मनुष्य व्याकुल हुये बहुरि यही विचार किया कि अपने २ पुण्य को स्मरण करके भगवत् से प्रार्थना करे तब एक पुरुष ने कहा कि हे महाराज ! मैं तेरी आज्ञा जानकर माता पिता की अधिक सेवा करताथा सो एकदिन माता के निमित्त दूध का कटोरा भरलाया था तब उस समय विषे मेरी माता सोयगई थी ताते मैं हाथ में कटोरा लिये खड़ारहा और आहार भी न किया सो हे अन्तर्यामी ! तू तो इस वार्त्ता को जानता है ताते हमको निकलनेका मार्ग करदे तब कुछ कन्दरा के द्वार से वह पत्थर सरका पर बाहर आवने योग्य मार्ग न खुला बहुरि दूसरे ने कहा कि हे महाराज ! तू इस वार्त्ता को जानता है कि एक मजदूर की मजदूरी मेरे पास रहगई थी सो मैंने उसी मजदूरी की बकरी मोल ली बहुरि उस अजा का इतना परिवार बढ़ा कि मैंने उसही के मोल से बहुत पशु लिये सो जब चिरकाल के पीछे वह मजदूर आया तब मैंने वह सब धन उसको देदिया सो जो यह वार्त्ता सत्य है तो हमको मार्ग देहु तब वह पत्थर हिलकर कुछ और भी द्वार से हटा बहुरि तीसरे पुरुष ने कहा कि हे महाराज ! अमुकी स्त्री के साथ मेरी अधिक प्रीति थी और वह मुझ को प्राप्त न होती थी सो जब दुर्भिक्षकाल करके उसके सम्बन्धी दीन हुये तब मैंने उसको धन का लोभ देकर अपने अनुकूल किया बहुरि जब मैं उसके निकट गया तब उसने कहा कि तू भगवत् से नहीं डरता तब हे महाराज ! मुझको तेरा त्रास आया और तुझ को व्यापक और सर्वदर्शी जानकर उसका त्याग किया सो जो यह वार्त्ता सत्य है तो हमको मार्ग देहु तब वह पत्थर कन्दरा के द्वार से दूर हुआ और वह तीनों बाहर निकल कर दुःख से मुक्त हुये (अथ प्रकटकरना निषेधता स्त्रियों और लड़कों को कुदृष्टि देखने की) ताते जान तू कि प्रबल होते हुये काम को तोड़ना महाकठिन है इस कारण से चाहिये कि प्रथम ही नेत्रों को परदृष्टि से रोके इसी पर एक सन्त ने कहाहै कि स्त्रियों के वस्त्र देखने करके भी काम उपजता है ताते इनके वस्त्रों का देखना भी जिज्ञासु को प्रमाण नहीं बहुरि स्त्रियों के साथ बोलना और उनके वचनों को सुनना और जहां उनका निवास

होवे तहां जाना और उनसे हास्यादिक करना सो यह सब व्यवहार निन्द्य हैं तात्पर्य यह कि काम का कारण रूप है ताते रूप की अभिलाप करके दृष्टि करनी अयोग्य है और जब अभिलाप विनाही मार्ग बिषे अथवा किसी और ठौर बिषे अचानकही किसी पर दृष्टि जापड़े तब वह देखना पाप नहीं पर फिर दूसरी बार उसको प्रीति करके देखना निस्सन्देह पाप है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि प्रथम स्वाभाविक दृष्टि पड़ती है और दूसरी बार देखना दण्ड का कारण है प्रयोजन यह कि स्त्री पुरुष का मिलाप सर्वथा विघ्नों का बीज है बहुरि केते ऐसे स्थान हैं कि वहां अवश्यही स्त्रियों का मिलाप होताहै सो वह स्थान ही निन्द्य है जैसे राग नाच के ठौर अथवा विवाहादिक अथवा तमाशे और मेले की ठौर में जिज्ञासु को जाना प्रमाण नहीं बहुरि योंभी चाहिये कि स्त्रियों के वस्त्र अथवा हारमालाको धारण न करे और न सूंघे और उनकी किसी वस्तु को अङ्गीकार न करे और प्रीति करके कुछ देवे भी नहीं इसी पर महापुरुष ने भी कहाहै कि स्त्रियों के साथ मधुर वचन न बोलो क्योंकि जब मार्गबिषे भी किसी स्त्री अथवा लड़कों का मिलाप होताहै तब मनबिषे यही संकल्प फुरता है कि इसको अवश्यही देखना चाहिये पर जिज्ञासु को यही पुरुषार्थ चाहिये कि मन के साथ युद्धकरे और यों कहे कि इस देखने करके मुझको पाप होगा और भगवत् से विमुख होऊंगा ऐसेही विचार करके मन को वर्ज राखे तो भलाहै ॥

तीसरा सर्ग ॥

अधिक बोलने के विघ्न के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह रसना भी भगवत ने महाआश्चर्यरूप बनाई है क्योंकि देखने में तो एक मांस का टुकड़ा है पर जो कुछ धरती और आकाश बिषे सृष्टि है तिन सब पर रसना का प्रवेश होताहै और जितने पदार्थ अरूप हैं तिनका भी वर्णन करती है ताते यह रसनाही बुद्धि की मन्त्री कही है अर्थ यह कि जैसे कोई पदार्थ बुद्धि की पहिचान से बाहर नहीं तैसेही रसना भी सर्व पदार्थों को वर्णन करती है और अवर इन्द्रियों का धर्म ऐसे नहीं कि जो सर्व कार्यों बिषे वर्तमान होवें जैसे नेत्र केवल आकार ही को देखसकते हैं और श्रवण केवल शब्दही के सुनने को समर्थ हैं ऐसेही और इन्द्रियां भी एक २ कार्य को ग्रहण करती हैं पर यह रसना ऐसी है कि नेत्रों और श्रवणों और अवर सर्व

अङ्गों के भेद को वर्णन करती है जैसे जीव की चैतन्यता सर्व अङ्गों विषे पसर रही है तैसेही रसना भी जीवों के सर्व संकल्पों को प्रकट करती है बहुरि जैसे वचन का उच्चारण रसना करती है तैसाही प्रवेश हृदय को भी पहुँचता है जब अधीनता और वियोग का वचन उचारती है तब हृदय कोमल होजाता है और नयनों के मार्ग से आँसू चलने लगते हैं और जब प्रसन्नता और किसी की स्तुति वर्णन करती है तब स्वाभाविकही उसकी अभिलाष उपज आती है तात्पर्य यह कि जब रसना विषे झूंठ और मलिन अक्षरों का उच्चारण होता है तब हृदय भी मलिन होजाता है और जब शुभ वचन का उच्चारण करनेलगती है तब हृदय सात्त्विकी भाव को प्राप्त होताहै इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि जबलग मनुष्य का हृदय शुद्ध नहीं होता तबलग इसका धर्मभी दृढ़ नहीं होता और जबलग रसना सूधी और सची नहीं होती तबलग हृदय भी शुद्ध नहीं होता ताते रसना के पापों और विघ्नों से भय करना धर्मकी दृढ़ता का कारण है इसी कारण से हम प्रथम तो मौन की विशेषता कहेंगे बहुरि रसना के विघ्न जो झूंठ और निन्दा और विवाद और दुर्वचन आदिक पाप हैं सो तिनका वर्णन करेंगे और इनके उपाय भी भिन्न २ करके कहेंगे (अथ प्रकट करना परत्व मौन का) ताते जान तू कि इस बोलने में इतने पाप हैं कि उनसे अपनी रक्षा करनी महाकठिनहै ताते सबों विषे मौनही विशेष उपाय है सो मनुष्य को चाहिये कि कार्य विना वचन न कहे इसीपर सन्तोंने कहाहै कि जिनका आहार और निन्दा और वचन संयम सहित होताहै वह निस्सन्देह सिद्धपदवी को पातेहैं इसी पर महाराजने भी कहाहै कि अधिक बोलने विषे कदाचित् भलाई नहीं होती ताते केवल किसी के उपकार अथवा दानदेने अथवा विरुद्धनिवृत्त करनेके निमित्तही वचन कहना भला है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिसको रसना और उदर और काम इन्द्रिय की उपाधि से भगवत् ने बचाया है सो मुक्तरूप है बहुरि एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछा कि विशेष करतूति कौन है तब उन्होंने सैन करके कहा कि मौनही विशेष करतूति है बहुरि योंभी कहाहै कि मौन और कोमल स्वभाव सुखेन भजन है और योंभी कहा है कि जब कोई अधिक बोलता है तब उसका हृदय कठोर होताहै सो पापों का रूपहै और जो पापरूप हुआ सो अग्नि विषे जलने का अधिकारी है इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सभा विषे

कुछ वचन विलास होता था और एक प्रीतिमान् मौन करके बैठ रहा था तब सबोंने उससे पूछा कि तुम क्यों नहीं बोलते तब उन्होंने कहा कि जब झूठ कहूं तब भगवत् से डरताहूं और जब सत्य कहूं तब तुमसे भयवान् होताहूं ताते जान तू कि मौन की विशेपता इस कारण करके कही है कि बोलने करके अनेक पाप उपजते हैं और रसना सर्वदा व्यर्थ वचनों विषे आसक्त रहती है बहुरि न बोलने विषे कुछ यत्नभी नहीं होता और मनभी प्रसन्नता को पाताहै बहुरि गुण और दोष वचनके विचारने महाकठिन हैं इसी कारण से कहाहै कि मौन करके सर्व क्लेशों से मुक्त रहताहै और पुरुषार्थ और एकाग्रता भी बढ़ती है और भजन विषे सुगम स्थित होताहै ताते जान तू कि वचन चार प्रकार काहै सो एक तो विघ्नरूप है जैसे निन्दा और झूठ १ और दूसरा ऐसाहै कि उसविषे गुण दोष मिला हुआहै जैसे प्रयोजन बिना किसीकी व्यथा पूछनी २ बहुरि तीसरा वचन गुण और दोपसे रहितहै सो यह व्यर्थ वादहै पर इस बिषे यह बड़ी हानिहै कि समय व्यर्थ बीत जाता है ३ और चौथा वचन यह है कि जो सर्वथा गुणरूप है जैसे किसीके सुखके निमित्त वचन कहना ४ ताते इन चार प्रकारके वचनों विषे तीन निन्द्यहैं और जिज्ञासु को चौथा ही अङ्गीकार करना योग्यहै पर जो पुरुप मौन बिषे स्थितहै सो सर्व विघ्नों से मुक्त होताहै स्वाभाविक ही पर जितने रसना के विघ्नहैं सो सब कोई पहिंचान नहीं सक्ता इसीकारणसे मैं सर्व विघ्नों को भिन्न२ करके कहताहूं सो पन्द्रह विघ्न प्रसिद्ध हैं प्रथम विघ्न यह है कि जिस वचन बिषे तेरा कार्य कुछ न होवे सो वह बोलना भी महानिन्द्यहै अर्थ यह कि जिस बिषे व्यवहार और परमार्थ की सिद्धता कुछ न होवे उस बोलने करके सतोगुण की शोभा नष्ट होजाती है जैसे किसी सभाविषे जायकर ऐसे वर्णनकरे कि मैं अमुक देश बिषे इस प्रकार गया था बहुरि उन नगरों और पहाड़ों और खानपान और बागोंकी वार्त्ता करनेलगे सो यद्यपि वह कहना सत्यही होवे तौभी इसको व्यर्थवचन कहते हैं ताते इसका भी त्याग करना चाहिये क्योंकि ऐसे वचनों बिषे तेरा कार्य कुछ नहीं सिद्ध होता अथवा जब किसी से प्रयोजन बिना पूंछे तौभी व्यर्थ है पर व्यर्थ उसको कहते हैं जिस बिषे अवगुण कुछ न होवे और कार्य कुछ न होवे पर जब किसीसे ऐसे पूछे कि तैंने व्रत राखा है अथवा नहीं सो जब वह कहै कि मैं व्रती हूं तब अभिमानी होताहै और जो कहै कि मैं व्रती

नहीं हूं तो झूठा होता है अथवा लज्जा करके व्रत किये विनाही आप को व्रती कहे तो भी पापी होता है सो यह अभिमान और पाप उसको तेरे पूछने करके ही लगता है ताते ऐसे पूछनाही अयोग्यहै अथवा जब किसीसे इस प्रकार पूछे कि तू कहां से आताहै और कहां जाता है और क्या करताहै ? सो जब उसको प्रसिद्ध कहना न होवे और झूठ कहदेवे तौभी तेरे सम्बन्ध करके पापी होता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एकबार लुकमान नामी हकीम महात्मा दाऊदनामी महापुरुष के पास गयाथा तब वह आगे लोहेकी कवच बनातेथे बहुरि लुकमान के चित्तविषे पूछने की मंशाहुई कि तुम यह क्या बनाते हो ? पर भय और धैर्य करके नहीं पूछा सो जब वह कवच को बनाचुके तब गले विषे डालकर कहने लगे कि यह युद्धके समय भला पहरावा है तब लुकमान ने ऐसे जाना कि यह मौन उत्तम पदार्थ है पर इस विषे कोई प्रीति नही करता बहुरि जब यह मनुष्य किसी से कार्य विना कुछ पूछता है कि मैं लोगों के भेद को प्रकटजानूं और उनसे वचन करके मित्रताई का सम्बन्धकरूं सो यह सवही बुद्धि की हीनता है ताते इसका उपाय यहहै कि काल को निकट देखे और ऐसे जाने कि एकबार भी श्रीरामनाम लेना बड़ा धन है सो जब मैं ऐसे खजाने को वाद विवाद विषे व्यर्थ खोऊंगा तब मेरी बड़ी हानि होवेगी सो यह उपाय बूझ करके होता है और करतूति करके इस प्रकार उपाय होताहै कि एकान्त विषे जायरहे सो इस करके भी वाद विवाद से मुक्त होता है तात्पर्य यह कि जब एक वचन करके निर्वाह होसके तब दो वचन कहे इसीपर एक प्रीतिमान् ने कहाहै कि जो मेरे हृदय विषे महामधुर वचन भी फुरता है तो भी मैं उच्चारण नहीं करता क्योंकि कभी मैं अधिक बोलनेवाला न हो जाऊं बहुरि महापुरुष ने भी कहा है कि भला पुरुष तिसको कहते हैं जो धनकी थैली की गांठ तो खोले और रसना को बन्धन विषे राखे १ बहुरि दूसरा विघ्न मिथ्या और पाप संयुक्त वचन बोलना है जैसे युद्धों की बातें और दुराचारी मनुष्यों के व्यवहार को प्रकट करना सो ऐसे वचन सवही पापरूप हैं इस करके कि प्रथम व्यर्थ विवाद का जो निर्णय किया था सो यह बोलना उसकी नाईं नहीं अर्थात् उससे भी अधिक नीच है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जब यह पुरुष निश्शंक होकर बोलता है और उस वचन की बुराई को नहीं जानता तब उसही बोलने करके नरकगामी

होता है और जब भयसंयुक्त बोलता है और विचार करके इस भेद को समझता है तब निस्संदेह परमानन्द को पाता है २ बहुरि तीसरा विघ्न यह है कि जब कोई पुरुष वचन कहे तब उसके वचन को विपर्यय करदेना सो यह भी महानिन्द्य है और बहुते पुरुषों का ऐसाही स्वभाव होता है कि जब कोई कुछ बोलता है तब शीघ्रही इस प्रकार कहनेलगते हैं कि यह वार्ता ऐसी नहीं है सो विचार करके देखिये तो इसका यह अर्थ होता है कि तू मूर्ख और झूठा है और मैं बुद्धिमान् और सांचा हूं ताते प्रसिद्ध हुआ कि ऐसे वचन करके क्रोध और अहङ्कार जो महामलिन स्वभाव हैं तिनकी वृद्धता होती है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि जो पुरुष किसीके वचन को विपर्यय न करे और व्यर्थवाद से भी रहित होवे तब वह परमसुख को पावता है और इसकी विशेषता इस निमित्त कही है कि भले बुरे वचन को सहना धैर्य करके महाकठिन है और योंभी कहा है कि इस पुरुष का धर्म तबहीं दृढ़ होता है कि यद्यपि आप सांचा भी होवे तौभी किसी के वचन को उलटावे नहीं और वचन उलटाना इसको कहते हैं कि जब कोई कहै कि यह अनार खट्टा है और तू कहै कि मीठा है अथवा जब कोई कहे कि अमुक नगर यहां से पांच कोस है और तू कहे कि पांच नहीं षट् कोस है सो यह महापाप है क्योंकि उसके वचन को खण्डन करना होता है और उसके दोष को प्रकट करना होता है और वचन करके दुखावना इसीका नाम है ताते सर्व प्रकार जिज्ञासु को मौनही चाहिये है पर जब परस्पर एक दूसरे के मत को निषेध करते हैं तब यह तो झगड़ा होता है पर जब किसी पुरुष बिषे श्रद्धा देखिये तब एकान्त बिषे उसको उपदेश करना भला है और जब श्रद्धाहीन होवे तब मौनही विशेष है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब यह पुरुष मतों और पन्थों के झगड़ों बिषे आरूढ़ होता है तब शीघ्रही आत्मधर्म से भ्रष्ट होजाता है तात्पर्य यह कि योग्य अयोग्य वचन को सुनकर मौनकर रहना बड़ा पुरुषार्थ है इसीपर एक वार्ता है कि एक जिज्ञासु जगत् को त्यागकर एकान्त बिषे स्थित हुआ था तब किसी बुद्धिमान् ने उस से पूछा कि तू लोगों बिषे क्यों नहीं आता तब उसने कहा कि मैं जगत् के झगड़े से आपको बचाया चाहता हूं बहुरि उस बुद्धिमान् ने कहा कि जब तू लोगों बिषे आवे और उनके भले बुरे वचन सुनकर धैर्य करे और बोलने से रहित रहे

तब यह पुरुषार्थ बड़ा है बहुरि केते पुरुष एस हाते हे कि वह अपने मान के निमित्त दूसरे के पन्थका निषेध करते हैं आर कहते हैं कि यह भी धर्म की दृढ़ता है सो यह बड़ी मूर्खता है ३ बहुरि चौथा विघ्न यह है कि धन के निमित्त किसीके साथ झगड़ा करना और राजाओं के दरबार में जाकर पुकार करनी इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जब य मनुष्य धन के लोभ करके किसी के साथ झगड़ा करता है तब ऐसी विक्षेपता को पाता है कि जैसी विक्षेपता और किसी अवगुण करके नहीं होती क्योंकि ऐसे झगड़े का निर्वाह कठोर वचन और वैरभाव बिना नहीं होता ताते जिज्ञासुजन पुरुषार्थ करके मूलही से ऐसे व्यवहार को त्याग करते हैं ४ बहुरि पांचवां विघ्न मुख से दुर्वचन बोलना है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि कुछ लोग नरकविषे महादुःखी होवेंगे और पुकार करेंगे तब और नरकी पूछेंगे कि ये महापापी कौन हैं तब देवता कहेंगे कि ये मनुष्य सर्वदा दुर्वचनही बोलते थे और दुराचार के वचनोंविषेही इनकी प्रीति थी और महापुरुष ने योंभी कहा है कि अपने माता पिता को गाली मत दो तब किसीने पूछा कि अपने माता पिता को कौन गाली देता है तब महापुरुष ने कहा कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे के माता पिता को दुर्वचन बोलता है तब वह भी इसके माता पिता को दुर्वचन कहने लगता है जब विचार करके देखिये तब इसने अपने माता पिता को आपही दुर्वचन बोला है ताते चाहिये कि जब अवश्यही किसी मलिनक्रिया का नाम लेना होवे तौभी सैन से कहे और प्रसिद्ध वर्णन न करे ५ बहुरि छठवां विघ्न यह है कि किसीको धिक्कार करना सो यह भी महानिन्द्य है यद्यपि किसी पशु और जड़ पदार्थ को धिक्कार करिये तौभी बुरा है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि प्रीतिमान् किसीको धिक्कार नहीं करते बहुरि एक और प्रीतिमान् ने भी कहा है कि जब यह मनुष्य धरती अथवा और किसी पदार्थ को धिक्कार करता है तब वह पदार्थ ऐसे कहता है कि हम दोनों में जो विशेष भगवत् से विमुख और पापी है उसीको धिक्कार है और जब इस प्रकार कहे कि समस्त अपकर्मियों और जीवों के दुःखदायकों को धिक्कार है और किसी जाति पांति पन्थका नाम लेकर न कहे तौ ऐसे कहना प्रमाण है पर तौभी जो विचार करके देखिये तो अपकर्मियोंको धिक्कार करने से भगवत् का नाम लेनाही विशेष है ६ बहुरि सातवां

विघ्न यह है कि रूप और शृङ्गार के व्यवहार की कविता करनी और रूपवानों की स्तुति करनी सो यह भी अयोग्य है क्योंकि ऐसी कविता बिषे अधिक तो झूठ होता है बहुरि कहने और सुननेवाले का हृदय चपल होता है पर जब मानसे रहित होकर भगवत् और सन्तजनों की स्तुति वर्णन करे तो प्रमाण है ७ बहुरि आठवां विघ्न हाँसी है सो हाँसी से महापुरुषने जिज्ञासुजनों को बरजा है पर जब अकस्मात् किसीके प्रसन्न करने के निमित्त हाँसी का वचन कहे तो निन्द्य नहीं पर यह भी तब प्रमाण है जब हाँसी का स्वभाव अधिक न होजावे और झूठ भी न कहे और किसीके हृदयको खेदभी न होवे क्योंकि जब हाँसी का स्वभाव अधिक होता है तव इस मनुष्य की आयुर्बल व्यर्थही बीतजाती है और हृदय अन्ध होजाता है बहुरि गम्भीरता भी नष्ट होजाती है और हाँसी से अकस्मात् तमोगुण भी उपज आता है इसी कारण से सन्तजनों ने अधिक हाँसी से बरजा है ऐसेही महापुरुषने भी कहा है कि जैसे मैं भगवत् की बड़ाई और बेपरवाही को जानताहूं सो जब तुमभी जानो तव हाँसीसे रहित होकर रुदन ही करते रहो बहुरि किसी प्रीतिमान् ने किसी और प्रीतिमान् से कहाथा कि नरकों के दुःखको तू निस्सन्देह जानताहै तब उसने कहा कि जानताहूं बहुरि उसने पूछा कि तू ऐसाभी जानता है कि नरकोंसे छूटूंगा तब उसने कहा कि यह तो मैं नहीं जानता बहुरि उन्होंने कहा कि जब ऐसे हुआ तब प्रसन्नता और हाँसी तुमको क्योंकर आती है इसी कारण से एक जिज्ञासुजन चालीस वर्षपर्यन्त हँसने से रहित रहे और परलोक के भयको स्मरण करतेरहे हैं इसीपर एक सन्तने कहा है कि जो पुरुष पाप करके इस लोकबिषे हँसता है सो निस्सन्देह नरकों बिषे अधिक रोतारहेगा बहुरि एक सन्त ने योंभी कहाहै कि जैसे स्वर्गबिषे रोना आश्चर्य है तैसेही संसारबिषे हँसनाभी आश्चर्य है काहेसे कि यह मनुष्य तो इतना भी नहीं जानता कि मैं परलोक बिषे नरक को प्राप्त होऊंगा अथवा स्वर्ग को इसी पर एक सन्त ने कहाहै कि भगवत्के भय करके हाँसी से रहित होवो क्योंकि हाँसी करके क्रोध उपजता है और क्रोध करके अनेक अवगुण उपजते हैं इसी कारणसे महापुरुष की सर्व आयुष्भर में जीवों की प्रसन्नता के निमित्तमात्र कुछ अल्पही हाँसीकी वार्ता वर्णनहुई है जैसे एक बार एक वृद्धा स्त्रीसे कहनेलगे कि कोई बूढ़ा मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त न होवेगा तब वह स्त्री रोनेलगी बहुरि उससे

कहा कि तू शोक मत कर काहे से कि जब कोई मनुष्य स्वर्ग बिषे जाताहै तब प्रथम उसको युवा करलेतेहैं बहुरि एक स्त्री महापुरुषसे आकर कहनेलगी कि तुमको प्रसाद पानेके निमित्त मेरे पति ने बुलाया है तब उससे कहा कि तेरा भर्त्ता वही है जिसके नेत्रों बिषे सफ़ेदी है बहुरि वह स्त्री कहनेलगी कि उसके नेत्रों बिषे तो सफ़ेदी नहीं है तब उससे हँसकर कहनेलगे कि सफ़ेदी से रहित तो किसीके भी नेत्र नहीं होते बहुरि एकबार मार्गबिषे चले जाते थे तब एक वृद्धा स्त्री कहनेलगी कि मुझको ऊंटपर चढ़ादो तब महापुरुष ने कहा कि तुझको ऊंट के पुत्र पर चढ़ादूं तब उसने कहा कि ऊंट के पुत्रपर तो मैं नहीं चढ़ूंगी कि वह मुझको गिरा देवेगा तब हँसकर कहनेलगे कि ऐसा ऊंट तो कोई नहीं होता जो ऊंट का पुत्र न होवे तात्पर्य यह कि महापुरुषों का हँसना और बोलना सबही विचारके अनुसार होताहै और गुणसे रहित नहीं होता पर जब कोई उनको देखकर ऐसाही स्वभाव करलेवे और उनके भेद को समझ न सके तब निस्सन्देह पापी होता ८ बहुरि नववां विघ्न यह है कि किसीको उपहास करके दुखावना और उसके कर्मों के छिद्रको प्रकट करके लोगों को हँसाना है सो यहभी महानिन्द्य है इसीपर महाराज ने कहाहै कि किसीके छिद्र को देखकर न हँसो क्योंकि कदाचित् वह तुमसे भला होजावे और तुम उससे भी नीचगति को प्राप्तहोजावो बहुरि महापुरुष ने भी कहाहै कि जब कोई अभिमान सहित किसीका अवगुण देखकर हँसता है तब मरनेसे आगेही अवश्यमेव उस अवगुण को प्राप्त होताहै ९ बहुरि दशवां विघ्न यह है कि अपने वचन का निर्बाह न करना सो यहभी महापाप है इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जो पुरुष वचन झूठा कहे और वचनका निर्वाह न करे अथवा किसीकी वस्तु चुरायलेवे तब वह कपटी कहाताहै और वह यद्यपि जप तप और व्रत भी करता होवे तौ भी भगवत् से विमुख होताहै इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि किसीके साथ वचन करना भी ऋण की नाईं है ताते उससे विपर्यय न हूजिये तो भला है बहुरि धर्मशास्त्रबिषे भी यों कहा है कि जैसे किसीको कुछ देकर फेरलेना अयोग्य है तैसेही वचन देकर निर्वाह न करना अयोग्य है १० बहुरि ग्यारहवां विघ्न यहहै कि झूठ बोलना और झूठी दुहाई करना सो यह भी महापाप है इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि झूठ करके इस मनुष्य की प्रारब्ध घटजाती है और यों भी कहा है कि सौदागरीबिषे झूठ बोलना और झूठी शपथ करनी

महानीचताहै और इसी पाप करके सौदागर अर्थात् बनिज व्यवहारी भी नरक-गामी होवेंगे बहुरि यों भी कहा है कि झूंठा मनुष्य व्यभिचारी से भी बुराहै काहे से कि व्यभिचारी तो अकस्मात् छल करके होजाता है और झूंठ बोलना मंशा की मलिनता करके होताहै पर ऐसे जान तू कि झूंठकी निषेध इस करके कही है कि झूंठ बोलने करके हृदय अन्धा होजाता है और जब झूंठ की मंशा न होवे और अकस्मात किसी कार्य के निमित्त बोलना चाहिये तो झूंठ बोलना भी प्रमाण है तात्पर्य यह कि जब झूंठ की मंशा न होवे और किसीकी भलाई अथवा रक्षा के निमित्त बोलता होवे तो हृदय अन्धा नहीं होता जैसे कोई अनाथ किसी तामसी मनुष्य के भय करके छिपा होवे और इसने देखा होवे बहुरि जब वह तामसी मनुष्य इससे पूछे कि अमुक कहां है तब सत्य बोलने से झूंठ बोलना विशेष है अथवा जब दो मनुष्यों विषे परस्पर विरोध होवे और इसके झूंठ बोलने करके उनका विरोध निवृत्त होवे तौ भी झूंठ कहना निन्द्य नहीं अथवा जब किसीका अवगुण देखिये और दूसरा कोई उसके अवगुण को पूछे तौभी उसको गुह्य रखना भला है अथवा जब कोई तामसी मनुष्य किसीका धन पूछे तौभी प्रसिद्ध कहना योग्य नहीं तात्पर्य यह कि यद्यपि झूंठ कहना अयोग्य है तौभी विचारकी मर्यादाविषे देखे कि जब झूंठ कहने करके किसीकी रक्षा होती है अथवा कोई बड़ा विघ्न दूर होताहै तब झूंठ कहने करके दोष कुछ नहीं होता पर जब अपने मान और धन के निमित्त झूंठ बोले तो निन्द्य है बहुरि ऐसे भी जान तू कि जब जिज्ञासुजनोंने इस प्रकार देखा है कि अमुक कार्य झूंठ विना सिद्ध नहीं होता तब उन्होंने ऐसा यत्न कियाहै कि जिस वचन विषे झूंठ का अक्षर न आवे और वह पुरुष कुछ और का औरही समझलेवे तब ऐसाही वचन उन्होंने बोलाहै जैसे एक प्रीतिमान् चिरकाल के पीछे राजा के निकट गया था तब राजाने पूछा कि तुम चिरकाल करके क्यों आये हो तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि जिस दिनसे मैं तुम्हारे पास से गया हूं सो मैंने तिस दिनसे अपना अङ्ग धरती से तबहीं उठाया है जब भगवत् ने मुझको नीरोगता दीनी है ताते राजाने जाना कि इनको कुछ रोग हुआ होवेगा और इन्होंने इसप्रकार कहा था कि जब भगवत्ने मुझको नीरोगता का बल दिया तबहीं मेरा शरीर चलने फिरने को समर्थ हुआ है सो इस वार्ताविषे कुछ सन्देह नहीं बहुरि एक

श्रीरामानुगगी थ सो उन्होंने अपने शिष्य को समझा दिया था कि जब मैं एकान्त विषे भगवद्भजन करने लगूं और कोई पुरुष मुझको आकर पूछे तब तू धरती पर लकीर खैंचकर उससे कहदेना कि यहां तो नहीं हैं बहुरि जब ऐसे पूछे कि कहां गये हैं तब ऐसे कहना कि किसी ठाकुरद्वारे विषे होवेंगे सो उन्हों ने गृहविषेही ठाकुरद्वारा भी बनाय राखा था बहुरि एक और प्रीतिमान् एक धर्मज्ञ राजा के प्रधान होकर किसी देश की पालना को गये थे सो जब अपने गृह विषे आये तब उनसे स्त्री कहनेलगी कि तुम हमारे निमित्त क्या लाये हो तब उन्होंने कहा कि मेरे साथ एक रक्षक और भी था तातें मैं कुछ ले नहीं आया सो उनके कहनेका तात्पर्य यह है कि अन्तर्यामी भगवत् मेरे साथ था और स्त्रीने यों जाना कि राजा ने कोई रक्षक भेजा होगा पर इस प्रकार जान तू कि ऐसा वचन बोलनाभी तब प्रमाण है जब किसी कार्य का निर्वाह ऐसे वचन बिना न होसके और जो सर्वथा ऐसाही स्वभाव पकड़लेवे तो अयोग्य है काहेसे कि यद्यपि यह वचन सत्य है तो भी औरों को धोखा देना प्रमाण नहीं और एक महापुरुष ने ऐसा कहाहै कि भगवत् की दुहाई करनी महापाप है अथवा जब ऐसे कहे कि भगवान् जानता है कि यह वार्ता ऐसीही है पर जब वह वार्ता तैसी न होवे तब इस प्रकार कहना भी बड़ापाप है ११ बहुरि बारहवां विघ्न निन्दा है सो यह निन्दा ऐसी प्रबल है कि अवश्यही सब किसीसे होजाती है पर जिसकी भगवत् रक्षा करे सो बिरला जनही मुक्त होता है इसीपर महाराजने कहाहै कि निन्दा करनी ऐसी बुरी है जैसे कोई बन्धु का मांस भक्षण करे बहुरि महापुरुष ने भी कहा है कि निन्दा व्यभिचार से भी बुरी है काहेसे कि जब व्यभिचार का त्याग करे तब शीघ्र भगवत् उसको मुक्त करता है और निन्दाके पाप से तबहीं छूटता है कि जिस पुरुष की निन्दा करी होवे सो जब उसही से क्षमा करावे बहुरि एक प्रीतिमान् ने कहा है कि मैंने महापुरुष से उत्तम उपदेश पूछा था तब उन्होंने कहा कि किंचिन्मात्र सुकृत कोभी अल्प न जानना यद्यपि किसी प्यासे को एक कटोरा भर जल देवे तौभी भगवत् का उपकार जान और सर्व मनुष्यों के साथ प्रसन्न मस्तक रख बहुरि किसीकी निन्दा भी न करना और निन्दा इसका नामहै कि यद्यपि तू सत्यही कहे पर जिस वचन को सुनकर किसीका हृदय खेदित होवे तब उसही को निन्दा कहते हैं जैसे तू कहे कि

अमुक पुरुष लम्बा है अथवा अतिश्यामहै अथवा मन्ददृष्टि है सो यह सब निन्दा है अथवा जब ऐसे कहे कि यह नीचजाति अथवा दासीसुत है अथवा कठोर है अथवा बहुत बोलनेवाला है अथवा चोर है अथवा भजन से हीन है अथवा वाणी अशुद्ध पढ़ताहै अथवा पवित्र नहीं रहता अथवा कृपणहै अथवा व्यवहार अशुद्ध करता है अथवा असंयमी है अथवा सोवता बहुत है अथवा वस्त्र सुन्दर पहरता है अथवा अधिक चपल है यह सबही निन्दा है तात्पर्य यह कि यद्यपि सत्यही वचन होवे पर जिस वचन को सुनकर उसका मन तपायमान होवे तब इसही का नाम निन्दा है इसी पर महापुरुष की स्त्री ने कहा है कि एक बार मैंने इस प्रकार कहा था कि अमुकी स्त्री ठिंगनी है तब महापुरुष मुझसे कहने लगे कि तुमने उसकी निन्दा करी है ताते मुख से थूक डालो बहुरि जब मैंने थूका तब मेरे मुख से रुधिर निकला और कितने स्थूल बुद्धिवाले इस प्रकार कहतेहैं कि अपकर्मियों की बुराई करनी निन्दा नहीं क्योंकि उनकी निषेधता करने से धर्म की वृद्धि होती है सो यह वार्त्ता अयोग्य है इस करके कि जिज्ञासु को सर्वथा अपने मार्ग की ओर दृष्टि रखनी प्रमाण है ताते किसीको मद्यपानी और दु-राचारी कहना योग्य नहीं अथवा जब कोई ऐसाही संयोग अवश्यही होवे तब कहिये पर कार्य विना कहना अयोग्य है और योंभी जानना चाहिये कि निन्दा केवल रसना करके ही नहीं होती हाथ और नेत्रों करके भी निन्दा होती है जैसे नेत्र अथवा हाथ अथवा और किसी अङ्ग की सैन करके दिखावे कि अमुक म-नुष्य ऐसा है तब यह भी पाप है और जब किसी का नाम न लेवे और योंहीं कहदेवे कि किसी पुरुष ने ऐसा कर्म कियाहै तब यह निन्दा नहीं कहाती पर केते विद्यावान् और तपस्वी तो महापुरुषों की निन्दा करते हैं और कहते हैं कि हमने निन्दा नहीं करी जैसे अपनी सभाविषे बैठकर वार्त्ता करते हैं कि यह माया महाछलरूप है और इसके छलों से मुक्त होना महाकठिन है इसीकारण से यद्यपि अमुक पुरुष महाउत्तम था तौ भी अमुक छलकरके छलागया और उस विषे आसक्त होगया और उसको क्या कहिये हम भी छलेहुये हैं और यह माया ऐसीही विघ्नरूप है सो इसका अभिप्राय यह होता है कि अपनी निन्दा करके औरों की निन्दा करता है सो यह बड़ी मूर्खता है बहुरि जब कोई उनके आगे आयकर कहे कि अमुक पुरुष ऐसे अपकर्म विषे स्थित हुआ है तब

आश्चर्यवान् होकर कहते हैं कि भगवत् रक्षा करे और यह तो बड़ी असंभव वार्त्ता हुई कि अमुक पुरुष गुणवन्त भी छलको प्राप्त हुआ है सो इस वचन का प्रयोजन यह हुआ कि निन्दा करनेवाला पुरुष प्रसन्न होकर उसके कर्म को वर्णन करे और सबलोग भलीप्रकार श्रवण करें अथवा इस प्रकार कहना कि हे भाई! सर्वप्रकार भगवत् से भय करना चाहिये और अभिमान करना अयोग्य है काहे से कि अमुक श्रेष्ठ पुरुष को कैसा छल प्राप्त हुआ है कि भगवतही उसकी रक्षा करे सो यद्यपि मुखसे ऐसाही कहता है तौभी उसका प्रयोजन यह है कि उसके छलको लोग भी जानें सो ये सबही निन्दा हैं और यह ऐसा महाकपट है कि पाखण्ड करके आपको अनिन्द्य हो दिखाता है ताते इसको दो पाप लगते हैं एक तो निन्दा होती है और दूसरे कपटबद्ध होताहै और वह मूर्ख ऐसा जानता है कि मैंने निन्दा नहीं करी और यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि निन्दाके करनेवाले और सुननेवाले दोनों समान पापी होतेहैं पर जब निन्दा सुननेवाले के चित्तविषे ग्लानि दृढ़ रहे और निन्दक को वर्जने की सामर्थ्य न रखता होवे तौभी निन्दा सुनने के दोषसे मुक्त रहताहै ताते जिज्ञासुको इस प्रकार उचितहै कि निन्दक को प्रसिद्ध बरजे बहुरि जिस प्रकार मुखसे निन्दा करनी परमपाप है तैसेही हृदयकरके भी निन्दा करनी पापरूप है सो हृदय करके निन्दा इस प्रकार होती है कि किसीके दोषको चित्तविषे स्मरण करना सो यह भी बड़ापाप है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि परद्रव्य चुराना और किसीका घात करना और किसीके ऊपर बुरा अनुमान करना सो यह तीनों महापाप हैं पर जब अकस्मात् तेरे चित्तविषे ऐसा संकल्प फुरआवे और तू उसको मलिन जानकर निवृत्त करे तब इसकरके तुझको पाप नहीं लगता पर इसकी परीक्षा यह है कि जब किसीके दोषका संकल्प तेरे चित्तविषे फुरे अथवा किसीसे श्रवण करे तब उस वार्त्ता को ढूंढे नहीं और उस फुरना को हृदय विषेही लीन करदेवे बहुरि ऐसे जाने कि जैसे मेरे मन विषे अनेक पाप उपजते रहते हैं तैसेही और मनुष्य भी पाप से रहित नहीं होसक्के और जिस प्रकार मैं अपने अवगुणों को छिपाया चाहता हूं तैसेही औरों के अवगुण भी प्रसिद्ध करने प्रमाण नहीं और जब मैं किसी के छिद्र को प्रकट जानूंगा तब मुझको क्या लाभ होगा? पर जब किसी के अवगुण को निःसंदेह जाने तब एकान्त विषे उसको नम्रता सहित उपदेशकरे और किसी के

आगे उसका छिद्र वर्णन न करे बहुरि ऐसे जान तू कि निन्दा की अभिलाषा भी इस मनुष्य के हृदय को बड़ा रोग है ताते इसका उपाय करना अवश्यही प्रमाण है और उपाय इसका दो प्रकार का है सो एक उपाय स्पष्टहै अर्थात् इकट्ठाही निन्दा को नाश करता है सो यह उपाय भी दो प्रकार करके होताहै प्रथम तो जो वचन निन्दा की निषेधता विषे महापुरुषोंने कहे हैं उनका बारम्बार विचार करे और ऐसे जाने कि निन्दा करनेवाले के सब शुभ करतूतों का फल उस की ओर जाताहै जिसकी निन्दा करता है और निन्दक मनुष्य सुकृतहीन रह जाताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जैसे सूखे तृणों को अग्नि भस्म कर डालती है तैसेही निन्दाकरके सब सुकृत शीघ्रही नष्ट होजाते हैं १ और दूसरा प्रकार यह है कि अपने अवगुणों का विचारकरे और ऐसे जाने कि जिस प्रकार मैं अवगुणों के वशीभूत हूं तैसेही और मनुष्य भी अवगुणों से रहित नहीं होसक्ते क्योंकि महाराज की माया अतिप्रबल है बहुरि जब अपने विषे कोई अवगुण न देखे तब ऐसे जाने कि अपने अवगुणों का न देखनाही बड़ा अवगुण है और जो यह पुरुष अवगुण से रहित और गुणवन्तही होवे तो भगवत् का उपकार जानकर धन्यवाद करे और निन्दा से रहित होवे बहुरि ऐसे जाने कि जब मैं किसी की निन्दा करूंगा तब यह भी भगवतकी निन्दा होती है काहेसे कि सब किसी का उत्पन्न करनेवाला भगवत है सो जैसे कारीगरी की निन्दा करने से कारीगर की निन्दा होती है तैसेही मनुष्यों की निन्दा करके भगवतहीकी निन्दा होनी है २ सो यह दोनों प्रकार निन्दा के दूर करने के समस्त उपाय हैं बहुरि दूसरे निन्दा के दूरकरने के भिन्न २ उपाय ये हैं कि प्रथम जिज्ञासु अपने हृदयविषे विचारकरे कि मैं निन्दा किसकारण करताहूं सो निन्दा के आठ कारण हैं और सबके भिन्न २ उपाय हैं प्रथम कारण यह है कि जब यह पुरुष किसी पर कोप करता है तब उसकी निन्दा किया चाहता है सो जब ऐसा होवे तब जिज्ञासु इस प्रकार विचारकरे कि बिराने क्रोध के निमित्त आप को नरकगामी करना बड़ी मूर्खता है और जब भली प्रकार देखिये तो उसके निमित्त अपने ऊपर क्रोधकरना होताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जब यह पुरुष भगवत् के निमित्त अपने क्रोध को क्षमा करलेता है तब उसके ऊपर महाराज दयालु होते हैं १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि जब किसीको निन्दा करता देखता है

तब उसकी प्रसन्नताके निमित्त यह भी निन्दा करने लगता है तब इसका उपाय यहहै कि ऐसा जाने कि मैं लोगों की प्रसन्नता के निमित्त भगवत् को अप्रसन्न करताहूं सो यह भी मूढ़ता है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि निन्दक पुरुषोंको देख कर क्रोधवान् होवे और उनकी संगतिका त्यागकरे २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब इस पुरुषका कोई छिद्र प्रकट होता है तब अपने छिद्र का दोष औरों पर रखता है और आपको बचाया चाहता है सो यह भी अयोग्य है ताते ऐसा जानना प्रमाण है कि भगवत् का क्रोध मेरी चतुराई करके नष्ट न होवेगा और जिस अपमान से मैं डरता हूं तिस अपमान से भगवत् का क्रोध महातीक्ष्ण है और अपने दोष का दोष औरों पर देनाही भगवत के क्रोध का बीज है पर जब अपने अवगुण छिपाने के निमित्त औरों के अवगुण वर्णनकरे तब यह भी मूर्खता है जैसे कोई कहै कि अमुक पुरुष भी अशुद्ध जीविका करता है और अमुक राज धान्य लेता है ताते मैं भी इसको अङ्गीकार करताहूं सो ऐसा जाननेवाला पुरुष महामूर्ख है क्योंकि जिस मनुष्य का कर्म मलिन होता है तिसको देखकर आप भी मलिनता विषे विचरना अयोग्य है जैसे कोई अग्नि विषे जायकर जले तब उसके पीछे जलना तो इसको प्रमाण नहीं तैसेही पापी को देखकर पाप करना अयोग्य है ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि अपनी स्तुतिके निमित्त औरों की निन्दा करता है जैसे कोई कहै कि अमुक पुरुष वचन को नहीं समझता और अमुक पुरुष पाखण्ड का त्याग नहीं करता सो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं बुद्धिमान्हूं और पाखण्डसे रहितहूं सो यह भी अयोग्यहै ताते ऐसा जानना चाहिये कि बुद्धिमान् पुरुष तो इस मेरे कपटको शीघ्रही जान लेवेगा और मेरी निष्कामता पर प्रतीति न करेगा और जो आपही मूर्ख है तिसकी प्रीति प्रतीति करके मुझ को क्या लाभ होवेगा ताते यह भी बुद्धिकी हीनताई है कि भगवत् के निकट आपको लज्जायमान करना और पराधीन जीवों के निकट अपना मान बढ़ावना ४ बहुरि पांचवां कारण यह है कि ईर्षा करके भी निन्दा होती है अर्थात् जब किसी पुरुष का धन और मान अधिक होताहै तब ईर्षा करनेवाला पुरुष उसकी बड़ाई को देख नहीं सक्ता ताते उसके अवगुण को ढूंढ़ने लगताहै और वैरभाव विषे दृढ़ होता है पर ऐसे नहीं जानता कि मैं अपने साथही वैरभाव करता क्योंकि इस लोक विषे ईर्षा की अग्नि विषे जलता रहता है और परलोक विषेभी

निन्दा आदिक पापोंकरके दुःखी होवेगा ताते ऐसा पुरुष दोनों लोकके सुखों से अप्राप्त रहता है पर इतना भी नहीं समझता कि भगवत्की आज्ञाकरके जिस को धन और मान प्राप्तहुआहै सो मेरी ईर्षा करके उसकी हानि क्योंकर होवेगी ५ बहुरि छठवां कारण यह है कि हांसी के स्वभाव करके भी निन्दा होजाती है और हाँसी करनेवाला पुरुष ऐसा नहीं जानता कि जितना में किसी को हास्य करके लज्जावान् करता हूं तितना मैं भी भगवत् के निकट लज्जित होऊंगा और जब ऐसा जाने कि निन्दा और हास्य करके परलोक विषे मेरी ऐसी गति होवेगी तब कदाचित् ऐसे कर्म को अङ्गीकार न करे ६ बहुरि सातवां कारण यह है कि जब किसी से कुछ अवगुण होवे तब इसका हृदय सात्त्विकी स्वभाव करके सहजही शोकवान् होजाता है और उसकी वार्ता करतेहुये उसका नाम किसी के आगे मुख से निकल जावे तब यह भी निन्दा होती है ताते ऐसा जानना प्रमाण है कि यद्यपि दया करके जो हृदय कोमल हुआ है तिससे उस के विषे अवगुण को नहीं चाहता तो भी प्रसिद्ध नाम लेने करके इस दया सम्बन्धी करतूति के फल से अप्राप्त रहता है ७ बहुरि आठवां कारण यह है कि यद्यपि धर्महीके निमित्त किसी का अवगुण नहीं देखसके पर जब आपको शुद्ध जानकर उसके छिद्र को देखकर आश्चर्यवान् होवे और ऐसा जाने कि अमुक पुरुषने यह अवज्ञा क्योंकर करी ताते बिसमाद होकर उसकी आश्चर्यता विषे उसका नाम लोगों के सामने कहे तब यह भी अयोग्य है और निन्दा के निकट जा पहुँचता है ताते चाहिये कि किसी का अवगुण देखकर आश्चर्यवान् न होवे और नम्रता विषे स्थित रहे ८ (अथ प्रकट करना इसका कि निन्दा भी कितने कारणों करके प्रमाण है) ताते जान तू कि निन्दा भी झूठ की नाईं महापाप है इसी कारण से आवश्यक कार्य विना निन्दा करना प्रमाण नहीं होता ताते में उन कार्यों को कुछ वर्णन करता हूं जिन करके निन्दा भी प्रमाण होती है सो प्रथम कार्य यह है कि जब किसी ने इसको दुखाया होवे और अथवा कुछ धन हरलिया होवे और इसको जिसके आगे पुकार करनी होवे तब यह भी निन्दा किये विना सिद्ध नहीं होता पर तौभी जिस पुरुष से सहायता कुछ न होसके तब दुःख देनेवाले की वार्ता तिससों कहनी अयोग्य है १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि जब किसी स्थान विषे कुछ पाप होता देखे

और ऐसा जाने कि जो इस पाप को प्रसिद्ध न करिये तो अधिकही बढ़ता जावेगा तब किसी ऐसे ऐश्वर्यवान् से कहना प्रमाण है कि जिसके भय करके वह पाप नष्ट होजावे २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब कोई धर्मज्ञ किसी नास्तिकवादी अथवा किसी अपकर्मी की संगति करता होवे तो उसके अवगुण को प्रसिद्ध करना योग्य है क्योंकि उसकी संगति करके धर्मज्ञ का अकार्य होता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि तीन प्रकार के मनुष्यों की निन्दा करनी पाप नहीं एक अन्यायी राजा दूसरा सन्तजनों की मर्याद से विपरीत नास्तिकवादी और तीसरा प्रसिद्ध दुराचारी क्योंकि इनकी क्रिया कुछ गुप्त नहीं होती ताते इनकी वार्ता प्रसिद्ध करनी कुछ निन्दा नहीं ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि जब किसी का नाम ऐसाही प्रसिद्ध लोग लेते होवें कि सूरदास अथवा मन्द दृष्टि अथवा बधिर अथवा कुष्ठी सो ऐसे पुरुष का इसी प्रकार नाम लेना निन्दा और पाप नहीं और वह भी अपना नाम सुनकर अप्रसन्न नहीं होता पर जब उसको भी किसी और नाम करके बुलाइये तो भला है ४ बहुरि पांचवां कारण यह है कि कितने लोग प्रसिद्ध ही निर्लज्ज हैं जैसे हिजड़े और नर्तक और मद्यपानी जो लाज से रहित हैं सो यह भी अपनी करणी की वार्ता सुनकर बुरा नहीं मानते ताते जब किसी संयोग करके इनकी वार्ता चले तब इसका नाम भी निन्दा नहीं और निन्दा का अर्थ यह है कि जिस वचन को सुनकर किसी का हृदय तपायमान होवे ५ ताते प्रीतिमान् को चाहिये कि जब इससे कुछ ऐसी अवज्ञा होवे तब शीघ्रही उसे क्षमा करावे और अपने पापों का पुरश्चरण करलेवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि इसी लोक में अपने पाप क्षमा करावो क्योंकि परलोक विषे जब इस जीव को अधिक दण्ड होवेगा तब इसके पास पुरश्चरण की कुछ सामग्री न होवेगी और एक वचन विषे योंभी आया है कि जिस पुरुष की इसने निन्दा की होवे तब उसके निमित्त भगवत् के आगे प्रार्थना करके उसको क्षमाकरावे पर केते पुरुषों ने यही दृढ़ किया है कि जिसकी निन्दा करीहोवे उससे क्षमा कराने की कुछ अपेक्षा नहीं भगवतही के आगे प्रार्थना करनी विशेष है सो यह वार्ता अयोग्य है क्योंकि भगवत् के आगे प्रार्थना करनी तबही कही है जब वह मनुष्य जीवता न होवे अथवा दूर होवे पर जब उस का मिलाप होसके तब नम्रता और दीनता सहित उसही से क्षमाकरावे तो भला

हैं और जब वह क्षमा न करे तब उसही को पाप होताहै १२ बहुरि तेरहवां विघ्न यह है कि किसी के वचनका छिद्र ढूंढ़ना और चुगली करनी सो यहभी बड़ा पाप है इसीपर महापुरुषने कहा है कि चुगली करनेवाला पुरुष कदाचित् सुखी नहीं होता और योंभी कहाहै कि चुगली करनेवाला पुरुष सर्वमनुष्यों से नीच है इसीपर एक वार्ता है कि एक समय एक देशमें दुर्भिक्ष हुआथा तब महात्मा मूसा और उस देश के लोग मिलकर भगवत् से प्रार्थना करनेलगे तब महात्मा मूसा को आकाशवाणी हुई कि तुम्हारे देश विषे एक चुगल है तिसके पाप करके मेघ नहीं बर्षता तब महात्मा मूसा ने पूछा कि वह चुगल कौन है ? तब आकाशवाणी हुई कि हे मूसा ! मैं तो चुगल को अपना शत्रु जानता हूं ताते मैं ही उसकी चुगली क्योंकर करूं कि अमुक चुगल है और इसका उपाय यह है कि तुम सब लोगोंको चुगली से विवर्जितकरो तब शीघ्रही वर्षा होवेगी बहुरि उन्होंने ऐसेही किया तब बड़ा मेघ बर्षा और दुर्भिक्ष दूरहुआ एक और भी वार्ता है कि एक प्रीति-मान् दो सहस्र कोस चलकर एक बुद्धिमान् के निकट गया और वहां जाकर यह वार्ता पूछी कि आकाश से विशाल क्या है १ और धरती से भारी क्याहै २ और पाथर से कठोर क्या है ३ और अग्निसे अधिक तीक्ष्ण क्या है ४ और बर्फ से शीतल क्या है ५ और समुद्र से उदार क्या है ६ और जिस बालक के माता पिता मुये होवें उससे अधिक निर्मान और दुःखी कौन है ७ तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि सत्य वचन आकाश से भी विशाल है १ और निर्दोष मनुष्य को दोष लगाना यह पाप धरती से भी भारी है २ और मनमुखों का हृदय पाथरसे भी कठोर है ३ और ईर्षा अग्निसे भी तीक्ष्णहै ४ बहुरि भाव और सहनशीलता बर्फ से भी शीतल है ५ और संतोषवान् समुद्रसे भी अतिउदार है ६ और चुगली करनेवाला मनुष्य माता पिताहीन बालक से भी अधिक निर्मान होवेगा ७ पर चुगली का अर्थ यह है कि वचन अथवा कर्म अथवा सैन करके किसी के छिद्र को किसी और के आगे प्रकट करना और उसका हृदय दुखावना सो यह महा-पाप है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसी का परदा उघारे नहीं अथवा जब कोई वैसाही अवश्य कार्य होवे तब प्रकट करना भी प्रमाण होता है ताते जब कोई आयकर तुमसे ऐसे कहे कि अमुक पुरुष तेरा बुरा चेतता है अथवा दुर्व-चन कहताहै तब तुमको इस प्रकार समझना चाहिये कि प्रथम तो चुगल और

दुराचारी झूंठे होते हैं ताते उस पर प्रतीति करनी अयोग्य है १ और दूसरा प्रकार यह कि जब अधिकार देखिये तब उसको चुगली से विवर्जित करिये २ और तीसरा यह कि चुगली करनेवाले पुरुष के साथ मित्रता न करिये ३ और चौथा प्रकार यह कि जब किसी के अवगुण की वार्ता सुनिये तब देखे विना मलीन अनुमान करना अतिनिन्द्य है ४ बहुरि पांचवां प्रकार यह है कि किसी का छिद्र सुनकर उसकी ढूंढ़ भी न करे कि यह वार्ता सत्य है अथवा झूंठ है ५ और छठवां प्रकार यह है कि चुगली करनेवाले पुरुष की वार्ता भी किसीसे न कहे कि यह चुगली खानेवालाहै ताते उसके छिद्र को भी गम्भीरता करके छिपाय लेवे ६ तात्पर्य यह कि यह षट् युक्तियां सब किसी को चाहिये हैं इसीपर एक वार्ता है कि एक बुद्धिमान्से किसीने आकर कहा कि अमुक पुरुष तुम्हारी निन्दा करताहै तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि यद्यपि तू हमारे दर्शनको आया है तोभी तीन अवगुण तैंने अबहीं किये हैं सो एक तो मुझको उसके ऊपर क्रोधवान् किया दूसरे मेरे चित्त को विक्षेपता दी तीसरे तू आप भी चुगली करनेवाला हुआ इसी पर हसनबसरी सन्तने भी कहाहै कि जब कोई मनुष्य आयकर तुझ को किसी की चुगली सुनावे तब निस्संदेह ऐसा जान कि तेरी वार्ता भी औरों को जाय सुनावेगा ताते उसको अपना शत्रु और निन्दक जानकर उसकी संगति का त्यागकर प्रयोजन यह कि चुगली करनेवाले से केते जीवों का घात होता है इसीपर एक वार्ता है कि एक पुरुष ने एक दास मोल लियाथा तब दास के बेचनेवाले ने कहदिया कि इस विषे और अवगुण कोई नहीं पर कुछ एक चुगली और वाक्यछल करता है तब दास लेनेवालेने कहा कि इतने अवगुण का संशय क्या है ? बहुरि जब वह दास उसके गृह विषे रहनेलगा तब उसकी स्त्री से कहा कि तुम्हारा पति और विवाह किया चाहता है और तुम्हारे साथ विपरीत चित्त हुआ है ताते इसका उपाय यह है कि जब तुम्हारा पति शयन करे तब एक बाल उसके कण्ठ का मुझको काटकर लादेना तब मैं मन्त्र पढ़ दूंगा जिस करके सर्वथा तेरेही साथ उसकी प्रीति अधिक होवेगी बहुरि उस दासने अपने स्वामीसे कहा कि तुम्हारी स्त्री की प्रीति किसी और पुरुषके साथ दृढ़ हुई है ताते तुमको मारना चाहती है पर जब तुम रात्रिके समय शयनकरो तब सचेत रहना बहुरि जब रात्रि हुई तब वह गृह विषे आयकर शयन कररहा

और अन्तर से जागता रहा तब वह स्त्री उस्तुरा लेकर अपने पति के कण्ठ का बाल काटनेलगी और उसके पति ने ऐसा जाना कि यह मुझ को मारती है ताते क्रोधवान् होकर स्त्री को मारने लगा बहुरि जब स्त्री के सम्बन्धियों ने सुना तब वे आकर उस पुरुष को मारनेलगे बहुरि स्त्री और पुरुष के सम्बन्धियों विषे बड़ा युद्ध हुआ और २ भी केते मनुष्यों का घात हुआ १३ बहुरि चौदहवां विघ्न यह है कि दो शत्रुओं विषे वाक्यछल करना और अपने २ ठौर दोनों को मित्र होय दिखावना सो यह चुगली से भी बड़ा पाप है इसी पर महापुरुषने भी कहाहै कि इस लोक विषे जिसका स्वभाव वाक्यछल का होताहै उसकी परलोक विषे दो जिह्वा होवेंगी ताते महादुःख को भोगेगा इसी कारण से बुद्धिमान् को चाहिये कि जब दो शत्रुओं का मिलापकरे तब दोनों की वार्ता सुनकर मौन कररहे अथवा यथार्थ वचन कहदेवे तो भला है पर एक की वार्ता दूसरे से कहना अयोग्य है और कपट करके एक दूसरे को मित्र होय दिखावना भी बुरा है १४ बहुरि पन्द्रहवां विघ्न स्तुति है काहेसे कि एक स्तुति के कहने से षट् पाप और उपजते हैं सो दो पाप श्रोता को लगते हैं और चार पाप वक्ता को होते हैं सो वक्ता को प्रथम पाप यह होता कि जब अधिकार से अधिक किसी की स्तुति करताहै तब निस्संदेह झूंठ होता है १ और दूसरा पाप यह कि जब प्रीति बिना किसी की स्तुति करताहै तब कपट होता है २ बहुरि तीसरा पाप यह कि जिसके गुण का ज्ञाता न होवे उसकी स्तुति करनी भी अयोग्यहै जैसे कोई कहै कि अमुक पुरुष वैरागी है अथवा शुभकर्मी है पर जब उसके गुणों को पहिंचानता ही न होवे तब ऐसे कहना भी मिथ्यावाद होता है ३ बहुरि चौथा पाप यह कि जब किसी तामसी मनुष्य की स्तुति करे और वह अपनी स्तुति सुन-प्रसन्न होवे और प्रसन्न होकर तमोगुण विषे दृढ़ होजावे तब यह भी प्रमाण नहीं इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब कोई तामसी पुरुष की स्तुति करता है तब उसके ऊपर भगवत् कोपवान् होताहै ४ बहुरि अपनी स्तुति सुननेवाले को दो पाप प्रसिद्ध होते हैं सो प्रथम यह है कि जब यह पुरुष अपनी स्तुति श्रवण करता है तब स्वाभाविकही अभिमानी होजाता है १ और दूसरा पाप यह है कि जब अपने गुणों और विद्या की बड़ाई सुनता है तब आगे शुभ कर-तूति से थकित होजाताहै और ऐसा जानता है कि मैं परमपद को प्राप्त हुआहूं

इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि तीक्ष्ण शस्त्रकर प्रहार करना भला है पर सम्मुख होकर किसी की स्तुति करनी भली नहीं क्योंकि जब यह पुरुष अपनी महिमा सुनता है तब इसका मन इसको अपने स्थान से गिराय देता है पर जो बुद्धिमान् है सो आपको पहिचाननेवाला होता है ताते जब वह अपनी स्तुति सुनता है तब अधिक अधीन चित्त होजाता है २ तात्पर्य यह कि जब कहने और सुननेवाला इन षट् पापों से रहित होवे तब स्तुति करनी भी प्रमाण होती है और अपने मुखसे अपनी स्तुति करनी तो महानीचता है और धर्मशास्त्र विषे भी निन्द्य कही है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि जब कोई इसकी स्तुति करे तब अपनी महिमा सुनकर अभिमानी न होवे और ऐसे जाने कि जब लग मैं परलोक के दुःख से मुक्त न होऊं तबलग शूकर और श्वान भी मुझ से भले हैं ताते चाहिये कि अपनी स्तुति सुनकर लज्जावान् होवे और अपनी नीचता को वर्णन करे इसीपर एक वार्ता है कि कोई पुरुष एक सन्त की स्तुति करनेलगा तब वह सन्त अधीनचित्त होकर भगवत् के आगे प्रार्थना करके कहने लगा कि हे महाराज ! यह पुरुष तो मुझको नहीं जानता और तू भली प्रकार सब कुछ जानता है ताते तूही मुझको क्षमाकर बहुरि एक और सन्त की किसी ने स्तुति करी थी तब वह सन्त कहने लगा कि हे महाराज ! यह जो मेरी बड़ाई करता है सो इसका दण्ड मुझको न देना और यह जो मेरे अवगुणों को नहीं जानता सो अवगुण भी तूही दूर कर और जैसा यह मुझको जानता है सो अपनी दया करके इससे विशेष मुझको कर बहुरि एक पुरुष ऐसा था कि उसके हृदय विषे प्रीति प्रतीति कुछ न थी पर सम्मुख आकर एक सन्तजन की कपट सहित स्तुति करने लगा तब उस सन्त ने कहा कि जैसे तू मुख से कहता है तिस से हम अतिनीच हैं और जैसा तू हृदय विषे जानता है तिससे हम निस्संदेह अधिक हैं ॥ ५ ॥

चौथा सर्ग ॥

क्रोध और ईर्षा और शांति के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह क्रोध भी महामलीन स्वभाव है और क्रोध का बीज अग्नि है पर यह क्रोधरूपी ऐसी अग्नि है कि केवल हृदय को जलानेवाली है और क्रोध करके ऐसी विक्षिप्तता उपजती है कि चित्त कभी शान्ति को प्राप्त नहीं

होता और सर्व करतूतों का फल शान्ति है इसी पर एक प्रीतिमान् ने महापुरुष से पूछाथा कि मैं भगवत्के क्रोधसे क्योंकर मुक्त होऊं तब उन्होंने कहा कि जब तू किसी पर क्रोधवान् न होवे तब तू महाराज के क्रोधसे मुक्त होवेगा बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि मुझको कोई ऐसी करतूति बताओ जिस विषे क्रिया तो थोड़ी होवे और फल तिसका विशेष होवे तब उन्होंने कहा कि क्रोध से रहित होना ही अधिक फलदायक है और क्रिया इसकी थोड़ी है और महापुरुष ने योंभी कहा है कि जैसे शहद को खटाई गँवाय देती है तैसेही क्रोध करके धर्म नष्ट होजाता है तात्पर्य यह कि यद्यपि अत्यन्त निष्क्रोध होना कठिनहै तौभी जिज्ञासु को यह तो अवश्यही चाहिये कि यत्न करके क्रोधका सहारनाकरे और जिन पुरुषों ने क्रोध को धैर्य करके जीताहै तिनकी भगवत् ने भी प्रशंसा करी है और योंभी कहा है कि विचारकी मर्याद से रहित होकर क्रोध करना भी नरक का द्वारा है ताते अपने क्रोध को भक्षण करनाही सर्व आहारों से विशेष है बहुरि कई एक सन्तजनों ने मिलकर यही सिद्धान्त दृढ़ कियाहै कि क्रोधके समय धैर्यवान् होना और लोभके अवसरविषे संतोष करना सर्व करतूतोंसे विशेष है इसीपर एक वार्ताहै कि एक बड़े ऐश्वर्यवान् सन्त थे सो कोई दुष्ट आकर उनको दुर्वचन कहनेलगा पर वह अपना शीश नीचे करके मौन कररहे बहुरि उस दुष्टसे कहनेलगे कि तू हमको क्रोधवान् किया चाहता है और मनके छलविषे डारना चाहता है सो मैं तो ऐसा न करूंगा पर ऐसा जान तू कि भगवतने यह क्रोध भी इस निमित्त रचा है कि मनुष्य का शस्त्र होवेगा और इस शस्त्र करके शत्रुओं का नाश करेगा और शरीर की रक्षा विषे सावधान होवेगा जैसे भूख और प्यास इस निमित्त रची है कि जल और आहार को खैंचकर शरीर की पुष्टता होवे ताते प्रसिद्धहुआ कि चाह और क्रोध दोनों इस मनुष्य के शस्त्र हैं पर जब मर्यादसे अधिक बढ़तेहैं तब यह दोनोंही दुःखदायक होतेहैं ताते जब क्रोधरूपी अग्नि हृदयविषे प्रबल होतीहै तब इसका धुवां सर्व शरीरविषे पसर जाता

बहुरि बुद्धि और विचार को अन्धकार करलेताहै ताते भलाई और बुराई को नहीं पहिचानता इसीकारणसे कहाहै कि क्रोध बुद्धिका शत्रुहै और महामलीन स्वभाव यहीहै पर जब यह क्रोध मूलहीसे नष्ट होजावे तब कुसंग और अपकर्मों की ग्लानि दूर होजाती है ताते चाहिये कि यह क्रोध मर्यादही पर रहे अधिक

न होवे और अत्यन्त शून्य भी न होजावे और सर्वदा धर्म की मर्यादबिषे बर्ते तो भलाहै तात्पर्य यह कि जैसे मैंने पीछे वर्णन कियाहै कि अत्यन्त निष्क्रोध होना भी कठिनहै पर तौभी केते अवसरों बिषे ऐसा लीन होताहै कि जानाही नहीं जाता सो इसका बखान यहहै कि क्रोध का कारण मनोरथहै सो जब इसकी प्रियतम वस्तु को कोई लिया चाहता है तब शीघ्रही क्रोध उपज आता है और जिस पदार्थ बिषे इसका मनोरथ कुछ नहीं होता तिसके दूरहोने बिषे क्रोध भी नहीं उपजता बहुरि जबलग यह जीव देहाभिमानी है तबलग आहार और वस्त्र और स्थान के प्रयोजन से मुक्त नहीं होसकता इसीकारण से जब कोई इन पदार्थोंको हरलेना चाहताहै तब निस्सन्देह इसको क्रोध उपजताहै ताते प्रसिद्ध हुआ कि प्रयोजनही बन्धनरूप है और प्रयोजन से रहित होनाही मुक्तरूप है इसीकारण से जब जिज्ञासु पुरुषार्थ करके पदार्थोंकी तृष्णा को घटावे और पुनः मानादिक की अभिलाष से रहित होवे तब क्रोध भी स्वाभाविकही घटजाता है जैसे कोई मानी पुरुष का सन्मान नहीं करता तब उसको अवश्यही क्रोध उपजता है और जब कोई निर्मान पुरुषके आगे होकर चले अथवा अधिक आदर न करे तौभी वह निष्क्रोधही रहता है सो यद्यपि लोगों की अवस्था बिषे भेद बहुत होताहै तौभी धन और मान की अधिकता बिषे क्रोध भी अधिक होताहै तात्पर्य यह कि पदार्थके वैराग्य और यत्न और अभ्यास करके क्रोधकी क्षीणता होजातीहै पर मूलही से नष्ट नहीं होता और जब क्रोध विचारकी मर्यादसे अधिक न होवे तब उसका दोषभी कुछ नहीं इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि मैं भी और मनुष्यों की नाईं क्रोध करताहूं अथवा कुछ ताड़ना देताहूं तो भी मेरे हृदय से दया दूर नहीं होती और वह क्रोध भी उसकी भलाई के निमित्त करताहूं और एक और सन्त ने भी कहाहै कि जब मैं क्रोधवान् होताहूं तब भी मेरी जिह्वा से यथार्थ वचन निकलताहै पर ऐसे जान तू कि कितने पुरुषों को ऐसी अवस्था भी होतीहै कि सर्व करतूतों का कर्ता भगवतही को देखते हैं तब इसकरके भी क्रोध क्षीण होजाताहै जैसे कोई इस पुरुषके पाथर मारे तब यह पाथरपर रञ्चकमात्र भी क्रोधवान् नहीं होता और उस दुःखका कारण पाथर को नहीं जानता अथवा जब राजा किसी पुरुषके मारनेके निमित्त चिट्ठी लिख देवे तब उस पुरुषको कलम पर क्रोध कुछ नहीं उपजता क्योंकि कलम को राजा के हाथमें पराधीन देख

है तैसेही जिन पुरुषोंने भगवत् के सामर्थ्यको निश्चय जानाहै तब वे सर्वजीवों को पराधीन देखते हैं और सबका प्रेरक भगवत् को जानते हैं ताते किसीपर क्रोध नहीं करते इस करके कि यद्यपि कर्म का कारण बल है और बल का कारण श्रद्धा है पर इस मनुष्य की श्रद्धा इसके अधीन नहीं वह श्रद्धा भगवत् की प्रेरणा करके उपजती है इसी कारण से सन्तजनों ने कहाहै कि यह मनुष्य भी पत्थर और कलम की नाईं पराधीन है और यद्यपि कर्मकरता यह मनुष्यही दृष्टिआता है तो भी आप करके समर्थ कुछ नहीं सो जिन पुरुषों की ऐसी समझ दृढ़ हुई है तब वे किसीपर रोष नहीं करते और क्रोधवान् भी नहीं होते और यद्यपि दुःख करके दुःखी भी होते हैं तो भी उनको क्रोध नहीं उपजता क्योंकि दुःख और है और क्रोध और है जैसे अचानक ही किसीका पशु मरजावे तब शोक करके वह दुःखी तो होताहै पर किसी पर क्रोध नहीं करता पर इस प्रकार सर्व जीवों को पराधीन देखना और सर्वदा ऐसी समझ बिषे स्थितरहना महादुर्लभ है क्योंकि यद्यपि कभी बिजली की नाईं इस अवस्थाका चमत्कार होताहै तो भी स्थूलता की प्रबलता करके बहुरि विक्षेप होजाताहै पर जब ऐसी अवस्था को प्राप्त न होवे तो भी कितने जिज्ञासुओं का अभ्यास परमार्थ बिषे ऐसा दृढ़ होताहै कि उनको कदाचित् क्रोध नहीं फुरता जैसे एक सन्त को किसी ने दुर्वचन कहा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा कि जो मैं परलोक के दुःख से निवृत्तहुआ तब तो तेरे कहने का भय कुछ नहीं और जब मैं परलोक बिषे दुःख को प्राप्तहुआ तो तेरे कहनेसे भी अधिक नीच हूं तब तेरे कहने का क्या संशय है? बहुरि एक और सन्त को किसी ने दुर्वचन कहा था तब उसने कहा कि मेरे परमसुख बिषे कितनी ही कठिन घांटियां हैं और मैं उनसे उल्लङ्घित हुआ चाहता हूं सो जब मैं उन घांटियों से उल्लङ्घित हुआ तो तेरे कहने का मुझको भय कुछ नहीं और जब मैं उनसे उल्लङ्घित न हुआ तब जैसा तू मुझको कहता है सो इससे भी मैं अधिक नीचहूं बहुरि एक और सन्त को कोई दुर्वचन कहता भया तब उन्होंने कहा कि हे भाई! जितने हमारे अवगुण हैं सो तेरे जानने से अतिगुह्य हैं और असंख्य हैं तात्पर्य यह कि जिज्ञासु वैराग्य और अभ्यास बिषे ऐसे लीन हुये हैं कि उनको क्रोध की चिन्तवनी ही कुछ नहीं रही जैसे एक प्रीतिमान् से किसी स्त्री ने कहा था कि तू बड़ा कपटी है तब वह कहने लगा कि तैंने

मुझको भलीप्रकार पहिंचाना है बहुरि एक और प्रीतिमान् को किसीने दुर्वचन कहा था तब वह कहनेलगा कि जो तू सत्य कहता है तो यह अवज्ञा भगवत् हमको क्षमाकरे और जब तू झूंठ कहताहै तब मुझको भगवत बख्श लेवे ताते प्रसिद्ध हुआ कि इतने उपाय करके क्रोध जीता जाता है और जब किसी पुरुष को ऐसी दृढ़ता होवे कि क्रोध से रहित होने को भगवत् प्रियतम रखता है तब वह भी भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त क्रोध से रहित होताहै जैसे किसी मनुष्य का कोई प्रियतम होवे और उस प्रियतमका पिता अथवा पुत्र उसको दण्ड करे और प्रेमी वह मनुष्य ऐसा जाने कि मेरा प्रियतमही मुझको ताड़ना कराता है तब उसको प्रीति की अधिकता करके ताड़ना का दुःखही कुछ नहीं भासता और रश्चकमात्र भी क्रोधवान् नहीं होता ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसी ऐसेही कार्य विषे लीन होकर क्रोध से रहित होवे और जब ऐसा पुरुषार्थ न हो सके तौभी चाहिये कि क्रोध की प्रबलता को क्षीणकरे अर्थ यह कि यद्यपि क्रोध को मूलही से नष्ट न करसके तौ भी यत्न करके बुद्धि और सन्तजनों की मर्याद से उल्लङ्घित न होने देवे क्योंकि यह क्रोधही निस्सन्देह बहुत जीवों को नरक-गामी करताहै और अनेक विघ्नों का कारण है ताते इसको जीतने का उपाय करना अवश्यही प्रमाण है पर इसका उपाय भी दो प्रकार कहा है सो एक तो ऐसा उत्तम है कि क्रोध को नखशिख पर्यन्त दूर करके हृदय को शुद्ध करदेता है और दूसरा उपाय मध्यम है सो यत्न करके क्रोध को निर्बल करताहै पर उत्तम उपाय यह है कि प्रथम क्रोध के कारण को विचारे और उसको मूलहीसे उखाड़ डाले सो क्रोधके कारण पांच हैं प्रथम कारण अभिमान है कि अभिमानीपुरुष किञ्चितही वचन और निरादर करके क्रोधवान् होजाता है ताते इसका उपाय दीनता है क्योंकि सबही जीव भगवत् के उत्पन्न किये हुये हैं और एक समान हैं और जो किसी को विशेष कहाजाता है तो शुभगुणों करके विशेषता होती है सो अभिमान करना महामलिन स्वभाव है और नीचता का कारण है १ बहुरि दूसरा कारण क्रोध का यह है कि हास्यरस से भी क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यह है कि जिज्ञासु सर्वदा परलोक के कार्य विषे स्थित होवे और शुभगुणों के पाने का विचार राखे और वाद विवाद हास्य से विरक्त रहे और आपको ऐसे समझावे कि जब कोई किसी को इसलोक विषे हँसता है तब परलोक विषे उस

को भी लज्जित करते हैं २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब कोई इसकी निन्दा करता है अथवा इस पर कुछ दोष रखता है तौभी दोनों ओर से क्रोध उपजता है सो इसका उपाय यह है कि आपको निर्दोष न जाने और इसप्रकार समझे कि मैं तो अवगुणों करके भरपूर हूं ताते किसी पर कोधवान् क्यों होता हूं और यद्यपि मेरे बिषे अवगुण कोई नहीं तब किसीकी निन्दा का मुझ को संशय क्या है ३ बहुरि चौथा कारण क्रोध का तृष्णा और ईर्षा है क्योंकि कोधी मनुष्य से जब कोई एक दाम हरलेता है अथवा मांगता है तौ भी क्रोधवान् होताहै और जब कोई लोभी पुरुष को एक कौड़ी न देवे तौभी दुःखको प्राप्त होता है सो यह सबही मलिन स्वभाव हैं और इसका उपाय यह है कि तृष्णा के विघ्न को पहिचाने कि तृष्णावान् पुरुष इस लोक बिषे भी दुःखी रहता है और परलोक बिषे भी बड़े दुःखों को भोगता है ताते चाहिये कि तृष्णा को हृदय से दूर करे और ऐसे मलिनस्वभावों के साथ विरुद्ध करके आत्मधर्म बिषे सावधान होवे ४ बहुरि पांचवां कारण यह है कि क्रोधवानों की संगति से भी क्रोध उपजता है और वह मनुष्य ऐसे मूर्ख होते हैं कि क्रोध की अधिकता को अपना पुरुषार्थ समझते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हमने ताड़ना करके असुक पुरुष को जीतलिया और अमुक सन्त ने एकही शाप करके अमुक मनुष्य को भस्म करडाला उसका धन और गृह सबही नष्ट करदिया बहुरि ऐसे कहते हैं कि बलवान् पुरुषों का लक्षण यही है कि जो उनके सम्मुख बोलता है तिसका नाश होताहै पर ऐसे कहनेवाले मनुष्य महामूर्ख हैं कि जिस क्रोध को सन्तजनों ने कूकुरों का स्वभाव कहाहै सो तिसको पुरुषार्थ और बड़ाई जानते हैं और सहनशीलता जो महापुरुषों का लक्षण है तिसको बलहीनता कहते हैं सो यह मलिन मन की प्रकृति है कि बुराई को छल करके सुन्दरकर दिखाताहै और शुभ गुणों को कुरूप कर दिखाताहै पर जो बुद्धिमान् पुरुष है सो निस्संदेह इस प्रकार समझाता है कि जब क्रोधही का नाम पुरुषार्थ होता तब स्त्रियां और रोगी और वृद्ध पुरुषों को तो अधिक क्रोध होताहै ताते जगत् बिषे इन्हीं की विशेषता होती तात्पर्य यह कि अपने क्रोध को जीतनाही पुरुषार्थ है और महापुरुषों का लक्षण भी यही है बहुरि क्रोधवान् पुरुष जङ्गली मनुष्योंकी नाई हैं अर्थात् यद्यपि देखने में मनुष्य भासते हैं तौभी सिंह और व्याघ्रों

का स्वरूप हैं ताते तू विचार करके देख कि महापुरुषों के लक्षण का नाम पुरुषार्थ है कि पशुओं और मूर्खों के स्वभाव का नाम पुरुषार्थ है ५ पर यह जो उपाय मैंने पञ्च कारण निवारणवाला वर्णन किया है सो यह उत्तम उपाय है क्योंकि इस करके क्रोध मूलही से नष्ट होता है और अधम उपाय यह है कि इस करके क्रोधरूपी कुरोग कुछ बलहीन होजाता है पर मूलही से दूर नहीं होता सो यह उपाय भी बूझरूपी मिठाई और हठरूपी कटुता के मिलाप करके औषध जो बनाई जावे तिस करके होता है क्योंकि सबही भले स्वभाव बूझ और करतूति की एकत्रता करके होते हैं पर बूझ यह है कि जितने वचन क्रोध की निन्दा और सहनशीलता की विशेषता बिषे आये हैं सो बारम्बार उनका विचार करे और आपको इस प्रकार समझावे कि जैसे तू प्रबल होकर अनाथ पर क्रोध करता है सो इससे अधिक भगवत् तेरे ऊपर प्रबल है ताते जब तू किसी के ऊपर क्रोध करेगा तब तेरे ऊपर भगवत भी क्रोधवान् होवेगा इसी पर एक वार्ता है कि महापुरुष के टहलुवे ने कुछ अवज्ञा करी थी तब महापुरुष ने उससे कहा कि जो परलोक का भय न होता तो तुझको ताड़ना करता बहुरि इस प्रकार समझे कि मैं इस निमित्त क्रोधवान् होताहूं कि जो भगवत् की इच्छानुसार कार्य हुआ है और मेरी इच्छानुसार नहीं हुआ सो यह तो महाराज के साथ विरुद्ध होता है पर जब ऐसी बूझ करके भी क्रोध का बल क्षीण न होवे तब इसी संसार के प्रयोजन को विचारे और इस प्रकार क्रोध को खण्डन करे कि जब मैं किसी पर क्रोध करूंगा तब वह भी मेरे साथ विरुद्ध किया चाहेगा और अपने शत्रु को अल्प जानना न चाहिये और क्रोध के समय जो मनुष्यों का स्वरूप कूकुर की नाईं होजाता है सो तिस भयानक आकार को स्मरणकरे ताते चाहिये कि ऐसे मलिनस्वभाव को त्यागकर क्षमा और धैर्य जो सन्तजनों के स्वभाव और लक्षण हैं तिनको ग्रहणकरे और जगत् के मान को त्यागकर महाराज ही की प्रसन्नता को चाहे सो इस प्रकार आपको समझावना ही परम बूझ है और क्रोध के जीतने का उपाय है पर करतूति करके इस प्रकार उपाय होताहै कि जब क्रोध की अधिकता देखे तब मुख से ऐसा कहे कि हे भगवन्! इस क्रोधरूप दुष्ट से मेरी रक्षाकर बहुरि जो क्रोध की प्रबलता के समय खड़ा होवे तो बैठजावे और जब आगेही बैठा होवे तब शयन कर रहे अथवा शीतल

जल मे स्नान करलेवे तब स्वाभाविक ही क्रोध का बल क्षीण होजाताहै इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जब इस मनुष्य पर क्रोध प्रबल होवे तब चाहिये कि महाराज को दण्डवत् करे और अपने मस्तक को धरती पर राखे बहुरि इस प्रकार विचार करे कि मैं धरतीही से उत्पन्न हुआहूं ताते मुझ को क्रोध करना प्रमाण नहीं तात्पर्य यह कि जब कोई इसको दुखावे अथवा दुर्वचन कहे तब प्रथम तो क्षमाकरनी विशेष है और जब देखे कि अवश्यही कुछ कहनेही का अवसर है तब थोड़ाही उत्तर देवे और यद्यपि कठोर वचन कहे तौभी झूठ न बोले पर। जिज्ञासु को इस प्रकार प्रमाण नहीं कि दुर्वचन के उत्तर आपभी दुर्वचन कहे और निन्दा करनेवाले की आप भी निन्दा करे सो यह सहनशीलता नही होती इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् को कोई दुष्ट दुर्वचन कहता था और महापुरुष भी पास बैठेहुये थे बहुरि जब वह प्रीतिमान् उस दुष्ट से कुछ बोलनेलगा तब महापुरुष उठ खड़ेहुये बहुरि उस प्रीतिमान् ने पूछा कि हेस्वामीजी। जब वह दुष्ट मुझ को दुर्वचन कहता था तब तो आप बैठे रहे और जब मैं बोलनेलगा तब किस निमित्त उठ चले तब महापुरुष ने कहा कि जबलग तू मौनकर रहा था तब लग तेरे निमित्त देवता उसको उत्तर देतथे और जब तू बोलनेलगा तब क्रोधरूपी असुर आवता भया ताते असुरोंकी संगति का त्यागना प्रमाण है बहुरि महापुरुष ने यों भी कहा है कि मनुष्यों की अवस्था भगवत ने भिन्न २ रची है इसीकारण से केते मनुष्य चिरकाल करके क्रोधवान् होते हैं और चिरकाल करकेही प्रसन्न होते हैं और केते पुरुष शीघ्रही क्रोधवान् होते हैं और शीघ्रही प्रसन्न होजाते हैं सो महाउत्तम जन हैं पर ऐसे जान तू कि जब क्रोध को विचार और धैर्य करके लीन करलेवे तो यह तो महाविशेष है और जब यह पुरुष किसी संयोग अथवा अपनी निर्बलता करके क्रोध न करे और हृदय विषे क्षोभवान् रहे तब इस करके चित्तविषे क्रोध की गांठ पड़जाती है सो यह महानिन्द्य है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जिज्ञासु जन हृदय विषे क्रोध की गांठ नहीं रखते ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह गांठ भी क्रोधकी सन्तान है और इस क्षोभ की गांठके आठ पुत्र और हैं सो सब धर्म के नाशक हैं सो प्रथम ईर्षा है जो अपने शत्रु का सुख देखकर तपायमान होता है १ और दूसरा वैरभाव है कि जब अपने शत्रु को कोई दुःख देवे तब प्रसन्न होकर उस दुःख का बखान

करता है २ बहुरि तीसरा यह है कि क्रोध करके उसके साथ राम राम भी नहीं करता ३ और चौथा यह है कि अपने शत्रु को ग्लानि सहित देखता है ४ और पांचवां उसको दुर्वचन बोलता है ५ और छठवां उसके छिद्र को लोगों में प्रसिद्ध करता है ६ और सातवां उसका घात चेतता है ७ और आठवां उसके किसी कार्य विषे सहायता नहीं करता और यद्यपि उसका ऋणी होवे तौ भी ढीठता करके विमुख रहता है पर जब कोई ऐसा ही बुद्धिमान् होवे कि स्थूल विकारोंसे आपको बचाय राखे तौभी शत्रुपर उपकार करना तो महाकठिन होता है बहुरि भाव, मिलाप, सहायता और उसकी भलाई का वर्णन नहीं करसक्रा ८ सो यह सबही स्वभाव चित्त को मलिन करनेवाले हैं इसीपर एक वार्त्ता है कि एक मनुष्य महापुरुष की रसोई करनेवाला था सो महापुरुष की स्त्री को दुर्वचन कहताभया बहुरि महापुरुष की स्त्री के पिता उस रसोइयां के खानपान वस्त्रादिक की सुधि लेते थे सो जब उन्होंने सुना कि मेरी पुत्री को इसने दुर्वचन कहा है तब क्रोध संयुक्त महाराज की दुहाई देकर कहनेलगे कि फिर मैं तेरी जीविका की सुधि न लेऊँगा सो जब महापुरुष ने यह वार्त्ता सुनी तब कहनेलगे कि मुझ को भगवत् ने इस प्रकार आज्ञा करी है कि जब कोई तुम्हारी अवज्ञा करे तब तुम क्षमाकरो और दुहाई करके इस प्रकार न कहो कि बहुरि मैं इसके साथ भलाई न करूंगा तात्पर्य यह कि जिसके ऊपर इस पुरुष का चित्त क्षोभवान् होवे तब चाहिये कि प्रथम तो हठ और धैर्यकर क्रोध को निवारे अथवा उसके साथ भाव और भलाई को बढ़ावे सो यह उत्तम पुरुषों की अवस्था है और जब शत्रु के साथ भलाई न करसके तब इतना तो अवश्यही चाहिये कि शत्रुको किसी प्रकार दुखावे नहीं सो यह मध्यम पुरुषों की अवस्था है और बुरे के साथ बुराई करनी यह तो संसारी जीवों का कर्म है और महानीच अवस्था है ताते प्रसिद्ध हुआ कि बुरेके साथ भलाई करनी विशेष है और महाउत्तम करतूति है और जब ऐसा न होसके तब क्षमा करनी विशेष है इसी पर महापुरुष ने भगवत् की दुहाई देकर कहा है कि दान देने करके धनकी क्षीणता कदाचित् नहीं होती और पराई आश करनेवाले पुरुष को अवश्यही निर्धनता प्राप्त होती है और क्षमा करनेवाले पुरुष के ऊपर महाराज भी निस्सन्देह क्षमा करते हैं बहुरि महापुरुष की स्त्री ने भी कहाहै कि मैंने महापुरुष को अपने निमित्त दण्ड करतेहुये

कदाचित् नहीं देखा पर जब केवल धर्मही का प्रयोजन होता था तब ताड़नाभी करते थे बहुरि यों भी कहा है कि मैंने लोक परलोक बिषे उत्तम करतूति यही देखा है कि बैरीके साथ भावकरना और दुःख देनेवाले को सुखदेना और महाराज ने कहा है कि जो मेरे भय करके बलके होतेहुये किसीकी अवज्ञा को क्षमा करते हैं सो सर्वदा मेरे निकटवर्त्ती हैं और मुझको अधिक प्रिय लगते हैं इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सन्तकी सामग्री किसी ने चुरायली थी तब वह सन्त रुदन करनेलगा बहुरि लोगोंने पूछा कि तुम धनके निमित्त रोतेहो तब उसने कहा कि मुझको धनका शोक तो कुछ नहीं पर मैं इस निमित्त रोताहूं कि जब परलोक में उस अनाथ चोर को पकड़कर दण्ड करेंगे तब वह बिचारा क्या उत्तर देवेगा ? ताते मैं दयाकर रोताहूं बहुरि महात्मा दाऊद को आकाशवाणी हुई थी कि जब यह पुरुष अपने शत्रुकी अवज्ञा को क्षमा करताहै और वैरभाव से दूरहोता है तब इसके सर्वविघ्न नष्ट होजाते हैं ताते चाहिये कि जब क्रोध उपजने लगे तब शीतल चित्त होरहे और दुःख देनेवाले पुरुष पर भी उपकार करे तब क्रोधही निर्बल होजाताहै इसीपर महापुरुष ने अपनी स्त्रीसे कहाथा कि जिसको भगवत् ने भाव और दया का लक्षण दिया है सो लोक और परलोक के सुखको भोगता है और जो पुरुष भाग्यहीन है वह लोक और परलोक के सुख से अप्राप्त रहताहै (अथ प्रकट करना ईर्षा के विघ्नों का) ताते जान तू कि क्रोधसे गांठ उत्पन्न होती है और क्रोधही की गांठ से ईर्षा उपजती है सो ईर्षा भी जीव के धर्म को नाश करनेवाली है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जैसे लकड़ियों को अग्नि भस्म करडालती है तैसेही ईर्षा शुभ करतूतों को जलादेती है बहुरि योंभी कहा है कि दोषदृष्टि और ईर्षा से मुक्तहोना इस पुरुष को महाकठिन है पर इसका उपाय यह है कि जब किसी पर दोषदृष्टि उपजे तब उसके छिद्र को ढूंढ़ न करिये और जिसके साथ कुछ ईर्षा उपजने लगे तब रसना और हाथोंको अपकर्मों से बचाय रखिये बहुरि महापुरुष ने अपने प्रियतमों से इस प्रकार कहा है कि अब मैं तुम्हारे बिषे ईर्षा की अधिकता देखता हूं सो ईर्षा करके आगे भी बहुत मनुष्यों का नाश हुआ है ताते मैं भगवत् की दुहाई देकर कहता हूं कि जबलग इस मनुष्य का धर्म दृढ़ नहीं होता तबलग आत्मसुख को नहीं पावता और जबलग सर्व मनुष्यों के साथ भाव और प्रीति नहीं रखता तबलग इसका धर्मही

दृढ़ नहीं होता इसीपर महाराज ने कहाहै कि ईर्षा करनेवाला पुरुष ऐसा विमुख है कि जिसको मैं कुछ देताहूं सो तिसका शत्रु होताहै और जिस प्रकार जीवों की प्रारब्ध मैंने रची है सो तिसको भला नहीं जानता और महापुरुष ने भी कहा है कि षट्प्रकार के पुरुष सृष्टिस्वभाव करके स्वाभाविकही नरक बिषे चले जावेंगे सो राजा अधर्म करके १ और सिपाहीलोग कठोरता करके २ और धन-वान् अभिमान करके ३ और व्यवहारी लोग छल करके ४ और जङ्गलीलोग मूर्खता करके ५ और विद्यावान् ईर्षा करके नरकगामी होवेंगे ६ बहुरि एक सन्त ने कहा है कि मैं किसी की ईर्षा नहीं करता क्योंकि जब मैं परलोक बिषे सुख को प्राप्त हुआ तब यह स्थूल सुख किंचिन्मात्र है जो इसकी ईर्षा करूं और जब मुझको नरकगामी होना है तब संसार के सुखों को भोगकर कबलग सुखी होऊंगा (अथ प्रकट करना रूप ईर्षा का) ऐसा जान तू कि जब किसी मनुष्य को सुख प्राप्तहोवे और उसके सुख को देखकर तपायमान होवे और उसके सुख को नाश हुआ चाहे तब इसही का नाम ईर्षा है सो यह महामलिन स्वभावहै क्योंकि भगवत् की आज्ञा के साथ विरुद्ध होता है और यह बड़ी मूर्खता है कि तुझको कुछ लाभ न होवे और दूसरे की हानि चाहे सो यह हृदय की मलि-नता का लक्षण है पर जब तू किसीका सुख देखकर अप्रसन्न होवे और उसीके समान हुआ चाहे तब इसका नाम अभिलाषा कहते हैं सो यह अभिलाषा जो धर्मकार्यों बिषे होवे तब निस्सन्देह सुख का कारण है और जब भोगों के नि-मित्त होवे तब यह भी अपवित्रहै इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जिज्ञासु को ईर्षा करनी अयोग्य है पर इस प्रकार प्रमाण है कि जब किसी सात्त्विकी मनुष्य को शुभ करतूति बिषे बर्तते देखे अथवा किसी को उदारता सहित देखे तब ऐसे चाहे कि मैं भी किसी प्रकार इसकी नाईं होऊं सो यद्यपि यह पुरुष निर्द्धन है तौभी सात्त्विकी श्रद्धा करके धनवान् की उदारता के फल को पाता है ऐसाही जब कोई धनवान् अपने धन को पापों बिषे लगाता होवे और कोई निर्द्धन उसको देखकर इस प्रकार चाहे कि जो मेरे पास धन होता तौ मैंभी ऐसाही भोग भोगता सो ऐसी मंशाकरके दोनों समान पापी होते हैं तात्पर्य यह है कि किसी की सम्पदा और सुख को देखकर ग्लानि करनी प्रमाण नहीं पर जब कोई अ-धर्मी राजा होवे अथवा कोई दुराचारी होवे और उसके सुख को देखकर दोषदृष्टि

आवे तो प्रमाण है काहे से कि उसकी सामर्थ्य के नाश होने करके पापों का नाश होता है सो इसका लक्षण यह है कि जब वह अधर्मी राजा अथवा वह दुराचारी उस पाप का त्याग करे तब उसकी सम्पदा को देखकर प्रसन्न होवे और दोषदृष्टि न राखै तब जानिये कि यह ईर्षा नहीं और यद्यपि यह ईर्षा ऐसी है कि स्वाभाविक ही इस मनुष्य के हृदय विषे आन फुरती है और अपने बल करके इससे दूर नहीं होसक्ती पर जब यह पुरुष उस ईर्षा के संकल्प को महा-मलिन जाने और भयवान् रहे तब उस सूक्ष्म संकल्प करके ऐसा पाप नहीं लगता पर जब ऐसा साक्षीरूप होवे कि जो इसके शत्रु का सुख दुःख इसही के हाथ होवे तौभी उसको सुख मे अप्राप्त न राखे (अथ प्रकट करना उपाय ईर्षा का) ताते जान तू कि ईर्षा भी एक दीर्घरोग है और इस रोग करके केवल हृदय ही को दुःख होता है ताते इसका उपाय भी बूझ और करतूति के सम्बन्ध करके होसक्ता है सो बूझ यह है कि ईर्षा करके लोक और परलोक विषे अपनी हानि को जाने पर इस लोक विषे इस प्रकार हानि होती है कि ईर्षा करनेवाला पुरुष सर्वदा चिन्तावान् रहता है और दुःखी रहता है और यद्यपि अपने मन विषे शत्रु का दुःख चितवता है तौभी प्रथम तो आपही चिन्ता करके जलने लगता है ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह ईर्षा महादुःखरूप है और महामूर्खता है क्योंकि अपने ही क्रोध करके आपको जलाता है और शत्रु की हानि कुछ नहीं करसक्ता इस करके कि सब किसी का सुख दुःख महाराज की आज्ञा के अधीन है और जिस प्रकार भगवत् ने उस सुख की मिति राखी है सो इसके संकल्प करके न बढ़ती है न घटती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि ईर्षा करने-वाले मनुष्य को इसी लोक विषे ईर्षा दुःख देती है बहुरि परलोक विषे इस प्रकार दुःखदायक है कि ईर्षा करनेवाला पुरुष भगवत् की आज्ञा से विरोध करता है और भगवत ने जो पूर्णज्ञान के साथ जीवों की प्रारब्ध रची है तिससे विमुख होता है ताते ईर्षा करके महाराज की प्रतीति से हीन होता है बहुरि सर्व जीवों का भी बुरा चितवता है इसीकारण से सन्तजनों ने कहा है कि ईर्षा करनी मन-मुखता है और जब विचार करके देखिये तब जिसकी ईर्षा करता है सो तिसको यह लाभ होता है कि उसकी ईर्षा करनेवाला शत्रु इसीलोक विषे पड़ा जलता है और उसकी हानि कुछ नहीं होती बहुरि जिसकी तू ईर्षा करता है तिसको

धर्म का लाभ इस प्रकार होता है कि उसने तो तुझ को नहीं दुखाया और तू उसका दुःख चितवता है ताते तेरे शुभकर्मों का फल उसी को होवेगा और उसके पापों का फल तुझ को भोगना पड़ेगा ताते जब तू विचार करके देखे तब तू इस प्रकार जाने कि तू जो उसके लौकिक सुख का नाश चाहता है सो तेरे चितवने करके उसके लौकिक सुख भी दूर नहीं होते और तेरी ईर्षा के सम्बन्ध करके उसको परलोक विषे भी सुख अधिक होता है और तू इसलोक विषे भी दुःखी रहता है और परलोक के दुःखों का बीज बोता है ताते तू अपने चित्त विषे जानता है कि मैं अपना मित्र हूं और उसका शत्रु हूं पर जब भली प्रकार देखै तब उसका मित्र है और अपना शत्रु है ताते तू अपने आपही को बड़ा दुःखी करता है और परलोक के सुख से भी अप्राप्त रहता है और जो पुरुष किसी की सम्पदा और सुख को देखकर ईर्षा नहीं करते और प्रसन्न होते हैं सो यहां भी सुखी हैं और परलोक विषे भी सुखी होवेंगे इसी पर महापुरुष ने कहा है कि उत्तम पुरुष वही है जो किसी को शुभ उपदेश दृढ़ावे अथवा विद्यावानों से उपदेश सुनकर अङ्गीकार करे अथवा उनको प्रियतम राखे सो ईर्षा करनेवाला इन तीनों गुणों से अप्राप्त रहता है ताते ईर्षा करनेवाले का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अपने शत्रु को पत्थर मारे पर इसका शत्रु तो उस पत्थर की चोट से बचजावे और वह पत्थर उलटकर इसी के नेत्र में लगे ताते इसका नेत्र अन्ध होजावे बहुरि अधिक क्रोध करके और पत्थर उसको मारे तब उसके लौटकर लगने से इसका दूसरा नेत्र भी अन्ध होजावे बहुरि और पत्थर मारे तब उस करके भी इसी का शीशा फूटै सो ऐसेही बारंबार आपको घायल करता रहे और वह शत्रु इसको देखकर हँसता रहे तैसेही ईर्षा करनेवाला पुरुष अपने आपही को दुःखी करता है और शत्रु की हानि कुछ नहीं करसक्ता बहुरि जब हाथों और वचन करके शत्रु को दुखावे और उसकी निन्दाकरे तब वह तो अधिक दुःखकारी होता है पर बूझ का उपाय जो मैंने कहा था सो यही है कि जिसने ईर्षा को हलाहल बिष की नाई जाना है वह अवश्यही तिसका त्याग करता है बहुरि करतूति करके इस प्रकार उपाय होता है कि जिस सम्बन्ध करके ईर्षा उपजती है तिसको यत्न करके अपने हृदय से दूरकरे सो ईर्षा का बीज अभिमान और वैरभाव और मानकी प्रीति है ताते चाहिये कि जिज्ञासु ऐसे मलिनस्वभावों को मूलही से

दूरकरे तब ईर्षा का बीजही नष्ट होजावे बहुरि एक यह भी उपाय है कि जब ईर्षा करके किसी की निन्दा किया चाहे तब उसकी स्तुतिकरे और जब उसकी हानि किया चाहे तब सहायता करे और जब अभिमान का अंकुर उपजने लगे तब दीनता को अङ्गीकार करे सो यह भी उत्तम उपाय है कि जिसके साथ कुछ वैरभाव होवे तब सब प्रकार उसकी भलाई वर्णनकरे तो स्वाभाविकही ईर्षा दूर होजाती है पर यह मन ऐसा शत्रु है कि जब यह पुरुष सहनशीलता करता है तब मन इस प्रकार कहने लगता है कि जब तू सहनशील होवेगा तब तेरा शत्रु तुझको निर्बल जानेगा इसीकारण से कहा है कि यद्यपि मनके स्वभाव को विपर्यय करना उत्तम उपायहै पर अतिकठिन है अर्थात् इस विषे धैर्य करना अति कठिनहै पर जब जिज्ञासुकी बुद्धि विषे ऐसा बल दृढ़होवे कि ईर्षा और क्रोधको लोक और परलोकका दुःख जाने और इनको त्यागकरके परमसुखकी प्राप्ति देखे तब वह यत्न बिनाही इस औषध को अङ्गीकार करता है काहे से कि यद्यपि सब औषधें कटु और कसैली होती हैं तौभी बुद्धिमान् पुरुष कटुता के निमित्त औषध का त्याग नहीं करते और जो रोगी मूर्खता करके कटुता के निमित्त औषध को त्याग देवे तब वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्तहोता है बहुरि ऐसा जान तू कि यह मनुष्य अपने यत्न करके शत्रु और मित्र को समान नहीं करसक्ता काहेसे कि यह जीव है और पराधीन है पर तौ भी इसको इतना अवश्यही चाहिये कि जो मन से ईर्षा और क्रोध को दूर न करसके तो वचन और कर्म करके तो वैरभाव न करे और बुद्धि विषे भी इस स्वभाव को मलिन जाने बहुरि इस प्रकार चाहे कि जो यह मलिन स्वभाव मेरे हृदय से दूर होवे तो भला है जब जिज्ञासुजन ऐसे पुरुषार्थ को प्राप्त होवे तब जानिये कि मनके संकल्प करके इसको कछुक पकड़ न होवेगी क्योंकि इसकी श्रद्धा विषे मलिनता कुछ नहीं और जीवत्व करके अकस्मात् कुछेक संकल्प फुर आताहै सो वहभी विचार के बल करके दूर होजावेगा पर केते पुरुष इस प्रकार कहतेहैं कि यद्यपि हृदय विषे ईर्षा की बुराई न जाने पर जब वचन और कर्म करके वैरभाव न करे तब मनके संकल्पों करके इसको परलोक में पकड़ कुछ नहीं होती सो यह अयोग्यहै क्योंकि यह ईर्षा तो मनही का कर्म है सो जब यह किसी का सुख देखकर तपायमान होवे और दुःख देखकर प्रसन्न होवे तब इससे अधिक पाप क्या है ? तातें इस पाप से तबहीं छूटे जब इस स्वभाव को

मलिन जाने और सर्व प्रकार इससे मुक्त हुआ चाहे तब मंशा करके वह मलिन संकल्प दूर होजाता है पर शत्रु और मित्र की सम्पूर्ण समानता तबहीं होती जब इस पुरुष को एकता की अवस्था प्राप्त होजावे अर्थ यह कि सर्व जीवों के पराधीन देखे और सर्व कर्मोंका कर्ता भगवतही को जाने सो यह अवस्था महादुर्लभ है और यद्यपि किसी समय विषे बिजलीवत् चमत्कार दिखाती है तौभी सर्वदा स्थिर नहीं रहती और जिन्हों ने ऐसे परमपद विषे स्थिति पाई है वे भी बिरले ही सन्तजन हैं ॥

पांचवां सर्ग ॥

माया की प्रीति और तृष्णा की निषेधता के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि यह माया सर्व विघ्नों का मूल है और इसकी प्रीति सर्व पापों का बीज है बहुरि यह माया कैसी है ? कि भगवत् के प्रियतमों की बैरिनि है और जो महाराज से विमुख हैं तिनकी भी शत्रु है पर भगवत् के प्रियतमों की इस प्रकार बैरिनि है कि उनके प्रति आपको सुन्दर कर दिखाती है और नाना प्रकार के छलोंको पसारती है इसी कारण से वे जिज्ञासु वैराग्य और इसके त्यागने विषे यत्न करते रहते हैं और आपको बचाया चाहते हैं बहुरि भगवत् विमुखों की शत्रु इस प्रकार है कि प्रथम तो उनको अपने ऊपर रिझावती है और ज अधिकप्रमाद करके मोहित होते हैं तब उनको भी त्याग जाती है और दुराचारिणी स्त्री की नाईं घर २ भटकती फिरती है और अपने प्रियतमों को सर्वदा दुःख देती है बहुरि जब इसके साथ प्रीति करनेवाले मनुष्य परलोक विषे जाते हैं तब महाराज के कोप को देखते हैं ताते जिस बुद्धिमान् ने इसके छलों को भली प्रकार समझकर इसका त्याग किया है वह इसके विघ्नों से छूटता है इसीपर म ा-पुरुष ने भी कहाहै कि यह माया महाछलरूपा है और भगवत् ने जो सन्त को संसारविषे भेजा है और नाना प्रकार के शास्त्र और वचन उत्पन्न किये सो तिनका प्रयोजन यही है कि जीवों को माया की प्रीति से विवर्जित करें अ इसके छलों और विघ्नों को प्रसिद्ध करके दिखावें तब यह जीव माया से विर चित्त होकर परलोकमार्ग के यत्न विषे सावधान होवें इसी पर एक वार्ता है एक समय महापुरुष अपने प्रियतमों सहित चले जातेथे तब एक मृतक पशु देखा और कहने लगे कि मैं भगवत् की दुहाई करके कहताहूं कि जैसे यह मृ

पशु ऐसा कुचील है कि इसकी ओर कोई देखताही नहीं तैसे यह माया सन्त-जनों के आगे इससेभी अधिक कुचील है क्योंकि जो भगवत् के दरबार बिषे इस माया को कुछभी विशेषता होती तो मनुष्यों को रञ्चकमात्र भी न मिलती बहुरि महापुरुष ने कहाहै कि इस माया को धिक्कार है और इसकी जो सामग्री हैं तिनको भी धिक्कार है और एक वही पदार्थ धिक्कार से रहितहै जो केवल भजनही के निमित्त अङ्गीकार करिये बहुरि योंभी कहाहै कि जिसने माया को अपना प्रियतम किया है वह परलोक से विमुख हुआ है और जिसने परलोक के सुखों को प्रियतम किया है वह माया के भोगों से विरस होता है ताते चाहिये कि नाशवन्त पदार्थों का त्यागकरो और सत्यस्वरूप की प्रीतिबिषे सावधान होवो बहुरि एक प्रीतिमान् ने कहा है कि एकबार एक सन्त ने जल मांगा था तब लोगों ने उनको कटोरा आनदिया सो जब पानकरनेलगे तब ऐसा रुदन किया कि उनको देखकर सबही लोग रुदन करनेलगे और कोई पूछ न सके कि तुम क्यों रोतेहो ? बहुरि जब मौनकरी तब प्रियतमों ने पूछा कि तुम्हारे रुदन का कारण कौन था तब उन्हों ने कहा कि एक बार महापुरुष ध्यान में बैठे थे और हाथों करके किसी को हटाते थे पर मुझको कुछ दृष्टि न आया तब मैंने पूछा कि तुम किसको हटाते थे तब उन्होंने कहा कि यह माया बारंबार मेरे पास आती है और मैं उसको दूर करता हूं पर यह माया इस प्रकार कहती है कि तुमतो मेरे छलों से बचेहो पर जो तुम्हारे पीछे होवेंगे वह आपको बचा न सकेंगे ताते इस शरबत को देखकर डरा हूं इस निमित्त कि मत मुझको छलने के निमित्त वह माया यही रूप धार कर आय मिली होवे तब मैं क्या करूंगा ? बहुरि महापुरुष ने योंभी कहा है कि यह माया निघरा घर है और निर्द्धना धन है ताते प्रीति करके मूर्खही इसको हर्ष से संचय करते हैं और इसको प्राप्त वही करते हैं जो विद्याहीन हैं और इस के निमित्त यत्न वही करते हैं जो धर्म से रहित हैं ताते जो पुरुष प्रभात समय उठकर मायाही के कार्यों बिषे दृढ़ होता है वह भगवत् से बिमुख है और मायाधारी जीवों बिषे ४ लक्षण अवश्यही होते हैं सो प्रथम तो उसकी चिन्ता कदाचित् दूर नहीं होती १ और दूसरे जञ्जालों बिषे ऐसा आसक्त रहता है कि कदाचित् मुक्त नहीं होता २ और तीसरे सर्वदा अतृप्त रहताहै ३ चौथे उस की आशा कदाचित् पूर्ण नहीं होती ४ इसी पर अबूहरेरा सन्त ने कहाहै कि

एक बार मुझसे महापुरुष ने कहा कि तू माया की सम्पूर्णता को देखा चाहता है इतना कहकर मुझको कुचील ठौर विषे लेगये सो तहां पशुओं और मनुष्यों के अस्थि पड़ेथे और विष्ठा और पुरातन वस्त्रों के टुकड़े भी पड़ेहुये थे तब उन को देखकर कहनेलगे कि हे भाई! यह जो मनुष्यों के शीश देखतेहो सो तुम्हारी नाईं यहभी तृष्णा और ईर्षा करके पूर्ण थे सो अब इनके हाड़ों पर त्वचा भी न रही और शीघ्रही भस्म होजावेंगे और वह नाना प्रकार के व्यञ्जन जो मीठे लगते थे और यत्न करके प्राप्त होतेथे सो अब सबही विष्ठा का रूप हुये हैं बहुरि अनेक भांति के वस्त्र सबही पुरातन होकर भस्म होतेजाते हैं बहुरि जिन घोड़ों और हाथियों पर सवार होकर फिरते थे सो तिनके भी हाड़ही शेष रहगये हैं सो माया का सम्पूर्ण आदि अन्त यही है बहुरि योंभी कहाहै कि परलोकविषे केते पुरुष जप तप करनेवाले भी नरकगामी होवेंगे क्योंकि जब माया के पदार्थों को देखते थे तब अधिक तृष्णा करके अङ्गीकार करते थे बहुरि एकबार महापुरुष अपने प्रियतमों से कहनेलगे कि आपको अन्ध करनेवाला पुरुष कौन है ताते जो पुरुष माया की तृष्णा करता है सो आपको अन्ध किया चाहता है और जो पुरुष माया से विरक्त होता है और आशा तृष्णा को घटाता है तब उसके हृदयविषे भगवत् अनुभव की विद्या प्रकटावता है और पढ़े विनाही उसकी बुद्धि उज्ज्वल होती है और यथार्थ के मार्ग को प्रकट देखता है और महापुरुष ने यों भी कहा है कि माया के पदार्थों का स्मरण भी न करो सो जिस माया की वार्ता करनी ही अयोग्य हुई तब उसके साथ प्रीति करनी और उसकी उत्पत्ति के निमित्त यत्न करना कैसे प्रमाण होवे इसी पर महात्मा ईसा महापुरुष ने कहा है कि माया को अपना स्वामी न बनावो तब तुमको यह माया अपना दास न करे अर्थ यह कि माया के साथ अधिक प्रीति न करो तब इसके जञ्जाल विषे बद्धयमान न होवोगे बहुरि उस पदार्थ को संचो कि जिसके संचनेविषे तुमको कदाचित् भय न होवे और यों भी कहा है कि यह माया और परलोक ऐसे हैं जैसे एक पुरुषके दो स्त्री होवें अर्थ यह कि जब एक प्रसन्न होती है तब दूसरी दुःखित होती है तैसेही जब यह पुरुष माया विषे सावधान होता है तब परलोक से विमुख होताहै और जब परलोकके मार्ग विषे सावधान हुआ चाहताहै तब माया के साथ विरोध करताहै बहुरि अपने प्रियतमों से योंभी

कहाहै कि मैं तुम्हारे देखतेही इस माया को धरती पर डालताहूं ताते तुमभी इस को अङ्गीकार न करो क्योंकि प्रथम तो यह माया ऐसी है कि सब पाप इसकी प्रीति करके होते हैं बहुरि जबलग इसका त्याग न करिये तबलग परलोक के सुखों को पाय नहीं सक्ता ताते इस माया की प्रीति से बाहर निकलो और इस के कार्यों की सम्पूर्णता विषे दृढ़ न होवो बहुरि ऐसे जानो कि सर्व पापों का मूल माया की प्रीति है और सर्व भोगों का फल शोक और दुःख है बहुरि जैसे जल और अग्नि का मिलाप नहीं होता तैसेही भगवद्भक्ति और मायाकी प्रीति किसी प्रकार इकट्ठी नहीं होती इसीकारण से सन्तजन माया से विरक्त हुये हैं बहुरि एक वार्ता है कि एक दिन विषे बहुत मेघ और बिजली का चमत्कार होता भया तब ईसाजी मेघकी रक्षाके निमित्त स्थान को ढूंढ़नेलगे सो तहां एक तम्बू को देखा पर जब तम्बूविषे जाय प्राप्तहुये तब वहां एक सुन्दर स्त्री देखी बहुरि वहां से तुरन्तही निकल कर पहाड़ की कन्दरा विषे गये तब आगे एक सिंह बैठाहुआ देखा तब भगवत् के आगे प्रार्थना करनेलगे कि हे महाराज! तैंने सब किसीको विश्राम का स्थान दिया है एक केवल मेराही स्थान कोई नहीं तब आकाशवाणी हुई कि हे ईसा! मैंने तुझको कुसंगसे बचाया है ताते तेरा विश्रामस्थल मेरी दया है इसीपर एक और वार्ता है कि जब सुलेमानजी महापुरुष का ऐश्वर्य अधिक हुआ और सब पशु मनुष्य देवता परी उनकी आज्ञा मानने लगे तब किसी तपस्वी ने उनसे कहा कि तुमको भगवत् ने बड़ा ऐश्वर्य दिया है तब उन्होंने कहा कि मेरे ऐश्वर्य से एकबार श्रीरामनाम लेना विशेष है काहे से कि महाराज के नाम का उच्चारण स्थिर रहेगा और मेरा ऐश्वर्य सब ही नष्ट होजावैगा बहुरि एक और वार्ताहै कि नूहनामी महात्मा की आयुष् सहस्र वर्ष की हुई है सो जब परलोक विषे गये तब देवताओं ने पूछा कि तुमने इतनी आयुर्बल में संसार को किस प्रकार देखा है? तब उन्होंने कहा कि जैसे सराय के एक दरवाजे विषे होकर अन्दर चलेजावें और दूसरे द्वारसे निकलजावें सो मैंने इतनी आयुर्बल विषे जगत् का जीवना ऐसेही देखाहै बहुरि ईसा महापुरुष से लोगों ने पूछा कि जिस करके हम भगवत् के प्रियतम होवें सो वह लक्षण कौन है? तब उन्होंने कहा कि जब तुम माया के प्रियतम न होवो तब स्वाभाविकही भगवत्के प्रियतम होवोगे सो माया के निषेध विषे सन्तजनों के ऐसेही वचन

बहुत हैं जैसे एक नामी सन्त ने कहा है कि जिन पुरुषों ने इन पट्भेदों को जाना है वह स्वाभाविकही नरकों से मुक्त होवेंगे और परम सुखको पावेंगे सो प्रथम तो जिसने भगवत को पहिंचाना है भलीप्रकार वह निस्सन्देह उसके भजन विषे सावधान होता है १ और जिसने मनको छलरूप जाना है वह निस्सन्देह मनके साथ विरुद्धही करताहै और उसकी आज्ञा नहीं मानता २ बहुरि जिसने सत्य को इस प्रकार समझा है कि यथार्थ वस्तु यही है वह सांचेही पदार्थ को अङ्गीकार करता है ३ और जिसने झूठ को झूठही पहिंचाना है वह सहजही उसका त्याग करता है ४ बहुरि जिसने मायाके आदि अन्तको भलीभांति देखा है वह स्वाभाविकही इसके सुखों को विरस जानता है और विरक्त होताहै ५ और जिसने परलोक के सुखकी अधिकता विचार देखी है वह सर्वदा परलोकमार्ग के यत्न विषेही स्थित होताहै ६ इसीपर एक बुद्धिमान् ने कहाहै कि जो माया का पदार्थ तुझको प्राप्त होताहै सो तुझसे आगेभी किसीको प्राप्त हुआ है और तुझ से पीछे भी किसी और के पास जावेगा ताते ऐसे पदार्थ को पायकर प्रसन्न क्यों होताहै क्योंकि इस संसार विषे खान पानआदिकसे अधिक तेरा कार्यही कुछ नहीं, ताते इस खानपान के निमित्त तू अपना नाश क्यों करता ? हे प्यारे ! तुझ को इस प्रकार चाहिये कि मायाके सर्वभोगोंसे व्रत राखेरहे तब परलोक में जाकर अनन्त सुखों की प्राप्ति करके उस व्रत का पारना होवे क्योंकि इस संसार के सुखों की पूंजी वासना और तृष्णा है और लाभ इसका कुंभीपाक नरक है बहुरि एक सन्त से किसी जिज्ञासु ने कहाथा कि मेरे हृदय से माया की अभिलाष दूर नहीं होती ताते मैं कौन उपाय करूं तब उस सन्त ने कहा कि प्रथम तो माया की उत्पत्ति धर्म सहित कर बहुरि शुभ अर्थ उसको खर्च कर तब इस प्रकार स्वाभाविकही माया की प्रीति नष्ट होजावेगी सो यह उपाय उन्होंने इस निमित्त कहा था कि धर्म सहित धनकी उत्पत्ति और शुभ अर्थ खर्चने करके सहजही विरक्तचित्त होजाता है इसीपर एक सन्त ने कहा है कि, जब माटी का बासन स्थिर रहनेवाला होवे और स्वर्ण का बासन शीघ्रही नष्ट होनेवाला होवे तब बुद्धिमान् को चाहिये कि स्थिरता के विचार से माटी के बासन को ही अङ्गीकार करे और नश्वर स्वर्ण को त्यागदेवे पर यह माया तो माटी की नाईं है और क्षण २ विषे परिणाम को पाती है बहुरि परलोक का सुख स्वर्ण की नाईं निर्मल और

अविनाशी है ताते जब परलोकके अविनाशी सुखों को त्यागकर मायाके क्षण-भंगुर भोगों को अङ्गीकार करिये तब बड़ी मूर्खता है इसी पर एक और सन्त ने कहाहै कि इस मायाके छलसे भय करो क्योंकि परलोक बिषे मायाकी प्रीति करने वालों को इस प्रकार कहेंगे कि जिस माया के भोगों को निन्द्य कहाहै सो यह पुरुष उसहीके प्रियतम हैं और एक मसऊदनामी सन्तने कहाहै कि इस संसार बिषे सबही मनुष्य परदेशी हैं और जितनी माया की सामग्री है सो सब पराई है ताते परदेशी को अवश्यही चलना होवेगा और सब सामग्री यहांहीं रहजावेगी बहुरि लुकमान ने अपने पुत्र से कहा है कि जब तू मायाके सुखको त्यागकर पर-लोक के सुखको अङ्गीकार करेगा तब लोक और परलोक का सुख तुझको प्राप्त होवेगा और जब मायाके निमित्त परलोक का त्याग करेगा तब दोनों लोकों बिषे तेरी हानि होवेगी इसीकारण से फुजैलनामी सन्तने कहाहै कि जब मायाके सर्व सुख पापसे रहित मुझको प्राप्त होवें और परलोक बिषे कुछ उसका दण्ड देना भी न पड़े तौभी मुझको स्थूल भोगों से लज्जा आती है जैसे तुम मृतक पशु से अरुचि रखते हो इसीपर हसनबसरी सन्त ने उमर अब्दुलअज़ीज़ को पाती लिखा था कि काल को आया देखो क्योंकि जिसके मस्तक पर मरना लिखा है सो अवश्यही आवेगा तब उन्होंने उत्तर में लिखा कि हमको तो अन्तकाल का दिनही सर्वदा दृष्टि आता है और यह संसार अनहुआही भासता है बहुरि इस प्रकार भी सन्तजनों ने कहा है ये मनुष्य मरने को भी सत्य जानते हैं और फिर प्रसन्न होते हैं सो यह बड़ा आश्चर्य है बहुरि जो पुरुष नरक को सत्य जानता है और संसार में हँसता भी है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है बहुरि यह भी बड़ा आश्चर्य है कि यह मनुष्य माया की सामग्री के परिणाम को सदाही देखता है और इसी को विशेष जानकर बध्यमान भी होता है बहुरि जो पुरुष भगवत् को सबका प्रतिपालक जानता है और फिर जीविका की चिन्ता बिषे चिन्तित रहता है सो यह भी बड़ा आश्चर्य है ऐसेही एक और सन्त ने भी कहा है कि इस संसार बिषे ऐसा निर्विघ्न पदार्थ कोई नहीं जिस करके प्रथम प्रसन्न हूजिये और पीछे शोक न आवे तात्पर्य यह कि दुःख से रहित निर्मल सुख इस संसार बिषे नहीं उत्पन्न हुआ इसी पर हसनबसरी ने कहा है कि इस मनुष्य को अन्तकाल बिषे तीन पश्चात्ताप अवश्यही होते हैं सो प्रथम यह

कि जिस माया को यत्न करके बटोरा था तिसको भली प्रकार भोग न लिया १ बहुरि दूसरा यह कि मन के मनोरथ सबही पूर्ण न हुए २ और तीसरा यह कि परलोकमार्ग का तोशा न बनालिया ३ इसी पर इब्राहीम अदहम नामी सन्त ने किसीसे पूछा था कि तू स्वप्न के पैसे को प्रियतम रखता है कि जाग्रत् की मोहर को विशेष जानता है तब उसने कहा कि मैं जाग्रत् की मोहर को अधिक प्रियतम रखता हूं बहुरि इब्राहीम कहनेलगे कि तू झूठ कहता है क्योंकि यह माया स्वप्न का पैसा है और परलोक का सुख जाग्रत् की मोहरहै सो माया ही के साथ तेरी अधिक प्रीति है ताते तू झूंठ बोलता है बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि बुद्धिमान् पुरुष वही है जो माया के त्यागने से आगेही माया का त्याग करे और मृत्यु के आगेही मृतक होरहे बहुरि परलोक विषे जाने से आगेही परलोक का तोशा बनालेवे बहुरि यों भी कहा है कि इस माया की अभिलाषही भगवत् से अचेत करडालती है तब इसके प्राप्त होने की मलिनता क्या वर्णन करिये ? बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि जो पुरुष माया के भोगों को कर तृप्त हुआ चाहे तब इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई लकड़ियां डालकर अग्नि को बुझाया चाहे तब निस्सन्देह मूर्ख कहाता है तैसेही माया के साथ सन्तुष्ट होना असम्भव है इसीपर अलीनामी सन्त ने कहा है कि सर्व स्थूलभोगों का सार यह षट्भोग हैं खाना १ पीना २ पहरना ३ सूंघना ४ सवारी ५ स्त्रियों का सङ्ग ६ सो यह सब इस प्रकार मलिन हैं कि प्रथम सर्व रसों में मधु श्रेष्ठ है सो वह माखी का थूक है १ और सर्व पान करने के पदार्थों में जल विशेष है सो सब किसीको समान प्राप्त होता है २ बहुरि पहरना रेशम का अति कोमल है सो वह भी कीड़ों की लार से उपजता है ३ और सर्व सुगन्धियों में उत्तम कस्तूरी है सो मृगों का रुधिर है ४ बहुरि स्त्रियादिक भोग तो प्रसिद्ध ही मलिन हैं ५ और घोड़ोंपर चढ़ना ऐसा है जैसे अङ्गों को चीरकर स्थित करिये ६ बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि हे मनुष्यो ! तुम को भगवत् ने परमपद की प्राप्ति के निमित्त उत्पन्न किया है सो जब यह प्रतीतिही तुमको दृढ़ नहीं तब निस्सन्देह मनमुख हो और जब प्रतीति भी रखते हो और अचेतता करके निडर होरहेहो तब निसन्देह मूर्ख होते हो (अथ प्रकट करना अर्थ माया की मलिनता का) ताते जान तू कि महापुरुष ने कहा

है कि यह माया महानिन्द्य है और इसकी सर्व सामग्री भी निन्द्य है पर वही पदार्थ निन्द्य नहीं जो केवल भगवतही के निमित्त अङ्गीकार करिये ताते इस भेद को अवश्यही पहिंचानना चाहिये कि इस माया बिषे निन्द्य क्या है ? और ग्राह्य क्या है ? तात्पर्य यह कि सबही पदार्थ तीन प्रकार के हैं सो एक तो केवल मायारूप हैं जैसे पाप और भोग अर्थ यह कि जबलग यह पुरुष इन का त्याग न करे तबलग निर्मल कदाचित् नहीं होता क्योंकि अचेतता और प्रमादता का कारण इन्द्रियादिक भोग और तमोगुणी कर्म हैं १ बहुरि दूसरे ऐसे पदार्थ हैं जो देखनेमात्र भगवत् के निमित्त भासते हैं पर सकामता करके वह भी मायारूप कहाते हैं जैसे जप व तप व भोगों का त्याग ये तीनों परलोक बिषे भी सुख देनेवाले हैं पर जब इस पुरुष की मंशा निष्काम होवे और जब हृदय बिषे मान आदिकों का प्रयोजन होवे तब यह क्रिया स्थूल भोगों से भी निन्द्य है क्योंकि कपट और पाखण्ड इसीका नाम है २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि देखनेबिषे मनका भोग भासता है और अन्तर से परमार्थ का प्रयोजन होता है सो ऐसे पदार्थों को निन्द्य नहीं कहाजाता जैसे शरीर के निर्वाह-मात्र आहार करना अथवा शुद्ध जीविका उत्पन्न करनी सो मंशा की निष्का-मता करके यह सबही कर्म निर्मल होजाते हैं इसी पर महापुरुष ने कहाहै कि जो मनुष्य अपने भोगों के निमित्त धन को संचय करता है वह परलोक बिषे अपने ऊपर भगवतको क्रोधवान् देखेगा पर जब इस निमित्त व्यवहार करे कि इतने उद्यम करके लोगों से बे मुहताज होऊँगा और अचिन्त्य होकर भजनबिषे सावधान होऊंगा तब परलोक बिषे इसका मस्तक पौर्णमासी के चन्द्रमा के स-मान उज्ज्वल होवेगा तात्पर्य यह कि वासना के भोगों का नाम माया है जिस बिषे परलोकमार्गका सम्बन्ध कुछ न होवे पर जिस क्रिया बिषे परमार्थ की मंशा होवे तब उसको मायामात्र नहीं कहते जैसे तीर्थयात्री तीर्थों के मार्ग बिषे घास और जल करके अपनी सवारी के घोड़े और ऊंटकी खबर लेता है तौभी उसकी यह क्रिया तीर्थयात्रा के निमित्त होती है इसी पर महाराज ने भी कहा है कि मन की वासना का नाम माया है ताते जो पुरुष अपनी वासना से वि-रक्त हुआ है वह माया से विरक्त कहाता है इस करके यह प्रसिद्ध हुआ कि सर्व सामग्री तीन प्रकार की होती हैं सो एक तो आहार दूसरा वस्त्र तीसरा स्थान

है सो शरीरकार्य को निर्वाह करने योग्यहै और जब इस पुरुष की मंशा निष्काम होवे तब इतनी सामग्री करके बन्धवान् नहीं होता १ और दूसरे नाना प्रकार के इन्द्रियादिक भोग हैं सो इन करके कदाचित् तृप्ति नहीं होती और परलोक के मार्ग विषे भी इनका सम्बन्ध कुछ नहीं ताते जिस पुरुष ने प्राणों की रक्षा के निमित्त सामग्री को अङ्गीकार कियाहै वह निस्सन्देह मुक्तरूप है और जो मनुष्य इन्द्रियादिक भोगों विषे पसरा है सो परम नरकों को प्राप्त होवेगा २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि शरीर के निर्वाहमात्र और इन्द्रियादिक भोगों के मध्यभाव विषे स्थित होना सो विचार की सूक्ष्मदृष्टि कर देखसक्ताहै अन्यथा नहीं जानाजाता पर उसका देखना यह है जिस पदार्थ की इसको अत्यन्त अपेक्षा न होवे और यह पुरुष अपने मन विषे ऐसा जाने कि यह पदार्थ मुझको अवश्यही चाहिये है ताते अङ्गीकार करलेवों तब निस्संदेह परलोक के दण्ड का अधिकारी होता है इसी कारण से जिज्ञासु जनों ने अपने शरीर को यत्न विषे राखा है और स्थूल सामग्री को अल्पही अङ्गीकार किया है तब मनकी वासनासे मुक्त हुये हैं पर सर्व वैरागियों के मुखिया आवेश करनी नामी सन्त हुये हैं उन्हों ने सो अपने आपको इस प्रकार संसार से विरक्त किया है कि सब लोग उनको बावरा जानते थे और वह प्रभातसमय नगर से बाहर निकल जाते थे और प्रहर रात्रि व्यतीत हुये बहुरि आते थे और बेर और खजूरों के फल जो स्वाभाविकही गिरपड़ते थे सो तिनको चुनकर आहार करते थे और कुछ भगवत्अर्थ देते थे बहुरि गलियों के चीथड़े चुनकर धोते थे और उसही की गुदड़ी बनाकर ऊपर ओढ़ते थे सो उनकी ऐसी अवस्था देखकर लोगों को बावरे भासते थे और जब बालक उनको पाथर मारते थे तब वह कहते थे कि मेरे छोटे छोटे पाथर मारो क्योंकि घायल होकर भजन से रहित होजाऊंगा इसी कारण से महापुरुष ने यद्यपि उनको स्थूल नेत्रों करके देखा न था तौभी सर्वदा उनकी प्रशंसा करते थे बहुरि उमर और अलीनामी अपने प्रियतमों को महापुरुष ने आज्ञा दी कि तुम आवेशकरनी के दर्शन को जाना और मेरे गले का जामा उनको पहुँचाना कि उनकी अशीष और प्रार्थना करके मेरी संप्रदाय के अनन्त मनुष्यों को भगवत् मुक्त करेंगे बहुरि आवेशकरनी की अवस्था का चिह्न भी उनको बतादिया सो जब महापुरुष का शरीर छूटा तब उमर और अली उनके

दर्शन को गये और उपदेश के निकट जाकर पूछनेलगे कि करनदेश का कोई पुरुष यहां है तब एक पुरुष ने कहा कि मैं करननगर का बासी हूं बहुरि उससे पूछा कि तू आवेशकरनी को जानता है तब उसने कहा कि हां मैं जानता हूं पर वह तुम्हारे पूछने का अधिकारी तो नहीं क्योंकि वह तो महा बावरासा है और किसीके साथ मिलाप भी नहीं रखता सो जब उमर ने यह बात सुनी तब रोनेलगे और कहनेलगे कि हम उसही को ढूंढ़ते हैं इस करके हमने महापुरुष के मुख से सुना है कि उनकी दया करके असंख्य जीवों का उद्धार होवेगा इसी पर हरमनामी सन्त ने कहाहै कि मैं भी आवेशकरनी की महिमा सुनकर एक बार उनके दर्शन को गया था तब वह करन नगर बिषे नदीपर स्नान करते थे तब मैंने उनको अचानकही पहिंचान कर दण्डवत् किया और उनकी अवस्था देखकर मेरा चित्त बहुत कोमल हुआ तब वह मुझसे इसप्रकार पूछनेलगे कि हे हसन के पुत्र, हरम ! तुम कुशल सहित हो और यहां क्योंकर आयेहो ? तब मैंने कहा कि तुमने मिले बिनाही मुझको और मेरे पिता को क्योंकर पहिंचाना तब उन्होंने कहा कि मुझको भगवत् ने लखाया है और प्रीतिमानों के हृदय शरीर के मिलाप बिनाही एक दूसरे को पहिंचान लेते हैं बहुरि मैंने अधीन होकर कहा कि मुझको महापुरुष की कुछ वार्ता सुनावो तब इसप्रकार कहनेलगे कि मैं तो उनका दास हूं और इस शरीर करके मैंने उनको देखाही नहीं बहुरि मैं अपने चित्त के अभ्यास बिषे परचा हूं ताते मुझको पण्डितों की नाई कहने सुनने की इच्छाभी नहीं बहुरि मैंने कहा कि तुमहीं मुझको कुछ उपदेश करो तब मेरा हाथ पकड़कर कहनेलगे कि इस मनरूपी असुरसे भगवत् ही रक्षा करे इतना कहकर रोनेलगे बहुरि ऐसा कहा कि बड़े २ आश्चर्यरूप सन्त और महापुरुष सबही मृत्यु को प्राप्त हुये हैं ताते हम और तुम भी मृतकरूपही हैं पर उत्तम यही है कि सन्तजनों के मार्ग को अङ्गीकार करो और एक क्षण भी मरने के भयसे अचेत न होवो और अन्य लोगोंको भी यथार्थवचन कहो बहुरि कदाचित् भी साधुसंगति का त्याग न करो क्योंकि सन्तों के संग बिना अपने धर्म से भ्रष्ट होजावोगे और जान भी न सकोगे सो ऐसे कहकर चलदिये और मुझको अपने साथ ठहरने न दिया तात्पर्य यह कि जिन्होंने माया के छलों को पहिंचाना है सो तिनके ऐसे लक्षण हुये हैं और जिज्ञासुजनों का मार्ग

यही है पर जब तू ऐसे पदको प्राप्त न होसके तब इतना तो अवश्य कर कि शरीर के निर्वाहमात्र से अधिक भोगोंके विषे लम्पट न हो ताते दुःखों से मुक्त रहे॥

छठवां सर्ग॥

धन की तृष्णा और कृपणता के निषेध और उपाय के वर्णनमें ॥

ताते जान तू कि इस मायारूपी वृक्ष की शाखा बहुत हैं सो एक शाखा इस की धन और सम्पदा है बहुरि मान और बड़ाईभी इसी की शाखा हैं ऐसीही और भी अनेक शाखा हैं पर यह धन बहुत विघ्नों का कारण है इसीपर महापुरुष ने भी कहाहै कि इस धनरूपी घाटी से उतरना कठिन है क्योंकि शरीरव्यवहार के साथ भी इसका सम्बन्ध है और परलोक मार्ग का तोशाभी यही धन होता है अर्थ यह कि आहार और वस्त्र और स्थान की प्राप्ति भी इसही करके होती है ताते शरीर के निर्वाहमात्र इसका उत्पन्न करना अवश्यही चाहिये और जब धनकी उत्पत्ति न करिये तब केवल निर्द्धनता विषे धैर्य नहीं होसक्ता बहुरि जब धन की प्राप्ति होती है तब नाना प्रकार के भोगोंविषे आसक्त होजाता है सो यह भी अनेक पापों का बीज है पर निर्द्धन पुरुषों की भी दो अवस्था होती हैं सो एक तृष्णावान् हैं और एक सन्तोषी होते हैं बहुरि तृष्णावान् पुरुषों की भी दो अवस्था हैं कि एक मनुष्यधन की उत्पत्ति के निमित्त व्यवहार करलेते हैं और एक और पुरुषों की आशा रखते हैं पर और पुरुषों की आशा करने से व्यवहार करना विशेष है तैसेही धनवानों की भी दो अवस्था हैं सो एक कृपणता है और एक उदारता है पर उदारता भी दो प्रकार की होती हैं सो एक उदारता विचार के अनुसार है और एक उदारता मर्याद से रहित है ताते विचार के अनुसार उदारता विशेष है और दूसरी निन्द्य है पर यह परस्पर मिलीहुई हैं और इनका पहिंचानना महाकठिन है तात्पर्य यह कि धन करके अनेक विघ्न भी होते हैं और पुण्यकर्मों का बीज भी यही है ताते अवश्यही चाहिये कि यह पुरुष धनके विघ्नों और लाभों को पहिंचाने और पहिंचानकर भली प्रकार विघ्नों का त्याग करे और लाभ को अङ्गीकार करे (अथ प्रकट करनी निषेधता धनकी प्रीति की) इसीपर महाराज ने कहा है कि जिसको धन और संतान आदिकों की प्राप्ति होती है वह निम्सन्देह भजन से विमुख होता है बहुरि महापुरुषने भी कहा है कि जैसे जल करके वनस्पति और तृणादिक शीघ्रही उत्पन्न होते हैं तैसेही धन करके भी

शीघ्रही हृदय बिषे कपट उपज आवता है बहुरि महापुरुष से किसी ने पूछाथा कि सर्व सृष्टि बिषे नीच मनुष्य कौन है तब उन्होंने कहा कि धनके साथ प्रीति करने- वाले अतिनीच हैं क्योंकि नाना प्रकार के रसों को भोगते हैं और अनेकभांति के सुन्दर वस्त्र पहिरते हैं और स्त्रियादिकों के रूप के साथ बन्धवान् होते हैं और बड़े २ घोड़ों और हाथियों पर आरूढ़ हुआ चाहते हैं ताते उनकी आशा कदा- चित् पूर्ण नहीं होती और सर्वथा माया की सामग्री बिषे आसक्त रहते हैं ताते मायाही को भगवत् की नाईं पूजते हैं और जो कुछ किया करते हैं सो मायाही के निमित्त करते हैं इसीकारण से मैं तुमको उपदेश करताहूं कि ऐसे मनुष्यों के साथ कदाचित मिलाप मत करो बहुरि महापुरुष ने यों भी कहाहै कि यह माया सबही मायाधारियों को अर्पणकरदो क्योंकि जो पुरुष माया के सुख शरीर के निर्वाह से अधिक अङ्गीकार करताहै वह उसके नाश का हेतुहै और वह जानता भी नहीं और योंभी कहाहै कि यह अज्ञानी मनुष्य सर्वदा योंही कहते हैं कि यह धन मेराहै और सम्पदा मेरी है पर इतना नहीं जानते कि शरीर के आहार और नग्नता के ढांकने से अधिक मेरा क्याहै? ताते इसका अपना धन वही है जो किसी को भगवत् अर्थ देवे तब वह धन परलोक बिषे इसका संगी होता है सर्वदा इसी पर किसी ने महापुरुष से पूछाथा कि मेरे पास परलोक का तोशा कुछ नहीं ताते मैं क्या यत्न करूं ? तब महापुरुष ने कहा कि जब कुछ धन का संग्रह रखनाहोवे तब भगवत् अर्थ दे क्योंकि भगवत् अर्थ देना इसका सदा संगी होता है और यों भी कहा है कि इस मनुष्य के ३ मित्र हैं सो एक मित्रता जीवने से उपरान्त कुछ नहीं रहती १ दूसरे मित्र श्मशान पर्यन्त संगी होते हैं २ और तीसरे मित्र परलोक पर्यन्त निर्वाह करते हैं ३ अर्थ यह कि जितनी धनकी सामग्री है तिसकी मित्रता जीवने पर्यन्त है और जितने सम्बन्धी लोग हैं सो शरीर को श्मशान तक पहुँचाते हैं बहुरि इस मनुष्य के जो कर्म हैं सो परलोक पर्यन्त संगी होते हैं और जब यह मनुष्य मृत्यु होजाता है तब और लोग कहने लगते हैं कि इसकी सामग्री पीछे क्या रही है ? और देवता इस प्रकार कहते हैं कि इसने आगे क्या कुछ भेजा है ? इसी पर ईसा महात्मा के संगियों ने पूछा था कि तुम जलपर किस करके सूखेही चलेजातेहो और हमारे बिषे ऐसी सामर्थ्य क्यों नहीं है तब उन्होंने कहा कि मैं रुपये और स्वर्ण को।

माटी की नाईं जानता हूं और तुम इसको उत्तम पदार्थ समझते हो ताते मेरी और तुम्हारी अवस्था बिषे इतनाही भेद है इसी पर एक वार्त्ता है कि अबूदरदा नामी सन्त को किसी भगवत् विमुख ने दुखाया था तब वे कहनेलगे कि हे महाराज! तू इसको अरोगता और बड़ी आयुष् और बहुत धन दे तात्पर्य यह कि उन्होंने यह सबही दुःख के कारण समझलिये थे क्योंकि जिसको ऐसी सम्पदा प्राप्त होती है तब वह प्रमाद करके परलोक से अचेत होजाता है और उसकी बुद्धि नष्टता को पाती है इसी पर हसनबसरी ने कहा है कि जिस मनुष्य ने रूपे और स्वर्ण को अधिक प्रियतम किया है उसको परलोक बिषे भगवत् लज्जावान् करता है और यहियानामी सन्त ने कहा है कि यह सोना और चांदी बिच्छू और सांपों की नाईं है ताते जबलग इसका मन्त्र न जानो तबलग इन का स्पर्श न करो और जब मन्त्र सीखे बिना इनपर हाथ डालोगे तब निस्संदेह उनके विष करके मृत्युहोवोगे सो मन्त्र इसका यह है कि प्रथम धनकी उत्पत्ति पाप से रहित होवे और धर्म के मार्ग बिषे दियाजावे बहुरि जब एक सन्त का शरीर छूटनेलगा तब उनसे एक प्रीतिमान् ने कहा कि तुमने अपनी सन्तान के निमित्त कुछ धन नहीं राखा सो इस वार्त्ता का कारण क्या है? तब उन्होंने कहा कि मेरे पुत्रों की जो प्रारब्ध है सो मैंने और किसी को नहीं दीनी और जो और की प्रारब्ध है वह इनको किसी प्रकार प्राप्त नहीं होती और यह वार्त्ता भी प्रकट है कि जो मेरे पुत्र धर्म के अधिकारी होवेंगे तो भगवतही इनको प्रतिपाल भली प्रकार करेंगे और जो धर्म से हीनहुये तो मुझको इनकी चिन्ता ही कुछ नहीं बहुरि एक और सन्त बड़े धनवान् हुये हैं सो सर्वदा अपनी सम्पदा भगवत् अर्थ देते थे तब किसी ने उनसे कहा कि कुछ धन अपनी सन्तान के निमित्त भी राखो तब उन्होंने कहा कि मैं धन को भगवत् के निकट अपने निमित्त रखताहूं और पुत्रों की प्रारब्ध करनेवाला भगवत् है बहुरि यहियानामी सन्त ने कहा है कि मृत्यु के समय धनवान् पुरुष को दो दुःख अवश्यही लगते हैं सो एक तो उसकी सर्वसम्पदा दूर होती है और दूसरे धर्मराज के दण्ड का अधिकारी होता है पर ऐसे जान तू कि यद्यपि यह धन महानिन्द्यहै तौभी कुछ इस बिषे विशेषता कहीहै क्योंकि यह धनरूपी पदार्थ उपाधि और भलाई दोनों का बीज है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि यह धन भी उत्तम पदार्थ है पर

बुद्धिमान् और धर्मात्मा पुरुषों को और यों भी कहा है जब यह मनुष्य अत्यन्त निर्द्धन होता है तब निस्सन्देह महाराज से विमुख होजाता है क्योंकि जब अपने सम्बन्धियों और आपको भूखसंयुक्त अधीन देखता है तब ऐसा जानता है कि भगवत् ने यह कैसी अनीति रची है कि पापी मनुष्यों को धन दिया है और सात्त्विकी मनुष्य ऐसे दुःखित किये हैं कि उनको एक दाम भी हाथ नहीं आता जिस करके भूख का निवारण करें बहुरि ऐसा अनुमान करता है कि जब भगवत् मेरे दुःख को नहीं जानता तब अन्तर्यामी क्योंकर हुआ और जब दुःखी जानता है और दे नहीं सक्ता तब पूर्ण समर्थ क्योंकर हुआ और जब समर्थ होकर नहीं देता तब दया और उदारता से हीन जाना जाता है और जब इस निमित्त नहीं देता कि परलोक बिषे सुखी करूंगा तब ऐसे जाना जाता है कि दुःख दिये विना सुख देने को समर्थ नहीं होसक्ता ताते प्रसिद्ध है कि निर्द्धन पुरुष क्रोधवान् होकर ऐसा भी कहने लगता है कि समय विपरीत हुआ है और लोग अन्धहुये हैं जो अनधिकारियों को पदार्थ और धन देते हैं तात्पर्य यह कि सन्तोष विना यह मनुष्य इस प्रकार भगवत् से विमुख होता है और अपने भले बुरे को पहिंचान नहीं सक्ता ताते ऐसा पुरुष कोई दुर्लभ होता है जो निर्द्धन होकर भी प्रतीति करके उसही बिषे अपनी भलाई जाने पर ऐसे मनुष्य बहुत होते हैं जो निर्द्धनताई बिषे व्याकुल होजाते हैं इसी कारण से भगवत् ने यह धन भी जीव के छिद्रों को छिपानेवाला बनाया है और शरीर के निर्वाहमात्र संग्रह करना सन्तजनों ने भी प्रमाण कहा है ताते प्रसिद्ध हुआ कि इस प्रकार करके यह धन भी केवल निन्द्य नहीं बहुरि इसही धन बिषे एक यह भी लाभ है कि सब जिज्ञासुओं की अभिलाष परलोक के सुख पाने की होती है सो परलोक का सुख तबहीं प्राप्त होताहै जब प्रथम तीन पदार्थ प्राप्तहोवें सो एक तो विद्या और कोमल स्वभाव और इसकी स्थिति मन बिषे होती है १ और दूसरा पदार्थ शरीर के बिषे पायाजाता है सो वह आरोग्यता और जीवना है २ बहुरि तीसरा पदार्थ शरीर से बाहर पाया जाता है सो वह प्राणों की रक्षा के निमित्त शुद्ध जीविका है ३ पर जब इस पुरुष की श्रद्धा निष्काम होवै तब इन पदार्थों करके परलोक के सुख को पासक्ता है सो जिस पुरुष ने इस प्रकार निश्चय जाना है वह धन को कार्यमात्र अङ्गीकार करता

है और अधिक धन की सामग्री को हलाहल विष की नाईं जानता है सो इस वचन का अर्थ यहीहै जो कहाहै कि उत्तम पुरुषों को धनभी लाभदायक होताहै इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष धन को धर्म के निमित्त प्रियतम रखता है वह धर्मही को प्रियतम रखता है और जो पुरुष अपनी वासना के अनुसार धन को प्रियतम जानता है वह अपनी वासनाही का दास है और उसने इस मनुष्य जन्म के तात्पर्य को नहीं समझा ताते महामूर्ख है इसी पर इब्राहीम सन्तने कहा है कि हे महाराज! मेरी और मेरे प्रियतमों की प्रेतपूजा से रक्षाकर अर्थ यह कि सोना चांदी प्रेतरूप हैं और सबही लोभ संयुक्त इसको पूजते हैं ताते तू मेरे हृदय से इसकी प्रीति को दूरकर (अथ प्रकट करने ला। और विघ्न धनके) ऐसे जान तू कि यह धन सर्प की नाईं है अर्थ यह कि जैसे विष और मणि दोनों सर्पही से उपजते हैं तैसेही धन विषे भी गुण दोष पाये जाते हैं सो जबलग विष और मणि के स्वरूप को भिन्न २ करके न कहिये तब लग वचनका तात्पर्य परमसिद्ध नहीं होता ताते मैं धनके गुण और दोष भिन्न२ करके कहताहूं पर धन के लाभ दो प्रकार के प्रसिद्ध हैं सो एक तो संसारी लाभ है कि धनवान् पुरुष जगत विषे बड़ाई को पावता है और इत्यादिक अवर जो स्थूल लाभ हैं सो आपही प्रसिद्ध हैं बहुरि दूसरे धर्म के मार्ग विषे धन के लाभ हैं सो यह भी तीन हैं एक तो अपने शरीर की जीविका होती है और जितने शुभकर्म हैं सो वह शरीर के सम्बन्ध करके सिद्ध होते हैं ताते सर्व शुभ कर्मों का बीज शुद्ध जीविका है पर जब जीविका की चिन्ता रहती है तब उस से भजन और अभ्यास कुछ नहीं होसक्का ताते जब इस पुरुष की मंशा धर्म के मार्ग की होवे तब जीविका का संग्रह रखना भी उसही मार्ग का तोशा होता है इसी पर एक वार्त्ता है कि सन्त के पास कुछ अनाज निष्पाप व्यवहार का आया था सो वह सन्त उस अनाज की मुष्टि भरकर कहने लगे कि इस शुद्ध जीविका को मैं निरुद्यमियों के भरोसे से विशेष जानता हूं पर इस भेद को सोई पुरुष समझता है जिसको अपने हृदय की शुद्धता और अशुद्धता की बूझ होती है और तबहीं वह जानता है कि शुद्ध जीविका करके इस प्रकार हृदय निःखेद रहता है और और लोगों की आशा दूर होजाती है और भजन विषे एकाग्रता दृढ़ होती है १ बहुरि दूसरा लाभ धर्ममार्ग सम्बन्धी धन का यह है कि और

जीवों को दान देता है तो भी इस पुरुष को भलाई प्राप्त होती है पर धन का देना भी चार प्रकार का है सो प्रथम यह है कि अर्थी और सात्त्विकी मनुष्यों की पूजा करनी तब उनकी प्रसन्नता करके व्यवहार और परमार्थ के सुख को प्राप्त होता है १ और दूसरा प्रकार देने का यह है कि मित्रों और सम्बन्धियों के साथ भाव करना और सर्व कार्यों विषे उदारचित्त होना सो यह भी धन करके होता है २ बहुरि तीसरा यह कि कितनेही पुरुष इसकी आशा रखतेहैं और जब उनको कुछ न देवै तब निन्दा करने लगते हैं जैसे ब्राह्मण व भाट व कवीश्वर होते हैं सो इनको देना भी बड़ा उपकार है क्योंकि वह सब निन्दा करने से छूटते हैं ३ बहुरि चौथा प्रकार यह है कि यह मनुष्य सब क्रिया अपनी आपही नहीं करसक्ता ताते केते पुरुषों के साथ व्यवहार का सम्बन्ध होताहै तब अपनी सेवा करनेवालों को देना भी विशेष है क्योंकि जब यह पुरुष अपनी क्रिया से निश्चिन्त होता है तब भजन विषे सावधान रहता है और यद्यपि अपने शरीर की क्रिया आपही करनी विशेष है तौभी जिस जिज्ञासु का चित्त अन्तर अभ्यास विषे दृढ होताहै तब उसको स्थूल क्रिया का अत्यन्त अधिकार नहीं रहता ४।२ बहुरि तीसरा लाभ धन का धर्ममार्ग सम्बन्धी यह है कि धन करके और भी बड़े २ पुण्यकार्य होते हैं जैसे कूप, ताल और पुलों का बनाना अथवा अभ्यागतों के निमित्त धर्मशाला और ठाकुरद्वारे बनाने सो इत्यादिक पुण्यस्थान ऐसे उत्तम हैं कि इन्हों करके चिरकाल पर्यन्त असंख्यजीवों को सुख होता है पर इनकी सिद्धता भी धन करके होती है (अथ प्रकटकरने विघ्न धन के) ताते जान तू कि इस धन विषे केते विघ्न तो स्थूल हैं और केते ऐसे हैं कि धर्म के मार्ग से विमुख करते हैं सो यह विघ्न भी तीन प्रकारके हैं प्रथम यह जो धन करके भोगों की प्राप्ति और पापक्रिया सुखेन होती हैं सो इस जीव का मन तो आगेही से ऐसा चपल है कि सर्वदा विषयों और पापों की ओर दौड़ता रहता है और जब सन्मानादिक बड़ाई को पावता है तब शीघ्रही पापों विषे जाय गिरता है और बुद्धि की शुद्धता नष्ट होजाती है बहुरि जब भोगों और पापों से हठ करके आपको बचाया चाहे तो भी बड़ा पुरुषार्थ चाहिये काहे से कि संपदा विषे विरक्त रहना महाकठिन है १ बहुरि दूसरा विघ्न यह है कि यद्यपि धनवान् पुरुष ऐसा विचारवान् होवे कि पाप कर्मों से बचायेराखे तौ भी खान पान और वस्त्रादि

भोगों से मुक्त नहीं होसक्ता क्योंकि ऐसा वैराग्य महादुर्लभ है जिस करके सम्पदा बिषेही आपको संयम साथ राखे जैसे व्यञ्जन के होते हुए भी रूखा अनाज खावे अथवा सुन्दर वस्त्रों के होतेहुयेही कमली आदिक पहरे ताते जब ऐसे वैराग्य को प्राप्त नहीं होता तब शरीर का स्वभाव अधिक भोगों के साथ मिलजाता है और राजसी व्यवहार का त्याग नहीं करसक्ता बहुरि अधिक भोगों की उत्पत्ति पापसे रहित होनी कठिन है इसी कारण से भोगी पुरुष अचानक ही पापों के समुद्र बिषे बहजाता है और इस संसार के जीवने को स्वर्गवत् जानता है ताते परलोक के मार्ग से विमुख रहता है और जिसको भोगों की तृष्णा होती है वह धन के निमित्त नाना प्रकार के पाखण्ड करता है और राजाओं का निकटवर्ती हुआ चाहता है तब अनेक शत्रु और ईर्षा करनेवाले उपज आवते हैं और परस्पर वैरभाव बिषे दृढ़ होजाता है सो ऐसे कर्म सबही पापरूप हैं तात्पर्य यह कि रजोगुणी बीज से अवश्यही तामसी वृक्ष उपजता है इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि माया की प्रीति सर्व पापों का कारण है और ऐसा महानरक है कि इसका अन्त कदाचित् नहीं आवता २ बहुरि तीसरा विघ्न धन का यह है कि यद्यपि धनवान् पुरुष भोगों और पापों से रहित भी होवे और सर्वथा वैराग्य संयुक्त रहे और विचार की मर्याद के साथ खर्च करे तौ भी धन की रक्षा के संकल्प बिषे ऐसा लीन होजाता है कि भजन और अभ्यास कर नहीं सक्ता सो सर्व शुभकर्मों का फल भगवत्भजन और प्रीति है और प्रीतिका रूप यह है कि भगवत् से इतर सर्व पदार्थों से विरक्त होवे पर ऐसी अवस्था तब प्राप्त होती है जब और सर्व संकल्पों से मुक्त होता है और धनवान् की विक्षेपता इस प्रकार है कि जब अधिक सामग्री रखता है तब तौ सहजही व्यवहार पसरता है पर जब और सामग्री कुछ न राखे और केवल सोना चांदी ही धरती बिषे दाबराखे तौभी उसको सर्वदा यही संकल्प रहता है कि ऐसा न होवे जो कोई पुरुष मेरा धन देखलेवे और अचानकही चुराय लेजावे तब मैं क्याकरूं तात्पर्य यह कि धनवान् का हृदय किसी प्रकार निस्संकल्प नहीं होता और चिन्ता का समुद्र होजाता है इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि जैसे जल बिषे सूखा रहना असम्भव है तैसेही मायाबिषे निर्लेप रहना कठिन है ताते मैंने धनके लाभ और विघ्न सबही प्रकट किये हैं पर जब बुद्धिमानों ने भली प्रकार

विचार करके देखा है तब यही निश्चय किया है कि शरीर के निर्वाहमात्र शुद्धजीविका का संग्रह करना अमृतरूप है और इससे अधिक संपदा निस्संदेह विषरूप है (अथ प्रकट करने विघ्न तृष्णा के) ताते जान तू कि यह तृष्णा-रूपी स्वभाव महानिन्द्य है काहे से कि लोभी मनुष्य व्यवहार विषे भी अना-दर को पावता है और सदैव लज्जावान् रहता है बहुरि इस लोभ से और भी अनेक अवगुण उपजते हैं जैसे कपट और पाखण्ड और धनवानों की अधी-नता विषे आसक्त रहता है और उनके अपमान को सहता है और उनके झूठ को सत्य कहता है सो इस मनुष्य को भगवत् ने प्रथमही तृष्णा सहित उत्पन्न किया है पर यह तृष्णा संतोष बिना कदाचित् दूर नहीं होती इसी पर महापुरुष ने कहा है कि यद्यपि इस मनुष्य को दो बँगले स्वर्ण से पूर्ण करदेवे तब तीसरे को चाहता है ताते मृत्यु ही इसको तृप्त करती है और और किसी पदार्थ करके तृप्त नहीं होता बहुरि यों भी कहा है कि धनकी तृष्णा और जीवने की आशा कदाचित् पूर्ण नहीं होती ताते उत्तम पुरुष यही है जिसको धर्ममार्ग की बूझ प्राप्त हुई है और शरीर के निर्वाहमात्र शुद्धजीविका पर संतोष करता है और योंभी कहा है कि जबलग यह मनुष्य अपनी सर्व प्रारब्ध नहीं भोगता तबलग निस्संदेह मृत्यु नहीं होता ताते तृष्णा का त्यागकरो और संतोष सहित जीविका को उत्पन्न करो और अधिक भोगों से विरक्त होवो और जो वार्त्ता अपने अर्थ हित लगती है वह औरों के अर्थ भी चाहो तब प्रीतिमान् होवोगे बहुरि एक बार महापुरुष ने कुछ जिज्ञासुजनों को यह उपदेश किया था कि भगवत से इतर किसी को न पूजो और उसी की आज्ञा विषे सावधान होवो और और किसी से याचना भी न करो सो जिनको महापुरुष ने यह उपदेश किया था उनकी ऐसी अवस्था हुई है कि जब घोड़े पर सवार होते और चाबुक हाथ से गिरपड़ता तब किसी को इस प्रकार न कहते थे कि हमको चाबुक उठा दो ताते आपही घोड़े पर से उतरकर उठा लेते थे बहुरि मूसानामी महापुरुष ने कहा है और भगवत् के आगे इस प्रकार प्रार्थना करी थी कि हे महाराज ! तेरी सर्वसृष्टि विषे अति धनवान् कौन है तब आकाशवाणी हुई कि जिस पुरुष को यथाप्राप्ति विषे सन्तोष है सोई अति धनवान् है बहुरि बिनती करी कि हे महाराज ! न्याय करनेवाला उत्तम कौन है तब आकाशवाणी हुई कि जिसने अपने ऊपर न्याय

किया है सोई उत्तम न्याय करनेवाला है इसी पर एक जिज्ञासुजन रूखी रोटी को जल के साथ भिगोकर खालेते थे और इस प्रकार कहते थे कि जिसने ऐसी जीविका पर सन्तोष किया है वह सब संसार से अचाह रहता है और इब्न मसऊद नामी सन्त ने भी कहा है कि एक देवता सदैव जगत् विषे पुकारके कहता है कि हे मनुष्यो ! जो कुछ जीविका तुम्हारे शरीर के निर्वाहमात्र है सो तुमको वही विशेष है काहेसे कि इससे जितनी अधिक सामग्री होती है उससे प्रमाद और अचेतता उपजती है इसी पर एक और सन्तने कहा है कि यह उदर तेरा सर्व मलिनता का घर है ताते तू इस उदर की तृष्णा के निमित्त नरकगामी क्यों होता है इसी पर महाराज ने भी कहा है कि हे मनुष्य ! जब मैं तुझको अधिक धन देऊं तौभी आहार ही करके तेरी तृप्ति होवेगी पर जब मैं तुझको आहारमात्र ही देतारहूं और व्यवहार की विक्षेपता और परलोक का दण्ड धनवानों के शीश पर डारूं तब तेरे ऊपर इससे बड़ा उपकार कौन है और एक बुद्धिमान् ने कहा है कि तृष्णावान् के समान दुःख सहनेवाला कोई नहीं और संतोषी के समान सुखी कोई नहीं और ईर्षा करनेवाले के समान चिन्तावान् कोई नहीं और वैराग्यवान् के समान सुखेन चित्त कोई नहीं और जो विद्यावान् करतूति से रहित होवे तिसके समान पश्चात्ताप करने योग्य और कोई नहीं इसी पर एक वार्त्ता है कि एक बधिक ने एक ममोला चिड़िया को फँसाया था तब ममोले ने कहा कि जब तू मुझको मारकर भक्षण करेगा तौभी तेरी तृप्ति न होवेगी ताते मैं तुझको तीन उपदेश करताहूं सो तीनों करके तुझको अधिक लाभ होवेगा पर एक वचन तेरे हाथ पर कहूंगा बहुरि जब मुझ को छोड़ेगा और मैं वृक्ष के ऊपर जा बैठूंगा तब दूसरा वचन कहूंगा और तीसरा वचन पहाड़ पर बैठकर कहूंगा तब बधिक ने कहा कि बहुत भला पर प्रथम वचन तो कह तब ममोला बोला कि जिस कार्य का समय बीतजावे तब उसके ऊपर पश्चात्ताप न करना तब बधिक ने ममोले को छोड़ दिया और वृक्ष के ऊपर जाबैठा तब बधिक ने दूसरा वचन पूछा तब ममोले ने कहा कि असंभव वार्त्तापर प्रतीति न करना इतना कहकर ममोला पहाड़ पर जाबैठा और कहने लगा कि हे अभागी ! जो तू मुझ को मारता तो मेरे उदरसे दो लाल निकलते और एक २ लाल दो २ पैसे के प्रमाण भारी था सो जब तू उनको पावता तब ऐसा धनी

होता कि कदाचित् निर्धनता को न देखता बधिक ने जब यह वार्त्ता सुनी तब हाहाकार करके हाथ मलने लगा और बड़े पश्चात्ताप को प्राप्तहुआ और इस प्रकार कहनेलगा कि अब तीसरा वचन कहु तब ममोले ने कहा कि तू ने तो वह दोनों उपदेश भी बिसारदिये अब तीसरा सुनकर क्या करेगा? काहे से कि मैंने तुझसे कहा था कि बीतगये कार्य का पश्चात्ताप न करना और असम्भव वार्त्ता पर प्रतीति न करना सो यह बड़ा आश्चर्य है कि मेरा शरीर ही दो पैसे भर न होवेगा तब चार पैसे भरके लाल मेरे उदर में क्योंकर समावते इतना कहकर ममोला उड़गया सो इस वार्त्ता का तात्पर्य यह है कि लोभी मनुष्य होनी और अनहोनी वार्त्ता का विचार नहीं करता और लोभ करके अन्ध होजाता है इसीपर एक सन्तने कहा है कि इस मनुष्य के गले विषे यह लोभ जेवड़ीरूप है और लोभ ही पांवों की बेड़ी है पर जब तू लोभ को दूरकरे तब तेरे गले से जेवड़ी और पांव से बेड़ी टूटजावें और तू मुक्तरूप होवे (अब प्रकट करना उपाय तृष्णा के निवृत्त करने का) ताते जान तू कि तृष्णा की औषध हठरूपी कटुता और बूझरूपी मिठाई करतूतिरूपी तीक्ष्णता के साथ मिलीहुई होती है सो जब मानसी रोगों के सर्व उपायों विषे ऐसीही औषध मिलती है तब वह रोग दूर होजाते हैं ताते तृष्णा की औषध पांचप्रकार करके होती है प्रथम यह है कि अपने कार्य को घटावे रूखे आहार और मोटे वस्त्र करके तब इतनेमात्र जीविका तृष्णा से रहित उत्पन्न होसक्ती है पर जब नाना प्रकार के रसों और सुन्दर वस्त्रों को चाहे तब कदाचित् तृप्त नहीं होसक्ता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि जिस पुरुष का व्यवहार संयम के साथ है वह निर्धन कदाचित् नहीं होता और यों भी कहा है कि यह तीन लक्षण सर्वजीवों को मुक्त करनेवाले हैं सो प्रथम यह कि गुप्त और प्रकट विषे भगवत् का भय करना और दूसरा यह कि विचार की मर्याद के अनुसार क्रोध और प्रसन्नता विषे विचरना और तीसरा यह कि संपदा और आपदा विषे संयम सहित जीविका करनी इसीपर एक वार्त्ता है कि अबूदरदा नामी सन्त एकबार खजूरों के फल गिरेहुए चुनते थे और इसप्रकार कहते थे कि यथाप्राप्त जीविका विषे प्रसन्न रहना भी बड़ा पुरुषार्थ है १ बहुरि दूसरा उपाय तृष्णा के घटावने का यह है कि जब इस पुरुष को एक दिन की जीविका प्राप्तहोवे तब दूसरे दिन की चिन्ता

न करे पर यह मनुष्य इस प्रकार संशय उपजावता है कि अभी ता तुझको बहुत जीवना है और कदाचित् कल्ह के दिन कुछ नहीं प्राप्त होवे ताते अबही उद्यम करके संचय कर रखिये सो यह मन तेरा ऐसा शत्रु है कि अगली चिन्ता करके आजही दुःखी किया चाहता है और निर्धनताई के भय से अबहीं तुझको निर्धन करता है पर जब ऐसा संकल्प फुरे तब जिज्ञासु को इस प्रकार विचार किया चाहिये कि यह जीविका तृष्णा करके उत्पन्न नहीं होती काहे से कि प्रारब्ध तो महाराज की रचीहुई है सो इस जीव को अवश्यही आन पहुँचती है और यों भी है कि जब अगले दिन जीविका न प्राप्तहुई तौभी इसकी उत्पत्ति के विषे जितना यत्न आज होता है सो उतनाही कल्ह होवेगा ताते अबहीं क्यों चिन्तावान् हूजिये इसीपर एकबार महापुरुष इब्नमसऊद के घर गये थे तब इब्नमसऊद को चिन्तावान् देखकर कहनेलगे कि तुम शोक और चिन्ता मतकरो काहे से कि तुम्हारी प्रारब्ध तुमको अवश्यही प्राप्त होरहेगी इसीपर महाराजने भी कहा है कि वैराग्यवान् को यत्न विनाही जीविका प्राप्त होती है इसी पर सिफयांसौरी ने कहा है कि तुझको तृष्णा से रहित होनाही विशेष है क्योंकि कोई संतोषवान् भूख करके दुःखी नहीं हुआ इसकरके कि भगवत् सर्व जीवों को उसके ऊपर दयालु करदेता है ताते याचना विनाही उसकी प्रतिपाल होती है इसीपर एक और सन्त ने कहा है कि जो मेरी प्रारब्ध है सो मुझको यत्न विनाही प्राप्त होवेगी और जो मेरी प्रारब्ध नहीं सो सर्व मनुष्यों और देवतों के यत्न करके भी प्राप्त न होवेगी ताते जीविका के निमित्त मेरा यत्न और अधैर्यता क्या काम आवेंगे २ बहुरि तीसरा उपाय यह है कि जब इस पुरुष को निराश होने विषे यत्न भासता है तब ऐसे जानना प्रमाण है कि जब किसी की आशा करूंगा तब यत्न और खेद भी होजावेगा और मैं निर्लज्जता को भी प्राप्त होऊंगा और भगवत् से भी विमुख रहूंगा पर जब मैं निराशता विषेही धैर्य करूंगा तब निस्संदेह लाभ को प्राप्त होऊंगा तात्पर्य यह कि निराशता विषे धैर्य करना लोभ के अप्रमाण दुःख से सर्व प्रकार विशेष है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि प्रीतिमान् की बड़ाई यही है जो संतोष करके सर्व संसार से अचाह रहता है ऐसेही अली सन्त ने कहा है कि जिसके साथ कुछ तेरा प्रयोजन है तब तू उसी का दास है और जिसका प्रयोजन तेरे साथ है सो निस्संदेह वह

तेराही दास है और जिस पदार्थ से तू अचाह है तब तुझको उसकी अधीनता नहीं रहती ३ बहुरि चौथा उपाय यह है कि जिज्ञासु प्रथम अपने हृदय विषे ऐसे विचार कर देखे कि मैं तृष्णा और लोभ किस निमित्त करताहूं पर जब मैं अहंकार के निमित्त करूं तब यह तो वृषभों और गर्दभों का काम है और जो कामादिकों के निमित्त तृष्णा करता हूं तो शूकर और पक्षी चिड़िया मुझसे अधिक भोगी हैं अथवा जब नाना प्रकार के वस्त्रादिक के निमित्त यत्न करता हूं तब केते तामसी मनुष्य भी मुझसे अधिक धनवान् हैं तात्पर्य यह कि जब इस प्रकार विचार करके तृष्णा को दूर करे तब सर्व संसार से उत्तम अवस्था को पावे और सन्त जनों के पद को जापहुँचे ४ बहुरि पांचवां उपाय तृष्णा के घटाने का यह है कि वारंवार धनके विघ्नों को विचारे और इस प्रकार जाने कि धनवान् पुरुष इस लोक विषे भी डरता रहता है और परलोक विषे भी दण्ड का अधिकारी होता है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि सदैव आपसे अधिक निर्द्धनों को देखतारहे और धनवानों की ओर न देखे तब भगवत् के उपकार को प्रकट जाने पर यह मन ऐसा शत्रु है कि सर्वदा इस मनुष्य को भटकाता रहता है और ऐसा कहता है कि अमुक तो ऐसा धनवान् है और अमुक विद्यावान् तो किसी धन से भय नहीं करता ताते तू क्यों त्यागकरता है सो इस संकल्प का उपाय यह है कि आप से विशेष अवस्थावाले को परमार्थ सम्बन्ध में देखे तब अपनी नीचता को प्रकट जाने और अभिमान से रहित होवे और व्यवहार विषे आपसे अधिक निर्द्धनों की ओर देखे तब भगवत् के उपकार का ज्ञाताहोवे (अथ प्रकट करनी महिमा उदारता की) ताते जान तू कि जैसे निर्धनताई विषे जिज्ञासु को सन्तोष चाहिये तैसेही धन और सम्पदा विषे प्रीतिमान् को उदारता विशेष है और कृपणता को दूर करनाही भलाई का कारण है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि उदारतारूपी वृक्ष की मूल स्वर्ग विषे है और शाखा इसलोक विषे है ताते उदार पुरुष उसही शाखा को पकड़कर अवश्यही स्वर्ग को प्राप्त होताहै ऐसेही नरक विषे कृपणतारूपी वृक्षकी मूल है और शाखा इसलोक विषे है सो कृपण मनुष्य उसही शाखा को पकड़कर अवश्यही नरक को प्राप्तहोता है और यौंभी कहा है कि दो लक्षण भगवत् को अधिक प्रियतम हैं एक कोमल स्वभाव और दूसरा उदारता ऐसेही दो लक्षण निस्सन्देह भगवत्

से विमुख करते हैं एक कठोर स्वभाव और दूसरा कृपणता बहुरि योंभी कहा है कि उदार पुरुष के अवगुण को न देखो काहेसे कि उदार पुरुष को जब कुछ अवसर बनता है तब भगवतही उसकी सहाय करता है और योंभी कहा है कि उदार पुरुष भगवत् का निकटवर्ती है और परमसुख भी उसको निकट है और लोगों के चित्तविषे भी प्रियतम लगता है और नरकों से दूर है ऐसेही कृपण मनुष्य भगवत् के सुख से दूर है और लोगों के चित्त से भी दूर है और नरकों के निकट है इसी कारण से कृपण मनुष्य यद्यपि भजनवान् होवे तो भी उससे विद्याहीन उदार पुरुष को भगवत् अधिक प्रियतम रखता है क्योंकि कृपणता महामलिन स्वभाव है और योंभी कहा है कि जिन पुरुषों को परमपद की प्राप्ति हुई है सो जप तप और व्रत करके नहीं हुई वह हृदय की शुद्धता, दया और उदारता करके उत्तमपद विषे स्थित हुये हैं इसी पर अलीनामी सन्त ने कहा है कि जब तुझको सम्पदा प्राप्त होने लगे तब उदारता सहित खर्चकर काहेसे कि दान करके सम्पदा दूर न होवेगी और जब यह धन की सामग्री तुझ से दूर होनेलगे तब भी निश्शङ्क होकर दे क्योंकि वह तो आपही चलीजाती है और जब तू संचने की मंशा करेगा तब दण्डका अधिकारी होगा। इसीपर एक वार्त्ता है कि कोई पुरुष अपने मनोरथ की पाती लिख कर हसन नामी सन्त के निकट आया तब हसनजी ने पाती के पढ़े विनाही उससे कहा कि जितना कुछ तुझको चाहिये सो मांगले बहुरि किसी ने पूछा कि तुमने पाती क्यों नहीं पढ़ी तब वह कहने लगे कि जब मुझ को पाती पढ़ते कुछ ढील लगती और भगवत् मुझसे पूछता कि तैंने अर्थी का अर्थ पूर्ण करने विषे इतनी देर क्यों लगाई ? तब मैं क्या उत्तर कहता इसी भय करके मैंने पाती नहीं पढ़ी इसीपर एक और वार्त्ता है कि कोई धनवान् ने पचास सहस्र रुपया महापुरुष की स्त्री को भेंट किया था तब उन्होंने वह सब धन बांटदिया बहुरि जब व्रत खोलने का समय हुआ तब रूखाही भोजन खानेलगीं तब दासी ने कहा कि जो तुम अपने निमित्त भी एक दो पैसा रखलेती तो क्या होता ? तब उन्होंने कहा कि जब तू आगे मुझको स्मरण कराती तो तुझको भी उसमें से देदेती इसी पर एक और वार्त्ता है कि एक दिन अलीनामी सन्त रुदन करनेलगे तब किसी ने पूछा कि तुम क्यों रोते हो तब उन्होंने कहा कि सात दिन व्यतीत हुये हैं कि हमारे घर

कोई अभ्यागत नहीं आयाहै ताते इसी निमित्त मैं रोताहूं बहुरि एक और वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् ने अपने मित्र से कहाथा कि मुझको दोसौ रुपया देना है तब उस मित्र ने दोसौ रुपये उसको आनदिये और पीछे रुदन करनेलगा तब उसकी स्त्रीने कहा कि जब तुमको श्रद्धा देनेकी न थी तब प्रथमही न देते जो अब रुदन करतेहो तब उन्होंने कहा कि मैं धनके निमित्त नहीं रोता पर इस निमित्त रोताहूं कि मैं मित्र की व्यथासे इतना अचेत क्योंरहा ? जो उसको मांगना पड़ा सो मैंने यह मित्र की बड़ी अवज्ञा करीहै (अथ प्रकट करनी निषेधता कृपणता की) ताते जान तू कि महाराज ने भी इस प्रकार कहाहै कि जिनको धनरूपी पदार्थ प्राप्तहुआ है और वह कृपणता करते हैं तब वह धनही उनको विघ्नदायक होताहै और अन्तसमय विषे वही सम्पदा उनके गले की जंजीर होतीहै इसी पर महापुरुष ने भी यह कहा है कि कृपणता से सदैव दूर रहो काहे से कि इस कृपणता ने आगे भी बहुत लोगोंका नाशकिया है और जिनके ऊपर कृपणता प्रबल हुई है उन्होंने निश्शङ्क होकर जीवों का घातकिया है और अशुद्ध जीविका को शुद्धकर जानाहै और योंभी कहाहै कि तीनस्वभाव इस जीवकी बुद्धि को नाश करनेवाले हैं सो प्रथम तो कृपणता है और दूसरा अशुद्ध बासना के अनुसार करतूति करना और तीसरा आपको विशेष जानकर अभिमान करना इसीपर एक वार्त्ता है कि दो पुरुषों ने कुछ धन महापुरुष से मांगा था सो जब महापुरुष ने उनको दिया तब वे अधिक प्रसन्न हुये बहुरि महापुरुष ने उमर की ओर दृष्टि करके कहा कि ये लोग अधिक बिनती करके मुझसे मांगते हैं ताते मैं इनको कुछ देताहूं पर जब भलीप्रकार देखिये तब यह सकामता का द्रव्य उनको अग्निकी नाईं जलानेवाला है तब उमर ने पूछा कि जब तुम इस द्रव्य को अग्निरूप जानतेहो तब उनको किस निमित्त देते हो तब महापुरुषने कहा कि मैं उनकी अधिक दीनता देखकर भयवान् होताहूं और इससे भी भयकरता हूं कि कहीं मैंही कृपण न होजाऊं औरमेरी कृपणताकरके महाराज अप्रसन्न होजावें बहुरि एक और वार्त्ता है कि कोई पुरुष भगवत् के आगे इस प्रकार प्रार्थना करता था कि हे महाराज ! मेरे पाप को तू क्षमाकर तब महापुरुष ने उसको देखकर कहा कि तेरा पाप क्या है ? तब उसने कहा कि मेरा पाप अतिदीर्घहै और मुख से कहा नहीं जाता बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा पाप दीर्घ है कि पृथ्वी

दीर्घ है तब उसने कहा कि मेरा पाप दीर्घ है बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा पाप अधिक है अथवा आकाश अधिक है तब उसने कहा कि मेरा पाप अधिक है बहुरि महापुरुष ने कहा कि तेरा पाप बड़ा है अथवा महाराज की दया बड़ी है तब उसने कहा कि महाराज की दया तो निस्सन्देह अमित है तब महापुरुष ने कहा कि तू अपने पाप को प्रसिद्ध करके कह तब उस पुरुष ने कहा कि मैं अधिक धनवान् हूं पर जब किसी याचक को आया देखताहूं तब कृपणता की अग्नि करके जलने लगताहूं यह वार्त्ता सुनकर महापुरुष ने कहा कि मुझसे दूर हो क्योंकि यद्यपि तू सर्व आयुष्भर तीर्थोंपर स्थित होवे और रात्रि दिन भजन करता रहे बहुरि इतना रुदनकरे कि तेरे नेत्रों के जल करके बड़े प्रवाह चलें पर जबलग कृपणता का त्याग न करेगा तबलग नरकों के दुःख से न छूटेगा क्यों कि यह कृपणता मनमुखता है और अग्निरूप है और योंभी कहा है कि सदैव दो देवता भगवत् के आगे पुकार करके कहते हैं कि हे महाराज! धन को जोड़नेवालों की सम्पदा नष्टकर और उदार पुरुषों को अधिक सम्पदा दे बहुरि एकबार एक सन्तने शैतान से पूछाथा कि तू प्रियतम किस को रखता है और शत्रु किसको जानता है तब उसने कहा कि मैं कृपण तपस्वी को प्रियतम रखताहूं काहे से कि वह तप और कष्टकरके दुःख खींचता है और कृपणता करके फल उसका नष्ट होजाता है बहुरि राजसीपुरुष उदार को अपना शत्रु जानताहूं काहेसे कि वह शरीर करके भी सुख भोगता है और मैं डरताहूं कि उदारता करके उसके ऊपर भगवत् क्षमा करे और अपनी दया करके उसको वैराग्य प्राप्त करदेवे (अथ निरूपण परम उदारता का) ताते जान तू कि एक उदारता है और एक परमउदारता है सो उदारता यह है कि जिस पदार्थ की इसको अपेक्षा न होवे उसको भगवत् अर्थ उठादेवे और परमउदारता यह है कि जिस पदार्थ की इसको अति अपेक्षा होवे और वह पदार्थ किसी और अर्थी को उठादेवे और ऐसेही परमकृपणता यह है कि यद्यपि उसको कुछ अपने शरीर का प्रयोजन होवे तौभी खर्च नहीं करता और अपने मनोरथ को भी और मनुष्यों की आशा करके पूर्ण कियाचाहता है और अपने धनकी गांठ को खोल नहीं सक्ता और महापुरुष ने इस प्रकार कहा है कि जो पुरुष अपने अर्थ की ओर दृष्टि न करे और और के अर्थको पूर्ण करे तब उसके ऊपर भगवत् अति-

प्रसन्न होता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् के घर कोई अभ्यागत आया था और उनके घर में भोजन अल्प था तब उन्होंने दीपक को बुझादिया और मिलकर भोजन करने को बैठे पर आप कुछ नहीं खाते थे और योंही रीते हाथ भोजन बिषे डालते थे इस करके कि यह अभ्यागत तृप्त होकर खावे तब उनकी यह वार्त्ता सुनकर महापुरुष ने कहा कि तुम्हारी परम उदारता पर भगवत् अतिप्रसन्न होगा और मूसा महात्मा को भी आकाशवाणी हुई थी कि जो पुरुष सर्व आयुष् बिषे एकबार भी अपने अर्थ का त्याग करके और का अर्थ पूर्ण करता है तब मैं उसके साथ लेखा नहीं करता इसीपर एक वार्त्ता है कि एक बड़ाधनी और उदार प्रीतिमान् अटन करता हुआ खजूर के बाग़ में जा निकला तब उसके सामने बाग़ के रखवाले को दो रोटी आईं बहुरि उसी समय बिषे एक कूकुर उसी बाग़ में आ निकला तब उस रखवाले ने एक रोटी उसको डालदी सो उस कूकुर ने वह शीघ्रही खा ली तब उस रखवाले ने दूसरी भी डालदी तब यह आश्चर्य देखकर उस रखवाले से प्रीतिमान् ने पूछा कि तुझ को घर से कितना भोजन आता है तब उसने कहा कि जितना तुमने देखा है तितनाही आता है बहुरि प्रीतिमान् ने कहा कि तैंने सबही किस निमित्त डाल दिया तब उसने कहा कि यहां आगे से कूकुर कोई न था और यह दूरसे आया है ताते मैंने यही मंशा करी कि यह कूकुर भूखा न रहे तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि लोग मुझको व्यर्थही उदार कहते हैं यह रखवाला तो मुझसे भी परम उदार है इतना कहकर उस प्रीतिमान् ने उस बाग़ और रखवाले को मोल ले-कर मुक्त करदिया और वह बाग़ भी उस रखवालेही को देदिया बहुरि एक और वार्त्ता है कि एकनामी सन्त के गृहबिषे कुछ अभ्यागत आये थे और उनके घर में भोजन अल्प था ताते उन्होंने रोटियों के टूक करडाले और दीपक बुझा कर भोजन करने के निमित्त एकत्र होकर बैठे बहुरि जब एक घड़ी के पीछे दीपक उन्होंने जलाया तब भोजन सब ज्योंका त्यों धरा देखा और किसी ने अङ्गीकार न किया तात्पर्य यह कि सब ने परमउदारता करी और योंही सब मंशा करतेभये कि हमारे मित्र तृप्त होकर खावें और हम को भूखा रहना भला है इसीपर एक प्रीतिमान् ने कहा है कि एकबार बड़ा युद्धहुआ और उसमें बहुत लोग घायल हुये थे और मेरा भाई भी उसी बिषे घायल पड़ा था तब मैं उसके

निमित्त जलका पात्र भरकर लेगया सो जब मैं उसको जल देनेलगा तब एक और घायल ने कहा कि मुझको जल पिलादो तब मेरे भाई ने कहा कि प्रथम इसी को पिलादो बहुरि जब मैं उसके निकट गया तब एक और ने जल मांगा तब उस घायलने भी कहा कि प्रथम उसी को जल देदो सो जब मैं उसके निकट पहुँचा तबतक उसका शरीर छूटगया बहुरि जब मैं उनके निकटआया तब उस घायल और मेरे भाई के भी प्राण छूटगये प्रयोजन यह कि सबही ने अपने जीने से अपने मित्रों का जीना विशेष जाना और बशरहाफ़ी नामी सन्त ऐसे परमउदार हुये हैं कि जब उनका शरीर छूटनेलगा तब एक अर्थी ने आकर याचना करी और उन के पास कुछ न था तब उन्होंने अपने गले का वस्त्र उतार दिया और फिर और किसी का वस्त्र मांगकर गले में पहरा बहुरि एक मुहूर्त के पीछे शरीर का त्यागकिया तब बुद्धिमानों ने कहा कि बशरहाफ़ी जिसप्रकार इस लोक विषे आये थे तैसेही परलोक विषे गये अर्थ यह कि जैसे नग्न जन्मे थे तैसेही असंग्रह होकर गमन करतेभये (अथ उदारता कृपणता मर्याद निरूपण) ताते जान तू कि बहुत पुरुष आप को उदार जानते हैं और वह और लोगों के मत विषे कृपण होते हैं ताते इस भेद को अवश्य ही पहिंचानना चाहिये क्योंकि यह कृपणतारूपी दीर्घरोग है और जबलग ऐसे रोग को पहिंचानिये नहीं तबलग इसका उपाय क्योंकर करिये और यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है कि अर्थियों के अर्थ को सब कोई पूर्ण नहीं करसक्ता सो जब इसीका नाम कृपणता होवे तब सबही कृपण होते हैं पर ऐसा नहीं क्योंकि विचार की दृष्टिविषे जिस वस्तु का देना प्रमाण होवे उसको जो पुरुष न देवे तब वह कृपण कहाजाता है और जो पुरुष विचार के साथ सुगमही न देवे तब वह भी कृपणही कहाता है और जो पुरुष भोजन के निमित्त वस्तु लेताहुआ अधिक बिबादकरे अथवा सम्बन्धियों को आहार और वस्त्र सकुचकर देवे अथवा याचक को देखकर अपने आहार को छिपालेवे सो यह प्रसिद्ध कृपणता है क्योंकि कृपणता का अर्थ यही है कि जिस पदार्थ का देना प्रमाण है और जब वह वस्तु दे न सके तब जानिये कि यह कृपण है इस करके कि भगवत् ने यह धन व्यवहार के निमित्त उत्पन्न किया है सो जबलग इस भेदको न जाने और धनको इकट्ठा करताजावे तब यह कृपणता का लक्षण है बहुरि धनका देना प्रमाण यों है कि जिस प्रकार धर्मशास्त्र

बिषे कहा है अथवा जिस करके भाव और दया प्रकटहोवे और धर्मशास्त्र बिषे जो दशांश का देना अवश्यही कहा है सो यह संसारी जीवों का अधिकार है काहे से कि यह अल्पबुद्धि मनुष्य इससे अधिक कुछ नहीं देसक्के ताते विचारवानों के मत बिषे यहभी कृपणता है पर भाव के निमित्त जो धनका देना कहाहै सो इसका भी अधिकार भिन्न २ है जैसे एक वस्तु निर्द्धनों को देनी योग्य है और वही वस्तु धनवानों को देनी भली नहीं लगती अथवा अर्थियों को देनी प्रमाण है और मित्रको देनी निन्द्य है अथवा सम्बन्धियों को देनी अयोग्य है और २ लोगों को देनी अयोग्य नहीं अथवा कोई पदार्थ स्त्रियों को देना विशेषहै और पुरुषों को देना निन्द्य है तात्पर्य यह कि यद्यपि धन का संचना भी व्यवहार बिषे विशेष है पर जब संचने से अधिक प्रयोजन आन प्राप्तहोवे तब उस संचने से देना विशेष है और जबलग देनेका अधिक प्रयोजन न होवे तबलग धन का रखना प्रमाण है और जो कृपण मनुष्य है वह इस मर्याद बिषे स्थित नहीं होसक्ता जैसे कोई किसी के गृह बिषे अभ्यागत आवे तब भाव और प्रीति करके उसका प्रतिपाल करना धन के संचने से विशेष है पर जब अपने चित्त बिषे यह अनुमान करलेवे कि मैंने तो आगे ही दशांश दिया है और उसके भाव से विमुख रहे सो यह प्रसिद्ध कृपणता व नीचता है अथवा जब पड़ोसी इसका निर्द्धन होवे और इसके पास अन्न बहुत होवे सो जब उसे भूखा देखकर कुछ न देवे तब यह भी कृपणता है पर जबलग यथाशक्ति और दयाभाव संयुक्त देतारहे और इस पुरुष के पास धन इससे भी अधिक होवे तो भी परलोक की भलाई के निमित्त ऐसे कार्य करने के योग्य हैं कि कूप, ताल, पुल और ठाकुरद्वारे आदिक जो धर्म के स्थान हैं और जिन करके चिरकाल पर्यन्त अर्थीजीवों को सुख प्राप्त होता है सो तिनके बनाने बिषे धन को लगावे पर जब ऐसे कार्य भी न करे तब संसारी जीवों के मत बिषे कृपण नहीं कहा जाता और विचारवानों के मत बिषे यह भी कृपणता है तात्पर्य यह कि जब शास्त्र के अनुसार और भाव के अनुसार देतारहे तब कृपणता से मुक्त होता है पर उदार तबहीं कहाजाता है जब उसका देना बढ़ताजावे सो यह भी धनकी मर्याद के अनुसार भिन्न २ अधिकार होताहै पर जिसको देना सुगम होवे सो वह उदार कहाता है और जो पुरुष कठिनता करके देवे सो कृपण है

अथवा जो मनुष्य यश और मान के निमित्त दानकरे अथवा प्रति उपकार की इच्छा राखे तौभी उदार नहीं काहे से कि उदारता निष्काम देने का नाम है पर प्रयोजन से रहित होना इस जीव से कठिन है क्योंकि प्रयोजन विना देना भगवत्ही का काम है पर जब स्वर्ग अथवा मनकी कामना के निमित्त देवे तब संसारी जीवों के मत बिषे वह भी उदार है और सन्तजनोंके मत बिषे उदारता यह है कि निष्काम होकर जीव और शरीर सर्वस्व भगवत् अर्थ अर्पण कर देवे और महाराज की प्रीति बिषे ऐसा मग्न होवे कि अपने शरीर और जीवके देने को कुछ वस्तुही न जाने और अपने आपके देनेही करके आनन्दवान् होवे (अथ उपाय कृपणता निवारण निरूपण) ताते जान तू कि कृपणता का उपाय बूझ और करतूति के सम्बन्ध करके होताहै सो बूझ यह है कि प्रथमही कृपणता के कारण को पहिंचाने क्योंकि जिस रोगका कारण जाना नहीं जाता तब उसका उपाय भी नहीं करसक्ता सो कृपणता का कारण भोगों की प्रीति है सो धन विना इन्द्रियों के भोग सिद्ध नहीं होते १ और दूसरा कारण जीनेकी अधिक आशाहै २ इस करके कि जब यह मनुष्य ऐसा जाने कि मुझको कुछ दिन में अथवा श्वास के उपरान्त मरना है तब स्वाभाविकही धनकी प्रीति क्षीण होजावे पर जिसकी कुछ संतान होती है तब उसका हृदय मरनेके समय भी नहीं खुलता क्योंकि मोह करके पुत्रों का जीनाभी अपने जीने की नाईं जानता है ताते कृपणता की गांठि दृढ़ होजाती है इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि यह संतानही कृपणता और मोहका कारण है पर जो पुरुष भोगों के निमित्त धनको प्रियतम राखे अथवा धनकी प्रीतिकरके जिसको अधिक भोगों की अभिलाष उपजआवे तब उसको तो अधिक जीनेकी आशा करके धन और सम्पदाके संचनेकी बासना दृढ़ होजाती है पर एक ऐसे कृपण पुरुष होते हैं कि वह केवल चांदी सोने ही को प्रियतम रखते हैं और जब रोगी होते हैं तब अपने शरीरका उपचार भी नहीं करते और दशांश भी नहीं देसक्के और उनके मनमें यही प्रिय लगता है कि चांदी सोनाही हमारे निकट दबारहे और यद्यपि ऐसाभी जानते हैं कि जब हम मरेंगे तब हमारे पीछे यह धन हमारे शत्रुही लेजावेंगे तौभी कृपणता करके खर्च नहीं करसक्के सो यह ऐसा दीर्घ रोग है कि इसका उपाय करना महाकठिन होता है पर जब तैंने कृपणता के कारण को जाना तब इस

प्रकार समझना चाहिये कि भोगों की प्रीति का उपाय संयम है ताते जब यह पुरुष संतोष करके भोगों का त्याग करता है तब स्वाभाविकही धन की प्रीति क्षीण होजाती है १ और अधिक जीनेकी आशाका उपाय यह है कि सदैव मृत्यु को चेतता रहे और अपने सम्बन्धियों की ओर बिचार करके देखे कि मेरी नाईं वह भी धन को संचते थे और मरने से अचेत थे बहुरि अचानकही पश्चात्ताप संयुक्त मृत्यु को प्राप्तहुये और वह धन सबही उनके शत्रु बांटलेगये बहुरि पुत्रों की निर्द्धनता के भय करके जो कृपणता होती है सो तिसका उपाय यह है कि सर्वजीवोंका उत्पन्न और पालनकर्त्ता भगवतही को जाने और इस प्रकार समझे कि जिसके भाग्य विषे भगवत् ने निर्द्धनता लिखी है वह मेरी कृपणता करके किसी प्रकार धनवान् न होवेगा और जब मेरी सम्पदा अधिक शेष रहेगी तौभी व्यर्थ ही नष्ट होजावेगी और जब इनकी प्रारब्ध विषे भगवतने धन सम्पदा रची है तब मेरी सम्पदा विनाही उनको धन प्राप्तहोवेगा और यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है कि केते पुरुष पिता की सम्पदा विनाही धनवान् दृष्टि आवते हैं और केते पुरुषों को पिता का धन भी अधिक प्राप्तहुआ तौ भी निर्द्धन होगये हैं ताते इस प्रकार विचार करे कि जो मेरे पुत्र भगवत् के आज्ञाकारी हुये तौ उनको भगवत् की प्रसन्नता ही बहुत है और जब भगवत् की आज्ञा से विमुखहुये तब उनको निर्द्धनताही विशेष है क्योंकि निर्द्धनता करके अनेक पापों से बचेंगे २ बहुरि जितने वचन कृपणता की निषेधता और उदारता की विशेषता विषे सन्तजनों के आये हैं सो तिनको वारंवार विचारे और ऐसा जाने कि कृपण मनुष्य यद्यपि भजनवान् होवे तौ भी निस्सन्देह नरकगामी होवेगा ताते जो धन और सम्पदा महाराज की अप्रसन्नता और नरकों का कारण है सो तिस धन करके मुझको क्या लाभ होवेगा ? बहुरि कृपण मनुष्यों की ओर देखे कि कृपण मनुष्य इसी संसार विषे कैसे अपमान को प्राप्त होते हैं और सब कोई उनका निरादर करता है ताते जब मैं भी कृपणता करूंगा तब अवश्यही सब लोगों के अभाव को प्राप्त होऊंगा सो बूझ करके जो उपाय कृपणता का कहा था सो यही है पर जब ऐसे विचार करके कृपणता दूर न होवे तब करतूति करके इस प्रकार उपाय होताहै कि जिस समय इस मनुष्य के हृदय विषे कुछ दया दान की श्रद्धा फुरे तब उसी समय श्रद्धा को पूर्णकरे और उस

सात्त्विकी संकल्प को व्यर्थ न डाले इसी पर एक वार्त्ता है कि एक सन्त मल त्यागने के स्थानविषे गये थे उसी समय विषे एक याचक ने आकर कहा कि मुझको कुछ देवो तब उन्होंने उसी स्थान से अपने अङ्ग का वस्त्र उतारकर अपने सेवक को डारदिया और इस प्रकार कहा कि यह वस्त्र इस याचक को देदो बहुरि जब उस स्थान से बाहर निकले तब टहलुवे ने कहा कि तुमने इतना धैर्य क्यों नहीं किया ? कि जब बाहर निकलते तब उठायदेते तब उन्होंने कहा कि मैं इस वार्त्ता से डरा था कि अब तो मेरे हृदय विषे देने का संकल्प फुरा है पर जब और संकल्प उपजकर इस श्रद्धा को गिरायदेवे तब मेरा अकाज होवेगा पर यह वार्त्ता भी निस्सन्देह है कि धन के दिये बिना किसी प्रकार कृपणता दूर नहीं होती जैसे प्रियतम के बिछुरे बिना प्रेमी का मोह नहीं छूटता तैसेही धन की प्रीति को दूर करनेका उपाय यही है कि धन का त्यागकरे ताते जब विचार करके देखिये तब इस धन को समुद्र विषे डालदेना भी कृपणता से विशेष है और धन का संग्रह महानिन्द्य है पर कृपणता को दूर करने का एक उत्तम उपाय यह भी है कि अपने मन को यश और मान का लालच देवे और उदारता विषे सावधान होवे अर्थ यह कि मन की अभिलाषा करके धन की तृष्णा को घटावे बहुरि जब धन की तृष्णा से मुक्तहोवे तब यत्न करके मान की अभिलाषा को भी दूर करे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे प्रथम बालक को माता के दूधसे वर्जित किया चाहते हैं तब उसको किसी और खान पान का लालच देकर पुचकार रखते हैं बहुरि जब वह दूध उसको विस्मरण हो जाता है तब उसको उस खानपान का भी अधिक लालच नहीं रहता तैसेही एक यह भी भला उपाय है कि एक स्वभाव की अधिकता करके दूसरे स्वभाव को घटावे और पीछे उस स्वभाव की अधिकता को भी दूर करदेवे जैसे किसी के वस्त्र में रुधिर लगाहोवे तब चाहिये कि प्रथम उसको लहीसे धोयलेवे बहुरि जब रुधिर का दाग दूर होजावे तब शुद्ध जल करके लहीकी अपवित्रता को भी दूर करदेवे तैसेही जब मान की अभिलाषा विषे बन्धायमान न होजावे तब मान करके कृपणता को दूर करना विशेष है पर जब और भावकरके देखिये तब यह वार्त्ता भी प्रसिद्ध है कि यद्यपि मान विषेही आसक्त होकर कृपणता को दूरकरे है तोभी कृपणता के बन्धन से मानका बन्धन कोमल है क्योंकि

कृपणता और मान दोनों यद्यपि मन के स्वभाव हैं पर तौभी इस बिषे इतना भेद है कि जैसे एक स्वप्न का बाग होवे और एक स्वप्न बिषे मल का स्थान भासे सो यद्यपि जाग्रत की अपेक्षा करके वह दोनों ठौर मिथ्या हैं पर स्वप्न बिषे उस मलिन स्थान से बाग विशेष है तातें प्रसिद्ध हुआ कि मान के लालच करके उदारता निन्द्य नहीं इस करके कि मान और दिखलावा भजन बिषे निस्सन्देह निषिद्ध कहे हैं व्यवहार बिषे नहीं तात्पर्य यह कि कृपण को मानधारी उदार पर दोष रखना प्रमाण नहीं क्योंकि कृपणता की मलिनता से मानसहित उदारता करनीही उत्तम है तातें जिस पुरुष को कृपणता के दूर करने की इच्छा होवे तब चाहिये कि जबलग उदारता का स्वभाव दृढ़ न होजावे तब लग यत्न करके भी धन को देवे तातें केते सन्तजनों ने इस प्रकार भी किया है कि जिज्ञासु को जब देखते थे कि एक स्थान बिषे आसक्त होगया है तब उस स्थान से और स्थान बिषे स्थित करते थे और फिर उस स्थान की सामग्री भी अर्थियों को उठादेते थे और जब देखते थे कि इस प्रीतिमान् की सुरति किसी नये वस्त्रबिषे आसक्त हुई है तब वह वस्त्र भी किसी याचक को दिवाय देते थे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् महापुरुष के पास पाँव का जूता; ले आयाथा सो उन्होंने पहरलिया पर जब भजन करनेलगे तब उसी जूते की ओर दृष्टि गई तब ऐसा कहने लगे कि मेरा पुराना जोड़ाही लेआओ तातें प्रसिद्ध हुआ कि धन के त्याग बिना धन का मोह नहीं छूटता सो जबलग इस पुरुष का हाथ खुला हुआ नहीं होता तबलग हृदय भी नहीं खुलता इस करके कि जब यह मनुष्य निर्द्धन होता है तब उदार और खुला हृदय रहता है और जब उसके पास कुछ धन इकट्ठा होजाता है तब संचने के रस बिषे बन्धायमान होजाता है और ऐसा कृपण होता है कि खर्च नहीं करसक्ता और जो पदार्थ इसके पास नहीं होता तब स्वाभाविकही उससे निर्मोह रहता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक राजा के आगे किसी पुरुष ने रत्नों का जड़ा हुआ कटोरा भेंट राखा था तब राजा ने उस कटोरे को देखकर एक बुद्धिमान् से पूछा कि यह कटोरा कैसा आश्चर्यरूप है ? तब उस बुद्धिमान् ने कहा कि यह कटोरा शोक और निर्द्धनताई का बीज है क्योंकि जब टूट जावेगा तब इसके समान और कटोरा पाया न जावेगा सो इसही निर्द्धनताई करके तुमको शोक

होवेगा और जब यह कटोरा तेरे पास न था तब तू निर्द्धनताई और शोक से मुक्त था सो दैवसंयोग कर वह कटोरा टूटगया और राजा को अधिक शोक प्राप्त हुआ तब कहनेलगा कि उस बुद्धिमान् ने सत्य कहाथा (अथ प्रकटकरने मन्त्र धन के) ताते जान तू कि यह धन सर्प की नाईं है कि इस बिषे बिष और अमृत दोनों पाये जाते हैं ताते मैंने पीछे भी वर्णन किया है कि मन्त्र के सीखे बिना धनरूपी सर्प को हाथ लगाना प्रमाण नहीं है पर जब कोई ऐसा कहे कि केते सन्तजन आगे भी हुये हैं सो जब धन का रखना अयोग्य होता तो वे किस निमित्त रखते सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई बालक किसी सपेरे के हाथमें सर्प को देखे और इस प्रकार कहे कि यह पुरुष सर्प को कोमल जानकर पकड़ता है ताते वह बालक भी सर्पपर हाथ डाले तब शीघ्रही नष्ट होजावे सो धनरूपी सर्प के मन्त्र पांच हैं एक यह है कि प्रथम धनके कार्य को पहिंचाने सो धन की उत्पत्ति का कारण यह है कि इस करके शरीर के खान पान और वस्त्र का कार्य सिद्ध होताहै और शरीर इन्द्रियों का स्थान है और इन्द्रियां बुद्धि की टहल करनेवाली हैं और बुद्धि का काम यह है कि इन्द्रियों करके भगवत् की कारीगरी को देखकर महाराज की सामर्थ्यता को पहिंचाने सो भगवत् की पहिंचान करके जीवात्मा शुद्ध होताहै ताते जिस पुरुष ने इस भेद को समझा है वह कार्यमात्रही धनको रखता है और अधिक आसक्त नहीं होता १ बहुरि दूसरा मन्त्र यह है कि प्रथम धन की उत्पत्ति छल और पाप से रहित करे और विचार की मर्याद अनुसार खर्चे २ बहुरि तीसरा मन्त्र यह है कि शरीर के कार्य से अधिक संग्रह न करे और जब कोई अर्थी देखे तब कृपणता करके उससे दुराय न राखे अथवा जब अधिक उदारता न करसके तबभी मर्याद के अनुसार दानदेवे ३ बहुरि चौथा मन्त्र यह है कि अपनी जीविका संयम के साथ करे और अधिक भोगों के बिषे धन को खर्च न करे क्योंकि संयमसहित जीविका करनी निर्दोष व्यवहारसे भी विशेष है ४ बहुरि पांचवां मन्त्र यह है कि धनके संचने और खर्च करने बिषे मंशा शुद्ध राखे और शुद्ध मंशा यह है कि जब किसी पदार्थ को अङ्गीकार करे तब उस करके अचिन्त्य भजनबिषे दृढ़ होने की मंशा राखे और जब किसी पदार्थ का त्यागकरे तब भी माया की सामग्री से निर्बन्ध होने के निमित्त त्यागे तात्पर्य यह कि सर्वथा अपने चित्त की

चितवनि धर्महीं के मार्ग विषे सावधानकरे ५. ताते जो पुरुष इस भेदको समझ कर धन को रखता है तब उसको धन के संग्रह करके दोष नहीं होता और धन का विषय उसको स्पर्श नहीं करता इसी पर अलीसन्त ने कहा है कि जब कोई पुरुष सर्व पृथ्वी के धनको संग्रहकरे और सर्व मंशा उसकी शुद्ध होवे तब निश्चय निर्दोषही रहता है और वह वैरागी है और जब कोई पुरुष केवल असंग्रही होवे पर मंशा उसकी निष्काम न होवे तब वह वैराग्यवान् नहीं कहाजाता ताते चाहिये कि जिज्ञासु का हृदय सर्वथा भगवत् के भजन की ओर सम्मुखरहे तब उसकी क्रिया सफल होती है और उसका भोजन करना और मल त्यागनाभी पुण्यरूप होता है क्योंकि यह सबही क्रिया शरीर को चाहिये हैं और धर्म के मार्ग विषे शरीर का सम्बन्ध है ताते शुद्ध मंशाकरके सर्वकर्म फलदायक होते हैं पर बहुत मनुष्य अचेतता करके धनरूपी सर्प के मन्त्रों को जान नहीं सके और मन की शुद्धता को भी नहीं पहिंचानते अथवा जब जानतेभी हैं तब करतूति विषे दृढ़ नहीं होते ताते उनको यही विशेष है कि धनकी अधिकता का त्यागकरें क्योंकि यद्यपि यह पुरुष धन की अधिकता करके भोगोंकी अधिकता विषे आसक्त न होवे तौभी संचने और रखने की विक्षेपता को पावता है इसीपर एक वार्त्ता है कि एक प्रीतिमान् महापुरुष के प्रियतम थे और उनके पास धन भी बहुत था सो एकबार उनके बणिज व्योपार की संप्रदाय मन देश से लेकर लोग आये और ऊंटों के शब्द का नगर में बड़ा शोर हुआ तब वह शोर सुनकर आयशा महापुरुष की स्त्री ने कहा कि महापुरुष ने सत्य कहाथा सो यही वार्त्ता किसी ने उस प्रीतिमान् को सुनाई तब वह अधीन होकर आयशाके निकट आये और पूछनेलगे कि महापुरुष ने क्या कहाथा ? तब आयशा ने कहा कि एकबार महापुरुष ने इस प्रकार कहाथा कि जब हमने सूक्ष्मदृष्टि करके ध्यान विषे स्वर्ग को देखा तब केते वैराग्यवान् वहां दृष्टिआये पर हमने स्वर्गविषे धनवान् जाता हुआ कोई नहीं देखा पर सब वैराग्यवानों से पीछे एक अमुक प्रीतिमान् चला जाता था सो चलने को समर्थ न होता था ताते यत्न करके गिरता गिरता स्वर्ग विषे जाय प्राप्तहुआ सो जब यह वार्त्ता उन प्रीतिमान् ने सुनी तब प्रसन्न होकर सब ऊंट और जो कुछ उनके ऊपर वस्तु थी सो अर्थियों को उठाय दी और जेते दास संग थे सो सब मुक्त करदिये और ऐसा कहनेलगे कि मैंभी

किसी प्रकार वैराग्यवानों के साथ जाय पहुँचूं तो भला है इसीपर एक और प्रीतिमान् ने कहा है कि जब मैं तीनसहस्र रुपया पाप से रहित नित्य प्रति उत्पन्न करूं और उसको धर्महीं के अर्थ खर्च करूं और भजन स्मरण विषे भी सावधान रहूं तौ भी मैं धन की विशेषता को नहीं चाहता तब किसी ने पूछा कि तुम ऐसे निर्दोष धन को क्यों नहीं चाहते तब उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार ऐसी शुद्धता करूं तौ भी मुझसे परलोक विषे पूछेंगे कि तैंने यह धन क्योंकर उत्पन्न किया था और किस प्रकार लगाया था सो मैं अपने विषे इतने प्रश्नोंके उत्तरों की सामर्थ्य नहीं देखता इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जिन पुरुषों ने पापसहित धन उपजा करके पापों विषे खर्चा है सो वे भी नरक-गामी होवेंगे और जिन्हों ने पापरहित धन उत्पन्न करके भोगों विषे लगाया है ते भी नरक को प्राप्त होवेंगे और जिन्हों ने पापकृत धन दान किया होवेगा ते भी नरक ते न छूटेंगे बहुरि जिसने पाप से रहित धन उपजाया होवेगा और धर्म ही के अर्थ लगाया होवेगा तब उसको परलोक विषे स्थित करके विचार करेंगे कि मत भजन से विमुख रहाहोवे अथवा अधिक भोगों विषे विचरा होवे अथवा दान करके अभिमानी हुआ होवे अथवा किसी सम्बन्धी और निर्द्धन पड़ोसी की सुरति न ली होवे अथवा विधि संयुक्त महाराज के उपकार का धन्यवाद न किया होवे इसी प्रकार धनवान् से एक २ वार्त्ता पूछेंगे सो जब कुछ अवज्ञा हुई होवेगी तब निस्संदेह ताड़ना होवेगी बहुरि महापुरुष ने कहा है कि मैंने इसी निमित्त निर्द्धनताई को अङ्गीकार किया है कि और लोग भी निर्द्धनताई को भला जानें बहुरि एकबार महापुरुष अपनी पुत्री के द्वारपर एक प्रीतिमान् के साथ जाय खड़ेहुये और पूछनेलगे कि हम भीतर आवें तब पुत्री ने कहा बहुत अच्छा पर मेरे अङ्गपर वस्त्र थोड़ा है तब महापुरुष ने अपना वस्त्र उतारकर भीतर डाल दिया बहुरि जब भीतर गये तब कहनेलगे कि हे पुत्री ! तेरी क्या अवस्था है ? तब पुत्री ने कहा कि मैं रोग और भूख करके अति आतुर हूं और आहारमात्र भी हाथ कुछ नहीं लगता ताते अब मेरे विषे भूख सहने की सामर्थ्य नहीं तब महापुरुष ने कहा कि हे पुत्री ! तू अधैर्य न कर मुझ को भी तीनदिन भूखेही व्यतीत हुये हैं सो यद्यपि मैं कुछ महाराज से मांगूं तो निस्सन्देह मुझ को प्राप्तहोवे पर मैंने माया के सुखों से विरक्त होकर परलोक

ही के सुखों को अङ्गीकार किया है ताते मैं किसी पदार्थ की याचना नहीं करता बहुरि पुत्री के शीश पर हाथ रखकर कहनेलगे कि तू इसही वैराग्य करके सर्व स्त्रियों से उत्तम होवेगी और परमसुख को पावेगी ताते धैर्य धरकर भगवत् का धन्यवाद कर इसीपर एक और वार्त्ता है कि ईसा महात्मा के साथ एक पुरुष मार्ग विषे संगी हुआ था और तीन रोटी उनके पास थीं सो जब जातेहुये नदी के तीरपर प्राप्त हुये तब दोनों पुरुषों ने दो रोटी भोजन करलीं बहुरि जब ईसाजी नदी की ओर गये तब दूसरे पुरुषने तीसरी रोटी भी खाली सो ईसाजी ने आकर पूछा कि तीसरी रोटी किसने ली है तब उसने कहा कि मैं तो नहीं जानता बहुरि जब आगे चले तब एक मृग मिला सो उसको मारकर दोनों ने भोजन किया और फिर भगवत् का नाम लेकर ईसाजी ने उसको सजीव कर दिया और संगी से कहनेलगे कि जिस महाराज की तैंने इतनी सामर्थ्य देखी है सो तिसकी दुहाई करके कह कि तीसरी रोटी कहां है बहुरि उसने कहा कि मुझको कुछ खबर नहीं फिर वहां से आगे चले तब आगे एक नदी आई सो उस पुरुष का हाथ पकड़कर सूखेही पार उतरगये बहुरि ईसाजी ने कहा कि जिस महाराज की सामर्थ्य करके तू सूखाही उतर आया है सो तिसको अन्तर्यामी जानकर कह कि तीसरी रोटी कहां है तब उस पुरुषने कहा कि मैं तो नहीं जानता बहुरि जब आगे गये तब वहां बहुतसा रेत इकट्ठा किया और भगवत् का नाम लेकर उसको स्वर्ण करदिया तब उस स्वर्ण के तीन भाग करके ईसाजी ने इस प्रकार कहा कि एक भाग मेरा और एक भाग तेरा और एक भाग उसका जिसने तीसरी रोटी खाई है तब वह पुरुष लोभ करके कहने लगा कि वह रोटी तो मैंनेही खाई थी तब ईसाजी ने कहा कि सोनेके तीनों ढेर तूही ले इतना कहकर चलेगये और वह पुरुष वहांही बैठारहा बहुरि दो पुरुष और वहां आन प्राप्त हुये और यह मंशा करनेलगे कि इस पुरुष को मारकर सब सोना हमहीं लेजावें तब आध २ बांटलेवें सो यही वार्त्ता मानकर एक पुरुष नगर विषे गया कि मैं तुम्हारे निमित्त भोजन लेआऊं बहुरि उसके चित्त विषे फुरा कि मैं उसको सोनेके ढेर किस निमित्त देताहूं ताते रोटियोंके विषे विष मिलालाया और वह दोनों पुरुष जो सोनेके ढेरपर बैठरहे थे तिन्होंने यह मंशा धारी थी कि जब वह पुरुष भोजन लेकर आवे तब उसको मारडालें और सब धन हमहीं बांटलेवें

बहुरि जब वह पुरुष आया तब उन्होंने शीघ्रही मारडाला और पीछे वह मिलकर भोजन करनेलगे तब बिषके प्रवेशकरके वहभी मृतक हुये और सोनेके ढेर तीनों वहांहीं पड़ेरहे बहुरि जब ईसाजी फिर उसी मार्ग आये तो देखा कि सोने के ढेर योंहीं पड़े हुये हैं और तीन पुरुष मृत्यु को प्राप्त हुये हैं तब अपने और प्रियतमों से कहा कि यह माया ऐसीही छलरूप है ताते भयसंयुक्त इसका त्याग करो तात्पर्य यह कि यद्यपि पुरुष बुद्धि और बलसंयुक्त होवे तोभी अधिक धनका अङ्गीकार न करे तो भला है क्योंकि बहुत से सर्प पकड़नेवाले पुरुष सर्पही के डसने करके मृतक होते हैं जिसके ऊपर भगवत् अपनी सहायता करे और उसको सब बिघ्नों से बचायलेवे तब उसकी वार्त्ता वचन से अगोचर है ॥

सातवां सर्ग ॥

मान बड़ाई की प्रीति के उपाय के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि मान और बड़ाई और अपनी स्तुति की प्रीति करके बहुत से लोगोंकी बुद्धि का नाश हुआ है और मानही की प्रीति करके वैरभाव और और अनेक पापों बिषे आसक्त होते हैं क्योंकि जब मान की अधिक प्रीति बढ़ती है तब धर्म के मार्ग से भ्रष्ट होजाता है और उस पुरुष का हृदय झूठ और कपट बिषे यही बध्यमान होताहै इसीपर महापुरुष ने कहा है कि धन और मानकी प्रीति कपट को इस प्रकार बढ़ाती है कि जैसे खेती को जल शीघ्रही वृद्धि करलेता है इसीपर अलीसन्त ने भी कहा है कि सर्वसंसार को दो अवगुणों ने नाश किया है सो एक वासना के अनुसार भोगोंबिषे बिचरना और दूसरे मान की प्रीतिबिषे आसक्त होना ताते इन दो विघ्नों से कोई विरला ही छूटता है जो मान और स्तुति की चाह न करे और माया के भोगों से विरक्त रहे इसीपर महाराज ने भी कहा है कि परलोक की भलाई उसही को प्राप्त होती है जिसको मान और बड़ाई की अभिलाष कुछ न होवे और महापुरुष ने कहा है कि जिन पुरुषों की अवस्था बाहर से कुचील भासती है और लोग उनको बावरा जानकर उनका वचन नहीं सुनते और धनवान् भी उनका आदर नहीं करते पर हृदय उनका भगवत् के प्रेम करके ऐसा उज्ज्वल है कि उनकी दया करके सब लोगों को शुद्धता प्राप्त होती है सो परमसुख के वही अधिकारी हैं और योंभी कहा है कि इस संसार बिषे एक ऐसे पुरुष होते हैं कि जब किसीसे

कुछ मांगें तब कोई पुरुष उनको एक पैसा भी नहीं देता पर जब महाराज से वैकुण्ठ की चाहकरें तौभी उनको सुगमही प्राप्त होता है इसीपर उमरनामी सन्त ने कहा है कि मैंने एक प्रीतिमान् को एकान्त ठौर विषे रोते देखा तब मैंने उस से पूछा कि तू क्यों रोता है ? तब उसनें कहा कि मैंने महापुरुष के मुख से इस प्रकार सुना है कि थोड़ा कपट भी मनमुखता है और भगवत् ऐसे वैरागियों को प्रियतम रखता है जो आपको लखातेही नहीं और कोई उनको पहिचान भी नहीं सक्ता पर हृदय उनका महाउज्ज्वल है और संशयरूपी अँधेरे से मुक्त हुये हैं इसी पर इब्राहीम अदहम सन्त ने कहा है कि जिसको इन्द्रियादिक भोग और अपनी स्तुति प्रिय लगती है सो ऐसा मनुष्य धर्म के मार्ग विषे सच्चा नहीं कहा जाता है इसी पर एक और सन्त ने कहा है कि सच्चे पुरुष का चिह्न यह है कि आपको किसी प्रकार लखावे नहीं इसी पर हसनबसरी सन्त नें कहाहै कि जिस पुरुष की बुद्धि दृढ़ नहीं होती और लोग उसका सन्मान करते हैं तब उस का हृदय स्थिर नहीं रहता बहुरि एकबार अयूबनामी सन्त मार्ग विषे चलेजाते थे सो बहुत पुरुष उनके लगचले तब कहनेलगे कि भगवत् इस वार्त्ता को भली प्रकार जानता है कि मैं अपने हृदय विषे जगत् के आदर को भला नहीं जानता और इस आदर को देखकर भगवत् के भय करके सकुच जाता हूं इसी पर सिफ्यांसौरी सन्त नें कहा है कि सन्तजनों ने आपको लखानेवाले को वस्त्र भी निन्द्य कहा है अर्थ यह कि जिस वस्त्र नवीन अथवा पुराने करके यह मनुष्य कुछ विशेष भासे सो ऐसा वस्त्र रखना अयोग्य है और जिज्ञासु को इस प्रकार विचारना प्रमाण है कि कोई इसकी वार्त्ता न चलावे इसीपर बशरहाफी सन्त ने कहाहै कि मानधारी पुरुष लोक और परलोक विषे भ्रष्ट हो जाता है (अथ प्रकट करना रूप मानका) तातें जान तू कि जैसे धनवान् का अर्थ यह है कि सम्पदा और धन की सामग्री उसके पास होती है तैसेही ऐश्वर्यवान् का अर्थ यह है कि लोगों के चित्त उसके वशीकार होते हैं और उसकी शक्ति सर्वहृदयों विषे प्रवेश करती है सो जिनका हृदय इसके अधीन हुआ तब उन का शरीर और धन भी इसही के वशीकार होता है बहुरि यह हृदय तिसहीके अधीन होता है कि जिसकी भलाई और पूर्णता पर इसकी प्रतीति होती है सो भलाई और पूर्णता विद्या और भले स्वभाव करके होती है अथवा स्थूल ऐश्वर्य

करके भी इस निमित्त बड़ाई होतीहै कि सबलोग मान और ऐश्वर्य को विशेष जानते हैं तात्पर्य यह कि जब यही मनुष्य किसीके सूक्ष्म अथवा स्थूल गुण को निश्चय करता है तब स्वाभाविकही इसका हृदय उसके अधीन होजाताहै ताते चित्त की प्रसन्नतासहित उसकी आज्ञा को मानता है और रसना करके उसकी महिमा करता है और शरीर करके उसकी सेवा बिषे सावधान होता है जैसे टहलुवा सर्वप्रकार अपने स्वामी के अधीन होताहै तैसे यह भी उसके अधीन होजाता है पर जब विचार करके देखिये तो और टहलुवे भय करके स्वामी की टहल करते हैं और गुण की प्रतीतिवाला प्रीतिसंयुक्त उसके अधीन होता है ताते मान का अर्थ यह है कि लोगोंके चित्त इसके वशीकार होवें पर इस मनुष्य को तीनकारणों करके धनकी अभिलाष से मान की प्रीति अधिक होती है सो प्रथम कारण यह है कि धन भी मनोरथों की पूर्णताई के निमित्त प्रिय लगताहै और मानरूपी पदार्थ ऐसा है कि मानधारी मनुष्यों को स्वाभाविक ही धन प्राप्त होता है और जब कोई नीच पुरुष धन करके मान को प्राप्त किया चाहे तब नहीं होता १ और दूसरा कारण यह है कि धन को चोर और राजदण्ड आदि अनेक भय होते हैं और मानी को ऐसे विघ्न नष्ट नहीं करसके २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि धनकी उत्पत्ति बड़े यत्नों करके होती है और मान यत्न विनाही बढ़ता जाता है क्योंकि जब एक पुरुष की प्रतीति दृढ़ हुई होवे तब उसके मुख से महिमा सुनकर देश देशान्तरों बिषे यश और मान पसर जाता है अधिक और लोगों के चित्त वशीकार होजाते हैं ताते धन और मान एक तो इस निमित्त जीवको प्रिय लगते हैं कि इन करके सर्व मनोरथों की पूर्णता होती है और दूसरे मनुष्यों का यह भी स्वभाव है कि यद्यपि ऐसा जाने कि मैं अमुक देश में पहुँचूंगाही नहीं तौ भी देशान्तरपर्यन्त अपना मान चाहता है सो इसका भेद यह है कि इस मनुष्य का हृदय देवताओंकी नाईं उत्तम जात है और ईश्वर का प्रतिबिम्ब है जैसे महापुरुष ने कहा है कि ये सर्वजीव महाराज की सत्तारूप हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि सर्व प्रकार इस जीव का सम्बन्ध भगवतही के साथ है इसी कारण से यह भी अपनी बड़ाई को चाहताहै सो जिस मनुष्य बिषे कुछ सामर्थ्यता होती है तब स्वाभाविक ही उसके हृदयबिषे अपने ऐश्वर्यकी अभिलाष आन फुरती है जैसे फिर औननामी एक

राजा भगवद्विमुख ने कहा था कि मैं सर्व जगत् का ईश्वर हूं सो यह स्वभाव सर्व मनुष्यों पर प्रबल है और ईश्वर का अर्थ यह है कि मेरे समान और कोई नहीं काहे से कि जिसका कोई विरोधी अथवा समान होता है तब उसका ऐश्वर्य खण्डित होजाता है जैसे सूर्य की पूर्णताई इस कारण करके प्रसिद्ध है कि उस की नाईं और कोई नहीं और सबही प्रकाश उसके आश्रित है तैसेही सर्वअङ्गों करके पूर्ण एक भगवतही है और सर्व विषे उसही की सत्ता भरपूर है और वह सर्वदा सत्यस्वरूप है ताते उसकी सत्ता बिना कोई पदार्थ सत्य नहीं भासता इसी कारण से कहा है कि सर्व पदार्थ उसही का प्रतिबिम्ब है और उसही के आश्रित हैं जैसे धूप सूर्य के आश्रित होती है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सब का ईश्वर एक महाराज है सो इस मनुष्य का भी यही स्वभाव है कि सर्वथा अपने ऐश्वर्य और पूर्णताई को चाहता है और यही इच्छा करता है कि सब कोई मेरे अधीन होवे पर अविद्या और शरीर के सम्बन्ध करके ऐसी सामर्थ्य को प्राप्त नहीं होसक्ता चैतन्यता के अंश के संयोग करके इस विषे भी ईश्वर का स्वभाव फुरता है पर तौ भी मलिन अहङ्कारों और विकारों करके अत्यन्त पराधीन हो रहा है ताते सर्व पदार्थों को अपने अधीन कर नहीं सक्ता और जीव की पराधीनता इस प्रकार है कि एक सृष्टि तो इसकी बुद्धि और बल से अगोचर है जैसे आकाश की पुरियां देव तारामण्डल और भूत प्रेत आदिक जीव और पाताल विषे जो सृष्टि है बहुरि पर्वतों और समुद्रों विषे जो नाना प्रकार की रचना है सो महाराजही नें रची है सो इन पर मनुष्य की सामर्थ्यता किसी प्रकार नहीं पहुँचती पर यद्यपि यह मनुष्य इस सामर्थ्यता से हीन है तौ भी अपने स्वभाव करके यह यत्न करता है कि मैं इन सृष्टियों के भेदको पहिंचानूं जैसे कोई शतरञ्ज का खेल न जाने तौ भी इसप्रकार चाहता है कि मैं शतरञ्जकी गोटोंको तो पहिंचानूं और जीत हार का ज्ञाता होजाऊं सो यह जानने की अभिलाष भी प्रबलता और ऐश्वर्य का अंग है बहुरि दूसरी सृष्टि ऐसी है कि उसपर इस मनुष्य का बल वर्त्तमान होता है जैसे बनस्पति और पशुआदिक जो २ धरती पर रचना हैं सो तिनको अपने वशीकार करलेता है और सर्व पदार्थों से उत्तम जो मनुष्यों के हृदय हैं सो तिनको भी अपने अधीन किया चाहता है और अपनी सामर्थ्यताके वृद्ध होनेको प्रियतम रखताहै सो मानका अर्थ यही है कि यह मनुष्य

परमेश्वरका अंश है ताते यह भी अपना ऐश्वर्य चाहता है पर इस विषे अविद्या यह है कि धन करके अपनी असमर्थता जानताहै ताते धन और मानको प्रियतम रखता है पर जब कोई इस प्रकार कहे कि जब मान और ऐश्वर्य की अभिलाष का स्वभाव इस करके फुरता है कि यह जीव महाराज का अंश है और परमेश्वर के साथ इसका सम्बन्ध है तब इस करके प्रसिद्ध हुआ कि मान और बड़ाईकी चाह करनी भी अयोग्य नहीं क्योंकि ईश्वर की पूर्णताई विद्या और समर्थताई करके होती है सो जैसे विद्या का ज्ञाता होना विशेष है तैसेही धन और मान जो समर्थताई का कारणहै सो इनकी अभिलाष करनी भी विशेष हुई तब इसका उत्तर यह है कि यद्यपि बूझ और समर्थता इस मनुष्य की पूर्णताई है और यही गुण महाराज के भी हैं पर तौभी इस मनुष्य को भगवत् ने उत्तम बूझकी ओर चलने का मार्ग दिया है और ऐश्वर्य की ओर मार्ग नहीं दिया क्योंकि जिस समर्थता करके भगवत् सर्व ब्रह्माण्डों को उत्पन्न और स्थित करताहै सो तिस समर्थता को यह जीव अपने यत्न करके पाय नहीं सक्ता और बूझरूपी पदार्थ ऐसाहै कि उसकी वृद्धि करके यथार्थ ज्ञान को पहुँचाताहै पर धन और मानका जो झूठा बल है सो इसकी वृद्धि के साथ समर्थताई की पूर्णता को नहीं पाता और यद्यपि धन और मानकी शक्ति करके आपको यह पुरुष बलवान् जानता है तौभी यह स्थूल बल स्थिर नहीं रहता क्योंकि धन और मान का सम्बन्ध इन्द्रियादिक पदार्थों के साथ होता है ताते मृत्यु के समय इससे दूर होजाते हैं और जो पदार्थ मृत्यु के समय दूर होवे सो तिसको सत्तास्वरूप नहीं कहते ताते उस की प्राप्तिविषे अपना समय व्यतीत करना मूर्खता है पर वह बल जो इसका सर्वदा संगी रहता है सो यह है कि जिस पदार्थ करके बूझकी प्राप्ति होवे क्योंकि बूझ का सम्बन्ध केवल हृदयही के साथ है और हृदय सत्यस्वरूप है ताते बूझ-वान् पुरुष इन्द्रियादिकदेश को त्याग जाता है तब बूझ का प्रकाश सदैव उस के साथ रहताहै और उसही प्रकाश करके महाराजके दर्शन को देखताहै और आनन्द को पावता है सो वह आनन्द कैसा है? कि उसके निकट स्वर्गादिक सुख भी तुच्छ भासते हैं इसी कारण से कहाहै कि बूझ का सम्बन्ध महाराजही के स्वरूप और उसके गुणके साथ होताहै ताते पूर्ण बूझ का परिणाम कदाचित् नहीं होता तात्पर्य यह कि नाशवन्त पदार्थका भाव कदाचित् नहीं होता और

जो सत्यस्वरूप है सो तिसका अभाव नहीं होता पर यह विद्या कि जिसका सम्बन्ध स्थूल पदार्थों के साथ है सो तिसका मोलही कुछ नहीं जैसे व्याकरण और ज्योतिषादि विद्या हैं सो यह सबही स्थूल हैं और व्याकरण आदिक की विशेषता भी इस करके होती है कि उसको पढ़कर सन्तजनों के वचनों का वेत्ता होवे और वचनों का वेत्ता होकर भगवत् के स्वरूप को पहिंचाने और भगवत् मार्गबिषे जो कठिन घाटियाँ हैं सो तिनको उल्लङ्घन करने के यत्न को समझे तात्पर्य यह कि जिस पदार्थ का परिणाम और नाशता होवे सो तिसकी बूझ भी नाशवन्त होती है और अविनाशी बूझ भगवतकी पहिंचान है सो परिणाम और नाशता से रहित है पर जिस पुरुष को जितनी बूझ प्राप्त होती है सो वह तितनाही भगवत् के निकट पहुँचता है ताते यह बूझ भी यथार्थरूप है और यथार्थ सामर्थ्य यह है कि जिसके बल करके भोगों के बंधन से मुक्त होवे काहे से कि जिस पुरुष का हृदय भोगवासनाबिषे बंधवान् है वह वासनाही का दास है और वासना ही की प्रबलता इसकी हीनता है और वासनासे मुक्त होना इस जीवकी पूर्णताई है और सम्पूर्णताई करके यह जीव देवतों के निर्मल स्वभाव को पहुँचताहै और परिणाम से रहित होता है ताते इस जीव की पूर्णताई यथार्थ ज्ञान और भोगों से विरक्त होती है सो अविनाशी रूप है और धनवान् की पूर्णताई नाशवन्त है सो प्रसिद्ध हुआ कि सबही मनुष्य अपनी पूर्णताई को जानतेही नहीं और अपनी हीनता को पूर्णता जानकर पड़े ढूंढ़ते हैं और सर्वदा दुःखी रहते हैं और मूर्खता करके स्थूल पदार्थों की ओर सम्मुख हुयेहैं और वास्तव में जो इनकी पूर्णताई है सो तिससे सर्वदा विमुख हैं इसी कारणसे अपनी हानि की ओर चलेजातेहैं पर ऐसे जान तू कि यह मान भी धनकी नाईं सर्वदा निंद्य नहीं अर्थ यह कि जैसे जीविकामात्र धन का संग्रह भी प्रमाण है तैसेही कार्यमात्र मान भी लाभदायक होताहै और जब धन और मान की अधिकता बिषे इस मनुष्य का हृदय आसक्त होवे तब निस्संदेह परलोकके मार्ग से दूर रह जाताहै सो मान का कार्य यह है कि मनुष्य को सेवक और मित्र सहायक और राजा रक्षा करनेवाला अवश्यही चाहिये सो यह सब तबहीं सिद्ध होते हैं जब उनके हृदय बिषे इसकी कुछ मानता होवे और इसको भला जानें ऐसेही जब पढ़ानेवाले के हृदयमें विद्यार्थी का मान कुछ न होवे तब उसको पढ़ावेही नहीं

और जब विद्यार्थी के हृदय में पढ़ानेवाले का मान कुछ न होवे तब उससे विद्या पढ़ न सके ताते प्रसिद्ध हुआ कि कार्यमात्र मान का संग्रह भी अयोग्य नहीं पर इस मान की प्राप्ति भी चार प्रकार करके होती है सो दो प्रकार निन्द्य हैं और दो प्रकार प्रमाण हैं पर वह दो प्रकार निन्द्य यह हैं कि एक तो अपने हृदय के भजन का दिखलावा करके मानको ढूंढ़ना और आपको भजनवान् दिखावना सो यह केवल दम्भ है काहेसे कि भजन भगवत् का निष्काम चाहिये सो जब भजन के सम्बन्ध करके मानकी प्राप्ति चाहे तब अयोग्य है १ और दूसरा प्रकार यह है कि जिस विद्याको यह पुरुष जानता न होवे और मान के निमित्त आपको उसका वेत्ता होय दिखावे तब यह भी अयोग्य है जैसे बिदेश बिषे जायकर कहे कि मैं ब्राह्मण हूं अथवा उत्तम जाति हूं अथवा अमुक व्यवहार की विद्या जानता हूं पर जब वास्तव में न होवे और मान के निमित्त झूठ कहदेवे तब यह ऐसे होता है कि जैसे कोई पाप और छल के साथ धन की उत्पत्ति करे २ बहुरि दो प्रकार जो मान के निमित्त प्रमाण कहे थे सो यह हैं कि जिस क्रिया बिषे छल भी न होवे और भजन का दिखलावा भी न होवे तब उस क्रिया को प्रकट दिखावे और व्यवहार के कार्य बिषे अपने मान को वृद्ध कर लेवे तब यह कर्त्ता अयोग्य नहीं १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि अपने पाप को दुरायकर अपना मान राखे और यह मंशा होवे कि जब मेरा अवगुण प्रसिद्ध होवेगा तब लोग मेरी निन्दा करेंगे तब मैं ढीठ होजाऊंगा सो इस प्रकार अपना मान रखना प्रमाण है पर इस निमित्त पाप को न दुरावे कि मुझको लोग साधु सन्त जानें २ (अथ प्रकट करना उपाय मान की प्रीतिका) ताते जान तू कि जब मान की प्रीति अधिक बढ़ती है तब यह भी हृदय बिषे दीर्घरोग उपजता है बहुरि इस रोग की निवृत्ति का उपाय किया चाहिये क्योंकि जब प्रथम ही इसका उपाय न करिये तब कपट दम्भ झूठ पाखण्ड वैरभाव ईर्षा इत्यादिक और भी अनेक पाप उपजते हैं ताते चाहिये कि धन और मान का इतनाही संग्रह करै जिस करके धर्मके मार्ग का निर्वाह होवे और अधिक आसक्त न होवे तब ऐसा बुद्धिमान् पुरुष रोगी नहीं होता क्योंकि वह धन और मान को प्रियतम नहीं रखता और उसकी मंशा यह होती है कि इन करके निश्चिन्त होकर भजनबिषे सावधान होऊं पर जिस पुरुषको मानही की अभि-

लाप बढ़ती है तब उसके चित्त की चितवनि सर्वदा लोगों की ओर रहती है कि यह लोग मुझको किस प्रकार जानते हैं और क्या कहते हैं और मुझपर कैसी प्रतीति रखते हैं ताते ऐसे रोग का उपाय करना अवश्यही प्रमाण है पर इसका उपाय भी बूझ और करतूति करके होता है सो बूझ यह है कि मानके विघ्नों का विचारकरे कि लोक और परलोक विषे मानी पुरुष दुःखी रहता है सो इस लोक का दुःख यह है कि मान की अभिलाषा करनेवाला पुरुष सर्वदा जगत् की मान और मनोहार विषे खेदवान् रहता है सो जब मान प्राप्त नहीं होता तब निर्लज्जता को पाताहै और जब प्राप्त होताहै तब केते शत्रु ईर्षा करनेवाले उपज आवते हैं और यह भी उनको मारनेके निमित्त वैरभाव विषे दृढ़ होताहै और शत्रुओं के छल से डरता रहता है ताते उसकी मंशा शुद्ध कदाचित् नहीं होती बहुरि जब शत्रुओं पर प्रबल होता है तौभी वह बड़ाई स्थिर नहीं रहती और क्षण विषे दूर होजाती है क्योंकि मान और बड़ाई का सम्बन्ध लोगों के मनके साथ होता है सो लोगों का मन समुद्र की लहरवत् पल २ विषे परिणाम को पावता है तात्पर्य यह कि जिस बड़ाई का मूल संसारी जीवों का मन होवे वह बड़ाई ही कुछ वस्तु नहीं होती काहेसे कि जब किंचित् भी संकल्प उनके चित्त विषे फुरता है तब वह बड़ाई नष्ट होजाती है पर यह मान जो किसी देश के राजसम्बन्ध करके होताहै सो यह तो महातुच्छरूप है क्योंकि जब राजा के हृदय विषे किंचित् भी चितवनि विपरीत फुरे तब अपने प्रधान को दूर करदेता है और उसकी मानता नष्ट होजाती है ताते प्रसिद्ध हुआ कि मानी मनुष्य इस लोक विषे सदैव इस प्रकार दुःखी रहता है और अल्पबुद्धि जीव इस वार्त्ता को नहीं पहिंचानते और जिनके बुद्धिरूपी नेत्र खुले हैं सो आपही इस प्रकार देखलेते हैं कि जब इस मनुष्य को उदय अस्तपर्यन्त निष्कण्टक राज्य होवे और सबही लोग उसको प्रणाम करें तो भी यह प्रसन्नता कुछ वस्तु नहीं क्योंकि जब यह मृत्यु होती है तब सबही सामग्री दूर होजाती हैं और अल्पकाल विषे वह आप ही नहीं रहता और उसकी प्रजा भी नहीं रहती सो जिस प्रकार बड़े २ चक्रवर्त्ती राजा आगे भी स्वप्न होगये हैं और कोई उनका स्मरण भी नहीं करता तैसेही यहभी स्वप्न होजावेगा ताते कुछ दिन की प्रसन्नता के निमित्त अमर राज्य को व्यर्थ करना बड़ी मूर्खता है इस करके कि जिस पुरुष का हृदय स्थूल

बड़ाई बिषे बध्यमान होताहै सो तिसके हृदय से भगवत् की प्रीति दूर होजाती है और जो मनुष्य भगवत् की प्रीति बिना ध्यानकी प्रीति के साथ बांधा हुआ परलोक बिषे पहुँचता है तब अवश्यही दीर्घ दुःख का अधिकारी होताहै सो मान को दूर करने का बूझकरके यही उपाय है और करतूति के साथ दो प्रकार करके उपाय होताहै सो प्रथम यह है कि जिस देश बिषे इसकी मान प्रतिष्ठा होवे उस देश को त्याग जावे और तहां जायरहै जहां इसको कोई पहिंचानेही नहीं सो यह भी उत्तम उपाय है क्योंकि जब अपने नगर बिषे एकान्त ठौर बैठता है तब लोग उसको त्यागी जानकर अधिक मान करते हैं ताते मानके रस बिषे आसक्त होजाताहै और जब कोई उसकी निन्दा करताहै तब दुःखी होताहै और अपने दूषण के उतारने के निमित्त झूठसे भी नहीं डरता १ बहुरि दूसरा उपाय यह है कि ऐसे आचार बिषे वर्ते जिसकरके लोगोंकी प्रतीति दूरहोजावेपर पापकर्म को अङ्गीकार न करे क्योंकि केते मूर्ख पापों बिषे बर्तेतेहैं और इस प्रकार कहते हैं कि हमने तो मानके दूर करने के निमित्त इस कर्मको अङ्गीकार किया है सो यह वार्ता अयोग्यहै ताते जिज्ञासु को इस प्रकार बर्तना चाहिये कि जिस करके पापकर्म से भी दूर रहै और लोगों की प्रतीति भी नष्ट होजावे जैसे एक सन्त के दर्शन को एक राजा आया था सो जब उन्होंने राजा को आते देखा तब रोटी और मूली हाथ में लेकर बड़े २ ग्रास खानेलगे बहुरि जब राजाने इस प्रकार देखा तब कहनेलगा कि यह तो तृष्णावान् है ताते वह राजा अपने गृह को लौटगया बहुरि एक और सन्त की भी अधिक मानता हुई थी ताते जब वह सन्त स्नान के स्थानसे स्नानकरके निकले तब किसी और का वस्त्र पहरकर द्वारे पर ठाढ़े होरहे बहुरि जब लोगों ने देखा कि यह तो चोर है तब उनको अधिक ताड़ना करी ऐसेही एक और भी सन्त की अधिक मानताथी तब उन्होंने एक शीशे में शरबत डालकर अपने निकट रखलिया और थोड़ा २ पीते रहे ताते लोगों ने जाना कि यह तो मदिरापान करतेहैं सो मानके दूर करनेके निमित्त जिज्ञासुजनों ने ऐसेही उपाय किये हैं (अथ प्रकट करना उपाय अपनी स्तुति की प्रीतिका) ताते जान तू कि बहुत पुरुषों को जगत् की स्तुति बिषे अधिक प्रीति होती है और सर्वदा अपनी महिमा को चाहते हैं सो यद्यपि शास्त्रों की मर्याद से विपरीत कर्म होवे तो भी स्तुति के निमित्त करलेते हैं और जो शुभ

कर्म भी होवे पर उस विषे लोग निन्दा करते होवें तौभी नहीं करसके सो यह भी दीर्घरोग है और जब इस रोग के कारणों को न पहिंचानिये तबलग इसका उपचार करना कठिन होताहै ताते स्तुति की अभिलाष के कारण चार हैं सो प्रथम यह है कि मनुष्य अपनी बड़ाई को चाहता है और अपनी हीनता पर ग्लानि रखता है ताते जब कोई इसकी स्तुति करताहै तब निस्सन्देह अपनी बड़ाई को समझता है और आनन्दित होताहै क्योंकि अपनी महिमा सुनकर अपना ऐश्वर्य निश्चय जानता है और ऐश्वर्य इसको अधिक प्रियतम लगता है बहुरि जब निन्दा सुनताहै तब अपनी हीनता को प्रत्यक्ष देखता है ताते दुःखी होताहै इसी कारण से जब स्तुति अथवा निन्दा किसी बुद्धिमान् पुरुष के मुख से श्रवण करताहै तब अधिक शोकवान् और प्रसन्न होताहै क्योंकि उसके यथार्थ वचन पर इसको अधिक प्रतीति होती है और जब मूर्ख के मुख से सुनता है तब उसके वचनपर प्रतीति ही नहीं रखता ताते शोक और प्रसन्नता भी अल्प होती है १ बहुरि दूसरा कारण यहहै कि स्तुति करनेवाले को अपना सेवक देखताहै और ऐसा जानता है कि इसके हृदय विषे मेरे गुण की प्रतीति है ताते आपको स्वामी जानता है इसी कारण से जब अपनी महिमा किसी श्रेष्ठ के मुख से सुनता है तब अधिक प्रसन्न होताहै और जब नीच पुरुष के मुख से श्रवण करता है तब ऐसा आनन्दवान् नहीं होता २ बहुरि तीसरा कारण यह है कि जब किसीको अपनी स्तुति करता देखता है तब यौंभी जानता है कि यह मेरी महिमा सुनकर और लोग भी मुझपर प्रतीति करेंगे और मेरे वशीकार होवेंगे इसी कारण से जब सभाविषे अपनी महिमा श्रवण करे तब अधिक प्रसन्न होताहै और जब एकांत ठौर विषे सुनता है तब ऐसा हर्षवान् नहीं होता ३ बहुरि चौथा कारण यह है कि स्तुति करनेवाले को अपने बलके अधीन जानता है और यद्यपि उसको अपना सेवक न जाने तौभी इस प्रकार समझता है कि यह पुरुष भय अथवा प्रयोजन करके मेरी स्तुति करता है सो यह वार्ता भी इसको अधिक प्रियतम है ताते आपको बड़ा जानकर प्रसन्न होताहै इसी कारण से जब उसका वचन सांचाभी न जाने और उसके वचन को कोई प्रमाण भी न करे बहुरि वह प्रतीति के साथ भी स्तुति न करे और प्रयोजन और भयकरके भी न कहता होवे केवल उपहास करके इसकी स्तुतिकरे प्रीतिका

कारण कोई न देखे तब प्रसन्न नहीं होता ४ पर जब तैंने इस रोग के कारणों को पहिंचाना तब इसका उपाय भी सुगमही समझैगा बहुरि जब पुरुषार्थ करेगा तब इस रोगको दूर करडालेगा ताते प्रथम कारण जो कहा है कि स्तुति करनेवाले के वचन करके अपनी बड़ाई को निश्चय करके प्रसन्न होताहै सो उसका उपाय यह है कि इस प्रकार विचार करे कि यद्यपि यह पुरुष बूझ और वैराग्य अथवा और किसी शुभ गुण करके मेरी स्तुति करता है और इसका वचन भी यथार्थ है तौभी तुझको भगवत् के उपकार पर प्रसन्न होना प्रमाण है क्योंकि यह शुभ गुण तुझको महाराजही ने दिये हैं सो किसीकी स्तुति निन्दा करके बढ़ते घटते नहीं बहुरि जब कोई मनुष्य इस प्रकार इसकी स्तुति करे कि तू धनवान् है अथवा महाराजा है अथवा किसी और स्थूल पदार्थ का वर्णन करे तब इस वार्ता पर तो प्रसन्न होनाही अयोग्य है क्योंकि यह सब सामग्री नाशवान् है और जो प्रसन्न भी होवे तो जिस महाराज की दातहै तिसके उपकार को निश्चय जान कर हर्षित होवे पर जब विचारकर देखिये तब अपने गुणों पर प्रसन्न होना भी प्रमाण नहीं क्योंकि इस वार्ता को कोई पुरुष नहीं जानता कि अन्तकाल विषे मेरा निर्वाह क्योंकर होवेगा और जबलग इस वार्ता को न जाने कि परलोक विषे मेरी कैसी गति होवेगी तबलग जिज्ञासु को प्रसन्न होना कदाचित् प्रमाण नहीं बहुरि जब कोई मनुष्य इसको गुणवान् कहे और यह पुरुष ऐसा जाने कि यह गुण मेरे विषे ही कोई नहीं तब ऐसी स्तुति पर प्रसन्न होना भी महा-मूर्खता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई कहे कि अमुक पुरुष का शरीर और सर्व अङ्ग सुगन्धता करके भरपूर है और मल मूत्र की दुर्गन्ध कुछ नहीं पर वह पुरुष जब ऐसा जानता होवे कि मेरे तो सर्वाङ्ग विषे विष्ठा मूत्र थूंक आदिक कुचीलता है और उसकी स्तुति सुनकर प्रसन्न होवे तब महामूर्ख कहाता है बहुरि मान और बड़ाई के निमित्त जो इसको अपनी स्तुति प्रिय लगती है सो इसका उपाय मैंने आगेही वर्णन किया है पर जब कोई तेरी निन्दा करे तब उसके ऊपर क्रोध करना और अप्रसन्न होनाही महामूर्खता है क्योंकि जब वह सत्य कहता तब वह देवता है और जब झूठ कहता है तब अ-सुर है और जब वह निन्दक अपने झूठ को भी न जाने तब पशु अथवा गर्दभ है तात्पर्य यह कि सत्य कहनेवाले को अपना गुरुदेव जानि ताते उसका वचन

सुनकर ग्लानि न करिये और अपने अवगुण पर शोकवान् हूजिये बहुरि जो मनुष्य असुर गर्दभ होवे तब उसके वचन को सुनकर प्रतीति करनाही अयोग्य है पर जब कोई तेरे स्थूल पदार्थ की निन्दा करे कि अङ्गहीन है अथवा निर्द्धन है तौभी अप्रसन्न होना प्रमाण नहीं क्योंकि यह तो सन्तजनों के निकट बड़ाई है बहुरि इस प्रकार विचार करना भी विशेष है कि जिस पुरुष ने तेरा अवगुण तुझसे प्रकट करके कहा है सो वह कहना भी तीन प्रकार से बाहर नहीं ताते जब उसने यथार्थ और दयासंयुक्त कहा है तब उसका उपकार जानिये क्योंकि जब कोई तुझ से कहे कि तेरे वस्त्र विषे सर्प है तब उस सर्प लखानेवाले का निस्संदेह यह उपकार होता है तैसेही अवगुणों का दुःख सर्प के डसने से भी तीक्ष्ण है इस करके कि अवगुणों करके बुद्धि का नाश होता है ताते दोष के लखानेवाले को मित्र जानिये जैसे तू किसी राजा के निकट जाने की मंशा करे और कोई पुरुष तुझको लखाय देवे कि तेरा वस्त्र मलिनता से भरा है प्रथम इसको धोयले सो जब तू उसका वचन मानकर अपना वस्त्र धोलेवे तब तुझ को उसका उपकार जानना प्रमाण है क्योंकि जब तू दुर्गन्ध भरे वस्त्र सहित राजा के निकट जाता तब उसकी सभा विषे निस्संदेह लजायमान होता १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि जब निन्दा करनेवाले पुरुष ने ईर्षा करके तेरा अवगुण प्रसिद्ध किया है तौभी उसने अपने धर्म की हानि करी है पर तेरी हानि तो कुछ नहीं क्योंकि जब तू उसका वचन सुनकर सहनशील होवेगा तब तुझ को धैर्यकी बड़ाई प्राप्त होवेगी अथवा यद्यपि उसने झूठ कहा है और तेरे विषे वह अवगुण नहीं तौभी और अवगुण तो तेरे विषे अधिक हैं ताते यह भी भगवत् का उपकार जानना चाहिये जो महाराज ने तेरे वे अवगुण प्रकट नहीं किये और निन्दक के शुभगुणों का पुण्य भी तुझको प्राप्त होवेगा और जो पुरुष तेरी स्तुति करता है सो विचार करके देखिये तो तेरा दुःखदायक होताहै क्योंकि वह स्तुति सुनकर तू अभिमानी होवेगा ताते तू मूर्खता करके अपने दुःख की वार्तापर प्रसन्न होताहै और अपनी भलाई विषे शोकवान् होताहै सो जिसकी ऐसी अवस्था होवे तब जानिये कि वह पुरुष स्थूलताकोही देखताहै और गुह्यभेद को नहीं पहिचानता और जो पुरुष बुद्धिमान् होताहै वह स्थूलता की ओर नहीं देखता और उसके अन्तर के भेद को समझता है तात्पर्य यह कि

जबलग इस पुरुष की आशा सर्व जगत् से दूर नहीं होती तबलग स्तुति और मान का रोग नष्ट नहीं होता (अथ प्रकट करना भेद सर्व मनुष्यों की अवस्था का कि स्तुति और निन्दा बिषे सबही पुरुष एक समान नहीं होते) ताते जान तू कि स्तुति और निन्दा बिषे भी जीवों की चार प्रकार की अवस्था होती हैं जो अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न होते हैं और स्तुति करनेवाले का उपकार जानते हैं ऐसेही निन्दा सुनकर क्रोधवान् होते हैं और निन्दक को दुखाया चाहते हैं सो यह अवस्था महानीच है १ बहुरि दूसरी सात्त्विकी मनुष्यों की अवस्था है सो यह है कि यद्यपि हृदय बिषे स्तुति निन्दा को समान नहीं जानते तौभी बाह्य व्यवहार बिषे निन्दक और महिमा करनेवाले के साथ सम बर्तते हैं २ बहुरि तीसरी अवस्था विचारवानों की यह है कि स्तुति और निन्दा को मन वचन कर्म करके समान रखते हैं ताते निन्दा सुनकर प्रसन्न भी नहीं होते और ईर्षा क्रोधभी नहीं करते बहुरि स्तुति को भी विशेष नहीं जानते क्योंकि उनका हृदय स्तुति और निन्दा से विरक्त ही रहताहै सो यह उत्तम अवस्था है पर केते अल्पबुद्धि जीव इस प्रकार जानते हैं कि हम इसही पद को प्राप्तहुये हैं सो जबलग अपने हृदय की परीक्षा न कर देखिये तबलग उनका कहना झूंठ होताहै सो परीक्षा यह है कि जब निन्दक उनके पास बैठरहे तो भी ग्लानि न करे अथवा जब वह किसी कार्य की सहायता चाहे तब स्तुति करनेवाले की नाईं उसकी सहायता करे और प्रियतम राखे बहुरि जैसे स्तुति करनेवाले का चित्त बिषे स्मरण करते हैं तैसेही जब निन्दक के मिलाप बिषे चिरकाल होजावे तब प्रीति सहित उसको भी याद करे अथवा जब कोई निन्दक को दुखावे तब जिस प्रकार स्तुति करनेवाले के दुःख करके दुःखी होता है तैसेही निन्दक के दुःख करके शोकवान् होवे सो यह अवस्था महाकठिन है कि जिस प्रकार स्तुति करनेवाले के अवगुण को नहीं विचारता तैसेही निन्दक का अवगुण देखकर भी क्रोधवान् न होवे पर अभिमानी मनुष्य ऐसेही कहते हैं कि हम धर्मही के निमित्त क्रोध करते हैं और उस निन्दक के दोष को दूर किया चाहते हैं सो यह भी मन का छल है क्योंकि और भी केते पुरुष अपकर्म करते हैं और अवरों की निन्दा करनेलगते हैं सो जबलग उनको देखकर ऐसी ग्लानि न करे त लग जानिये कि उनका क्रोध करना भी अपनी वासना के अनुसार है पर ये

तपस्वी लोग ऐसे सूक्ष्म छलों को कब पहिंचानसके हैं ताते विचार विना सब ही यत्न उनके व्यर्थ होते हैं ३ बहुरि चौथी अवस्था उत्तम पुरुषों की है सो यह है कि स्तुति करनेवाले को अपना शत्रु मानते हैं और निन्दक को प्रियतम रखते हैं क्योंकि निन्दक के वचन से अपने दोष को पहिंचानते हैं बहुरि उस दोष के निवृत्त करने की श्रद्धा बिषे सावधान होते हैं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष दिन को व्रत राखे और रात्रि बिषे जागतारहे और नाना प्रकार के वेष करे पर जबलग माया से विरक्त न होवे और अपनी महिमा को बुरी न जाने और निन्दक को प्रियतम न राखे तबलग उसकी सर्व क्रिया व्यर्थ होती है सो जब इस वचन के अर्थ को विचार करके देखिये तब ऐसे पदको प्राप्त होना महाकठिन है क्योंकि जीवों को दूसरी अवस्था भी कठिन होती है कि जो स्तुति करनेवाले और निन्दक को हृदय बिषे समान न जाने तो दोनों के साथ बाह्य करतूति बिषे तो भेद न राखे और मनुष्य तो सर्वदा अपनी स्तुति करनेवालों को प्रियतम रखते हैं और उनके कार्यों की सहायता करते हैं और निन्दक को दुखाया चाहते हैं ताते बाह्यक्रिया बिषे भी पापी होते हैं और हृदय की समता तो दुर्लभ है बहुरि यह चौथी अवस्था जो निन्दक को मित्र और प्रशंसक को शत्रु जानने की कही है सो इस अवस्था को पहुँचना अतिही क-ठिन है पर इसको वही पावता है जो अपने मनका विरोधी होवे और सर्वदा अपनी वासना के साथ युद्ध करे ताते जब किसीके मुख से अपना अवगुण सुने तब प्रसन्न होवे और निन्दक की बुद्धि को ऐसे उज्ज्वल देखे कि इसने मेरे दोष को किस प्रकार ढूंढ़लिया और ऐसेही प्रसन्न होवे जैसे अपने शत्रु का अवगुण सुनकर प्रसन्न होता है सो ऐसा जिज्ञासु जन भी कोई विरला होताहै इसीकारण से कहा है कि जो कोई सर्व आयुष्पर्यन्त यत्न और पुरुषार्थ करताहै तौ भी स्तुति निन्दा को समान करना कठिन है ताते जान तू कि जब यह पुरुष अपनी महिमा को प्रियतम रखता है और निन्दा पर ग्लानि रखताहै तब यह अभिलाष ऐसी प्रबल होती है कि अपनी स्तुति के निमित्त भजन बिषे भी दम्भ किया चाहता है और जब देखता है कि अमुक पाप करके मेरी स्तुति होवेगी तब पाप की शङ्का भी नहीं करता तात्पर्य यह कि जबलग मान और स्तुति की वासना का बीज मूलही से नष्ट न होवे तबलग शीघ्रही पापकर्मों बिषे

आसक्त होजाताहै पर जब बाह्य क्रिया विषे मित्र और शत्रु के साथ समान बर्ते और मन वचन कर्म करके निन्दक को दुखावे नहीं और उसका भलाही चिन्तन करतारहे और हृदय विषे शत्रु मित्रकी समता न करसके तौ भी पापी नहीं होता क्योंकि इस जीवका ऐसाही स्वभाव है अपने स्वभाव से दूर होना महाकठिन है ताते सन्तजनों ने इस प्रकार कहा है कि जब स्थूल पापों से रहित होवे तौभी विशेष है इसकरके कि सबही लोग बहुत से अपकर्म स्तुति की प्रीति और निन्दा की ग्लानि के निमित्त करते हैं और सर्वदा उनके चित्तकी चितवनि इसी अभिलाप विषे बन्धायमान रहती है कि किसी प्रकार हमारी स्तुति लोग करें ताते मन की वासना करके अपकर्मों विषे विचरने लगते हैं इस करके प्रसिद्ध हुआ कि सर्व मनुष्यों को लोगों का सम्मान और मनोहर करना निन्द्य नहीं पर मान के निमित्त कपट और दम्भ करना निन्द्य है और दुःखों का बीज है ॥

आठवां सर्ग ॥

दम्भ के निषेध और उपाय के वर्णन में ॥

ताते जान तू कि भगवत् भजन विषे दम्भ करना महापाप है और महाराज की ओर से विमुखता है ताते इसके समान और कोई रोग नहीं क्योंकि वेष-धारियों की मंशा सर्वदा यही रहती है कि किसी प्रकार लोग हमारा भजन देखें और हमको भजनवान् जानें सो जिस भजन विषे ऐसी कामना होती है उसको भगवत्भजन नहीं कहते और यह केवल जगतही की पूजा होती है अथवा जब कुछ भजन की कामना भी होवे तो भी दम्भ के साथ मिश्रित हो जाती है सो भगवत् भजन विषे दम्भ का मिश्रित होना भी मनमुखता है इसी पर महाराज ने कहा है कि जिस पुरुष को मेरे दर्शन की प्रीति है उसको चाहिये कि मेरे भजन विषे और लोगों की पूजा को मिश्रित न करे अर्थ यह कि दम्भ से रहित होवे और यों भी कहा है कि जो लोग अचेतता और दम्भ सहित मेरा भजन करते हैं सो परलोक विषे पश्चात्ताप करेंगे इसी पर म पुरुष से किसीने पूछा था कि इस जीव की मुक्ति क्योंकर होवे ? तब उन्हों ने कहा कि जब यह पुरुष दम्भसे रहित होकर भगवत्की आज्ञाविषे सावधान होवे तब शीघ्रही मुक्ति को पाताहै और योंभी कहा है कि परलोक विषे किसी मनुष्य से पूछेंगे कि तैंने भगवत्भजन किस प्रकार किया है तब वह कहेगा कि मैंने

धर्म के निमित्त शीश दिया था बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यह पुरुष झूठ कहता है क्योंकि इसने आपको शूरमा जनाने के निमित्त शीश दिया था तब वह भी नरकगामी होवेगा बहुरि एक और पुरुष से पूछेंगे कि तैंने महाराज की आज्ञा क्योंकर मानी है ? तब वह कहेगा कि मैंने भगवत् अर्थ अपने धन को दान किया है बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूठ कहता है क्योंकि इसने अपनी उदारता के प्रसिद्ध करने को दान दिया था ताते वह भी नरकगामी होवेगा बहुरि एक और पुरुष से पूछेंगे कि तैंने किस प्रकार भजन कियाथा तब वह कहेगा कि मैंने बड़े यत्न करके महाराज के वचनों को पढ़ा है तब आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूठ कहता है क्योंकि इसने आपको विद्यावान् जनावने के निमित्त पाठ किया था ताते उस को भी नरक बिषे डारेंगे बहुरि एक और पुरुष से कहेंगे कि मैंने तुझको पृथ्वी का राज्य दिया था सो तैंने प्रजा की पालना क्योंकर करी ? तब वह कहेगा कि मैंने शास्त्रों की मर्याद सहित न्याय कियाथा बहुरि आकाशवाणी होवेगी कि यह भी झूठ कहता है क्योंकि इसने धर्मात्मा जनाने के निमित्त न्याय किया है ताते वह भी नरक बिषे पड़ेगा और महापुरुष ने यों भी कहा है कि प्रीतिमान् को और कोई विघ्न ऐसा मलिन नहीं करता जैसा दम्भ करके शीघ्रही मलिन होजाता है बहुरि परलोक बिषे मनुष्यों को इस प्रकार आकाशवाणी होवेगी कि हे पाखण्डियो ! तुमने जिनके दिखाने के निमित्त मेरा भजन कियाहै सो अब भजन का फल भी उन्हीं सबसे मांगो और महापुरुष ने योंभी कहाहै कि हे प्रियतमो ! दम्भरूपी नरक से आपको बचावो और महाराज के आगे बिनती करो कि हे भगवन् ! इस दम्भरूपी क्लेश से तू हमारी रक्षाकर इसीपर महाराज ने कहा है कि जिन पुरुषों ने मेरे भजन बिषे लोगों की पूजा को मिलाया है अर्थात् दम्भ किया है सो मुझसे अति दूर हैं और मैं उनका भजन लोगों को समर्पण करदेता हूं क्योंकि मुझको किसी के साथ मिश्रित होने की अपेक्षा नहीं इसीपर महापुरुष ने कहा है कि तिस करतूति को भगवत् प्रमाण नहीं करता जिस बिषे रञ्चकमात्र भी दम्भ होता है इसीपर उमरनामी सन्त ने एक पुरुषको देखाथा कि शीश नीचे किये बैठा है तब कहनेलगे कि हे भगवन् ! तू इसकी टेढ़ी ग्रीवा को सीधी कर क्योंकि एकाग्रता हृदय बिषे होती है शीश की कुटिलता किये तो

एकाग्रता प्राप्त नहीं होती बहुरि एक सन्त ने किसी पुरुष को सभा विषे रोते देखा था तब उससे कहा कि जब तू अपने गृह विषे ऐसाही रुदन करता तब अधिक विशेषता को पाता इसीपर अलीनामी सन्त ने कहा है कि दम्भी मनुष्य के दो लक्षण प्रसिद्ध हैं प्रथम यह कि जब अकेला होता है तब अलसाय जाताहै और जब लोगों को देखताहै तब प्रसन्नता सहित भजन करता है बहुरि जब अपनी महिमा सुनताहै तब सब क्रिया विषे अधिक सावधान होता है और जब निन्दा सुनता है तब थकित होजाता है बहुरि एक जिज्ञासु ने किसी सन्त से पूछाथा कि जो पुरुष दान देने विषे कुछ मंशा निष्कामी राखे और कुछ जगत की स्तुति के लिये दान देवे तब उसकी क्या अवस्था होती है तब उन्होंने कहा कि वह मनुष्य भगवत् से विमुख होता है क्योंकि सब करतूतें केवल निष्काम ही चाहिये बहुरि उमरसन्त ने एक पुरुष की अवज्ञा कुछ करी थी तब उससे कहनेलगे कि तूभी मुझको इस अवज्ञा का दण्ड दे तब उसने कहा कि मैंने भगवत् के और तुम्हारे निमित्त तुमको क्षमाकिया बहुरि उमर ने कहा कि तू भगवतही के निमित्त क्षमाकर अथवा मेरे निमित्त क्षमाकर पर दोनोंके सम्बन्ध करके क्षमाकरना काम नहीं आता तब उसने कहा कि मैंने भगवतही के निमित्त तुमको क्षमाकिया इसी पर फुजैल सन्त ने कहाहै कि आगे जिज्ञासु जन दम्भ विना शुभकर्म करते थे और इस समय विषे लोग शुभकर्म किये विनाही दम्भ करते हैं बहुरि एक और सन्त ने कहा है कि जब यह पुरुष दम्भ करता है तब भगवत् इसप्रकार कहता कि देखो यह मेरा जीव मेरे ही साथ किस प्रकार हास्य करता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि सात पुरियों के सात देवता रक्षक भी भगवतही ने बनाये हैं सो जब इस मनुष्य के शुभकर्मों की पत्री प्रथम पुरी पर पहुँचती है तब उस पुरी का देवता कहता है कि इसकी सबही क्रिया निष्फल है क्योंकि यह पुरुष लोगों की निन्दा करताथा ताते मैं निन्दक के शुभ कर्म को प्रमाण नहीं करता बहुरि और पुरुष जो निन्दा सेभी रहित होता है सो तिसके कर्मों की पत्री दूसरी पुरी तलक पहुँचती है तब उसका देवता कहता कि इसकी करतूति इसही के मुखपर डालदो क्योंकि इसने शुभकर्म करके अपनी प्रशंसा करी है ताते मैं इसके कर्म को प्रमाण नहीं करता बहुरि किसी और पुरुष की पत्री तीसरी पुरीपर पहुँचती है कि उस विषे दान, जप, तप, व्रत आदिक

शुभकर्म होते हैं तब उसका देवता कहता है कि इसकी सबही करतूति अभिमान करके निष्फल हुईहैं बहुरि एक और की पत्री चौथी पुरी पर्यन्त पहुँचती है तब वह देवता कहता है कि इसने विद्या और शुभकर्मों विषे लोगोंकी ईर्षाकरी है ताते मैं इस क्रिया को नहीं मानता बहुरि एक और की पत्री पांचवी पुरी पर पहुँचती है तब वह देवता कहताहै कि इसने दुखियों और अनाथों पर दया नहीं करी और मुझको भगवत् की आज्ञा इस प्रकार है कि यद्यपि सुकर्मी मनुष्य होवे तौभी तू दयाहीन पुरुष की करतूति प्रमाण न करना बहुरि एक और की पत्री छठीं पुरी पर पहुँचती है तब वह देवता कहताहै कि इसने स्मरण भजन लोगों की स्तुति के निमित्त कियाहै अथवा परलोक की कामना रखताहै ताते मैं इस के कर्मों को भी नहीं मानता बहुरि एक और की पत्री सातवीं पुरी पर पहुँचती है सो उसके कर्मों का तेज सूर्य की नाईं प्रकाशित होताहै तब उसको देखकर वह देवता कहता है कि इसके हृदय विषे सूक्ष्म अहंकार है और कर्मों का कर्ता आपको जानता है ताते मैं इसकी क्रिया को प्रमाण नहीं करता तात्पर्य यह कि जिसका कर्म केवल निष्काम और सर्व मलिनता से रहित होताहै तब उस की करतूति सातों पुरी को उलङ्घकर भगवतके निकट पहुँचतीहै और महाराज उसको प्रमाण करतेहैं अन्यथा सबही कर्म निष्फल होतेहैं (अथ प्रकट करना रूप दम्भ का) ताते जान तू कि दम्भ का अर्थ यह है कि आपको वैरागी और भजनवान् दिखावना और वेष करके जगत् का मिलाप बढ़ाना और अपनी विशेषता प्रकटकरनी और अपने ऊपर लोगों की प्रतीति बढ़ानी सो ऐसा दम्भ पांच प्रकार का होताहै प्रथम तौ शरीर करके दम्भ करते हैं जैसे वदनका रङ्ग पीला करके अपनी जाग्रत् लखानी अथवा देह को दुर्बल करना और भृकुटी चढ़ाकर आपको भयावन दिखाना बहुरि ऊंचा शब्द न बोलना कि मैं ऐसा गम्भीर हूं और अधर सूखे रखने कि मैं व्रती हूं सो जब ऐसी क्रिया लोगों के छलने के निमित्त करे तब जानिये कि केवल दम्भी है १ बहुरि दूसरा प्रकार यह है कि वस्त्र स्त्रीन अथवा मलिन अथवा अल्प अथवा पुरातन पहिरने और आपको तपस्वी जनावना अथवा मृगछाला आदिक अम्बर ओढ़ने सो इनकी वृत्ति ऐसी होती है कि जब कोई इनको किसी संयोग के साथ यत्न करके कहे कि अमुक वस्त्र पहिरो तब लज्जाके निमित्त पहिरते ही नहीं और एक ऐसे कपटी

होते हैं कि महीन वस्त्रों को फाड़कर बहुरि सिलाय लेते हैं इस करके कि धनवान् और राजालोग भी हमारा सम्मान करें और निरादर न करें और यद्यपि उनके वस्त्रों से मोटा वस्त्र फाड़ा हुआ होवे तौभी पहिर नहीं सक्के इसकरके कि हमारी कोई निन्दा न करे और इतना नहीं जानते कि ऐसी क्रियाकरके हम लोगों की पूजा करते हैं २ बहुरि तीसरा प्रकार दम्भ का वाणी है सो सदैव अधर हिलायकर आपको भजनवान् दिखाना और मौन करके एकाग्रहो दिखाना अथवा नाना प्रकार शास्त्रों का बखान करना और आपको बुद्धिमान् जनाना अथवा शीतलश्वास निकाल के आप को प्रेमी लखाना अथवा पिछले सन्तों की वार्ता प्रकटकरनी इसकरके कि मैंने बहुत सन्तजनों का सत्संग कियाहै सो यह केवल पाखण्ड होताहै ३ बहुरि चौथा प्रकार का दम्भ भजन बिषे होता है कि लोगों के देखते शीश बहुत टेकना अथवा शीश नीचे करके बैठना और किसीकी ओर दृष्टि न करनी अथवा जगत् को दिखाकर दानदेना और मार्ग बिषे धैर्य सहित चलना ४ बहुरि पांचवां प्रकार दम्भ का यह है कि अपने शिष्य सखा अधिक दिखाने और अपने ऐश्वर्य को आपही सभा बिषे प्रकट करना कि अमुक राजा हमारा सेवक है और अमुक धनवान् हमारा पुजारी है और जब किसी के साथ विरुद्ध करता है तब इस प्रकार कहने लगता है कि तेरा गुरुदेव कौन है और तेरे मिलापी कौन हैं? मैंने तो इतने वर्षपर्यन्त बड़े २ महापुरुषों की सेवा करी है तात्पर्य यह कि दम्भी मनुष्य अपने मान के निमित्त बड़े कष्ट खैंचता है और एकही छोले का आहार करता है अथवा निराहार व्रती रहता है सो यह सबही करतूति महापापों का रूप है क्योंकि जप, तप, व्रत, भजन भगवतही के निमित्त करना चाहिये पर जब ऐसे कर्मों बिषे मान और बड़ाई की कामना होवे तब जानिये कि केवल पाखण्ड है ताते चाहिये कि जब अपना मान वृद्ध करने की मंशा राखे तब व्यवहार के कार्य करके अपनी बड़ाई लखावे सो इसको पाप नहीं कहते जैसे ज्योतिष, वैद्यक, व्याकरण इत्यादिक और विद्या को प्रकटकरना पाखण्ड नहीं होता पर मान के निमित्त आपको वैरागी और भजनवान् दिखाना अयोग्य है अथवा जब स्नान और उज्ज्वल वस्त्र करके शरीर को शुद्ध करलेवे तौ भी दम्भ नहीं कहाता है क्योंकि प्रीतिमानों की सभा बिषे किसी

को ग्लानि न आवे तब यह भी शुद्ध मंशा होती है और महापुरुष भी ऐसे आचारों बिषे विचरे हैं और भजन बिषे जो दिखलावा निन्द्य कहा है सो यह भी दो कारणों से अयोग्य है प्रथम यह कि जब इस पुरुष की मंशा सकाम होवे और आपको निष्कामी कर दिखावे तब यह भी कपट होता है क्योंकि जब लोग इसकी सकामता को प्रकट जानें तब वह भी प्रमाण नहीं करते १ बहुरि दूसरा कारण यह है कि भजन स्मरण और शुभकरतूति केवल भगवतही के निमित्त करने चाहिये पर जब ऐसी क्रिया जगत् के दिखलाने के निमित्त करे तब यह भी भगवत के साथ उपहास करना होता है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष किसी मण्डली के राजा के सम्मुख स्थित होवे और आप को केवल उसका टहलुआ हो दिखावे पर मंशा इसकी यह होवे कि मैं राजा के सुन्दर दास को देखतारहूं ताते इसके नेत्र और सुरति उस रूपवान् दास की ओर अटकी रहे तब निस्सन्देह राजा के साथ हास्यकरना होता है तैसेही जो भजन स्मरण परमेश्वर के निमित्त करना चाहिये है और वह भजन पराधीन जीवों को दिखानेलगे तब इसका नाम केवल कपट है और इस करके जाना जाता है कि वह पुरुष दण्डवत प्रणाम भगवत को नहीं करता जगत ही की वन्दना करता है क्योंकि उसकी मंशा जगत् के दिखाने बिषे ही दृढ़ होती है ताते जो मनुष्य शरीर करके तो भगवत् की वन्दना करे और मन उसका जगत् की वन्दना बिषे स्थित होवे तब निस्संदेह बिमुख होता है (अथ प्रकट करना भेद दम्भकी अवस्था का) ताते जान तू कि दम्भ बिषे भी इस प्रकार भेद होता है कि एक दम्भ अतिदीर्घ है और एक अल्प है सो दीर्घ दम्भ यह है कि जिसकी मंशा केवल दम्भही की होवे अर्थात् जब अकेला होवे तब भजन स्मरण कुछ न करे और लोगों बिषे सावधान होकर भजन बिषे स्थित रहे तब ऐसा पुरुष भगवत् के कोप का भागी होता है और यद्यपि उसकी कुछ अल्पमात्र पुण्य की मंशा भी होवे पर जब एकान्त बिषे कुछही भजन न करे तौभी प्रथम दम्भी की नाईं होता है बहुरि जिस पुरुष के हृदय बिषे पुण्य की मंशा ऐसी प्रबल होवे कि एकान्त बिषे भी मूलही से अलसाय न जावे पर जब लोगों को देखे तब प्रसन्नता सहित भजन करे और भजन करना उसको सुगम होजावे तब इसमें दम्भ करके सबही फल उसका व्यर्थ नहीं होता पर जितनी दम्भ की मंशा

भजन बिषे मिली है उतनाही दण्ड का अधिकारी होता है अथवा उसका पुण्य क्षीण होजाता है बहुरि जब दम्भ और पुण्यकी मंशा सम होवे तौभी भजन का फल कुछ नहीं होता क्योंकि पुण्य की श्रद्धा को दम्भ की मंशा व्यर्थ कर डालती है १ बहुरि दूसरा भेद यह है कि भगवत् पर जिस पुरुष की प्रतीति कुछ न होवे और यद्यपि शरीर करके भजन स्मरण करता रहै तौभी वह महाकपटी कहाता है और अत्यन्त विमुख है क्योंकि हृदय बिषे प्रतीति से रहित है और बाह्य बिषे प्रीति प्रतीति संयुक्त हो दिखाता है सो ऐसा पुरुष सर्वदा नरकों का वासी होवेगा अथवा जिस पुरुष की प्रतीति परलोक और सन्त जनों की मर्याद पर कुछ नहीं और यद्यपि शरीर करके दम्भ के निमित्त शास्त्रों की मर्यादही बिषे बिचरता है तौ भी नरकों का अधिकारी होता है २ बहुरि तीसरा भेद दम्भी मनुष्य के प्रयोजन बिषे होता है जैसे कोई पुरुष भजन बिषे मान का प्रयोजन राखे बहुरि मान करके भोगों और पापों बिषे आसक्त होजावे सो यह भी महानिन्द्य है अथवा जब आपको वैरागी और उदार इस निमित्त हो दिखावे कि लोग मुझको त्यागी जानकर अर्थियों और सात्त्विकी मनुष्यों की सेवा के निमित्त धनदेवें और जब वह उस धन को प्राप्त होवे तब अपने शरीर के अर्थ लगायलेवे तब यह भी महापाप है अथवा जब कथाकीर्तन की सभा बिषे जाय बैठे कि किसी रूपवान् मनुष्य को जायदेखूं अथवा उसके साथ प्रीति बढ़ाऊं तब इसकी नाईं और भी अपकर्मों का प्रयोजन परमदुःखों का बीज है और अपराधरूप है क्योंकि उसने भगवद्भजनको पापों का मार्ग बनाया है अथवा जब किसी का कुछ दूषण जगत् बिषे प्रसिद्ध होजावे तब उस दूषणको दूरकरने के निमित्त वैरागी और उदार होकर दिखाना भी महानिन्द्य है और यह सबही प्रयोजन महातामसी हैं पर जिसको राजसी प्रयोजन होवे जैसे दम्भ करके अपने शरीर और कुटुम्ब का प्रतिपाल कियाचाहे तौ भी भगवत् के कोपका अधिकारी होताहै अथवा जब मान के निमित्त मार्ग बिषे धैर्य और सकुचसहित चले और शीतल श्वास निकाले और हास्य से रहित होवे बहुरि ऐसा कहै कि इस जीवको अचेत होनेका ठौर इस संसार बिषे कहां है क्योंकि सबही मनुष्य काल के मुख बिषे चलेजाते हैं अथवा जब कोई पुरुष किसीकी निन्दा करनेलगे तब आपको निन्दासे रहित दिखानेके निमित्त

इस प्रकार कहे कि औरों के अवगुण देखने से अपना अवगुण देखना अधिक बिशेषहै सो यद्यपि यह सब करतूति सात्त्विकीहैं पर जिसकी मंशा सात्त्विकी न होवे और राजसी और मान के निमित्त ऐसे कर्म करे तब निस्सन्देह अन्तर्यामी महाराजकी ओरसे विमुख होताहै क्योंकि भगवत् इसके हृदयको जाननेवाला है ताते उसके साथ छलकरना बड़ी विमुखता है और अल्पबुद्धि जीव ऐसे भेदों को पहिंचान नहीं सकते इस करके कि दम्भ तो ऐसा महासूक्ष्म है कि कितने बुद्धिमान् और पण्डित भी इसको पाय नहीं सकते ताते मूर्ख तपस्वियों की क्या वार्ता है (अथ प्रकटकरनी सूक्ष्मता दम्भ की) ताते जान तू कि यह तो प्रकट दम्भहै कि लोगों के देखते भजनकरे और जब अकेला होवे तब अलसाय जावे और इस से सूक्ष्म दम्भ यहहै कि एकान्त बिषे भी भजन के नियम को सम्पूर्ण करे पर जब लोगों को देखे तब प्रसन्नता करके वह नियम उसको सुगम होजावे सो यहभी दम्भ स्थूल है और इससे सूक्ष्मदम्भ यह है कि लोगों को देखकर यद्यपि प्रसन्न भी न होवे पर उसके अन्तर ऐसा गुह्य दम्भहोताहै जैसे चकमक पत्थरबिषे अग्नि गुप्त होतीहै और वह दम्भ तब प्रकट होताहै जब जगत् बिषे उसकी मानता बढ़ जाती है और आपको ऐश्वर्यवान् देखताहै इस करके प्रसिद्ध हुआ कि यद्यपि ऐसे पुरुष की क्रिया में आगे दम्भ न भासता था तौ भी उसके अन्तर गुह्यरूप दम्भ था ताते जब इस मानके रसको दोषदृष्टि करके बुरा न जाने तब अवश्यही दम्भ प्रकट उपज आताहै और यद्यपि मुखसे अपनी स्तुति नहीं करता तौभी लक्षणों बिषे आपको भजनवान् दिखावता है बहुरि हृदय की स्थिरता और गम्भीरता और जाग्रत को लखाया चाहताहै पर एक दम्भ इससे भी महासूक्ष्म है कि यद्यपि लोगों की मानता करके हर्षवान् भी न होवे तौभी दम्भसे रहित नहीं होसक्ता क्योंकि जब कोई प्रथमही उसको प्रणाम न करे अथवा अधिक आदर न करे अथवा प्रसन्नता सहित उसका कार्य न करे अथवा व्यवहार बिषे और लोगों से उस को अधिक न देवे तब वह पुरुष आश्चर्यवान् होताहै कि यह लोग मुझको जानतेही नहीं सो जब उसने भगवद्भजन दम्भसे रहित किया होता तब इस प्रकार आश्चर्यवान् न होता तात्पर्य यह कि जबलग करतूतिका होना और न होना इसको समान न होजावे तबलग दम्भ दूर नहीं होता अर्थ यह कि दम्भ हृदय से तबहीं नष्ट होताहै जब अपने करतूति की विशेषता न जाने जैसे कोई पुरुष किसी

को एकरुपया देकर सहस्ररुपये की वस्तु लेवे तब वह उस एकरुपये के देनेको कुछ विशेष नहीं जानता और किसीपर उपकार भी नहीं रखता तैसेही जो पुरुष कुछ दिन भगवद्भजन करके अविनाशी राज्यको प्राप्तहोवे तब वह भजनका उपकार किसी मनुष्यपर नहीं रखता और अपने हृदयविषे भी अभिमानी नहीं होता पर जब शुभकर्म करके लोगोंसे सन्मान चाहे और निरादर विषे आश्चर्यवान् होवे तब यह दम्भ चींटीके चलने से भी अधिक सूक्ष्म है अर्थात् सम्पूर्ण विचार बिना लखा नहीं जाता इसीपर अलीसन्त ने कहाहै कि वैरागी लोगोंको भी परलोक विषे इसप्रकार ताड़ना होवेगी कि तुमको लोगोंने व्यवहार विषे मोलसे अधिक वस्तु दी है और हाथ जोड़कर तुम्हारे कार्यों विषे सावधान हुये हैं और सब किसी ने तुमको प्रथमही दण्डवत् कियाहै ताते तुम्हारी करतूति केवल निष्काम नहीं हुई और तुमने शुभकर्मोंके फलको संसार विषेही भोगलिया पर ऐसा कोई बिरला ही पुरुष होताहै जो सर्व जगत्को त्यागकर यत्न विषे स्थित होवे और संसार के मिलापरूपी विघ्न से डरतारहे बहुरि जब कोई उसको आदर और दण्डवत् करे तब सकुचजावे और ऐसाही पुरुष दण्डसे छूटताहै इसी कारण से जिज्ञासु जनोंने अपने शुभकर्म को इस प्रकार दुराया है जैसे और जीव चोरी और व्यभिचार को दुराय रखते हैं और उन्होंने इस वार्ताको निस्संदेह पहिचानाहै कि परलोक विषे निष्कामता बिना कोई करतूति प्रमाण न करेंगे जैसे किसीने सुनाहोवे कि अमुकदेश विषे खोटा सोना चांदी नहीं चलता और वहांके लोग खरेही को अङ्गीकार करते हैं सो वह पुरुष जब उस नगर विषे जानेकी मंशा रखताहै तब खरेही सोने चांदी को अपने सङ्ग लेता है और खोटेको वहांही डालजाता है तैसेही जो पुरुष अपने कर्मों को इस लोक विषे निष्कामता सहित शुद्धता करलेवे तब परलोक विषे अधिक दुःखी होवेगा और सब करतूति उसके व्यर्थ जावेंगे और अपने निष्काम कर्म के बिना और किसीकी सहायता न पहुँचेगी सो निष्कामता का अर्थ यह है कि जैसे यह पुरुष पशुओं के आगे निष्कपट कर्म भजन आदिक करता है और उनकी ओर इसकी सुरत कुछ नहीं पसरै तैसेही मनुष्यों विषे भी दम्भ से रहित होवे पर जबलग पशु और मनुष्य का देखना इसको समान न होवे तबलग वह केवल निष्काम नहीं कहाजाता बहुरि जब इसको कोई भजन करता देखे अथवा सोता देखे और आहार करता देखै सो

भी इन कर्मों विषे जगत् का देखना समझाने अर्थ यह कि जैसे आहार और निद्रा किसीको दिखानेकी मंशा नहीं करता और जब कोई देखभी लेवे तब प्रसन्न भी नहीं होता तैसेही भजनविषे भी समान स्थित रहै इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि रञ्चकमात्र भी दिखलावा विमुखता है क्योंकि दम्भी मनुष्य भगवद्भजन विषे लोगों को साक्षी किया चाहताहै और अन्तर्यामी के जानने पर संतुष्ट नहीं होता ताते पराधीन जीवों को दिखाया चाहता है इसी कारण से महापुरुष ने दम्भी मनुष्य को विमुख कहाहै तात्पर्य यह कि जबलग लोगों के देखने विषे इसको प्रसन्नता होती है तबलग दम्भसे कदाचित् मुक्त नहीं होता पर जब भगवत् का उपकार जानकर प्रसन्न होवे तब इसको दम्भ नहीं कहते सो यह मंशा तीन प्रकार की होती है प्रथम यह कि जिसने अपने भजन को गुप्त कियाथा और उसकी मंशा बिना भगवत् ने प्रकट करदिया बहुरि उसके अनेक अवगुण जो थे सो महाराज ने प्रकट न किये ताते जिज्ञासु जानता है कि मेरे ऊपर भगवत् ऐसा दयालु है कि मेरे छिद्रों को तो दुराय रखता है और भलाई को प्रकट करताहै ताते महाराज की दया और उपकार को जानकर प्रीतिमान् प्रसन्न होता है १ बहुरि दूसरा प्रकार प्रसन्नता का यह है कि जिज्ञासु ऐसे विचारता है कि जिस भगवत् ने इस संसार विषे मेरे अवगुणों को छिपायाहै सो अपनी करुणा करके परलोक विषे भी प्रसिद्ध न करेगा और क्षमा करलेवेगा २ बहुरि तीसरा प्रकार यह है कि जब इसके शुभकर्म को देखकर और लोग भी शुभ क्रिया विषे दृढ़ होवें तब वहभी बड़भागी होवेंगे सो इस करके भी प्रसन्न होना प्रमाण है पर अपने मानके निमित्त हर्षवान् न होवे और जो पुरुष इसके सुकर्म को देखकर सात्विकी आचार विशेष दृढ़ हुआ है सो तिसकी जिज्ञासा और प्रतीति को पहिचानकर प्रसन्न न होवे सो इसकी परीक्षा यह है कि जब वह जिज्ञासुजन और किसी उत्तम पुरुष की अवस्था को देखकर उसकी संगति करे और महाराज की आज्ञाविषे सावधान होवे तोभी इस पुरुष को ऐसीही प्रसन्नता आवे जैसी अपने संग की जिज्ञासा समय देखकर प्रसन्नता होती है (अथ प्रकट करना इसका कि दम्भ करके किस प्रकार शुभकर्मों का फल व्यर्थ होजाता है) ताते जान तू कि दम्भ भजन के आदि विषे भी होताहै और मध्यभी होता है और अन्तभी होताहै बहुरि जब भजन के आदि विषे दम्भकी मंशा होवे

तब उस दम्भ करके शीघ्रही भजन व्यर्थ होजाता है क्योंकि निष्कामता का स्थान इस जीव की मंशा है सो जब प्रथम ही दम्भ करके मंशा अशुद्ध हुई तब स्वाभाविकही निष्कामता नष्ट होजाती है पर भजन के आदि जिस की मंशा शुद्ध होवे और भजन के करतेहुये लोगों को देखकर भजन अधिक करे तब अधिक भजन करने का फल नष्ट होताहै पर मूलही से सब फल व्यर्थ नहीं जाता इस करके कि प्रथम तो उसकी मंशा शुद्ध थी बहुरि जब निष्कामता सहित भजन के नियम को पूराकरे और पीछे से कुछ दम्भ की मंशा फुर आवे ताते उस भजन को प्रसिद्ध कर बैठे तब इस करके भजन का फल नष्ट नहीं होता पर दम्भ के सम्बन्ध करके कुछ दण्ड का अधिकारी होता है पर इस वचनके निर्णय विषे कितने बुद्धिमानोंने योंभी कहाहै कि जब यह पुरुष अपने शुभकर्म को सम्पूर्ण करके पीछे प्रकट करे तब उसको फल कुछ नहीं होता जैसे इब्नमसऊद नामी सन्त के निकट किसीने इस प्रकार कहाथा कि मैं नित्य-प्रति इतना पाठ करता हूं तब उन्होंने कहा कि तुझको उस पढ़ने का फल इतना नहीं होवेगा बहुरि महापुरुष के निकट भी किसीने ऐसे कहा था कि मैं व्रती हूं तब उन्होंने कहा कि तू व्रती भी नहीं और अव्रती भी नहीं अर्थ यह कि व्रत करके भूखा रहता है और अपने मुख से प्रसिद्ध करके व्रत का फल नष्ट करडालता है सो इब्नमसऊद और महापुरुष का भी वचन यथार्थ है पर इसका प्रयोजन यह है कि उन्होंने इस प्रकार जाना था कि पाठक और व्रती दोनों प्रथमही दम्भ से रहित न थे ताते उनके फल को व्यर्थ कहा क्योंकि जब प्रथम इसका भजन दम्भकी मंशा से रहित होवे और पीछे अकस्मात् कुछ दम्भ होजावे तब इस करके भजन का सबही फल व्यर्थ होना कठिनहै पर जब भजनके मध्य विषे दम्भकी मंशा ऐसी दृढ़ होजावे कि भजन की मंशा को जीतलेवे तब भजन का फल सबही नष्ट होता है और जिसकी मंशा निष्काम होवे और लोगों को देखकर कुछ प्रसन्नता फुर आवे तब वह भजन निष्फल नहीं होता पर दम्भके निमित्त कुछ पापी होता है (अथ प्रकट करना उपाय दम्भ के दूर करने का) ताते जान तू कि यह दम्भरूपी रोग महाप्रबल है इसके निवृत्त करनेका उपाय भी अवश्यही करनाचाहिये और बड़े धैर्य और पुरुषार्थ विना इसका उपाय हो नहीं सक्ता क्योंकि इस दम्भ का स्वभाव मन की

वृत्तिके साथ मिश्रित होरहाहै इस करके कि यह मनुष्य बालअवस्था से लेकर सब किसीको ऐसाही देखताहै कि सर्वसंसार आपको भलाही दिखाया चाहता है और सब करतूति जीवों के इसहीं निमित्त होते हैं ताते बालअवस्थामें ही इस मनुष्य का यही स्वभाव दृढ़ होजाता है और शनैःशनैः करके ऐसा बढ़जाता है कि इस रोग की बुराई को भी नहीं जानसक्ता और इसी स्वभाव की अधिकता बिषे अचेत होजाता है इसी कारण से इस दम्भरूपी रोग का दूर करना महा-कठिन कहाहै और इस रोग से रहित भी कोई बिरला ही होताहै ताते सब किसी को इसका उपाय करना योग्य है पर इसका उपाय भी दो प्रकार का होता है सो एक ऐसा है कि दम्भको मूलही से नष्ट करडालता है सो यह भी बूझ और करतूति के सम्बन्ध करके होताहै पर बूझ इसकी यह है कि दम्भ के बिघ्न को पहिंचाने बहुरि योंभी जाने कि यद्यपि दम्भके समय मुझको प्रसन्नता होती है तौ भी परलोक बिषे इस दम्भके निमित्त ऐसी ताड़ना होवेगी कि मैं उसको सह न सकोंगा सो जिसने इस वार्त्ता को निश्चय पहिंचाना है तिसको दम्भका त्याग करना सुगम होजाता है जैसे किसी पुरुष ने ऐसे जाना होवे कि इस मधुबिषे हलाहल बिष मिला हुआ है सो यद्यपि उसको मधु के भोजन करनेकी अधिक तृष्णा भी होवे तौभी सुगमही त्यागदेता है तैसेही जिसको परलोक का भय प्रबल होगा सोभी दम्भ को अङ्गीकार न करेगा और यद्यपि सब किसीको दम्भ बिषे धन और मान का प्रयोजन होता है तौभी इसकी वासना के तीन मूल हैं प्रथम यह कि दम्भ करके जगत् की स्तुति को चाहता है और दूसरे निन्दा के भय करके दम्भ करता है २ और तीसरे लोगोंकी पूजा बिषे आशा रखताहै ताते जिज्ञासु को चाहिये कि प्रथम स्तुति की अभिलाषा को हृदय से दूर करे और ऐसा जाने कि जब मैं भजन बिषे दम्भ करूंगा तब परलोक बिषे प्रसिद्धही मेरा अप-मान होवेगा और इस प्रकार कहेंगे कि हे दम्भी! हे कपटी! हे महापापी! तैंने भगवद्भजन को जगत् की स्तुति के निमित्त बेचा है और तू ऐसा निर्लज्ज है कि तुझको इस वार्त्ता से लज्जा भी नहीं आई कि तैंने जगत् को प्रसन्न किया और भगवत् की अप्रसन्नता का भय न किया बहुरि जगत्की निकटता को अङ्गीकार किया और महाराज की दूरी का भय न किया ताते प्रसिद्ध हुआ कि तैंने जगत् के मान को भगवत् के मान से विशेष जाना है और महाराज के कोप को अल्प

जान करके जगत् की स्तुति को अङ्गीकार किया है ताते तेरे समान निर्लज्ज और कोई नहीं सो जब बुद्धिमान् इस अपमान का विचार करता है तब भली प्रकार जानता है कि परलोकविषे संसार की स्तुति मेरे किसी काम न आवेगी क्योंकि यद्यपि भगवद्भजन सर्व भलाई का बीज है तौ भी दम्भ करके पापों का बीज होजाता है बहुरि जब मैं दम्भ से रहित होऊंगा तब सन्तजनों का संगी होऊंगा और दम्भ करके अवश्यही मनमुखोंका संगी होऊंगा और जिस जगत की प्रसन्नता के निमित्त दम्भ करता हूं सो जगत् की प्रसन्नता भी मुझको कदाचित प्राप्त नहीं होती क्योंकि जब एक पुरुष की प्रसन्नता होती है तब दूसरा अप्रसन्नही रहता है और जब एक मनुष्य स्तुति करताहै तब दूसरा निन्दा करने लगता है बहुरि जब सब कोई इसकी स्तुति करे तौ भी इसकी प्रारब्ध और आयुष् और लोक अथवा परलोक की भलाई किसीके हाथ बिषे नहीं ताते ऐसे पराधीन जीवों की स्तुतिके निमित्त अपने चित्तको विक्षेपता देनी बड़ी मूर्खता है और दुःखोंका कारणहै ताते चाहिये कि यह पुरुष बारम्बार इसीप्रकार विचार करे तब स्तुति की अभिलाषा का मूल हृदय से नष्ट होजावे बहुरि जगत की आशा को दूर करने के निमित्त ऐसा जाने कि प्रथम तो जगत्की आशा फल-हीन होतीहै अथवा जब कुछ प्राप्त भी होताहै तो इसके ऊपर बड़ा उपकार रखते हैं और महाराज की प्रसन्नता भी दूर होजाती है बहुरि मनुष्यों के हृदय भी भग-वत् की आज्ञा बिना कोमल और वशीकार नहीं होते ताते जिसने भगवत् को प्रसन्न किया है तब स्वाभाविकही सर्व जीवों के चित्त उसके अधीन होजाते हैं और जिसने भगवत् को प्रसन्न नहीं किया तब जगत् बिषे उसके अवगुणही प्रसिद्ध होते हैं ताते सब कोई उसका त्याग करदेता है बहुरि जगत् की निन्दा के भय को दूर करने का उपाय यह है कि आपको सर्वदा इस प्रकार समझावे कि जब मुझको भगवत ने प्रमाण किया तब लोगों की निन्दा करके मेरी हानि कुछ नहीं होती और जब महाराज के निकट मेरा निरादर हुआ तब इनकी स्तुति भी लाभदायक न होवेगी और जो पुरुष निष्काम होकर जगत् की ओर हृदय न देवे तब सर्व मनुष्यों के हृदय बिषे महाराजही उसकी प्रीति और प्रतीति को दृढ़ करता है और जब ऐसा न करे तब शीघ्रही लोग इसके छल को पहिंचान लेते हैं और जिस निन्दा से भयवान् होता है सो अवश्यही

निन्दाही को प्राप्त होता है और भगवत् की प्रसन्नता से भी विमुख रहता है बहुरि जब भली प्रकार विचार करे और पुरुषार्थ करके निष्कामता बिषे दृढ होवे तब जगत् की मनोहरता से मुक्त रहे और चित्त उसका प्रकाशमान होवे और भगवत् की सहायता पाकर निष्कामता के आनन्द को पावे पर करतूति करके इस प्रकार उपाय होता है कि भजन और दान आदिक शुभकर्मों को ऐसा गुप्त राखे जैसे अपने अपकर्मों को दुराता है और अन्तर्यामीही के जानने पर सन्तुष्ट रहे सो यद्यपि प्रथम यह करतूति कठिन होती है पर यत्न और पुरुषार्थ करके शीघ्रही सुगम भी होजाती है तब निष्कामता और भजन के रहस्य को पायकर परमानन्द को पावता है बहुरि ऐसी अवस्था उसको प्राप्त होती है कि यद्यपि लोगों के समूह उसको देखते रहें तो भी उसकी सुरत लोगों की ओर नहीं परसती सो यह ऐसा उपाय है कि इस करके दम्भ का बीजही नष्ट होता है १ बहुरि दूसरा उपाय ऐसा है कि उस करके दम्भ का बल क्षीण होता है और मूलही से दूर नहीं होता सो यह है कि जब यह पुरुष भजन बिषे स्थित होता है तब इसके चित्त में यह संकल्प आन उपजता है कि मेरे भजन को लोगों ने जाना है अथवा अब जानेंगे २ बहुरि इसही संकल्प की अधिकता करके यह अभिलाष दृढ होजाती है कि जब लोग मुझको भजनवान् जानेंगे तब मेरे ऊपर विशेष प्रतीति करेंगे ताते इस दम्भ के संकल्प और अभिलाषा बिषे मंशा करके ऐसे चाहता है कि लोग मेरे भजन को जानें तो भला है ३ पर जिज्ञासु को ऐसे अवसर बिषे प्रथमही वह संकल्प यत्न करके दूर किया चाहिये सो आप को इस प्रकार समझावे और बारम्बार यह विचारकरे कि जगत् का जानना मेरे किस काम का है और लोगों के जानने करके मेरा कौन कार्य सिद्ध होगा क्योंकि जगत् को उत्पन्न करनेवाला भगवत् सर्वजीवों का अन्तर्यामी है ताते उसकाही जानना मुझको विशेष और लाभदायक है इस करके मेरा कोई कार्य लोगों के हाथ नहीं पर जब लोगों ने विशेषही जाना और महाराज के निकट मुझको ताड़ना हुई तब इनकी मानता मेरी रक्षा क्योंकर करेगी सो जब यह विचार जिज्ञासु के हृदय बिषे दृढ होता है तब दम्भ के ऊपर शीघ्रही इस की दोषदृष्टि उपज आती है अर्थात् दम्भ को निश्चय करके बुरा जानता है और यह दोषदृष्टिही दम्भ की प्रीति के सम्मुख आन स्थित होती है बहुरि जैसे

्म्भ की प्रीति इस जीवको लोगों की ओर खींचती है तैसेही दोषदृष्टि उसको वेवर्जित किया चाहती है सो जिस संकल्प का बल अधिक होता है वही संकल्प इसके मनको अधीन करलेता है पर दम्भ के संकल्प और दम्भ की अभिलाष और लोगों की मानता की मंशा जो ऊपर वर्णन हुई सो इन तीनों के सम्मुख तीनों शुभ गुण आते हैं सो प्रथम यह बूझ है कि जिस करके दम्भ की बुराई को जानता है १ और दूसरा गुण दोषदृष्टि है सो यहभी बूझही से उपजती है जिस करके उस दम्भ बिषे इस जीव को ग्लानि दृढ़ होती है २ बहुरि तीसरा गुण यह है कि आपको दम्भ की मंशा से और संकल्पों से वर्जिराखना ३ पर जब दम्भरूपी रोग ऐसा प्रबल हुआ होवे कि उस समय बिषे बूझही दिखाई न देवे और ग्लानि भी प्रकट न होसके अर्थ यह कि यद्यपि आगे आपको इसने समझा कर बहुत वर्जा होवे तौभी उस समय बिषे वह बूझ स्थित न रहे तब स्वाभाविकही मनकी वासना के अधीन होजाता है जैसे कोई आपको क्रोध से आगे सहनशीलता बिषे स्थित करता रहै और क्रोध के विघ्नों को बिचारता रहे पर जब क्रोध का अवसर आवे तब तमोगुण की प्रबलता बिषे सबही बिचार भूल जावें तैसेही उस दम्भ की बुराई को जब बिचार करके समझता है तौ भी वासना के बल करके दोषदृष्टि नहीं उपजती और जो दोषदृष्टिभी स्थित होवे तो पुरुषार्थ की हीनता करके अपने स्वभाव को दूर नहीं करसक्ता और दम्भ की प्रीति बिषे आसक्त होजाता है ताते जगत्की स्तुतिको प्रीति संयुक्त सुना चाहता है इसी कारण से केते पण्डित योंभी जानते हैं कि हम यह वचन दम्भ के निमित्त कहते हैं तौभी उस वचन का त्याग नहीं करसक्के और दम्भ बिषेही बध्यमान रहते हैं तात्पर्य यह कि जेती इस पुरुष को दोषदृष्टि उपजती है तेत ही दम्भके त्याग बिषे समर्थ होता है और दोषदृष्टि इस मनुष्य बिषे बूझ की मर्याद के अनुसार उपजती है बहुरि बूझका बल इस मनुष्य बिषे इतनाही दृढ़ होता है जितनी प्रतीति भगवत् के ऊपर राखता है सो यह शुभगुण भगवत् की सहाय आकरके प्राप्त होते हैं तैसेही दम्भ की अधिकता माया के भोगों की प्रीति करके होती है और भोगों की प्रीति का प्रेरक मन और वासना है बहु इस मनुष्य का चित्त इन दोनों विरोधी सेना की खैंच बिषे सर्वदा स्थित पर जैसी इस जीव की वृत्ति और स्वभाव अधिक होता है और जिस पदा

को ओर इसकी प्रीति है तब उसही स्वभाव और वृत्तिको अङ्गीकार करताहै अर्थ यह कि जिस मनुष्यकी वृत्ति भजन के समय आगे ही निर्मल होती है तब वह पुरुष भजन विषे भी निर्दम्भ रहता है और जिसके ऊपर आगेही रज तम का स्वभाव प्रबल होताहै सो भजनके समय विषे भी दम्भ और मानकी ओर वहजाता है पर भगवत् की नेत और आज्ञा इन सर्व कार्यों से परे है अर्थ यह कि महाराज की आज्ञाके भेदको अपनी बुद्धि करके कोई जान नहीं सक्ता ताते जैसी भगवत की आज्ञा होती है सो तिसही ओर खैंच लेजाती है किसी को दिव्य स्वभावों विषे स्थित करती है और किसीको मलिन स्वभावों विषे डालदेती है बहुरि ऐसे जान तू कि जब तैंने दम्भ की खैंच को विपर्यय किया तब हृदय विषे दोषदृष्टि करके उसको बुरा जाना पर जब इससे उपरान्त कुछ दम्भ का संकल्प तेरे चित्त में शेष रहजावे तब इस करके तुझको पाप नहीं होता क्योंकि अकस्मात् संकल्प इस जीव का स्वतः स्वभाव है और यह मनुष्य स्वतःस्वभाव को दूर नहीं करसक्ता ताते सन्तजनों ने भी इस प्रकार कहा है कि अपने मलिन स्वभाव को प्रथम मलिन जानिये बहुरि पुरुषार्थ के अनुसार उसको विपर्यय किया चाहिये तब नरकों से इस जीवकी रक्षा होवे पर उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि सर्वदा अपने स्वभावों से अपनी समर्थता करके मुक्त हूजिये क्योंकि यह वार्ता होनी ही कठिन है ताते जब तैंने सन्तजनों की आज्ञा मानकर यथाशक्ति अपना पुरुषार्थ किया तब निस्संदेह शनैः २ करके वह स्वभाव तेरे वशीकार होजावेगा सो तुझको इतनीही करतूति करनी है कि जैसे तुझको दम्भादिक अवगुणों की प्रीति है और उनके निमित्त उद्यम करता है तैसेही इनको मलिन जानकर यथाशक्ति इनके त्यागने का उपाय करे तब इसही करतूति विषे तेरी भलाई है इसीपर महापुरुषके प्रियतमों ने इस प्रकार विनती करी थी कि जब हमारे चित्त विषे कुछ मलिन संकल्प फुरता है तब हम ऐसे दुःखित होते हैं कि जो हमको कोई गिराय कर पाताल विषे डालदेवे तौभी हम उस संकल्प के दुःख से इसको सुगम जानते हैं तब महापुरुष ने कहा कि जब तुमको ऐसी दोषदृष्टि प्राप्तहुई है तब तुम निश्चय जानो कि धर्म और प्रतीति का उत्तम लक्षण यही है और संकल्पों का दूर करनेवाला भगवत् है ताते उसही की शरण लेवो इस करके प्रसिद्ध हुआ कि धर्म का चिह्न दोषदृष्टि है और जिसको दोषदृष्टि प्राप्त हुई है तिसके मलिन

संकल्प स्वाभाविकही नष्ट होजाते हैं क्योंकि रुचि और प्रीति करके संकल्पकी अधिकता होती है और दोषदृष्टि करके संकल्प क्षीण होजाताहै पर इस बिषे एक और भी भेद है कि जिसको मनके स्वभावों से विपर्यय होनेका बल प्राप्त हुआ है तब ऐसी अवस्था करके भी माया इसको छल आनलेती है सो उस छल का रूप यहहै कि इस पुरुष को मलिन संकल्पों के विपर्यय करने बिषेही परचाय रखती है और भजन की एकत्रता को प्राप्त होने नहीं देती और संकल्पों के विरुद्ध बिषेही बांध छोड़ती है सो यहभी अयोग्य है पर यह अवस्थाभी चार प्रकार की होती है प्रथम यह कि अपना सबही समय संकल्पों के विरुद्ध बिषेही खोना और भजन से विमुख रहना १ और दूसरी अवस्था यह है कि मलिन संकल्पों के निषेध बिषे कुछ काल बितावना बहुरि उसको झूंठा करके भजन में स्थित होना २ और तीसरी अवस्था यह है कि झूंठे संकल्प की ओर चित्तही न देना और उसके निषेध बिषे भी अपनी आयुर्बल व्यर्थ न करनी और भजन के रहस्य बिषेही स्थित रहना ३ बहुरि चौथी अवस्था यह है कि झूंठे संकल्प को देखतेही तीक्ष्ण वैराग्यसहित उससे दूर होना और भजन की एकाग्रता बिषे चित्तकी वृत्ति को लीन करलेना सो यह उत्तम अवस्था है क्योंकि यह अवस्था छल को भी छल देनेवाली है इस करके कि ऐसा पुरुष आप तो छल से मुक्त रहता है और छल को देखकर इस प्रकार तीक्ष्ण दौड़ताहै कि छलको लज्जावान् करके शीघ्रही अपने कार्य बिषे जाय सावधान होता है ४ सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे चार पुरुष विद्या पढ़ने जावें और कोई और पुरुष ईर्षा करके उनको विवर्जित किया चाहे सो जब ईर्षा करनेवाला पुरुष प्रथम विद्यार्थी को मिले और उसको पढ़ने के निमित्त जानेसे मार्ग में रोके और वह विद्यार्थी ऐसा होवे कि उस शत्रु के वचनको न माने पर पढ़ने का समय वैरीसे विरुद्ध करने बिषेही बितावे तब वह तो पढ़ने से दूरही रहजाता है बहुरि जब दूसरे पुरुषको वह बाधक शत्रु रोके तब वह उसको झूठा करने के निमित्त कुछ ढील लगावे पर वहांही अटक न रहे बहुरि शत्रु को निषेध करके विद्या जाय पढ़े बहुरि जब वह शत्रु तीसरे पुरुषको अटकाया चाहे तब वह शत्रुकीओर हृदयही न देवे और उसको दुःखदायक जानकर अपने मार्ग बिषे चलाजावे बहुरि चौथा पुरुष ऐसा होवे कि शत्रुको मार्ग में देखकर तीक्ष्ण भाग जावे और विद्या पढ़ने के कामबिषे जाय स्थित होवे सो

जब विचार करके देखिये तब दो पुरुषोंसे तो शत्रुने अपना मनोरथ पूर्णकिया और तीसरे पुरुष से उसको प्राप्त कुछ न हुआ बहुरि चौथे पुरुष से शत्रुको प्राप्तभी कुछ न हुआ और लज्जावान् होकर उलटा पश्चात्ताप करने लगा कि जब मैं इसको विद्या पढ़ने से विवर्जित न करता तब यह शीघ्रही दौड़कर विद्या पढ़ने की ओर न जाता ताते बली पुरुष यही है तैसेही दृढ़ पुरुषार्थ उसही जिज्ञासु का कहाजाता है जो संकल्पों के विरुद्ध विषेभी आसक्त न रहे और शीघ्रही भजन के रहस्य में लीन होजावे (अथ प्रकट करना इसका कि ऐसे कार्य करके भजन का दिखलाना भी प्रमाण है) ताते जान तू कि जैसे भजन की गुह्यता विषे यह लाभ प्रसिद्ध है कि दम्भसे मुक्तरहताहै तैसेही भजन की प्रकटता विषे भी यह बड़ा लाभ है कि भजनवान् को देखकर और लोग भी भजन विषे स्थित होते हैं और उनकी श्रद्धा सात्त्विकी क्रियामें वृद्ध होती है इसीपर महाराजने कहा है कि जब शुद्धमंशा सहित प्रकट दानदेवै तौभी विशेष है और जो पुरुष गुह्यदान देवै वह भी उत्तमहै इसीपर महापुरुषने भी कहाहै कि जब यह पुरुष सात्त्विकी कर्म की नींव दृढ़ रखताहै और उसकर्म को देखके और मनुष्यभी शुभक्रिया विषे लगते हैं तब प्रथम पुरुषको अपने करतूतिका फलभी प्राप्तहोताहै और २ मनुष्यों के फलका भाग भी पावता है जैसे तीर्थयात्री को देखकर और लोगभी तीर्थकी मंशा करतेहैं और जो पुरुष रात्रिविषे ऊंचेस्वर से भजन करताहै तब उसकी धुनि सुनकर बहुत मनुष्यों की निद्रा दूर होजाती है तो इसप्रकार के कर्मों करके दूसरों को भी सुकृति का लाभ होताहै और इसको अपनी सुकृति का फल और दूसरों की करतूतिका भाग प्राप्तहोताहै और इन कर्मोंके अर्थ विशेष आज्ञाहै तात्पर्य यह कि जिसकी मंशा दम्भ से रहित होवे और और जीवों के निमित्त भजन और शुभकर्म को प्रकटकरे तब यह भी उत्तम अवस्था है पर जिसके हृदय विषे दम्भ की वासना उपजआवे सो उसका भजन व्यर्थ होता है और शुद्ध वासना करके जो भजन करता है उसही का भजन और करतूति सफल होती है और महापुरुष ने भी ऐसा कहा है कि भजनकरो पर हृदय विषे दम्भ की वासना न करो शुद्ध मंशा करके भजनकरो और ऐसा भी कहा है कि दम्भ की मंशा करनी मूर्खों का काम है और गुप्तभजन परदे साथ जो करते हैं सो सब फलदायक होता है जैसे धरती में बीज बोवते हैं सो जो धरती में दबाहुआ होता है वही

उगता है और बाहर जो दाना होता है सो नहीं उपजता पर जिसके मन बिषे खोटी वासना धनआदिक की होती हैं तब उसको और जीवों के कल्याण के निमित्त भजन को प्रकट करना लाभदायक नहीं होता क्योंकि प्रथम तो दम्भ करके इसकी मंशा मलिन होती है और इसीकारण से और जीवों को भी इसके भजन और उपदेश का प्रवेश नहीं होता ताते ऐसे पुरुष को गुह्य भजन करना विशेष है पर प्रकट भजन करनेवाले को इस प्रकार चाहिये कि अपने हृदय को भली प्रकार देखता रहे और दम्भ की वासना से रहित होवे क्योंकि केते पुरुषों के हृदय में दम्भ की प्रीति गुह्य होती है और अपने चित्तबिषे इस प्रकार अनुमान करलेते हैं कि हम जगत् के कल्याण के निमित्त भजनको प्रकट करते हैं बहुरि दम्भ की प्रीति करके अपने धर्म को नष्ट करते हैं सो ऐसे पुरुषार्थहीन पुरुषों का दृष्टान्त यहहै कि जैसे कोई मनुष्य नदी बिषे तैरनेलगे और तैरने की विद्या को जानता न होवे तब अवश्यही जल के प्रवाह बिषे डूब जाता है अथवा और किसी को उस प्रबल प्रवाहसे निकाला चाहे तब उसको भी अपने संगही डुबावताहै और बलवान् पुरुषोंका दृष्टान्त ऐसाहै कि जैसे कोई तैरने की विद्या बिषे चतुर होवे तब वह आप भी तैरजाता है और और मनुष्यों को भी तैरायलेता है सो यह सन्तजनों की अवस्था है पर सब किसी को ऐसा नहीं चाहिये कि महापुरुषों की अवस्था को देखकर यह भी अभिमानी होवे और दम्भसे रहित होकर अपने भजन को गुह्य न राखे तब निस्संदेह उसका अकाज होता है बहुरि जो पुरुष जगत् के कल्याण के निमित्त भजन को प्रकट करता है सो तिसकी परीक्षा यह है कि जब कोई उसको ऐसा कहे कि तू अपने भजन को प्रसिद्ध न कर इस करके कि लोगोंको कल्याणका उपदेश करनेवाला अमुक वैराग्यवान् प्रकट है ताते उसकी संगति करके इनको अधिकलाभ होवेगा और तुझको भी गुह्य भजन करने बिषे अधिकलाभ है सो जब वह पुरुष यह वार्त्ता सुनकर भी भजनको प्रकटही किया चाहे तब ऐसा जानिये कि अपने मान और ऐश्वर्य को चाहता है और अर्थ के फल की मंशा से हीनहै बहुरि एक ऐसे पुरुष होते हैं कि भजन के नियमको पूर्ण करके लोगों बिषे इस प्रकार कहने लगते हैं कि हमने क्या करतूति कियाहै? सो इस वचन करके भी मनको प्रसन्नता होती है ताते चाहिये कि अपनी स्तुति की रसना को सकुचायराखे अर्थ यह कि जब-

लग मान अपमान और निन्दा स्तुति इसको समान न होवे तबलग किसी प्रकार अपनी बड़ाई को प्रकट न करे बहुरि जब मान की अभिलाषा मूलही से इसके हृदय से दूर होजावे तब उसको अपनी स्तुति करके भी दोष नहीं लगता और उसके वचन सुनकर केते जीवों की मंशा शुभ करतूति विषे दृढ़ होती है सो केते बलवान् पुरुषों ने इस प्रकार अपनी विशेषता को वर्णन कियाहै जैसे एक सन्त ने कहा है कि मैंने भगवत् का भजन संकल्प सहित कदाचित् नहीं किया और जो वचन मैंने महापुरुषों के मुख से सुना है सो तिसको यथार्थही जानकर निश्चय किया है इसीपर उमरनामी सन्त ने भी कहा है कि जब मैं प्रभात समय उठता हूं तब मुझको किसी सुगम और अगम कार्यविषे भय नहीं होती इसकरके कि देखिये मेरी भलाई किस कार्यमें होवेगी ऐसेही इबनमसऊद सन्त ने कहाहै कि जब जैसा अवसर मेरे ऊपर आता है तब उसको मैं अपनी वासनाके अनुसार कदाचित् विपर्यय नहीं कियाचाहता और सिफयांसौरी सन्त जब मृत्युवश होनेलगे थे तब उनके सम्बन्धी रुदन करनेलगे तब उन्हों ने ऐसा कहा कि मेरे मृत्यु होनेपर रुदन न करो क्योंकि जिस दिनसे मैंने महाराज के मार्ग विषे चरण राखाहै तबसे मैंने पापकर्म नहीं किया इसीपर एक और सन्त ने कहाहै कि जिस प्रकार भगवत् की आज्ञा हुई है उससे मैंने विपर्यय वासना नहीं करी पर निर्बल मनुष्य को इस प्रकार नहीं चाहिये कि उनको देखकर यह भी अभिमानी होजावे बहुरि महाराज के करतूतों विषे ऐसे भी गुह्यभेद हैं कि उनको अपनी बुद्धि करके पहिचान नहीं सके और केते विघ्नों विषे ऐसी गुह्य भलाई होती है कि हम उसको जानतेही नहीं जैसे दम्भ करके दम्भी मनुष्य का अकाज होजाता है पर तौभी उसको देखकर केते जीवों की वृत्ति सात्त्विकी आचरण विषे दृढ़ होजाती है और अपनी शुद्धमंशा करके दम्भी पुरुषको भी निष्काम जानते हैं ताते वह भी निष्कामता विषे दृढ़होते हैं (अथ आज्ञादेनी अपने पापको छिपानेकी) ताते जान तू कि भजनके प्रकट करने में तो निस्सन्देह दम्भ होताहै पर अपने अवगुणों का छिपाना भी सन्तजनों ने प्रमाण कहा है और इसको दम्भ नहीं कहते क्योंकि अपने पाप को दुराने विषे पांच प्रकारकी विशेषता प्रसिद्धहै प्रथम यह कि पापकर्म को देखकर लोग निन्दा करते हैं और जब इस पुरुष की वृत्ति निन्दा स्तुति विषे आसक्त होतीहै तब भजन से विमुख

रहताहै १ बहुरि दूसरी विशेषता यहहै कि निन्दा सुनकर इस मनुष्यका हृदय अप्रसन्न होताहै और निन्दास्तुतिको सम जानना महादुर्लभ है ताते ऐसी अवस्था को प्राप्तहोना भी महाकठिन है बहुरि निन्दा के भय करके भजन करना निष्कामही विशेष होताहै और निन्दा के भय करके निन्द्य कर्मोंको दुरावना अयोग्य नहीं इस करके कि यद्यपि यह पुरुष लोगों की स्तुतिसे विरक्त होसक्ता है तौभी निन्दा बिषे धैर्य करना महाकठिन है २ बहुरि तीसरी विशेषता यहहै कि जब किसी का मलिन कर्म प्रसिद्ध होता है तब उसको देखकर और लम्पट मनुष्य भी ढीठ होजाते हैं और शङ्का से रहित होकर निन्द्य आचार बिषे बिचरने लगते हैं सो इस मंशा करके अपने पाप को दुरावना भी विशेषहै पर जब अपने पाप को इस मंशा करके दुरावें कि ये लोग मुझको बैरागी और भजनवान् जानें तब यह वार्त्ता अयोग्य है ३ बहुरि चौथी विशेषता यह है कि लज्जा करके अपने अवगुणों को दुरावे तौभी भला है क्योंकि सर्व मनुष्यों से लज्जा करनी इस जीव को प्रमाण कही है पर जब कोई इस प्रकार कहे कि लज्जा और दम्भ एक हैं तब ऐसे नहीं क्योंकि लज्जा और है और दम्भ और है पर जब कोई पुरुष ऐसा होवे कि उसका अन्तर बाह्य एक समान होवे तब यह अवस्था महाउत्तम है और यह अवस्था उसही को प्राप्त होती है जिसके हृदय बिषे भी पाप की मंशा न फुरे और जब कोई पुरुष पापकर्म करके इस प्रकार कहे कि जब भगवत् मेरे पाप को जानता है तब मैं और जीवों से किस निमित्त दुरावों सो यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि महाराज ने भी गुह्य वार्त्ता को छिपानाही विशेष कहा है ४ बहुरि पांचवीं विशेषता यह है कि जब इसका अवगुण इसलोक बिषे प्रसिद्ध न हुआ तब महाराज को दयालु जानकर इस प्रकार समझै कि उसकी दया करके परलोक बिषे भी मेरा अवगुण प्रसिद्ध न होवेगा ताते अपने पाप को दुरायकर महाराज की दया के ऊपर शुद्ध आशा राखे तब यही बड़ी विशेषता है ५ (अथ प्रकट करना इसका कि दम्भ की भय करके शुभ कर्मोंका त्यागकरना प्रमाण है अथवा नहीं) ताते जान तू कि सब शुभकर्म तीन प्रकार के कहे हैं सो प्रथम यह कि एक कर्म का सम्बन्ध केवल भगवत् के साथ होताहै जैसे भजन और व्रत और साधन जो जिज्ञासुजन करते हैं १ और दूसरा यह कि उन कर्मों का सम्बन्ध लोगों के साथ अवश्यही होताहै जैसे

राजनीति की मर्याद विषे बिचरना और देशों की पालना और रक्षा करनी २ बहुरि तीसरा कर्म इसप्रकार है कि उसका सम्बन्ध लोगों के साथभी होताहै और लोगों विषे उसका प्रवेश भी पहुँचता है और कर्म करनेवाले को भी उसका गुण प्राप्त होताहै जैसे कथा कीर्त्तन और शुभकर्म जो व्रत भजन आदिक हैं ३ तब दम्भकी भयकरके इनका त्यागकरना प्रमाण नहीं पर जब ऐसे कर्मों विषे किसी पुरुष को अचानकही दम्भका संकल्प फुरआवै तब चाहिये कि उस मलीन फुरना को बिचार करके निवृत्तकरे और भजन की शुद्ध मंशाको हृदय विषे दृढ करे बहुरि लोगों के देखने के निमित्त भजन को बढ़ावे घटावे नहीं और जिस प्रकार आगेही भजन करताहोवे तैसेही करतारहे तौ भला है अथवा जब भजन की मंशा कुछही न रहे और दम्भ का संकल्प अत्यन्त दृढ़ होजावे तब यह तो भजनही नहीं कहाजाता पर जबलग इस पुरुष की शुद्ध मंशा का बीज स्थितहोवे तबलग ऐसे कर्मोंका त्याग न करे इसीपर फुजैलनामी सन्त ने कहा है कि लोगों की दृष्टिके भयकरके शुभकर्मों को त्यागदेना ही दम्भ है और जो पुरुष जगत् को दिखावने के निमित्तही भजन करे तब वह तो निस्सन्देह मन-मुख होताहै पर यह मनरूपी दुष्ट ऐसा शत्रु है कि जब और छल करके भजन का त्याग नहीं करायसक्ता तब ऐसा संकल्प आन उपजावता है कि जब तू भजन करता है तब और लोग तुझको देखते हैं तब यह केवल दम्भ होताहै ताते तू भजन ही का त्यागकर पर जब तू मन की आज्ञा मानकर धरती को खोदै और उसबिषे बैठकर भजनकरे तौभी तुझको इस प्रकार कहेगा कि लोग तुझ को भजनवान् जानते हैं ताते तेरा भजन करना प्रमाण नहीं सो इसका उपाय यह है कि मन को इस प्रकार बिचारकर कहिये कि लोगों की ओर चित्त की वृत्ति को पसारना और इस ही भय करके भजन का त्याग करना सो यह भी केवल दम्भ है ताते लोगों का देखना और न देखना मुझको एक समान है क्योंकि मुझको भजन के स्वभाव बिषेही स्थित होना विशेष है और मैं इस प्रकार जानताहूं कि मुझको कोई नहीं देखता ताते दम्भकी भयकरके भजन को त्याग करने का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई अपने टहलुवेसे कहे कि अमुक अनाज को अमनिया करले और वह टहलुआ ऐसा जानकर अनाज को शुद्ध न करे कि जो इस अनाजबिषे अकस्मात् अमनिया करनेके पीछे भी कोई रोड़ी अथवा

कांकर रहजावे तब यह भली प्रकार शुद्ध न होवेगा ताते मैं मूलही से अनाज शुद्ध करने का उद्यम नहीं करता तब उससे उसका स्वामी ऐसे कहता है कि हे मूर्ख ! जब तैंने मूलही से शुद्ध करनेका उद्यम न किया तब क्या वह अनाज शुद्ध होजावेगा अर्थात् अत्यन्त अशुद्ध रहेगा तैसेही इस जीव को भगवत् ने निष्काम कर्म की आज्ञा करी है पर जब दम्भ के भय करके शुभ कर्मही न करे तब निष्काम क्योंकर होवेगा क्योंकि निष्कामता शुभकर्मों बिषेही स्थितहोती है और इब्राहीम सन्तकी वार्त्ता इस प्रकार सुनी है कि सर्वदा अपनी कुटी बिषे पोथी का पाठकरते रहतेथे बहुरि जब और किसीको द्वारेपर आता देखते थे तब पोथी को उलटाय रखते थे सो इसका तात्पर्य यहहै कि वे इसवार्त्ता को निश्चय जानते थे कि जब कोई पुरुष हमारे मिलने को आयाहै तब उसके साथ अवश्य ही कुछ वचन वार्त्ता करनी होवेगी ताते पोथी को उलटाय रखनाही विशेष है और हमनबसरी ने इस प्रकार कहा है कि जब जिज्ञासुजनों को महाराज के प्रेम करके रुदन आता था तब निष्काम पुरुष अपने मुख को दुरायलेते थे इस करके कि हमारे आंसू चलने को और लोग न देखें सो यह वार्त्ता भी प्रमाण है क्योंकि गुह्य रुदनकरने से प्रकट रोना कुछ विशेष नहीं होता और उन्होंने भी लोगों के निमित्त रुदन का त्याग नहीं किया पर अपनी प्रीति के प्रवाहको गुह्य करलिया है और जब कोई पुरुष ऐसा होवे कि मार्ग बिषे कांटा और पत्थर देखकर उठावे नहीं इस करके कि लोग मुझको दयावान् जानेंगे सो यह अत्यन्त पुरुषार्थ की हीनता है क्योंकि ऐसा पुरुष लोगोंके देखने से अपने चित्त बिषेही भयवान् होता रहता है और इसही संकल्प की अधिकता करके भजन नहीं करसक्ता सो यह अवस्था कुछ विशेष नहीं होती ताते चाहिये कि प्रीतिमान् अपने हृदय से दम्भ का निवारण करे और भजन को त्याग न देवे तौ भला है बहुरि दूसरा कर्म जो इस प्रकार वर्णन किया कि अवश्यही उसका सम्बन्ध लोगों के साथ होता है जैसे राजनीति और देशों की पालना करनी सो जब यह पुरुष राजनीति बिषे धर्म और विचार की मर्याद संयुक्त बिचरै तब यह भी उत्तम भजन होता है और जब धर्म से हीन होजावे तब इसही को महापाप कहा है ताते जिस पुरुष को ऐसी प्रतीति दृढ़ न होवे कि मेरा मन राजनीति बिषे विचार की मर्याद सहित न बिचरेगा तब उसको राज्या-

दिक व्यवहार को अङ्गीकार करना प्रमाण नहीं क्योंकि जब राजधर्म बिषे अनीति सहित बिचरे तब महाअपराध को प्राप्त होता है और यह राज्यव्यवहार नियम और व्रतों की नाई नहीं क्योंकि भजन के नियम और व्रतों बिषे इस मन को मूलही से कुछ प्रसन्नता नहीं भासती पर लोगों के देखने करके प्रसन्नता को पाता है और राजव्यवहार बिषे सर्वभोग और मानादिकों की अधिकता होती है ताते इस जीव का मन शीघ्रही वृद्धिस्थूलतहे होजाता है इसी कारण से कहा है कि राजनीति बिषे कोई बिरलाही पुरुष बिचार की मर्याद में स्थित रहता है और यह अवस्था उसही को प्राप्त होती है जिसने आगेही अपने मन की परीक्षा करली होवे पर यद्यपि यह मन राजधर्म से आगेही दिखावे कि मैं जगत् की पालना बिषे भलीप्रकार बिचरूंगा और भोगों बिषे आसक्त न हो-ऊंगा तौभी जिज्ञासुजन को भय औ दोषदृष्टि करनी विशेष है क्योंकि मत यह भी मन का छल न होवे और जब सिंहासन पर जाय बैठे तब स्थित न रहे ताते स्थिर बुद्धि विना ऐसे व्यवहार को अङ्गीकार करना प्रमाण नहीं इसी पर अबू-बक्र सन्त ने एक अपने मिलापी से कहा था कि जब तुझको दो पुरुषों बिषे मुखिया करें तौभी अङ्गीकार न करना बहुरि जब महापुरुष से पीछे अबूबक्रको सर्व देशों का राज्य प्राप्तहुआ तब उस प्रीतिमान् ने कहा कि तुम मुझको तो बर्जित करते थे फिर तुमने राज्य को क्यों अङ्गीकार किया तब उन्हों ने कहा कि मैं तुझको तो अबभी बर्जित करता हूं क्योंकि जो पुरुष सिंहासन पर बैठकर न्याय न करे तब वह महाराज के दरबार से बिमुख होता है पर अबूबक्रजी ने जो उसको राज्य से बर्जित किया था और आप राज्य को अङ्गीकार किया सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष अपने पुत्र को इसप्रकार कहे कि तू जल के प्रवाह बिषे प्रवेश न कर क्योंकि जब तू तैरनेकी विद्या विना नदी बिषे प्रवेश करेगा तब शीघ्रही डूबजावेगा पर जब वह पुरुष आप तैरनेकी विद्या जानता होवे तब उसको तो नदी का भय कुछ नहीं होता और सुगमही उल्लङ्घित हो-जाता है बहुरि जब वह बालक भी उसको देखकर नदी के प्रवाह बिषे प्रवेश करे तब वह तो निस्संदेह डूबजाता है तैसेही जो पुरुष राजव्यवहार बिषे बि-चार की मर्यादसहित न बिचरे तब दण्ड का अधिकारी होता है ताते ऐसे पुरुष को राजधर्म का अङ्गीकार करना अयोग्य है पर जो कोई ऐसा बिचारवान् होवे

कि जब कोई और पुरुष भलीप्रकार न्याय करनेवाला आवे तब उसके साथ ईर्षा और वैरभाव न करे और उसको देखकर अधिक प्रसन्न होवे और इस भय से रहित होवे कि इसके राज्य करके मेरा राज्य नष्ट होवेगा तब जानिये कि इसने धर्म ही के निमित्त राज्य को अङ्गीकार किया है २ बहुरि तीसरा कर्म इस प्रकार का कहा है कि लोगों को शुभमार्ग का उपदेश करना और वचन वार्त्ता करके जीवों का संशय निवारण करना सो यद्यपि यह कर्म भी अधिक विशेष है तोभी इस बिषे मन को दीर्घ प्रसन्नता प्राप्त होती है और दम्भका प्रवेश अधिक होजाता है और यद्यपि मान के सम्बन्ध करके यह कर्म भी राजधर्म के निकट होता है तौभी इस बिषे इतना भेद प्रकट है कि शुभमार्ग बिषे उपदेश सुननेवाले को भी लाभदायक है और कहनेवाले को भी गुणदायक होता है सो राज का व्यवहार इस प्रकार नहीं होता पर जब किसीको इस धर्म बिषे दम्भ की मंशा उपजआवे तौभी बिचार करके इसका त्याग करना प्रमाण है पर केते जिज्ञासुजनों की ऐसी अवस्था हुईहै कि जब उनसे कोई पुरुष प्रश्नोत्तर पूछता था तब इस प्रकार कहते थे कि अमुक बुद्धिमान् से पूछलो क्योंकि हम इस वार्त्ता को भलीप्रकार नहीं जानते इसी पर वशरहाफ़ी सन्त ने पोथियों का संदूक धरती बिषे गाड़दिया था और कहनेलगे कि मैं अपने हृदय बिषे उपदेशरूपी भोग की अभिलाषा देखता हूं ताते मैंने वचन वार्त्ता को त्याग दिया है और जब मैं अपने हृदय को इस अभिलाष से रहित देखता तब मुझको उपदेश करना प्रमाण होता ऐसेही और सन्तजनों ने भी कहा है कि उपदेश करना भी मन का भोग है क्योंकि जिस पुरुष के हृदय बिषे मान और बड़ाई की प्रीति होवे तब उसको जगत् का मुखिया होना भी अयोग्य है इसीपर उमर सन्त से किसी प्रियतम ने पूछा था कि जो तुम आज्ञा देवो तो मैं लोगों को शुभमार्ग का उपदेश करूं तब उन्होंने कहा कि जो इस उपदेश करने करके तेरे हृदय बिषे मान की अधिकता होजावे और बड़ाई का पवन तुझको उड़ालेजावे तब तेरा अकाज होवेगा ताते मेरे चित्त बिषे यही भय आता है इसी पर इब्राहीम सन्त ने भी कहा है कि जब तू अपने हृदय बिषे बोलने की अभिलाष देखे तब तुझ को मौन करना विशेषहै और जब मौनको अधिक देखे तब वचन वार्त्ता करनी विशेषहै पर मेरे चित्त बिषे इस प्रकार भासता है कि उपदेश करनेवाला पुरुष

अपने हृदय बिषे विचार कर देखे और इस वार्त्ता को भली प्रकार करे कि जब सात्त्विकी मंशा और दम्भका संकल्प दोनों मिलेहुये होवें तब उपदेशका त्याग न करे और यत्न करके सात्त्विकी मंशा को दृढ़करे और दम्भ के संकल्पका निवारण करे क्योंकि उपदेश का करना भी व्रत और भजन के नियम की नाईं कुछ दम्भ के संकल्प करके त्यागना प्रमाण नहीं पर शुद्ध मंशा के बीजको पुष्ट करे और दम्भही निवृत्त किया चाहिये बहुरि जब राजधर्म बिषे कुछ भी मंशा की मलिनता होवे तब राजव्यवहार को त्यागदेना प्रमाणहै क्योंकि राजनीति बिषे मान और भोगों की अधिकता करके शीघ्रही मलिनता बढ़जाती है और शुद्ध मंशा का बीज तत्काल ही नष्ट होजाता है इसी कारणसे जब अबूहनीफा सन्त को राजा का प्रधान करनेलगे थे तब उन्हों ने कहा कि मैं प्रधानता का अधिकारी नहीं बहुरि राजा ने कहा कि तुम तो सम्पूर्ण विद्यावान् हो और नीति अनीति के विचारने योग्यहो ताते तुमहीं उत्तम अधिकारी हो तब उन्हों ने कहा कि जब मैं सत्य कहता हूं तब निस्संदेह अधिकारी न हुआ और जब झूठ कहता हूं तब झूठा मनुष्य राजनीति का अधिकारी नहीं होता तात्पर्य यह कि यद्यपि ऐसे कहकर उन्होंने राजधर्म का अङ्गीकार न किया पर सर्व आयुष् पर्यन्त लोगों को धर्म का उपदेश करतेरहे और वचन वार्त्ता का त्याग नहीं किया बहुरि जब उपदेश करनेवाले के हृदय बिषे कुछ भी धर्म की मंशा न रहे और सर्वथा दम्भ की अधिकता बिषे आसक्त होजावे तब उसको उपदेशका त्याग करनाही विशेष कहा है पर जब वह पुरुष मुझ से पूछे कि मैं उपदेश करता रहूं अथवा त्यागदूं तब मैं इस प्रकार विचार की दृष्टि करके देखूं कि जब उसके वचन बिषे लोगों को धर्म के मार्ग का लाभ कुछ न होवे जैसे कवीश्वरों की चतुराई अथवा मत और पन्थों का विवाद वर्णन होवे अथवा संसारी जीवोंको भगवत् की दयाका बखान करके सुनावे और पापों बिषे उनको निश्शङ्क करे तब उसको तो वचन वार्त्ताका त्याग करनाही प्रमाण कहा है क्योंकि उसके मौन रहने बिषे लोगों को गुण होवेगा और वह भी दम्भ और मान से मुक्त रहेगा बहुरि जिसका वचन धर्म की मर्याद अनुसार होवे और लोग उसको निष्काम जानकर धर्म का अङ्गीकारकरें तब मैं ऐसे पुरुषको उपदेश करने के त्याग की आज्ञा न देऊंगा क्योंकि यद्यपि उपदेश करने बिषे दम्भकी मंशा करके उसको अवगुणही होता

है पर बहुत पुरुषों को उसके वचन सुनकर धर्म की प्राप्ति होती है और जब वह पुरुष उपदेश को त्यागदेवे तब उसको तो प्रसिद्धही गुण व लाभहै पर और बहुत मनुष्यों की हानि होती है ताते ऐसे जान तू कि सहस्र पुरुषों का लाभ एक पुरुष की हानिसे विशेष है इसी कारण से मैं एक उपदेश करनेवाले दम्भीको सहस्र जिज्ञासुओं पर निछावर किया चाहताहूं इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि जिज्ञासुजनों को सकामी पण्डितों से भी धर्महीकी प्राप्तिहोती है और वह पण्डित अपने धन और मानादिक प्रयोजनहीको पाते हैं ताते ऐसे पुरुषोंको इतनीही आज्ञा करूं कि तुम शुभ उपदेशका त्याग न करो पर यथाशक्ति दम्भहीको निवृत्त करने में तुम्हारी भलाई है और पुरुषार्थ करके निष्काम श्रद्धा विषे दृढ़ होवो प्रथम आप ही उत्तम उपदेश को अङ्गीकार करो और भगवत् के भय विषे स्थित होवो बहुरि और लोगोंको उपदेश करके भगवत् का भय दो पर जब कोई इसप्रकार प्रश्न करे कि उपदेश करनेवाले की मंशा शुद्ध और निष्काम क्योंकर जानिये ? तब इस का उत्तर यह है कि शुद्ध मंशा तबहीं जानी जासक्ती है जब इस पुरुष की श्रद्धा यही होवे कि किसी प्रकार ये मनुष्य भगवत् के मार्ग को अङ्गीकार करें और माया से विरक्त होवें सो यह केवल दया होती है पर जब कोई ऐसा पुरुष और भी आय प्रकटे कि उसके उपदेश करके जीवों को धर्म का अधिक लाभ होवे और लोग उसपर विशेष प्रतीति राखें तब चाहिये कि इस करके यह पुरुष अधिक प्रसन्नहोवे सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई मनुष्य अन्धकूप विषे गिरपड़े और कोई पुरुष दया करके उसको बाहर निकाला चाहे पर जब दूसरा पुरुष भी उसके निकालने विषे आय सहाय करे तब प्रथम पुरुष को निस्संदेह प्रसन्नता प्राप्त होतीहै तैसेही जब उपदेश करनेवाला मनुष्य और किसी विवेकी जनको देखकर प्रसन्न न होवे तब जानिये कि यह पुरुष उपदेश करके आपको पुजाया चाहताहै और भगवत् के मार्ग विषे लगाया नहीं चाहता बहुरि शुद्ध मंशा का दूसरा लक्षण यह है कि जब सभा विषे वचन वार्त्ता करतेहुये धनवान् अथवा राजालोग आय प्राप्तहोवें तौभी यथार्थ वचन का त्याग न करे और उन का ऐश्वर्य देखकर सकुच न जावे और अपने स्वभावके अनुसार यथार्थ वचन ही पर दृष्टिराखे तब जानिये कि इस पुरुष की मंशा निष्कामहै तात्पर्य यह कि उपदेश करनेवाला पुरुष प्रथमही ऐसे लक्षणों को अपने चित्त विषे विचारकर

देखे सो जब ऐसा चिह्न आप बिषे कोई न जाने तब निश्चय इस प्रकार करे कि मैं शुद्ध मंशा से हीनहूं और मेरे चित्त बिषे प्रकटही दम्भ है और जब इस प्रकार देखे कि मुझको इस दम्भ बिषे दोषदृष्टि आती है तब जानिये कि इसके हृदय में शुद्ध मंशा का बीज भी प्रकट है ताते पुरुषार्थ करके निष्काम श्रद्धा को बढ़ावे और दम्भसे रहित होवे बहुरि ऐसे जान तू कि इस जीव को कैसे अवसरों बिषे भजन करतेहुये और मनुष्योंके मिलाप करके प्रसन्नताभी प्राप्त होती है पर उसको दम्भ नहीं कहते सो प्रसन्नता यहहै जैसे जिज्ञासु जनके हृदय बिषे अकस्मात् कुछ संशय उपजआवे और उसही संशय करके भजन बिषे विक्षेपता आन प्राप्तहोवे बहुरि जब किसी और सात्त्विकी मनुष्य को देखे तब वह संशय निवृत्त होजावे और चित्तकी वृत्ति प्रसन्नता सहित भजन बिषे दृढ़ होवे तब वह दम्भ नहीं कहा जाता जैसे कोई पुरुष अपने गृह बिषे आलस्यनिद्रा को त्याग न सके अथवा सम्बन्धियों के वचन सुनताहुआ विक्षेपता को प्राप्तहोवे बहुरि जब अपने गृहसे निकलकर कथा कीर्त्तनकी ठौर बिषे जाय बैठे तब शीघ्र ही भजन की रुचि और प्रसन्नता उपज आती है और वह सबही विक्षेपता दूर होजाती है क्योंकि बिराने स्थान बिषे निद्रा की अधिकता भी नहीं रहती और भजनवानों को देखकर यह भी जाग्रत् और भजन बिषे दृढ़ होजाता है जैसे व्रती और संयमी पुरुषों को देखकर इसको भी संयम की रुचि उपज आती है तात्पर्य यह कि ऐसी प्रसन्नता और भजन की अधिकता सात्त्विकी संगति के प्रवेश करके वृद्ध होजाती है और इस क्रिया को दम्भका कर्म नहीं कहते पर यह मन ऐसे अवसर बिषे भी इस प्रकार संशय आन डालताहै कि यह करतूति दम्भके सम्बन्ध करके करता है ताते यह तेरा कर्म फलदायक न होगा सो इस हीका नाम मन का छल कहते हैं क्योंकि इस मनुष्यके हृदय बिषे संशय डालकर शुभकर्मसे वर्जित किया चाहताहै ताते जिज्ञासु को चाहिये कि विचार करके इस प्रकार जाने कि एक कर्म निस्संदेह दम्भके आशय करके होताहै और एक कर्म सात्त्विकी संगति के प्रवेश करके होताहै सो इन दोनों को अवश्यही भिन्न किया चाहिये पर इनकी भिन्नताका चिह्न यह है कि जब लोग इसको न देखे और यह पुरुष उनको देखता होवे तब ऐसे स्थान बिषे प्रसन्नतासहित भजन करना उनकी संगति का गुण है और जब परस्पर एक दूसरे को देखते होवें

तौभी विचार करके दम्भ और सात्त्विकी संगति के प्रवेश को भिन्नकरे बहुरि शुद्ध मंशा करके दम्भकी अभिलाष को दूर करे और संशय से रहित होकर भजन बिषे स्थितहोवे क्योंकि इस मनुष्य का यह भी स्वभाव है कि जब किसी पुरुष को भय या प्रीति संयुक्त रुदन करताहुआ देखता है तब इसका चित्त भी कोमल होजाता है और वही वचन सुनकर रुदन करनेलगता है सो यद्यपि एकान्त ठौर बिषे ऐसे नहीं होवे तौभी इस कर्मको दम्भ नहीं कहते क्योंकि रु- दन करनेवाले को देखकर अवश्यही इसका चित्त द्रवीभूत होहीजाताहै पर इस बिषे भी इतना भेद है कि आंसू का चलना हृदय की कोमलता करके होताहै और ऊंची पुकार करनी अथवा धरतीपर गिरपड़ना दम्भका कारणहै ताते चा- हिये कि जब अकस्मात् ऊंची पुकार मुखसे निकलजावे अथवा धरतीपर गिरपड़ा होवे तब शीघ्रही सचेत होकर प्रीति के प्रवाह को सकुचायलेवे और जिसके चित्त बिषे यह संशय आन उपजे कि मत यहलोग मुझको इस प्रकार कहैं कि इसके चित्त बिषे वास्तव प्रीति कुछ नहीं ताते तुरन्तही सचेतना को प्राप्तहुआ है सो जब ऐसा जानकर ऊंचे स्वरसे पुकार करतारहे अथवा धरतीपर गिरारहे तब निस्सन्देह दम्भी होता है तात्पर्य यह कि सबही शुभ कर्म दम्भकरके भी होते हैं और सात्त्विकी संगति करके भी उनकी रुचि उपज आती है ताते जि- ज्ञासुजन सदैवकाल अपने मन की ओर देखतारहे और दम्भके भयसे रहित न होवे इसीपर महापुरुष ने कहा है कि शुभ कर्मों बिषे नाना प्रकार करके दम्भ की मंशा उपजआती है ताते जब अपने मन बिषे दम्भकी अभिलाषा को देखे तब इस प्रकार विचार करके जाने कि भगवत् मेरे अन्तर की मलि- नता को प्रकटही जानता है ताते जब मैं अशुद्ध मंशा करूंगा तब निस्संदेह महाराज के दण्ड का अधिकारी होऊंगा ऐसेही जानकर दम्भको निवृत्तकरे और इस वचन को चित्त बिषे स्मरणकरे जैसे महापुरुष ने कहाहै कि जिस एकाग्रता बिषे दम्भ की अभिलाषा मिली होवे तब उस एकाग्रता से भगवत ही रक्षाकरे सो इसका अर्थ यह है कि मन तो चपल होवे और बाहर के अङ्गों करके आपको भजनवान् दिखावे तब वह केवल दम्भी कहाता है बहुरि ऐसे जान तू कि भजन और हृदय की एकाग्रता बिषे तो अवश्यही निष्काम होना चाहिये और दम्भ को दूर करना प्रमाण है पर ऐसेही और भी केते सात्त्विकी

कर्म हैं कि जब उनके उत्तम फलों को प्राप्तहुआ चाहे तौभी निष्काम होना विशेष है जैसे किसी मित्र अथवा किसी अर्थी के मनोरथ को पूर्णकरे तब इस प्रकार निष्काम होवे कि बहुरि उससे उपकार और अपनी स्तुति की चाह न करे अथवा जब किसी को विद्या पढ़ावे तब ऐसी अभिलाषा न करे कि यह विद्यार्थी मेरे काम आवेगा अथवा टहल करेगा अथवा मेरे पीछे चलेगा सो ऐसी मंशाभी सकाम होती है और धर्म के लाभ को निष्फल कर डालती है पर जब इसकी मंशा सेवा कराने की न होवे और वह आपही टहल सेवा करता रहे तौभी उत्तम वार्त्ता यह है कि उसकी सेवा पूजा को अङ्गीकार न करे और जब इसकी मंशा बिनाही वह पुरुष प्रीतिसंयुक्त आपही सेवा करे बहुरि जब वर्जित करिये तौभी त्याग न देवे तब विद्या पढ़ानेवाले का लाभ निष्फल नहीं होता पर जब अभिमान से रहित होवे और आपको स्वामी न जाने तब दोनों पुरुषों को अपनी शुद्धभावना का फल प्राप्त होता है सो यद्यपि यह वार्त्ता निस्सन्देह है पर केते विद्यावानों ने अपने विद्यार्थी की पूजा से अधिक भय किया है जैसे एक विद्यावान् दैवसंयोग पाकर कूप बिषे गिराथा तब केते पुरुष मिलकर रस्से डालकर उस को बाहर निकालने लगे तब उसने कूप में से ही भगवत् की दुहाई देकर कहा कि हे भाई ! जिसने मुझसे कुछ विद्या पढ़ी होवे सो वह इस रस्सी में हाथ न लगावे ताते उनका प्रयोजन यह था कि किसी प्रकार मेरी निष्कामता का फल नष्ट न होवे ऐसेही एक और पुरुष सिफ़यांसौरी सन्त के पास कुछ भेंट लेआया था जब उन्होंने अङ्गीकार न किया बहुरि उस पुरुष ने कहा कि मैंने तो तुम्हारे मुख से वचनवार्त्ता कुछ नहीं सुनी तुम इस पूजा को अङ्गीकार क्यों नहीं करते? तब उन्होंने कहा कि तेरा भाई सर्वदा यहां आकर वचन वार्त्ता सुनता है और मैं इस करके डरता हूं कि मत तेरी पूजा लेकर मेरा चित्त उसके साथ अधिक प्रीतिकरे तब यह वार्त्ता अयोग्य है बहुरि एक और पुरुषभी सिफ़यांसौरीजी के पास दो थाल मोहर के भरेहुये लाया था और इस प्रकार कहनेलगा कि मेरा पिता तुम्हारा प्रियतम था और वह शुद्ध ही व्यवहार करता था सो यह धनभी शुद्ध वृत्ति करके उपजाया हुआहै ताते तुमइसको अङ्गीकार करो तब सिफ़यांसौरीजी ने उस धनको ले राखा बहुरि जब वह पुरुष अपने गृह विषे गया तब इन्होंने अपने पुत्र के हाथ सबही धन उसकी ओर भेजा और इस

प्रकार कहला भेजा कि मेरी और तेरे पिता की प्रीति भगवत के निमित्त थी ताते अब तू धनरूपी पटल काहेको डालता है बहुरि जब उनका पुत्र अपने गृहविषे आया तब अधैर्य होकर पिता से कहने लगा कि तुम्हारा हृदय पाथर से भी अधिक कठोर है क्योंकि हमारा कुटुम्ब भी बहुत है और अत्यन्त निर्द्धनताई को भी तुम सर्वदा देखते हो पर हमारे ऊपर तुमको दया नहीं उपजती तब उन्हों ने कहा कि तुमको खान पानादिक सुख चाहिये और मैं परलोक की ताड़ना से डरता हूं ताते मेरे हृदय विषे ऐसी सामर्थ्यता नहीं कि तुमको सुखेन राखूं और उस दण्डको अपने शीशपर धरूं इसी प्रकार विवेकी जनको चाहिये कि अपने सेवक से सेवा पूजा की आशा न राखे और भगवतही की प्रसन्नता को चाहे बहुरि अपना भजन स्मरण भी सेवक के आगे प्रकट न करे क्योंकि इस को भगवत् के निकट सन्मान और आदर चाहिये है और और लोगों का सन्मान इसके किसीकाम न आवेगा बहुरि जब माता पिता की सेवा करे तौभी भगवतही की प्रसन्नता चाहे और उनके निकट अपनी विशेषता को दिखावे नहीं तात्पर्य यह कि सर्व शुभकर्मों विषे इस जीवको ऐसी निष्कामता प्रमाण है कि भगवत् की प्रसन्नता विना और कुछ प्रयोजन न राखे॥

नववांसर्ग॥

अभिमान अहंकार के उपाय के वर्णन में॥

ताते जान तू कि अभिमान और आपको विशेष जानने का स्वभाव महा निन्द्य है क्योंकि जब विचार कर देखिये तब अभिमानी मनुष्य भगवत् का शरीक हुआ चाहता है इसकरके कि ऐश्वर्य और बड़ाई भगवतही को शोभित है और अभिमानी अपना ऐश्वर्य बढ़ाता है इसीकारण से महाराजके वचनों विषे अभिमान की अधिक निषेधता वर्णन है और महापुरुषने भी कहा है कि जिसके हृदय विषे रञ्चकमात्र भी अभिमान होताहै सो आत्मसुख को नहीं पाता और योंभी कहाहै कि अपनी बड़ाई जनावनेहारे मनुष्यको पापियों की नाईं ताड़ना होवेगी इसीपर एक वार्त्ता है कि एकवार सुलेमाननामी महापुरुष ने अपनी सेना को इकट्ठा किया तब कई लाख मनुष्य और देव, परी, पक्षी, भूत आदिक जीव आन प्राप्तहुये बहुरि सबोंको पवन के वेग साथ उड़ाकर आकाश में लेगये और देवतों की पुरियों के ऊपर जाय स्थितहुये बहुरि अपनेही बल

करके उनको धरती पर लेआये और समुद्रों के तले पर्यन्त प्रवेश करगये तब सुलेमानजी को आकाशवाणी हुई कि जब तुमको रञ्चकमात्रभी अपने बलका अभिमान होता तो मैं तेरी सर्व सेनाको तेरे साथही रसातल विषे लीन करडालता इसी पर महापुरुष ने भी कहा है कि परलोक विषे अभिमानी मनुष्यों का आकार चींटी के समान होवेगा अर्थ यह कि निर्माण करके लोगों के चरणोंतले मर्दन होजावेंगे और योंभी कहा है कि नरकों विषे एक महाकुम्भी नरक है और अत्यन्त भयानकरूप है सो महापापी और अभिमानी मनुष्य उसही नरक विषे पड़े जलेंगे ऐसेही सुलेमानसन्तने भी कहा है कि जिस पाप को कोई शुभ करतूति नष्ट नहीं करसक्ती सो अभिमान है और महापुरुष ने भी कहा है कि जो मनुष्य बड़ाई करके अपने वस्त्र को धरतीपर घसीटता है और लटक चलता है तब उसकी ओर भगवत् कदाचित् दया दृष्टि करके नहीं देखता इसी पर एकवार्त्ता यह भी वचनों विषे आई है कि कोई पुरुष महासुन्दर वस्त्र पहिनकर अपनी ओर देखताथा और बड़ाई करके लटक २ चलता था तब इसी पाप करके भगवत् के क्रोध से धरती विषे लीन होगया और योंभी कहते है कि प्रलयकाल पर्यन्त ऐसेही रसातलों के नीचे चलाजावेगा इसी पर इब्नबासासन्त ने अपने पुत्रको लटक २ चलता देखा था तब उससे पुकारकर कहनेलगे कि हे पुत्र! तू आपको जानता है कि मैं किस की सन्तानहूं तेरी माता तो मैंने कुछ रुपये देकर मोल ली थी और मैं जो तेरा पिता हूं सो महा अधम और नीच हूं ऐसेही एक और सन्त ने किसी अभिमानी पुरुष को लटक२ चलते देखा था सो उसको जब वर्जित किया तब वह कहनेलगा कि तुम मुझ को नहीं जानते बहुरि उन्होंने कहा कि मैं तो तुझको जानता हूं कि आदि तेरी मलिन जल की बूंद है और अन्त को महाकुचील मृतक होवेगा ऐसेही मध्यकाल विषे भी तू लंघी और विष्ठा की पोट उठानेवाला है (अथ प्रकट करनी स्तुति नम्रता की) महापुरुषने भी इस प्रकार कहा है कि जिस मनुष्य ने नम्रता को अङ्गीकार किया है सो तिसको अवश्यही भगवत् ने बड़ाई दीन्ही है और योंभी कहा है कि सर्व मनुष्यों के गले विषे महाराज ने रस्सी डाली है पर जो पुरुष दीन होता है तब देव उसकी रस्सी को आकाश की ओर खींचते हैं और कहते हैं कि हे महाराज! तुम इसको उत्तमगति देहु और जो पुरुष अभि-

ान करता है तब देव उसकी रस्सी को अधोगति की ओर खींचते हैं और स प्रकार विनती करते हैं कि हे भगवन् ! तू इस मनुष्य को महानीच गति को प्राप्तकर लाते उत्तम पुरुष वही है कि सामर्थ्यता सहित दीनता और गरीबी को अङ्गीकार करे और अपने धनको सात्त्विकी वृत्ति करके उपजावे और शुभ ही अर्थ विषे लगावे और अनाथों पर सर्वदा दयाराखे बहुरि विवेकी जनों के साथ सर्वदा प्रीति और मिलाप राखे इसी पर एक सन्त ने कहा है कि एकबार महापुरुष हमारे गृह में आये थे तब हमने उनके व्रत खोलने के निमित्त दूध और मधु का शर्बत करलिया बहुरि उन्हों ने जब शर्बत का रस चाखा तब कटोरा धरतीपर धर दिया और शर्बत को पान न किया और इस प्रकार कहने लगे कि यद्यपि मैं इस शर्बत के पानकरने को पाप नहीं कहता पर यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि जब यह पुरुष भगवत् के भयकरके गरीबी को अङ्गीकार करता है तब भगवत उसको बड़ाई देता है और प्रसन्न रखता है और जो पुरुष अभिमान करके वर्तता है तब महाराज उसको लजावान् और नीच करते हैं ऐसेही जो पुरुष खानपान का व्यवहार संयम साथ करता है सो संसारी जीवों के आधीन कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष मर्याद से रहित वर्तता है सो सर्वदा निर्द्धनताई और अपमान को प्राप्त होता है बहुरि जो पुरुष भगवत् का स्मरण अधिक करता है तब उसके साथ भगवत् भी अधिक प्रीति करता है इसी पर एक वार्त्ता है कि एकबार किसी कुष्ठी पुरुष ने महापुरुष के द्वारेपर आयकर याचनाकरी और महापुरुष आगे से भोजन कररहे थे तब उस याचक को भीतर बुलाय लिया सो जब वह कुष्ठी वहां आया तब सबही लोग उसकी कुचीलता से डरकर अपने वस्त्र को सकुचावने लगे और महापुरुष उसको अपने आसन पर बैठायकर भोजन करावनेलगे तब एक महापुरुष के सम्बन्धी ने उसपर ग्लानि दृष्टि देखी सो कुछ काल से पीछे उसही कुष्ठ के रोग करके मृत्युको प्राप्तहुये और महापुरुषने योंभी कहा है कि एकबार मुझको महाराज ने इस प्रकार आज्ञाकरी कि तू दास हुआ चाहता है अथवा आचार्य और राजा होना चाहता है तब मैंने आधीन होकर कहा कि मुझको अपना दास करिये इसीपर मूसानामी महापुरुष को आकाशवाणी हुईथी कि मैं उसही पुरुष के भजन को प्रमाणकरता हूं जो यद्यपि बड़ाई संयुक्त होवे तौभी सर्वदा मेरे आधीन रहे और मेरे जीवों के साथ

अभिमान न करे और अपने चित्त को सदैव मेरे भयविषे राखे बहुरि एकक्षण भी मेरे भजनसे अचेत न होवे और मेरी प्रीति करके भोगों से आपको बचाय राखे इसी पर महापुरुष ने कहा है कि उदारता का कारण वैराग्य है और इस मनुष्य के हृदय का निश्चयही सर्व सम्पदा का कारण है ऐसेही ईशा महापुरुष ने कहाहै कि दीनता और नम्रतावान् पुरुष इसलोक विषे भी सुखी रहते हैं बहुरि परलोक विषे भी ऊंची पदवी को प्राप्तहोवेंगे और जिनका चित्त मायासे निरक्तहै सो महाउत्तम पुरुष हैं और भगवत् का दर्शन भी उनहीं को प्राप्तहोता है और जो पुरुष इस लोक विषे जीवों के विरुद्ध को दूर करते हैं सो तिन को परम सुख की प्राप्ति होवेगी इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जिसको भगवत् ने सात्त्विकी धर्म की ओर मार्ग दिखाया है और जिसका स्वभाव महाकोमल है बहुरि ऐसे गुणों संयुक्त जिसका हृदय निरहंकार है सो निस्सन्देह भगवत् का प्रियतम है बहुरि महापुरुष ने एकबार अपने प्रियतमों को इस प्रकार कहा था कि मुझको तुम्हारे हृदय विषे भजन का रहस्य नहीं दृष्टि आवता सो इस का कारण कौन है ? तब प्रियतमों ने पूछा कि भजन का रहस्य क्या है ? तब महापुरुष ने कहा कि भजन का रहस्य दीनता और गरीबी है और योंभी कहा है कि जब दीनपुरुष को देखो तब दीनता करो और जब अभिमानी पुरुष को देखो तब तुम भी बड़ाई करो उनके साथ अर्थ यह कि उनके आगे आधीन न होवो तब वह भी अपनी नीचता को प्रसिद्ध जानें इसी पर महापुरुष की स्त्रीने भी कहाहै कि सर्व शुभकर्मों से विशेष गरीबी और नम्रता है और तुम ऐसे विशेष कर्म से अचेत हुये हो बहुरि फुजैलसन्त ने कहाहै कि यद्यपि कोई बालकही यथार्थ वचन कहे तब उसको अङ्गीकार करलेनाही गरीबी का चिह्नहै और एक और सन्त ने ऐसे कहा है कि जब तू निर्द्धनों को देखकर आपको उन से भी नीच हो दिखावे तब जानिये कि तू धनादिक पदार्थों के अभिमान से रहित है और जब धनवान् को देखकर उसके आगे आधीन होवे तब प्रसिद्ध होवे कि तेरे निकट धन और माया की निषेधता कुछ नहीं और ईसा महापुरुष को भी आकाशवाणी हुईथी कि हे ईसा ! मैंने तुझको अनेक प्रकार के सुख दिये हैं और जब तू मेरे दिये सुखों को दीनता सहित अङ्गीकार करेगा तब मैं उनको सर्वदा बढ़ावताही रहूंगा और तू सदैव सुखी होवेगा इसीपर एक और सन्त ने

एक राजा को इसप्रकार उपदेश किया था कि हे राजन् ! तू दीनता और गरीबी बिषे स्थित हो तब यह गरीबी तुझको राज्य की बड़ाई से भी विशेष है बहुरि राजा ने कहा कि यह वचन तुम ने बहुत उत्तम वर्णन किया है पर कुछ और भी उपदेश मुझको सुनाओ तब वह सन्त कहनेलगा कि जिस पुरुष का चित्त धन बिषे विरक्त रहे और बड़ाई बिषे नम्रता सहित रहे और सुन्दरताई बिषे कामादिक विकार से निष्पाप रहे तब उसको महाराज की सभा बिषे विशुद्ध आचरणवाला मानते हैं सो जब राजा ने ऐसे वचन सुने तब इसही उपदेश को कागज़ पर लिख लिया बहुरि सुलेमान सन्त अपनी राज्य के समय बिषे इस प्रकार विचरते थे कि प्रथम धनवानों के साथ कुछ अल्पही वचन वार्त्ता करतेथे और गरीबों की सभा बिषे जाय बैठते थे और मुख से यह वचन वर्णन करते थे कि मैं भी अनाथ और गरीब हूं और यह लोग भी गरीब हैं बहुरि हसनबसरी ने इसप्रकार कहा है कि जब आप से सर्व मनुष्यों को विशेष देखे तब जानिये कि इस बिषे नम्रता का चिह्न प्रकट है और मालिकदीनार सन्त ने ऐसे कहा-है कि जब कोई सभा बिषे आयकर इसप्रकार कहै कि जो सब से नीच मनुष्य है सो बाहर आवे तब मैंहीं सबसे आगे उठखड़ा होऊं क्योंकि मैं आपको महा अधम और नीच जानता हूं पर जब यह वार्त्ता मुबारिक नामी सन्तने सुनी तब कहने लगे कि इसही गरीबी करके मालिकदीनार की विशेषता प्रसिद्ध है इसी पर एकवार्त्ता है कि किसी पुरुष ने शिबली सन्त के निकट आकर इस प्रकार कहाथा कि तुम आपको क्या कुछ जानते हो ? तब उन्होंने कहा कि जैसे अक्षरों के ऊपर बिन्दु होतीहै सो मैं उससे भी आपको लघु जानताहूं बहुरि जब जुनैदनामी सन्तने यह वचन सुना तब कहनेलगे कि महाराज उनके अहङ्कार को दूरकरे तो भलाहै क्योंकि अब भी आपको कुछ जानते हैं और केवल अहंकारसे रहित नहींहुये बहुरि एक पुरुष प्रीतिमान्ने अलीसन्तसे पूछाथा कि मुझको कुछ उपदेशकरो तब उन्होंने कहा कि जब कोई धनवान् पुरुष होकर आधीन चित्तहोवे तब यह बड़ी सुन्दरताई है पर जो पुरुष निर्द्धन होवे और भगवत् का आश्रय करके धनवानोंका आधीन न होवे तब यह उससे भी अधिक सुन्दरताई है सो इसी पर एक और सन्तने कहाहै कि जब कोई उत्तम मनुष्य वैराग्यवान् होता है तब दीनता और गरीबी को अङ्गीकार करता है और जो नीचपुरुष कुछ वैराग्यवान्

होता है तब अभिमानी होजाता है इसीपर बायजीद सन्तने कहा है कि जब-लग यह मनुष्य किसी को आपसे नीच जानता है तब निस्सन्देह अहङ्कारी जाना जाताहै और जुनैद सन्त ने एकबार अपनी सभाबिषे इस प्रकार कहाथा कि जब मैंने इस वचन को सुना न होता कि कलियुग बिषे नीच मनुष्य ही उपदेश करनेवाले और मुखिया होवेंगे तब मैं सभा बिषे उपदेश कदाचित् न करता और जुनैदजी ने योंभी कहा है कि ज्ञानवान् पुरुषों के निकट आप को दीन जानना अहंकार होता है अर्थ यह कि दीन जानना भी आप का कुछ प्रसिद्ध करना होता है और अहंकार से रहित पुरुष आपको कुछ नहीं जानता बहुरि एक जिज्ञासु जनकी ऐसी अवस्था हुई है कि जब अँधेरी अथवा बिजली का चमत्कार अथवा कोई और विघ्न होनेलगता था तब वह पुकार करके अपने शीश पर हाथ मारते थे और इस प्रकार कहते कि मेरेही पापों करके जीवों को दुःख प्राप्त होता है बहुरि सुलेमान सन्त के निकट आयकर कुछ पुरुष उनकी स्तुति करनेलगे थे तब सुलेमान ने कहा कि आदि हमारी बीर्य है और अन्तको मृतक होवेंगे बहुरि उससे पीछे ताड़ना और दण्डको परलोक बिषे प्राप्तहोवेंगे सो जब उस दुःख से हमारी मुक्ति हुई तब कुछ विशेषता प्राप्त होवेगी और जब उसही दुःख बिषे लीनरहे तब हम परमनीचों से नीच रहेंगे (अथ प्रकट करना रूप अभिमान का और प्रसिद्ध करने विघ्न उसके) ताते जान तू कि यद्यपि प्रथम अभिमान का स्वभाव हृदय बिषे उपजता है पर इसका प्रवेश सर्व अङ्गों पर प्रकट भी दृष्टि आताहै सो अभिमान का अर्थ यह है कि और मनुष्यों से आप को विशेष जानना और अपनी बड़ाई प्रकट कर दिखावनी बहुरि इसी बड़ाई की वायु जब किसी के हृदय बिषे चलने लगती है तब उस करके अधिक प्रसन्न होताहै और अभिमान भी इसही का नाम है इसीपर महापुरुष ने भी कहा है कि अभिमानरूपी वायु के बेग से भगवत्‌ही रक्षाकरे क्योंकि जिस मनुष्य के मनबिषे अभिमान का प्रवेश होताहै तब और लोगों को आपसे नीच जानता है और इस प्रकार समझता है कि यह सबही मनुष्य मेरे दास की नाईं हैं और मैं सबों का स्वामी हूं अथवा जब अभिमान की प्रबलता होती है तब योंभी जानता है कि यह लोग मेरी सेवा के अधिकारी नहीं और लोगों से कहता है कि भला तू मेरी सेवा और टहल का अधिकारी कब होसकता है जैसे यह राजा

लोग भी अपने सिंहासन के निकट किसी को दण्डवत करने नहीं देते और पत्री विषे किसी को अपना गुलाम भी नहीं लिख सकते इस करके कि अमुक पुरुष हमारी सेवा का अधिकारी कब होसक्ता है अथवा जब कोई अधिकारी ऐश्वर्यवान् होवे तब उसको अपने निकट आवने देते हैं और कुछ वचन वार्ता करते हैं नहीं तो और सम्पूर्ण मनुष्यों पर मस्तक संकुचित रखते हैं सो यह उन का अभिमान ऐसा वृद्ध हुआहै कि महाराज से भी अपना ऐश्वर्य अधिक किया चाहते हैं क्योंकि सर्व ईश्वरों का ईश्वर जो भगवन्त है सो सर्व जीवों पर सर्वदा दया की दृष्टि से देखता है और सब किसी की दीनता को सुनता और प्रमाण करता है और अभिमानी मनुष्य ऐसे नहीं करता पर जिसका ऐश्वर्य ऐसा प्रबल नहीं होता तौभी अभिमानी मनुष्य सबों से आगे चला चाहता है अथवा ऊंचे स्थान पर स्थित हुआ चाहता है और सर्व मनुष्यों से सन्मान और आदर की अभिलाषा रखता है बहुरि जब कोई उसको यथार्थ उपदेश सुनावता है तौभी अङ्गीकार कर नहीं सकता और उलटा क्रोधवान् होता है बहुरि जब आप किसी को उपदेश करने लगता है तब क्रोध और ताड़ना संयुक्त वचन कहता है और सर्व मनुष्यों को पशुवत् देखताहै इसीपर महापुरुष से किसी ने इस प्रकार पूछाथा कि अभिमानी पुरुष का लक्षण क्या है ? तब उन्हों ने कहा कि जो पुरुष यथार्थ वचन के आगे अपने शीश को नम्र न करे और सर्व जीवोंपर ग्लानिदृष्टि देखे तब उसको अभिमानी कहते हैं सो यह दोनों स्वभाव जीव और भगवत् विषे बड़े पटल हैं क्योंकि इन करके सबही अपलक्षण उपजते हैं और सर्व गुणों से अभाव रहता है ताते जिस पुरुषपर बड़ाई और अभिमान की प्रबलता होती है तब वह किसीको अपने समान हुआ नहीं चाहता और किसीके आगे मस्तक नहीं नवावता सो यह चिह्न प्रीतिमानों का नहीं होता इस करके कि ऐसा पुरुष ईर्षा करके अपने क्रोध को शान्त नहीं कर सकता बहुरि निन्दा और कपट आदिक स्वभावों से भी रहित नहीं होसकता जब कोई उसका आदर नहीं करता तब हृदय विषे क्रोध की गांठ दृढ़ करलेता है और सदैवकाल अपनी बड़ाई और ऊंचता को दिखावता रहताहै ताते झूंठ और कपट दम्भविषे आसक्त होजाताहै और सर्वप्रकार आपको विशेष किया चाहता है और जब कोई उसके दर्शन को नहीं आवता तब प्रसन्न नहीं रहता इसी

कारण से इसलोक विषे भी दुःखी रहताहै और परलोक के सुखको भी नहीं पावता क्यों कि जबलग यह पुरुष अपने आपको विस्मरण नहीं करता तबलग इस को धर्म की गन्ध भी प्राप्त नहीं होती इसीपर एक सन्तने कहा है कि जब तू आत्मसुख की सुगन्धिको सूंघा चाहताहै तब सर्व मनुष्यों से दीन हो और दासभाव को अङ्गीकारकर बहुरि जब कोई विचार की दृष्टि करके देखे तब इस वार्ता को प्रसिद्ध जाने कि जब दो अभिमानी पुरुषों का मिलाप आपस विषे होताहै तब दुर्गन्ध आन पसरती है और हृदय उनका कूकरों की नाईं दुःख-दायक होजाता है बहुरि स्त्रियों की नाईं अपना शृङ्गार बनावने विषे मग्नहोते हैं और प्रीतिमानों के मिलाप विषे जो रहस्य और प्रसन्नता परस्पर उपजती है सो अभिमानी मनुष्यों को कदाचित् प्राप्त नहीं होती इस करके जब तू किसी प्रीतिमान् को देखे तब उत्तम वार्ता यह है कि अपने आपको त्यागकर उसही विषे लीन होजावे और सर्वथा दासभाव को प्राप्त होवे तात्पर्य यह कि तू उस की बड़ाई विषे समाप्त होजावे अथवा वह तेरे विषे समाय जावे तब दूसरा भाव कुछ न रहे और एकमेव होकर दोनों भगवन्त विषे लीन होवो और अपने आपकी चितवनी मिटावो तब तू परमसुख को प्राप्त होवे सो पूर्ण एकता इसही का नाम है और परमसुख भी यही है और जबलग अभिमान के संयोग करके द्वैत दूर नहीं होता तबलग यह पुरुष एकता के सुख रहस्य को कदाचित् नहीं पावता अभिमान का रूप और उसके विघ्न ऐसेही प्रकट वर्णन किये हैं (अथ प्रकट करने भेद अभिमान की अवस्था के) ताते जान तू कि एक अभिमान अतिप्रकट और दीर्घ है और एक अवस्था अभिमान की उससे कुछ क्षीण होती है सो इनका भेद इस करके प्रसिद्ध जाना जाताहै कि एक पुरुष ऐसे अभि-मानी होते हैं कि आपसे भिन्न और ईश्वर नहीं मानते जैसे फ़रऊन और नम-रूद ऐसे बिमुख हुये हैं कि उन्हों ने आपही को भगवन्त कहायाहै और उन का निश्चय इस प्रकार हुआहै कि जब कोई और भगवत् होता तो प्रत्यक्षही दृष्टि आवता ताते हमहीं जगत के ईश्वर हैं और इसी कारण से उन्हों ने इस प्रकार जाना है कि जब हमहीं भगवत् हुये तब हम भजन किसका करें ? सो यह अभिमान महादीर्घ है क्योंकि सबही देवता और आचार्य और सन्तजन तो आपको भगवत् नहीं मानते और आपको दास जानकर महाराज की सेवा

विषे लीनहुये हैं ताते ऐसा अभिमान महानिन्द्य है १ बहुरि दूसरी अवस्था अभिमान की यह है कि एक पुरुष यद्यपि ऐसे जानते हैं कि हम भगवत् के उत्पन्न कियेहुये हैं पर तौभी सन्तजनों पर ग्लानिदृष्टि रखते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि अमुक सन्त की जाति नीच है अथवा उसका कुल नीच है ताते हम उसके आगे मस्तक क्योंकर नवावें अथवा ऐसे जानते हैं कि सन्तजन भी हमारी नाईं शरीरधारी हैं और खान पान आदिक व्यवहारों विषे बन्धवान् हैं ताते हमको इनका दास होना अयोग्य है पर ऐसे मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं सो एक तो अभिमान के पटल करके सन्तजनों की विशेषता को जानते ही नहीं और विचार से रहित होते हैं जैसे महाराज ने भी कहा है कि अभिमानी मनुष्यों को यथार्थ की बूझ का मार्ग कदाचित् नहीं खुलता ताते सन्तजनों के लक्षणों को देख नहीं सके बहुरि एक मनुष्य और ऐसे होते हैं कि यद्यपि अपने चित्तविषे सन्तजनों की बड़ाई को समझते हैं पर तौभी दासभाव को ग्रहण नहीं करसके सो यह भी उनकी बुद्धि की हीनता है २ बहुरि तीसरी अवस्था अभिमान की यह है कि यद्यपि सन्तजनों को तो आपसे विशेष जानते हैं पर और जीवों पर अपनी बड़ाई प्रकट दिखावते हैं और सब लोगों पर ग्लानिदृष्टि देखते हैं ताते किसी के यथार्थ वचन को अङ्गीकार नहीं करसके और आपही को स्वामी जानते हैं सो यद्यपि अभिमान प्रथम की दोनों अवस्था से कुछ क्षीण है पर तौभी दो कारणों करके बड़ा पटल है और परम दुःखों की खानि है सो प्रथम कारण यह है कि ऐश्वर्य और बड़ाई का अधिकारी एकही महाराज है और यह मनुष्य जो महादीन और पराधीन है सो इसको बड़ाई का अधिकार क्योंकर प्राप्त होसक्ता है ? पर जब अभिमान करके आपको कुछ समर्थ जाने तब यही प्रसिद्ध होताहै कि भगवत् का शरीक हुआ चाहताहै सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई चक्रवर्ती राजा का टहलुवा होकर राजा के सिंहासनपर जाय बैठे और अपने शीशपर छत्र चँवर ढुरायाचाहे तब तू विचार करके देख कि वह टहलुवा कैसे दण्डका अधिकारी होताहै इसीपर महाराजने भी कहा है कि समर्थता और बड़ाई मुझही को शोभती है क्योंकि मैं किसी के पराधीन नहीं पर जो पुरुष पराधीन होकर मेरा शरीक हुआ चाहे तब मैं शीघ्रही उसको नष्ट करताहूं ताते प्रसिद्ध हुआ कि उत्पन्न करनेहारे महाराज के बिना किसी

मनुष्य को किसी जीव पर अभिमान करना प्रमाण नहीं बहुरि दूसरा कारण यह है कि अभिमान करके यथार्थ वचन को अङ्गीकार करना कठिन होजाता है इसी कारण से जब दो पुरुष आपस बिषे धर्ममार्ग का प्रश्नोत्तर करने लगते हैं और एक पुरुष सत्यही वचन कहताहै तौभी अभिमानी मनुष्य उसको प्रमाण नहीं करसक्ता इसी करके कि मेरा मान घटजावेगा सो यह चिह्न मनमुखों और कपटियोंका है क्यों कि जब कोई इसको इस प्रकार कहै कि तू भगवत् से नहीं डरता और यथार्थ वचन का नतकार करताहै तौ भी अभिमान करके अपने झूठे वचन को गिराय नहीं सक्ता और प्रमाणही मानता है ताते महापापी होता है इसी पर इबनमसऊद सन्त ने कहा है कि जब कोई इस मनुष्य को ऐसे कहै कि तू महाराज का त्रासकर और वह पुरुष इस प्रकार कहनेलगे कि तू मुझको क्यों डरावता है क्यों कि तुझको तो अपनाही कार्यकरना चाहिये है सो यह वचनही महापाप है ताते जान तू कि जिस प्रकार शैतान को धिक्कार हुई है और उसका वृत्तान्त भगवत् ने अपने वचनों बिषे कहाहै सो उसका तात्पर्य यही है कि तुझ को अभिमान का विघ्नप्रकट आनपड़े अर्थात् शैतान को जब आज्ञा हुई कि मनु को शीश नवावो तब उसने कहा कि मैं तेजतत्त्व से उत्पन्न हुआ हूं और मनु पृथ्वीतत्त्व से हुआ है ताते मैं इसके आगे शीश क्योंकर नवाऊं प्रयोजन यह कि उसको अभिमान ने ऐसा बिमुख किया कि भगवत् की आज्ञा को न मानताभया और मस्तक नीचा न किया ताते महाराज ने उसको धिक्कार करी और सदैव काल के वियोग को प्राप्तहुआ (अथ प्रकट करने कारण अभिमान के और उपाय उनके निवृत्त करनेका) ताते जान तू कि जब यह मनुष्य अपने बिषे कोई गुण देखताहै और वह गुण इसको और मनुष्यों बिषे नहीं भासता तब उसही गुण के सम्बन्ध करके अभिमान करनेलगता है सो अभिमान के उत्पन्न होनेके सात कारण प्रसिद्ध हैं पर प्रथम तो अभिमान का कारण विद्या है क्योंकि विद्यावान् मनुष्य आपको विद्यासंयुक्त देखता है तब विद्याहीन पुरुषों को पशुवत् जानताहै ताते उसके ऊपर अभिमान प्रबल होजाता है और अभिमान की प्रबलता का लक्षण यह है कि लोगों से सेवा पूजा और मान बड़ाई की आशा रखताहै बहुरि जब वह लोग इस प्रकार नहीं करते तब अपने चित्त बिषे आश्चर्यवान् होताहै अथवा जब किसी के गृहबिषे पूजा

प्रसाद को जाता है तब उनके ऊपर उपकार रखताहै और ऐसे जानताहै कि मैं भगवत् का निकटवर्त्ती हूं और विद्या करके अपना मुक्तहोना समझता है और और लोगों को ऐसे नहीं जानता अथवा इस प्रकार देखताहै कि यह लोग मेरी सेवा और प्रसन्नता करके नरकों से बचेंगे इसी पर महापुरुष ने कहाहै कि यह विद्याभी निस्संदेह अभिमान का कारण है और विचार की दृष्टि विषे ऐसे विद्यावान् को मूर्ख कहना विशेष है क्यों कि यथार्थ बुद्धिमानों के मत विषे विद्यावान् उसही को कहते हैं जो परलोक के मार्ग की कठिनताई को जाने और उसही के भयविषे स्थितहोवे क्योंकि जिसने इस भेद को भली प्रकार समझा है वह सर्वदा विकारों से दूर रहताहै और अपने बल की हीनता को देखकर भयवान् होताहै और योंभी समझता है कि यह विद्याही मुझको परलोक विषे अधिक ताड़ना का कारण होवेगी इस करके कि जब जाननेवाले मनुष्यसे कोई कार्य बिगड़ताहै तब उसको अजान पुरुष से भी अधिक दण्ड होताहै ताते इस प्रकार समझनेवाला मनुष्य कदाचित् अभिमान विषे आसक्त नहीं होता पर जिस विद्यावान् को अभिमान की अधिकता होजातीहै तब इसके भी दो कारण प्रकट हैं प्रथम यह कि वह पुरुष निवृत्तिमार्ग की विद्या को पढ़ते ही नहीं सो निवृत्तिविद्या यह है कि जिस करके भगवत् को और आपको पहिंचाने बहुरि जीव और भगवत् विषे जो पटल है सो तिसको भलीप्रकार समझे ताते यह विद्या ऐसी है कि प्रीति और दीनता को बढ़ावनेवाली है और अभिमान को नष्टकरडालती है पर वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण और कोष आदिक विद्या को पढ़े अथवा परस्पर मतों के विवाद विषे स्थित होवे तब ऐसी ऐसी विद्या करके अवश्यमेव अभिमान उपज आवता है बहुरि यह विद्या अल्पकाल विषेही नष्ट होजाती है क्यों कि यह विद्या भी स्थूल है और स्थूलता को ही दृढ़ करनेवाली है ताते इस करके जीवको भय नहीं उपजती और भय विना इस मनुष्य का हृदय अन्ध होजाताहै ऐसेही पुरातन कथा और कविता आदिक जितनी विद्या हैं सो यद्यपि यह लोग इनकी नीचता को नहीं जानते पर जब तू विचार करके देखे तब इस वार्त्ता को प्रसिद्धकर जाने कि यह सबही विद्या अभिमान का बीज है और ईर्षा और वैरभाव को बढ़ावनेवाली है ताते इस करके प्रेम प्रीति का अंकुर नहीं उपजता और मान बड़ाई की वायु इसके

मन विषे दृढ़ होजाती है १ बहुरि दूसरा कारण विद्या के अभिमान का यहहै कि यद्यपि निवृत्ति विद्याही पढ़े और धर्ममार्ग की सूक्ष्मताईको भी समझे तौभी जिस पुरुष की मंशा प्रथमही मलिन होती है तब वह ऐसी विद्या को पढ़कर भी अभिमानी होताहै क्योंकि ऐसे पुरुष की कामना विद्या पढ़कर करतूति करने की नहीं होती अपनी बड़ाई के निमित्तही विद्या को पढ़ता है ताते वचन वार्त्ताही को अपना पुरुषार्थ जानताहै सो यद्यपि यह विद्या निर्मलहै पर उसकी मलिन मंशाविषे प्रवेश करके विद्याभी मलिन होजातीहै जैसे कोई पुरुष महारोगी होवे पर जबलग प्रथम यत्न करके उसके मैल को दूर न करिये और आगेही रोग के निवृत्त करने की औषध उसको दीजिये तब उसके शरीर विषे वह औषध भी रोगही का स्वभाव ग्रहण करती है अथवा जैसे आकाश से निर्मल जलही मेघ बरसते हैं पर जब जल कटुक ओषधियों को पहुँचता है तब कटुताही बढ़ावता है और जब ऊखआदिक मिष्ट खेतीविषे प्रवेश करता है तब मिष्टता की वृद्धि होती है और जब कण्टकों के वृक्षों को पहुँचता है तब कांटेही बढ़ते जाते हैं और कमलादि फूलों विषे जायकर सुगन्ध ही बढ़ावता है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि कलियुग विषे एक ऐसे मनुष्य होवेंगे जो रात्रिदिन निवृत्त शास्त्रों का पाठकरेंगे और कोई उनके निकट न जाय सकेगा इसकरके कि सर्वदा यही वचन कहतेरहेंगे कि हमारी नाईं पाठ कौन करताहै ? और जैसे हम सर्व वचनोंका अर्थ समझते हैं इस प्रकार कौन समझसक्ताहै ? पर ऐसे पुरुष निस्सन्देह नरकोंका ईंधन होवेंगे और ऐसेही उमरसन्त ने कहा है कि धर्म से रहित विद्यावान् न होवो क्योंकि करतूति विना विद्याका गुण कुछ नहीं होता और अभिमान ही बढ़जाता है इसी कारणसे आगे जो महापुरुषके प्रियतम हुयेहैं सो उन्होंने दीनताही को अङ्गीकार किया है और सदैव काल अभिमान से डरते रहे हैं जैसे एकबार हदी नामी सन्तको सबलोग मिलकर विशेष स्थान विषे बैठाने लगे तब उन्होंने कहा कि मुझको इस स्थानपर बैठना प्रमाण नहीं क्योंकि इतनेही आदर करके मेरे चित्त विषे यह संकल्प फुर आया है कि मैं और मनुष्यों से विशेष हूं तात्पर्य यह कि जब ऐसे उत्तम पुरुष भी अभिमान के संकल्प से रहित नहीं हुये तब अल्पबुद्धि जीव अभिमान से क्योंकर मुक्त होसक्ते हैं और ऐसे समय विषे निरभिमान पण्डितों को कहां पायसक्ते हैं क्योंकि ऐसा विद्यावान् भी कोई विरला होता है

जो अभिमान की मलिनताको पहिंचानकर इसका त्यागकरे पर बहुत पण्डित तो ऐसे पायेजाते हैं कि वह अभिमानही को अपनी विशेपता जानते हैं और इस प्रकार कहनेलगते हैं कि मैं अमुक पुरुष को क्या जानताहूं और उसकी ओर कब देखता हूं ताते सर्वदा इसही अभिमान विषे बध्यमान रहते हैं और जिन विद्यावानों ने ऐसे मलिन स्वभावोंकी नीचताको भली प्रकार पहिंचाना है सो तिनका दर्शनही उत्तम भजन है और उनकी प्रसन्नता करके जीवों को भलाई प्राप्त होती है १ बहुरि दूसरा कारण अभिमान का तप और बैराग्य है क्योंकि बैरागी और तपस्वी और अतीतजन भी अभिमानसे रहित नहीं होसक्के और ऐसे जानते हैं कि सर्वजीवोंको हमारी सेवा और दर्शन विषे भलाई प्राप्तहोवेगी ताते अपने तपका उपकार और जीवों पर रखते हैं अथवा इस प्रकार जानते हैं कि गृहस्थलोग और मायाधारी जीव सबही डूबेहुयेहैं और इन विषे हमहीं मुक्त होवेंगे बहुरि जब कोई ऐसे तपस्वी जन को दुखावे और दैवसंयोग करके उसको भी कुछ दुःख प्राप्तहोजावे तब ऐसे जानता है कि मेरीही शक्ति करके और सिद्धता करके इसको दुःख प्राप्तहुआ है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि जो पुरुष अभिमानकरके इतर जीवोंको नाशहुआ जानताहै सो निस्सन्देह आपही नष्ट होता है क्योंकि किसीपर दोषदृष्टि देखनाही महापाप है बहुरि जब कोई इसकी सेवा पूजा भगवत् अर्थकरे और इसको प्रसन्न कियाचाहे और यह पुरुष अभिमान करके उसका निरादर करे तब यह भय होता है कि मत महाराज इसकी विशेषता उसही पुरुषको देवे और अभिमानी पुरुष शुभगुणों के फलोंसे अप्राप्त रहजावे इसीपर एक वार्त्ता है कि एक नगर के निकट बड़ा तपस्वी रहताथा और उसी नगर में एक बड़ा अपकर्मी रहताथा पर वह तपस्वी ऐसाथा कि उसके शीश पर सर्वदा बादलों की छाया रहतीथी ऐसा शक्तिमान् था बहुरि वह अपकर्मी मनुष्य जो अधीन होके उसके निकट आया और उसको विशेष जानकर यह मंशा करता भया कि इसकी संगति करके मैं भी पापोंसे मुक्त होऊंगा और वह तपस्वी इस प्रकार विचार करनेलगा कि मेरे समान तो तपस्वी कोई नहीं और इसके समान अपकर्मी भी कोई नहीं ताते यह पुरुष मेरी संगति का अधिकारी कब होसकताहै ऐसे जानकर तपस्वीने उसको बैठने न दिया और कठोर वचन कहकर उसका निरादर करता भया बहुरि जब वह पुरुष दीन और लज्जावान्

होकर उठचला तब मेघकी छाया भी उसके शीशपर से चलीगई और एक महा-पुरुष को आकाशवाणीहुई कि तपस्वी मनुष्यका जप तप अभिमान करके सब ही व्यर्थहुआ है और शुद्धभावना करके अपकर्मी के पाप सबही नष्टहुये हैं ताते तुम मेरा यही संदेशा दोनों पुरुषों को पहुँचावो जिस करके तपस्वी का अभिमान और अपकर्मी की निराशता दूर होजावे बहुरि एक और वार्त्ता है कि दैवयोग करके एक तपस्वी के शीश में किसी पुरुष का पाँव लगगयाथा तब वह तपस्वी क्रोधवान् होकर कहने लगा कि भगवत् की दुहाई है कि यह अवज्ञा महाराज तुझको क्षमा न करेगा तब आकाशवाणी हुई कि हे तपस्वी ! तू जो मेरे क्षमा करने और न कराने के विषे निःशङ्क होकर दुहाई करता है ताते मैं भी अपनी दुहाई करके कहता हूं कि तुझपर कदाचित् क्षमा न करूंगा और दया करके अवज्ञा करनेवाले के सब पाप क्षमा करलूंगा तात्पर्य यह कि जब कोई मनुष्य तपस्वी जनको दुखावताहै तब वह ऐसेही अनुमान करलेते हैं कि महाराज इस अवज्ञा को क्षमा न करेगा इसी कारण से जब क्रोधवान् होते हैं तब शीघ्रही शाप देने लगते हैं सो यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि आगे केते विमुखों ने सन्तजनों को प्रकटही दुखाया है और उन शत्रुओं को कुछ भी दुःख प्राप्त नहीं हुआ और उलटा उनका हृदय शुभमार्ग की ओर आया है पर यह मूर्ख अभिमान करके आपको विशेष जानता है इस करके जो ऐसा मनुष्य -पने शत्रुपर क्रोधवान् होता है तब प्रकटही कहनेलगता है कि मेरी अवज्ञा करके तेरा धर्म और धन और कुल सबही नष्ट होजावेंगे अथवा जब अकस्मात् उसको दुःखी देखता है तब ऐसे जानता है कि मेरेही कोप करके इसको कष्ट प्राप्त हुआ है सो मूर्ख तपस्वियों की ऐसी अवस्था होती है और बुद्धिमान् वैरागीजनों का लक्षण यह है कि जब किसी प्रजा को खेदवान् देखते हैं तब वह इस प्रकार समझते हैं कि हमारेही पाप करके इनको खेद प्राप्त हुआ है तात्पर्य यह कि जिज्ञासुजन वैराग्य विषे भी भयवान् रहते हैं और जो बुद्धिहीन तपस्वी होते हैं सो यद्यपि शरीर करके करतूति शुभ करते हैं तौभी उन का हृदय अभिमान करके अन्तर से मलिन रहता है और उस मलिनता से डरते ही नहीं पर जब यथार्थदृष्टि करके देखिये तब जो पुरुष किसीप्रकार आपको विशेष जानता है सो निस्संदेह अपने तप और भजन के फल को व्यर्थ करता

है क्योंकि अभिमान के समान कोई और बड़ा पापही नहीं इसीपर एक वार्त्ता है कि एक बार महापुरुष के प्रियतम किसी पुरुष की प्रशंसा करते थे सो महापुरुष ने जब उसको देखा तब कहनेलगे कि इस विषे तो मुझको दम्भ का चिह्न दृष्टि आवता है यह सुनकर स्तुति करनेवाले प्रीतिमान् विस्मित होगये तब महापुरुष ने उस पुरुष को अपने निकट बुलायकर इस प्रकार पूछा कि तू इन लोगों से आपको विशेष जानता है कि नहीं तब उसने कहा कि मैं आप को विशेष तो जानता हूं सो यह अभिमान का चिह्न महापुरुष ने हृदय के प्रकाश करके उस विषे प्रकटही देखलिया था और लोगों ने उसको भली प्रकार नहीं जाना था ताते यह अभिमानरूपी विघ्न विद्यावानों और तपस्वियों के विषे निस्सन्देह अधिक होता है और इस विषे भी मनुष्य की अवस्था तीनप्रकार की होती है सो एक पुरुष ऐसे हैं जो यद्यपि हृदय करके अभिमान से रहित नहीं होसके तौभी यत्नसहित दीनता और ग़रीबी को अङ्गीकार करते हैं और कर्मों विषे भी दासभाव को लिये रहते हैं ताते व्यवहार और वचन करके उन विषे किसी प्रकार अभिमान नहीं दृष्टि आवता सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष मूलही से वृक्ष को काट न सके पर उसकी शाखा सबही काटडाले तौ भी उसको बलवान् कहते हैं बहुरि दूसरे पुरुष ऐसे होते हैं कि वचन करके अपनी बड़ाई नहीं वर्णन करते और सर्व प्रकार आपको नीच कहते हैं पर उनके हृदय का अभिमान कर्मों विषे प्रकट भासता है जैसे विशेष स्थानपर बैठना और सबसे आगे है चलना अथवा किसीकी ओर दृष्टि न करनी वा भृकुटी चढ़ाये रखनी सो सबही अभिमान के लक्षण हैं पर यह पुरुष ऐसे नहीं जानते कि विद्या और करतूति भृकुटी चढ़ावने विषे तो नहीं होती क्योंकि यह तो हृदयके अङ्ग हैं और इनका प्रकाश जो सर्व इन्द्रियों पर वर्तमान होता है सो दासभाव और दीनता और सर्वजीवोंपर दया है इसी कारणसे यद्यपि महापुरुष विद्या और वैराग्यकरके सर्व मनुष्योंसे विशेष थे पर उनके समान नम्र और कोमलस्वभाव किसी विषे पाया नहीं जाता ताते सर्वजीवों की ओर प्रसन्नता और दयाकी दृष्टि से देखतेथे और सदैव काल अपना मस्तक खुला रखतेथे इसही करके महाराज ने भी उनकी स्तुति करी थी कि तेरा स्वभाव अति कोमल और प्रसन्न वदन है ताते तुझ से कोई मनुष्य भयवान् होकर दूर नहीं हुआ चाहता २ और तीसरे

मनुष्य ऐसे होते हैं कि अपने मुखसे अपनीही स्तुति वर्णन करते हैं बहुरि अपनी सिद्धता और अवस्था वर्णन करते हैं और इस प्रकार कहने लगते हैं कि अमुक तपस्वी क्या है ? मैं तो सर्वदा दिन विषे व्रत रखताहूं और इतना पाठ करता हूं और रात्रि विषे जागरण करता हूं अथवा जब किसी को भजन करता देखता है तब उससे विशेषही नियम किया चाहता है ऐसेही विद्यावान् भी कहते हैं कि अमुक पुरुष क्या विद्या पढ़ा होवेगा ? हम तो इतनी विद्या जानते हैं और प्रश्न उत्तर विषे दूसरेको निर्बलही कियाचाहते हैं अथवा आप झूठही कहते होवें तौ भी अपने वचनको गिरा नहींसके और सभाविषे नूतन वचन चतुराई संयुक्त उच्चारण करते हैं और अपनी बड़ाई को प्रसिद्ध किया चाहते हैं सो यह सबही तपस्वी और विद्यावान् अभिमान से रहित कब होसके हैं ? पर जिन्होंने अभिमान को भली प्रकार निन्द्य जानाहै तब वह प्रीति और नम्रता विषेही स्थित होते हैं जैसे महाराज ने भी कहा है कि जब तू आपको नीच जानेगा तब मेरे निकट तेरी बड़ाई होवेगी और जबलग तू आपको विशेष जानता है तबलग तू मेरे निकट अति नीच है पर जिसने इस भेदको नहीं समझा सो विद्यावान् भी महामूर्ख है बहुरि तीसरा कारण अभिमान का उत्तमकुल है जैसे ब्राह्मण और उत्तमजनों की सन्तान जो होती है सो यद्यपि विद्यावानों और वैरागी को देखें तौभी अभिमान करके उनको अपना टहलुवा जानते हैं अथवा तब भी वह अपने अभिमान को प्रकट नहीं करते पर क्रोध के अवसर विषे आपही प्रसिद्ध है आवताहै जैसे एक सन्त ने किसी को क्रोधवान् होकर दासीसुत कहा था सो जब यह वार्त्ता महापुरुष ने सुनी तब उनसे कहते भये कि भगवत् के निकट दासीसुत और रानीसुतकी विशेषता ऊनता कुछ नहीं ताते तुम अभिमानी न होवो यह वचन सुनकर वह सन्त उसके घरगये और उसके चरण अपने मस्तक पर रखकर अपनी अवज्ञा को क्षमा कराया तात्पर्य यह कि जब उन्होंने अभिमान के वचन को निन्द्य जाना तब ऐसी नम्रता को अङ्गीकार करते भये ऐसे ही दो मनुष्य महापुरुष के निकट विवाद करनेलगे थे कि मैं तो अमुक का पुत्र और अमुक का पौत्र हूं और तू कौन नीच है ? जो मेरे सम्मुख वचन बोलता है ऐसेही नवपीढ़ी पिता पितामह पर्यन्त वर्णन करगया तब महापुरुष को आकाशवाणी हुई कि इसके नवो पितामह आगेही नरक विषे जलते हैं और यह

भी उनके निकट जाकर जलेगा ताते इससे कहो कि तू इतना मान क्योंकर करता है ? क्योंकि जो तू कुल का मान करेगा तब विष्ठाके कीट की नाईं महा नीच गतिको प्राप्तहोवेगा बहुरि चौथा कारण मान का रूप है पर यह रूप और शृङ्गार का बनावना स्त्रियों विषे अधिक होता है जैसे आयशानामी महापुरुष की स्त्री ने कहाथा कि यह स्त्री ठिंगनी है ताते इस वचन विषे यही अभिमान सिद्ध होताहै कि मेरा शरीर इससे दीर्घ है बहुरि पांचवां कारण अभिमान का धन है इस करके कि जब धनवान् पुरुष किसी निर्धन पर क्रोधवान् होता है तब इस प्रकार कहने लगताहै कि मैं इतना धन और सामग्री रखताहूं ताते तू कौन नीच है ? जो मेरे समान बोलता है जब मैं चहूं तब तेरे समान केते दास मोल लेआऊं बहुरि छठा कारण अभिमान का बल है ताते बलवान् पुरुष भी निर्बल मनुष्य को देखकर अवश्य ही अभिमानी होताहै और सातवां कारण अभिमान का यह है कि सम्बन्धियों और विद्यार्थी और टहलुवों और अपने सेवकों पर अभिमान करताहै तात्पर्य यह कि जिस पदार्थ को यह मनुष्य विशेष जानता है सो तिस पदार्थ को पाकर अवश्यही अभिमानी होता है अर्थात् यद्यपि वह पदार्थ नीचही होवे तौ भी अपनी बूझ विषे उसको उत्तम जानकर बड़ाई किया चाहता है जैसे खुसरे भी अपनी निर्लज्जता पर अभिमान करते हैं पर अभिमान की उत्पत्ति के कारण श्रेष्ठ येही सात हैं बहुरि अभिमान का प्रकट होना भी ईर्षा और वैरभाव करके होता है अथवा दम्भके निमित्तभी यह मनुष्य आपको विशेष कर दिखावता है अथवा प्रश्नोत्तर के विवाद विषे भी अभिमान का चिह्न प्रकट भास आवता है पर जब तैंने अभिमान के कारणों को भली प्रकार पहिंचाना तब इसके निवृत्त करने के उपाय भी अवश्यही समझने चाहिये हैं और रोगके कारण को पहिंचानकर उसका दूर करनाही रोग को नष्ट करताहै (अथ प्रकट करना उपाय अभिमानके निवृत्त करने का) ताते जान तू कि जिस अभिमान का अंशभी आत्मसुखसे अप्राप्त करनेवाला होवे सो ऐसे अभिमानरूपी रोगका उपाय करना अवश्यही प्रमाणहै और यह रोग ऐसा प्रबल है कि इसकी व्यथा से रहित कोई बिरलाही पुरुष होता है पर इसके दूर करने का उपायभी दो प्रकार का है सो एक उपाय ऐसा है कि वह मूलही से सर्वप्रकारके अभिमान को दूरकर डालता है और दूसरा उपाय यहहै कि उसमें अभिमानके कारणों को पहिंचानकर

भिन्न २ उनको निवृत्तकरना होता है सो यह दोनों उपाय बूझ और करतूतिके साथ मिलकर सिद्ध होते हैं सो प्रथम उपाय यह है कि भगवत् के ऐश्वर्य को पहिंचाने और ऐसे जाने कि बड़ाई का अधिकारी एक महाराजहीहै बहुरि आपको इस प्रकार समझे कि मेरे समान नीच और कुचील और पराधीन और मूर्ख कोई नहीं है सो यह उपाय ऐसा विशेष है कि अभिमान के रोग को मूलही से काट डालताहै ताते इस जीव की नीचता के पहिंचानने को एकही वचन बहुत है जैसे महाराज ने कहा है कि इस मनुष्य का आदि वीर्य है सो इस वचन का अर्थ इस प्रकार जानना चाहिये कि इस मनुष्यके समान और नीच वस्तु कोई नहीं क्योंकि प्रथम तो इसका नाम रूपही कुछ प्रकट न था बहुरि रज और वीर्य जो पृथ्वी और जल का विकार है सो इनके सम्बन्ध से शरीर की उत्पत्ति रची है पर जब भली भांति देखिये तो रज और वीर्य के समान और मलिनता क्या है? बहुरि उससे पीछे मांस का आकार प्रकट होता है सो तिस विषे नेत्र और श्रवण और बुद्धि आदिक चैतन्यताही कुछ नहीं होती ताते वह पाथर की नाईं जड़रूप भासता है अर्थ यह कि जो अपने आपहीसे अचेत होवे तब और किसी पदार्थ को क्योंकर पहिंचाने ताते भगवत्ने अपनी समर्थता करके उसही मांस को सर्व इन्द्रिय और बुद्धि दीनी है सो यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि इन्द्रिय और बुद्धि की चैतन्यता जल और पृथ्वी का धर्म नहीं पर यह सबही आश्चर्य महाराज ने उत्पन्न किये हैं इस करके कि यह मनुष्य भगवत् की बूझ और बलको पहिंचाने और अभिमानके निमित्त तो इसको ऐसे अङ्ग और ऐसा बल भगवत् ने नहीं दिया सो इस मनुष्य की आदि तो यही है पर जब विचार करके देखिये तब यह अवस्था इस जीवको लज्जावान् करनेवाली है ताते यहां अभिमानका ठौर कौन है? बहुरि मध्य अवस्था मनुष्य की यहहै कि जब सर्वगुणों और सर्व इन्द्रियों संयुक्त होकर इस संसार विषे आया तौभी महादीन और पराधीन है सो जब इस जगत् विषे आकर यह जीव स्वेच्छित होता तौभी इसको अभिमान का अधिकार होता क्योंकि भ्रम करके ऐसे जानता है कि मैं आपही करके उत्पन्न हुआहूं पर इस संसार विषे भूख, प्यास, शीत, उष्ण, दुःख, चिन्ता आदिक जो अनेक विघ्न हैं सो सबही इस जीव के ऊपर प्रबल किये हैं ताते एक क्षण भी इनके दुःख से रहित नहीं होसक्ता सो यह सबही कष्ट ऐसेहैं कि वर्णन करनेमें

नहीं आते बहुरि इस जीव के रोगोंका उपचार कटु औषधियों विषे राखा है और शरीर के भोगों विषे रोगों की उत्पत्ति राखी है सो जब वासना अनुसार सुखों को भोगता है तब अवश्य ही दुःखी होता है तात्पर्य यह कि इस जीवका कोई कार्य इसकी चाह अनुसार नहीं रचा है ताते जब किसी पदार्थ को जानना चाहता है तब नहीं जानसक्ता और जब अपने संकल्प को विस्मरण कियाचाहे तब विसारने को समर्थ नहीं होता इस करके प्रसिद्ध हुआ कि यह मनुष्य सर्व अङ्गों और बलसंयुक्त रचाहुआ यद्यपि है तौभी महादीन और पराधीन और अत्यन्त नीच है बहुरि इस मनुष्य की अन्त अवस्था यह है कि जब मृतक होताहै तब नेत्र श्रवण बल रूप आदिक गुण कोई नहीं रहता और कुचील मृतक शरीर रहजाता है ताते सब कोई उसको देखकर ग्लानि करते हैं बहुरि इसही दुःख विषे भी नहीं छूट सक्ता क्योंकि जब परलोक विषे पहुँचता है तब अनेक प्रकार के भयानक रूप देखता है बहुरि दण्ड का अधिकारी होताहै और अपनी सर्व आयुर्बल के अपकर्म देखकर लज्जावान् होता है और देवता इस प्रकार पूछते हैं कि अमुक आहार और और करतूति और संकल्प तैंने किस निमित्त कियाथा? ताते सबका उत्तर न दे सो जब झूठा होता है तब महानरकों विषे प्राप्त होता है और उस समय विषे इसप्रकार कहने लगताहै कि जो मैं कूकर शूकर अथवा माटी होता तौ भला था क्योंकि पशुओं को परलोक का दण्ड तो नहीं होता ताते जिस पुरुष ने इस प्रकार जड़ पदार्थ और पशुओं से भी आप को नीच जाना है वह बड़ाई और अभिमान विषे क्योंकर आसक्त होगा इस करके कि जब धरती और आकाश के रेणु इस मनुष्य की नीचता और पापों को पहिचानकर रुदन करें तौभी इस जीव के दुःखोंका अन्त कदाचित् नहीं आता सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे किसी चोर को कोई कोतवाल पकड़कर बन्दीखाने विषे डाले और उस चोरको शूली चढ़ने का भय होवे तब वह अभिमान क्योंकर करता है तैसेही यह सब मनुष्य पापरूपी चोरी करते रहते हैं और संसाररूपी बन्दीखाने विषे बँधेहुये हैं बहुरि नरकों का भय शूली चढ़ने की नाईं है सो जिस पुरुष ने इस भेद को भली प्रकार समझा है तब यह जाननाही अभिमानरूपी रोगको मूलही से नष्ट करडालता है क्योंकि ऐसा मनुष्य आपको सबसे नीच जानता है पर करतूति करके अभिमान का उपाय इस प्रकार होता है कि मन वचन

करके दास भाव को अङ्गीकार करै इस करके कि भगवद्भजन का तात्पर्य नम्रता और दीनता है जैसे अरबदेश के लोग अभिमान करके मस्तक किसी के आगे नीचा न करते थे ताते महापुरुष ने उनको धरती पर माथा टेकना प्रमाण कहा था सो जिज्ञासु जनको ऐसेही चाहिये कि जो अभिमानके स्वभावके अनुसार कोई कर्म करै तो उससे विपर्यय होकर विचरै यह अभिमानरूपी रोग ऐसा प्रबल है कि नेत्र और रसना और वस्त्र और शरीर के सर्व अङ्गों विषे प्रकट होता है ताते चाहिये कि जिज्ञासु जन पुरुषार्थ करके सर्व अङ्गों विषे दासभाव को ग्रहण करें जैसे यह भी अभिमान का चिह्न है कि मानी पुरुष अकेला नहीं चल सक्ता ताते नम्रतावान् पुरुष को चाहिये कि ऐसे न बर्तै इसी करके इसनबसरी सन्त किसी को अपने पीछे चलने नहीं देतेथे और इस प्रकार कहते थे कि लोगों के आगे चलने विषे इस जीव का मन स्थिर नहीं रहता ऐसेही अबूदरदा सन्त ने कहा है कि जितना इस मनुष्य को लोगों के साथ मिलाप अधिक होता है उतनाही भगवत् के मिलाप से दूर रहता है इसी कारण से जब महापुरुष मार्ग विषे चलते थे तब कभी प्रियतमों के मध्य विषे चले जाते थे और कभी आप पीछे होकर प्रियतमों को आगे करलेते थे बहुरि जब उनके आगे लोग उठखड़े होतेथे तब उनको इस विषे ग्लानि उपज आती थी और वर्जित करते थे इसीपर अलीसन्त ने कहा है कि जब कोई नरकगामी मनुष्य को देखना चाहे तब उसको देखे जो आप तो बैठा होवे और लोग उसके आगे खड़ेहो रहें बहुरि यह भी अभिमान का लक्षण है कि आप से विशेष पुरुष के दर्शन को न जायसके और दीन पुरुष को निकट बैठने न देवे इसी कारण से महापुरुष सब किसी से भावसंयुक्त मिलते थे अथवा जब कोई रोगी मनुष्य अपवित्र होताथा तब उसको निकट बैठाकर भोजन कराते थे बहुरि जो अभिमानी मनुष्य होता है वह अपनी क्रिया भी आप नहीं करसक्ता और महापुरुष आपही अपने घर की सब क्रिया करलेते थे इसी पर एक वार्त्ता है कि एक भगवद्भक्त राजा के घर विषे एक मित्र आया था सो रात्रि के समय विषे जब दीपक बुझनेलगा तब उस मित्र ने दीपक विषे तेल डालने की मंशा करी तो राजा ने कहा कि महमान से टहल करानी भली नहीं ताते तुम बैठे रहो बहुरि उस मित्र ने कहा कि टहलुवे को जगाई तब राजा ने कहा कि टहलुवा भी

अबही सोया है इतना कहकर आपही उठकर दीपक बिषे तेल डाला बहुरि वह मित्र कहनेलगा कि तुम आपही उठे तब राजा ने कहा कि जब मैं बैठा था तब भी वही था और अब भी वही हूं ताते मेरा गया तो कुछ नहीं इसी कारण से अबूहरेरा भक्त जो राज्य करतेथे तौ भी जीविका के निमित्त लकड़ियों का बोझा बाजार बिषे बेंचलेते थे बहुरि अभिमानी मनुष्यों का यह भी स्वभाव है कि सुन्दर वस्त्र पहिरे विना घर से बाहर नहीं निकलते पर अली हरिभक्त राजधर्म बिषे भी छोटाही जामा पहिरते थे तब किसीने कहा कि तुम इतनी कृपणता क्यों करते हो ? तब उन्होंने कहा कि इस करके अपना चित्तभी प्रसन्न होताहै और इस क्रिया को देखकर और जिज्ञासु जन भी संयम बिषे रहेंगे और निर्द्धन पुरुषों का संकोच भी दूर रहताहै ऐसेही एक और हरिभक्तराजा जब राजपुत्र थे तब सहस्र रुपये का पहरावा पहिरते थे और उसको भी मोटा कहते थे बहुरि जब आप राज्य करनेलगे तब दो रुपये का एक पहरावा पहिरकर भी इस प्रकार कहते थे कि जो इससे भी अधिक मोटा पहिरिये तो भला है तब किसीने कहा कि आगे तो तुम सुन्दर वस्त्रों की इतनी अभिलाषा करते थे और अब किस निमित्त मोटा पहिरते हो तब उन्होंने कहा कि भगवत् ने मेरा मन रसग्राही बनाया है ताते जिस वस्तु बिषे कुछ सुख देखता है तब उसीकी ओर दौड़ताहै अर्थ यह कि आगे स्थूल भोगों को देखकर और उनको विशेष जानकर प्रीति करता था अब सच्चे सुख की अभिलाष करता है पर सर्वथा ऐसे नहीं कहाजाता कि सुन्दर वस्त्रों करही अभिमान होता है क्योंकि केते पुरुष पुरातन वस्त्र पहिर कर अभिमान करते हैं और आपको वैरागी जानते हैं इसी पर ईसा महापुरुष ने कहाहै कि पुरातन वस्त्र पहिरेहुये वैराग्य नहीं प्राप्त होता ताते जब तुम्हारा हृदय भगवत् के भय करके कोमल होवे तब उज्ज्वल वस्त्र के पहिरने करके भी दोष कुछ नहीं होता तात्पर्य यह कि जिस पुरुष को नम्रता और दीनता की चाह होवे तब महापुरुषों के आचरणों को भली प्रकार जाने और उनकी नम्रता पहिचानकर यह भी नम्रताही को अङ्गीकार करे सो महापुरुष का ऐसाही स्वभाव था कि अपने वस्त्र को आपही सींवते थे और गृह बिषे झाडूआदिक क्रिया करते थे और जब उनका टहलुवा थकित होता था तब उसके अङ्ग चाप देतेथे बहुरि धनवान् और निर्द्धन और बालक वृद्ध को देखकर प्रथमही प्रणाम

करतेथे और ऊंच नीच तथा सुन्दर कुरूप बिषे भेद न रखते थे और जब कोई उनसे भाव करके प्रसाद पावने को कहता था तब उसकी थोड़ी बहुत वस्तु को ग्लानि बिना ग्रहण करते थे ऐसेही अतिकोमल और उदार और प्रसन्नबदन चपलता से रहित थे बहुरि भगवन् के भय करके सकुचे हुये थे पर मस्तक कठोर न रखते थे और प्रयोजन बिना अधीन चित्त थे और संयम सहित उदार थे और सब किसी पर दया रखते थे और सर्वदा अपने शीश को झुका रखते थे ताते जो पुरुष अपनी भलाई को प्राप्त हुआ चाहे तब महापुरुष के आचार अनुसार बिचरै १ बहुरि दूसरा उपाय जो अभिमान का भिन्न २ विचार करके कहा था सो यह है कि प्रथम अपने अभिमान के कारण को पहिंचाने सो जब उत्तम कुलका अभिमान फुरे तब ऐसा जाने कि मेरा तो कुल रज और वीर्य है क्योंकि यह शरीर इनहीं से उत्पन्न है ताते माता इसकी रक्त है और पिता वीर्य है और माटी इसकी पितामह है सो यह सबही पदार्थ महाअपवित्र और तुच्छ हैं ताते विचारवान् को ऐसाही जानकर अभिमान का निवृत्तकरना योग्य है क्योंकि जब कोई नाऊ वा कुम्हार का पुत्र होवे तब वह उनकी नीच क्रिया को देखकर अभिमानी कदाचित् नहीं होता पर जब विचारकर देखिये तब यह मनुष्य भी रज और वीर्य की संतान होकर काहे को मान करताहै सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष आपको ब्राह्मण कहावे और दो साखी आनकर कहें कि यह तो नाऊ का पुत्र है तब यह वचन सुनकर कैसा लज्जावान् होता है तैसेही जिसने अपने शरीर की उत्पत्ति को भली प्रकार जाना है वह कदाचित् मानी नहीं होता (अथ रूपाभिमानोपायः) बहुरि दूसरा कारण अभिमान का रूप है ताते जो मनुष्य अपने रूप का अभिमान करे तब उसको चाहिये कि अपने शरीर की मलिनता को पहिंचाने और शरीर के सर्व अङ्गों बिषे जो दुर्गन्ध भरपूर है सो तिसका बिचार करे कि यह शरीर ऐसा मलिन है जो यह मनुष्य नित्यप्रति अपनी मलिनता को दोबार धोता है और उस मलिनता के देखने व सूंघने का बल नहीं रखता सो इसके शरीर का रूप उसही के आश्रित है और इसकी उत्पत्ति भी रज और वीर्यकर हुई है इसी पर ताऊससन्त ने किसी पुरुष को ऐंड़ता देखा था तब उससे कहने लगे कि जिस पुरुष ने अपने उदर की मलिनता को पहिंचाना है वह इस प्रकार कभी लटकमटक कर नहीं चलता

क्योंकि यह शरीर मल मूत्र के स्थान से भी मलिन है और मल मूत्र के स्थानों में भी इसही की मलिनता करके मलिनता होती है बहुरि यह मनुष्यरूप का जो अभिमान करता है सो इसने अपना रूप आप तो नहीं बनाया और कोई पुरुष आप करके कुरूप भी नहीं होसक्ता ताते ग्लानि और अभिमान करना व्यर्थ है बहुरि यह रूप ऐसा क्षणभंगुर है कि एकही रोग अथवा फोड़े करके कुरूप होजाता है ताते इसका अभिमान करना बड़ी मूर्खता है (अथ बलम्) पर जब बल का अभिमान फुरे तब इस प्रकार विचारे कि जब एक नाड़ी विषे पीड़ा उपजती है तब महानिर्बल और दीन होजाता है बहुरि माखी और मच्छड़ और चींटी के काटने से भी आपको बचाय नहीं सक्ता अथवा जब यह मनुष्य अधिक बली होवे तो भी वृषभ और गर्दभ और हस्ती और ऊंट इससे अधिक बली होते हैं ताते ऐसे नीच पदार्थ का अभिमान करना क्या है (अथ ऐश्वर्यम्) बहुरि जब धन और दास और दासी अथवा राज्य का अभिमान करे तब यह तो सबही पदार्थ इसके शरीर से बाहर हैं ताते धन को चोर आदिक विघ्न दूर करडालते हैं और राज्यभी क्षण विषे नष्ट होजाता है तब उस समय विषे कैसी अधीनता को प्राप्त होता है बहुरि केते विमुख लोग भी इससे अधिक धनी और राजा होते हैं ताते ऐसे धन और राज्य का अभिमान करना क्या है क्योंकि जितने पदार्थ तुमसे भिन्न हैं वे तेरे कदाचित् नहीं होते ताते तू जितने पदार्थों का अभिमान करता है सो सबही मिथ्या हैं (अथ विद्या) पर जब एकभाव कर देखिये तब इस मनुष्य को विद्या और तप के अभिमान का अधिकार होता है क्योंकि स्थूलदृष्टि विषे भली प्रकार करके यह दोनों कर्म इसही के पुरुषार्थ से ऐसे उत्तम हैं जो भगवत् के निकट प्राप्त करनेवाले हैं और भगवतही के लक्षण हैं ताते यह वार्त्ता महाकठिन है कि विद्यावान् होकर अभिमान से रहित रहे पर इस अभिमान के दूर करने का उपाय भी दो प्रकार का होता है प्रथम तो इस प्रकार जाने कि परलोक विषे विद्यावान् को पकड़ और भय अधिक होता है क्योंकि जब अजान पुरुष से कोई कार्य बिगड़ जाता है तब उसको इतनी ताड़ना नहीं करते और सुजान को अधिक होती है ताते करतूति हीन विद्या- वानों के निषेध विषे जो वचन आये हैं सो तिनका विचार करे जैसे महाराज ने कहा है कि करतूति से हीन विद्यावान् गर्दभ की नाईं है जो गर्दभवत् पुस्तकों

का भार उठाता है और उनकी विशेषता को नहीं जानता अथवा कूकुर की नाईं है क्योंकि अपने मलिन स्वभाव को त्याग नहीं सक्ता ताते गर्दभ और कूकुर से अधिक नीच कौन है ? जो उसकी संज्ञा दीजे इस करके कि जब यह पुरुष परलोक के दुःख से मुक्त न होवे तब जड़ पदार्थ भी इससे विशेष हैं इसी कारण से कितनेही प्रीतिमानों ने कहा है कि जो हम पक्षी मृग और घास होते और परलोक के दुःख से छूटते तौभी भला था तात्पर्य यह कि परलोक का भय जिसके हृदय विषे स्थित होता है तब स्वाभाविक ही उसको अभिमान नहीं उपजता ताते जब किसी अज्ञान को देखता है तब ऐसे समझता है कि यहभी मुझसे विशेष है क्योंकि इसने तो पापों की बुराई को भली प्रकार नहीं पहिंचाना ताते इसको अधिक ताड़ना न होवेगी बहुरि जब किसी अधिक विद्यावान् को देखताहै तब ऐसे जानता है कि यह भी मुझसे विशेष है इस करके कि जिस भेद को यह समझाता है सो तिसको मैं नहीं जानता ऐसे ही जब वृद्ध पुरुष को देखता है तब ऐसे जानता है कि इसने भगवद्भजन मुझसे अधिक किया होवेगा और बालक को देखकर कहता है कि इसने पाप मुझसे अल्प किये होवेंगे ताते ऐसा पुरुष अपकर्मी को देखकर भी अभिमानी नहीं होता क्योंकि जो यह अन्तकाल विषे शुभकर्मी होजावे और मैं उस समय विषे अपकर्मी होजाऊं तो क्या आश्चर्य है ? बहुरि दूसरा उपाय यह है कि इस प्रकार विचारकरे कि यह बड़ाई महाराजही को शोभती है और ऐसे समर्थ महाराज का साझी होना बड़ी मूर्खता है इसी कारणसे भगवत् ने सर्वजीवों को यही आज्ञा करी है कि जब तुम आपको नीच जानोगे तब मेरे निकट उत्तम होवोगे ताते सर्व सन्त जो नम्रतावान् और दीनचित्त हुये हैं सो ऐसेही समझ कर उनका अभिमान दूर होगया है (अथ तप) बहुरि तपस्वी को भी इस प्रकार चाहिये कि यद्यपि विद्यावान् को वैराग्यसे रहित देखे तौभी उसके ऊपर ग्लानि न करे और ऐसे जाने कि जो यह उत्तम विद्याही इसको क्षमा करालेवे तब इस विषे क्या आश्चर्य है ? ऐसे ही जब विद्याहीन को देखे तब इस प्रकार समझे कि मैं तो इसकी अवस्था को नहीं जानता ताते जब यह मुझ से भी अधिक भजनवान् होवे तब मुझको इसपर अभिमान करना क्योंकर प्रमाण है ऐसेही जब किसी अपकर्मी को देखे तब इस प्रकार समझे कि यह तो प्रकट ही पाप

करता है और मेरे चित्त विषे भी अनेक पापों के सङ्कल्प उपजते हैं ताते यह वार्त्ता निस्सन्देह है कि जिसके अन्तर पापों की चितवनी होवे और निष्पाप होइ दिखावे तब वह प्रकट पाप करनेवाले से अधिक नीच होता है बहुरि एक पाप ऐसे बली होते हैं कि वह अनेक जप तपों का नष्टकर डालते हैं और एक गुण ऐसा बलवान् होताहै जो अनेक पापों को दूर करदेता है तात्पर्य यह कि यथार्थ की बूझ विषे देखिये तो अभिमान करना बड़ी मूर्खता है इसी कारण से महापुरुष और सन्तजन और बुद्धिमान् पुरुष अभिमान से रहित हुये हैं (अथ प्रकट करनी निषेधता अहङ्कार की और प्रसिद्ध दिखावने उसके विघ्न) ताते जान तू कि सर्व विघ्नों और अशुभ कर्मों का बीज अहङ्कार है इसीपर महापुरुष ने कहा है कि तीन स्वभाव इस जीवके महादुःखदायक हैं सो एक कृपणता दूसरा वासनाकी प्रबलता तीसरा अहङ्कार है बहुरि महापुरुष ने अपने प्रियतमों से इस प्रकार कहा था कि यद्यपि तुम पापकर्म नहीं करते तौभी मैं इस करके डरताहूं कि तुम अहङ्कारी न होजावो तब महानीचता को प्राप्त होवोगे क्योंकि अहङ्कार सबही पापों से बुरा है इसी पर इब्नमसऊद सन्त ने कहा है कि भगवत् की दया से निराशता और आपको देखकर अहङ्कारी होकरके यह मनुष्य विमुख होजाता है क्योंकि अहङ्कारी और निराश पुरुष के हृदय से प्रीति और पुरुषार्थ दूर होजाता है इसी पर एक और सन्त ने कहा है कि जब मैं सारी रात्रिभर जागरण करके भजन करताहूं और प्रभात समय उठकर अहङ्कारी होऊं तब इससे मैं यह वार्त्ता विशेष जानताहूं कि यद्यपि मैं सर्व रैन सोरहूं पर प्रभात समय आधीनचित्त और लज्जावान् होकर उठूं तो भला है ताते जान तू कि इस अहङ्कार से केते विघ्न उपजते हैं सो एक तो अभिमान है कि आपको सब से विशेष जानता है बहुरि अपने अवगुणों को नहीं जानता अथवा ऐसे जानता है कि मुक्तरूप हूं बहुरि भगवद्भजन से अलसाय जाता है और यद्यपि कुछ जप तपभी करताहै तो भी उसके विघ्नों को नहीं विचारता ताते भगवत् के भय से रहित होता है बहुरि ऐसे जानता है कि भगवत् के निकट कुछ विशेष हूं और भजन स्मरण जो भगवत् की दात है सो तिसको अपना पुरुषार्थ समझता है और अहङ्कार करके प्रश्न उत्तर किसी से पूछ नहीं सक्ता बहुरि जब उसको कोई यथार्थ वचन कहता है तो भी अङ्गीकार नहीं करता ताते मूर्ख और नीचही

रहता है (अथ अहङ्कार का रूप प्रकट करना) ताते जान तू कि विद्या और शुभकर्मों के पदार्थादिक जेते गुण हैं सो सबही महाराज की दात हैं पर जो पुरुष ऐसे गुणों को पायकर दाता की ओर दृष्टि रखता है और अपने आपको कुछ नहीं जानता तब पुरुष अहङ्कार से रहित कहाजाता है और जो मनुष्य किसी गुण को प्राप्तहोकर अपना पुरुषार्थ जानताहै और उस करके प्रसन्न होता है तब इसही का नाम अहङ्कार है और जब अपनी करतूति को विशेष जान करके किसी पद को प्राप्त हुआचाहे और आपको उत्तम अधिकारी जाने तब इसही का नाम भ्रम है अर्थ यह कि भ्रम करके और का और जानता है और यथार्थ को नहीं जानता इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब तुम प्रीतिसंयुक्त रुदन करके अहङ्कारी होवो तब इससे यह वार्त्ता विशेष है कि हास्य करके अपनी अवज्ञा देखतेरहो क्योंकि अविद्या का मूल अहङ्कारहै जिस करके आपको शरीर और वर्णाश्रम और कर्मों का कर्त्ता जानता है सो भगवत् और इस जीवविषे यही अहङ्कार पटल है (अथ प्रकट करना उपाय अहङ्कार का) ताते अहङ्काररूपी रोग का कारण केवल अज्ञान है ताते इसका उपाय भी केवल ज्ञानहै और बूझ है सो बूझ यह है कि जब कोई पुरुष रात्रि दिवस विद्या और वैराग्य विषे स्थित होवे और इस करतूति करके कुछ अहङ्कार करे तब मैं उससे इस प्रकार कहूं कि यद्यपि तू आपको कर्त्ता जानकर अहङ्कारी होता है तौभी तेरा कर्म तेरे पुरुषार्थ के आश्रित नहीं क्योंकि तुझ को महाराज ने करतूति करने का शस्त्र बनाया है जैसे लिखारी के हाथ विषे क़लम होती है अथवा जैसे दरज़ी के हाथ विषे सुई होती है सो लिखना और सीवना क़लम और सुई की करतूति नहीं क्योंकि वह दोनों पराधीन हैं बहुरि जब तू ऐसे कहे कि कर्मों का कर्त्ता मैं हूं क्योंकि मेरीही श्रद्धा और बलकरके कर्म सिद्ध होते हैं तब इसका उत्तर यह है कि जिस श्रद्धा और बल करके कर्म सिद्ध होते हैं सो तू कहां से लायाहै और कुछ इस वार्त्ताको भी जानताहै कि जिस चाह और उद्यम के आधीन होकर तू कर्मों विषे लगता है सो तिस चाहको तेरे ऊपर किसने प्रेरा है और श्रद्धारूपी रस्सी तेरे गले विषे डालकर तुझको करतूति की ओर किसने चलाया है ताते जान तू कि यह चाह और श्रद्धा ही महाराज का दूत है सो जिस पुरुष को जैसी आज्ञा होती है तब वह किसी प्रकार उलटाय नहीं सक्ता ताते प्रसिद्धहुआ

कि श्रद्धा और पुरुषार्थ और और जेते गुण हैं सो सबही महाराज की दात हैं पर तू जो किसी गुण का अहङ्कारी होता है सो यह बड़ी मूर्खता है क्योंकि तेरे बल करके कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ताते तुझको किसी गुण का अहङ्कारी होना प्रमाण नहीं बहुरि जब तू प्रसन्नहोवे तौभी भगवत्‌के उपकार को जानकर प्रसन्न और आश्चर्यवान् होना प्रमाण है इसकरके कि बहुत मनुष्यों को धर्म के मार्ग से अचेत किया है और उनका पुरुषार्थ अपकर्मों विषे लगता है और तुझ को महाराज ने अपनी दया करके सात्त्विकी श्रद्धारूपी दूतको भेरा है ताते दण्ड करके तुझको अपनी ओर खींचता है सो यह भगवत्‌ही का उपकार है जैसे कोई राजा किसी अपने एक टहलुवे को हेतु रहित अपनी कृपा करके शिरोपाव और नाना पदार्थ देवे तब उसको अपने स्वामी का उपकार माननाही प्रमाण होता है और अपने ऊपर अहङ्कारी होना अयोग्य है क्योंकि उसको अधिकार से बिनाही बखशीश प्राप्तहुई है पर जब वह टहलुवा कहे कि राजा ने मुझको अधिकारी जानकर बखशीश करी है तब उससे पूछिये कि तुझको अधिकार किसने दिया है ताते अधिकार और बखशीश दोनों राजाही की दातहैं जैसे प्रथम तो तुझको राजा घोड़ा देवे और पीछे उस घोड़े का टहलुवा देवे और इस करके तू अहङ्कारी होवे कि मुझको टहलुवा इस निमित्त प्राप्तहुआ है कि मैं घोड़ा रखता था सो यह अहङ्कार करना मूर्खता है क्योंकि यह घोड़ाभी उसीने दिया है और टहलुवा भी उसही की बखशीश है ताते तू व्यर्थ अहङ्कारी होता है तैसेही जब यह मनुष्य इस करके अहङ्कारी होता है कि मुझको भगवत् ने भजन का बल इस निमित्त दिया है कि मैं उसको प्रियतम रखता था तब उससे कहिये कि तेरे हृदय विषे प्रीति किसने उपजाई है ? बहुरि जब वह ऐसे कहे कि मेरे हृदयविषे प्रीति इस करके दृढ़ हुई थी कि मैंने उसके स्वरूप को भली प्रकार पहिंचाना था तब उससे कहिये कि वह पहिंचान और बूझ किसने दी थी तात्पर्य यह कि जब सर्वगुणों का दाता महाराजही हुआ तब सर्व प्रकार उसही का उपकार जानना विशेष है क्योंकि तुझको भी उसहीने उत्पन्न किया है बहुरि श्रद्धा और पुरुषार्थ आदिक गुण भी तेरे विषे उसही ने उपजाये हैं ताते तू आप करके कुछही नहीं और तेरे आश्रय भी कोई कार्य नहीं महाराज की समर्थता के हाथ विषे तू भी पराधीन है बहुरि जब तू इस प्रकार प्रश्नकरे कि

जब मैं किसी कर्म का कर्त्ता नहीं तब हमारे कर्मों करके पुण्य क्यों लिखाजाता है ? ताते यह तो प्रसिद्ध जानाजाता है कि कर्म हमारे पुरुषार्थकर उपजता है इसी कारण से पुण्य के अधिकारी भी हमहीं होते हैं तब इसका उत्तर यहहै कि निस्सन्देह तू आप करके कुछ नहीं और महाराज की समर्थता बिषे ऐसा पराधीन है कि तुझ करके कोई कार्य सिद्ध नहीं होता पर जब तेरे हृदय बिषे बूझ और श्रद्धा व बल आन फुरते हैं तब तू इस प्रकार जानता है कि यह कर्म मैंने किया है सो इस वचन का भेद ऐसा गुह्य है कि तू इस बुद्धि करके समझ न सकेगा पर मैं तेरी अल्पबुद्धि अनुसार कुछ वर्णन करता हूं कि तेरे सबही करतूति की कुंजी बूझ और श्रद्धा व बल है इस करके कि इनके विना करतूति सिद्ध नहीं होती सो यह तीनों भगवत् की दात हैं पर इसका दृष्टान्त यह है जैसे खज़ाने बिषे अनेकप्रकार की सम्पदा होवे और उसकी कुंजी तेरे पास न होवे बहुरि जब दयाकरके खज़ानची तुझको कुंजी देवे तब तू उसके ताले को खोलकर अधिक सम्पदा को प्राप्तहोवे सो यद्यपि वह सम्पदा तैंने अपने हाथों करके लीन्ही है तो भी अधिक उपकार कुंजी देनेवाले का होता है और तेरे कर्मकी बड़ाई कुछ नहीं होती तैसेही तेरे सर्वकर्मोंकी कुंजी महाराज की बख़शीशहै तो चाहिये कि तू सर्वप्रकार उसही का उपकार जानकर प्रसन्न होवे जो उसही महाराज ने अपनी दया करके तेरे अधिकार विना तुझसे शुभकर्म कराया है और पापी जीवों को भलाई रूपी खज़ाने से अप्राप्त राखाहै सो उनकी अवज्ञा विनाही अपनी आज्ञानुसार उनको अशुभ मार्ग बिषे डाला है तात्पर्य यह कि जिसने सबका प्रेरक महाराजही को पहिचाना है तब वह कदाचित् अहङ्कारी नहीं होता पर यह बड़ा आश्चर्य है कि जब सुजान मनुष्य निर्द्धन होता है तब इस प्रकार आश्चर्य करने लगता है कि अमुक मूर्ख को इतनी सम्पदा प्राप्तहुई है और मुझ ऐसे बुद्धिमान् को कुछ प्राप्त नहीं होता सो वह ऐसे नहीं जानता कि यह विद्यारूपी पदार्थ जो मेरे पास है सो यह भी तो भगवत् की बड़ी दात है पर जब महाराज विद्या भी मूर्ख धनी को देता तब भगवत् का ऐश्वर्य और नीति कुछ खण्डित तो नहीं होती थी ताते यह विद्यावान् ऐसेही आश्चर्य करताहै जैसे रूपहीन स्त्रीको देखकर रूपवती स्त्री आश्चर्य करे कि इस कुरूपा को इतने भूषण मिले हैं और मुझ रूपवती को कोई भूषण

नहीं प्राप्तहुआ पर मूर्खता करके इतना नहीं जानती कि जब रूप और भूषण दोनों उसही को मिलते तब भगवत् की समर्थता विषे क्या विषमता होती ? बहुरि जैसे राजा किसी चाकर को घोड़ा देवे और एकको एक गुलाम देने पर जब घोड़ेवाला चाकर आश्चर्यवान् होवे कि घोड़ा तो मैं रखता हूं और राजा ने दूसरे चाकर को गुलाम किस निमित्त दिया है सो यह बड़ी मूर्खता है इसी पर एक वार्ता है कि दाऊद महात्मा ने इस प्रकार अहङ्कार किया था कि हे महाराज ! मैं तेरा भजन सारी रात्रि करता हूं और सर्व दिनों विषे व्रती रहता हूं तब उनको आकाशवाणी हुई कि हे दाऊद ! तैंने ऐसा पुरुषार्थ कहां से मेरे विना पाया है ताते अब मैं एकक्षण तुझ को अपनी सहायता से दूर रखता हूं तब उसीक्षण विषे उनसे एक ऐसा पाप हुआ कि उसही अवज्ञा करके और उस की लज्जामानी करके सर्व आयुष् पर्यन्त रुदन करते रहे बहुरि अयूब महात्मा ने भी ऐसेही अहंकार किया था कि हे महाराज ! जितना कष्ट तैंने मेरे ऊपर भेजा है सो मैं कितनेही वर्षों से उसही विषे धैर्यकर रहा हूं तब उनको भी बड़े भयानक शब्द के साथ आकाशवाणी हुई कि तू मेरी दया विना ऐसा धैर्य कहां से ले आया यह वचन सुनकर अयूब जी भयवान् हुये और अपने शिश पर धूलि डालकर कहनेलगे कि हे महाराज ! सब कुछ तेरीही दयाकरके प्राप्त होताहै ताते मैंने अपने अहंकारका त्यागकिया इसीपर महाराज ने कहाहै कि जो मेरी दया न होती तो कोई मनुष्य शुद्धपद को न पहुँचता बहुरि महापुरुष नेभी कहाहै कि कोई पुरुष अपनी करतूतिकरके मुक्तिको नहीं पाता तब किसी ने पूछा कि क्या तुम भी अपने पुरुषार्थ करके मुक्त नहीं हुये तब उन्होंने कहा कि मैं भी महाराज की दया का भरोसा रखताहूं ताते प्रसिद्ध हुआ कि जिन्हों ने इस भेदको भलीप्रकार समझाहै सो वह कदाचित् अहंकारी नहीं होते बहुरि ऐसे जान तू कि केते मनुष्य मूर्खता करके उस पदार्थ पर अहङ्कारी होते हैं कि जिस पदार्थका सम्बन्ध उनके साथही कुछ नहीं जैसे बल और रूप और उत्तम कुल सो इस पर अहंकारी होना महामूर्खता है ताते केते मनुष्य जो धनवान् और राजाओं के कुलका अभिमान करते हैं सो उनके पिता पितामह को पर-लोक विषे ऐसी नीचगति होतीहै कि जब यह अहंकारी प्रसिद्ध देखें तब अधिक लज्जावान् होवें और केते मूर्ख तो उत्तम कुल के आश्रय ऐसे कहने लगते हैं

कि हम को पापही स्पर्श नहीं करते पर वे बुद्धिहीन इतना नहीं जानते कि यद्यपि हमारे पिता पितामह निष्पाप हुये हैं पर जब हमने पाप किये तब हमारा और उनका क्या सम्बन्ध रहा ? क्योंकि वह सन्तजन तो वैराग्य और नम्रता करके विशेष हुयेथे कुछ कुलकी बड़ाई करके तो विशेष नहीं हुये ताते जिन्होंने निन्द्य कर्मों को अङ्गीकार किया है सो वह यद्यपि महापुरुषों की सन्तान होवें तौ भी नरकों के कीट होवेंगे इसीकारण से महापुरुष ने भी कुल के अभिमान से वर्जित कियाहै और ऐसे कहाहै कि हम सबही मनुष्यजाति हैं और मनुष्य का मूल माटी है बहुरि महापुरुष ने अपनी पुत्री से कहा था कि हे बेटी ! अब तू शुभमार्ग बिषे सावधान हो क्योंकि परलोक बिषे मेरे आश्रय करके मुक्त न होवेगी सो यद्यपि प्रीतिमान् और महापुरुषों के सम्बन्धी भी उनको दया का आश्रय रखतेहैं पर जब पापकर्म अधिक होजावें तब स्थूल सम्बन्ध का आसरा किस काम आता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि मेरे और सन्तजनों के आश्रय होकर पापों बिषे निश्शङ्क विचरना ऐसे है जैसे किसी बड़े वैद्य का पुत्र रोगी होवे और पिता के वैद्यक की बड़ाई जानकर कुपथ्य का त्याग न करे सो बड़ी मूर्खता है क्योंकि जब कुपथ्य की अधिकता करके असाध्य रोग होजावे तब पिताकी वैद्यकी उसके किस काम आवेगी अथवा जो धर्मज्ञ राजा होवे तब उसके निकट कोई मन्त्री और प्रधान भी अवज्ञावान् के दोष को क्षमा कराय नहीं सक्ता क्योंकि वह तो आपही यथायोग्य न्याय करताहै तैसेही यह पापही भगवत् के कोप का वचन है और इस पाप को तू अल्प जानता है ताते जो पुरुष निश्शङ्क होकर पापों बिषे आसक्त होताहै तब किसी सम्बन्ध और कुलके आश्रयकरके दुःखसे नहीं छूटता तात्पर्य यह कि यद्यपि जिज्ञासु जनको सन्त जनों का भरोसा है तो भी भगवत् की बेपरवाही से डरतेरहते हैं और जो पुरुष उदास हुआ तब उसके चित्त बिषे अहङ्कार कदाचित् फुरता नहीं ॥

दशवां सर्ग ॥

अजानता और भ्रम और छल के उपाय के वर्णन में ॥

ताते जानतू कि जो पुरुष आत्मसुख से अभाग रहताहै सो तिसका कारण यह है कि वह मार्ग बिषेही नहीं चला और शुभमार्ग बिषे न चलने का कारण यह है कि उसने शुभमार्ग को जानाही नहीं अथवा चलही न सका पर चलने

की असमर्थता भोगों की बन्धमानी कर होती है क्योंकि भोगों विषे बँधाहुआ पुरुष विषय वासनाको विपर्यय नहीं करसक्का और अज्ञानता का कारण यह है कि जिस मनुष्यको सन्तजनोंके वचन की पहिंचान और श्रवण नहीं होती तब वह स्वाभाविकही अजान रहताहै अथवा भ्रम करके कुमार्ग विषे चलने लगताहै अथवा कोई ऐसा छल आन प्राप्त होता है जो इसको शुभमार्ग से गिराय देताहै पर भोगोंकी बन्धमानी जो इस जीवको शुभमार्ग विषे चलने नहीं देती सो तिसका उपाय मैंने पीछे वर्णन कियाहै जैसे मान धन की प्रीति और काम क्रोध आदिक जितने मलिन स्वभाव हैं सो यह सबही धर्ममार्ग विषे कठिन घाटियां हैं ताते यह मनुष्य इनसे उल्लङ्घित नहीं होसक्का अथवा जब एक घाटी से उतरता है तब दूसरी अथवा तीसरी विषे अटक जाताहै पर ऐसेही जबलग सब घाटियों से उल्लङ्घित न होवे तबलग परमपद को नहीं प्राप्तहोता बहुरि अज्ञानता जो इस जीवके मन्दभागों का कारणहै सो यह भी तीन प्रकार की होती है प्रथम तो केवल अज्ञानता और अचेतता है और मूर्खताई भी इसही का नाम है कि सन्तजनों के वचन के श्रवण से रहित होकर भले बुरेको न जाने पर इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष मार्गविषे सोताही रहजावे सो यह वार्ता प्रसिद्ध है कि जब लग उसको कोई आयकर जगावे नहीं तबलग वह संगियों का साथी नहीं होता और अकेला मृत्यु होताहै १ बहुरि दूसरा प्रकार अज्ञानता का भ्रमहै अर्थ यह कि जैसे कोई पुरुष पूर्वदिशा को जाना चाहे और भूलकर पश्चिम दिशा की ओर चलाजावे तब यह वार्ता निस्सन्देह है कि जितनाही तीक्ष्ण वेगकर दौड़ता है उतनाही अपने मार्ग से दूर रहताहै सो इसको घोर भ्रम कहते हैं पर जब अपने मार्ग से बायें दाहिने होजावे तब इसका नाम क्षीण भ्रम है २ बहुरि तीसरी अज्ञानता का नाम छल है सो इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष तीर्थयात्रा को चले और मार्गके खर्च के निमित्त कुछ सोना रूपा घर से उठाय लेवे बहुरि मार्ग विषे जब किसी नगर में उस धनको दिखावे तब वह सब खोटाही निकसे पर वह पुरुष आगे उसको खरा जानकर प्रसन्न होताथा और जब उसको खोटेको प्रसिद्ध जानता है तब पश्चात्ताप करने लगताहै और तीर्थयात्रा से अप्राप्त रहता है सो इसीपर महाराज ने कहाहै जिन पुरुषों ने इस लोक विषे जप तप आदिक साधन बहुत किये हैं पर हृदय उनका शुद्ध और निष्काम नहीं हुआ सो जब परलोक

बिषे जायकर अपनी करतूतोंके फलसे रहित देखेंगे तब अत्यन्त पश्चात्ताप करेंगे और परमहानि को प्राप्त होवेंगे सो इनकी हानिका कारण यह है कि जिस पुरुष ने सराफी की विद्या भी न सीखी होवे और किसी सराफ को दिखाकर भी सोना रूपा न लेवे बहुरि जब उसको कसौटी पर भी लगाय न लेवे तब ऐसाही पुरुष खोटेही सोने को पाताहै और खरेसे अप्राप्त रहताहै तैसेही सराफी की विद्याका सीखना विवेक और वैराग्य है सो जब ऐसे विवेक को न प्राप्त होसके तब विवेकी जनों की संगति बिषे मिलकर भलाई बुराई के भेद को पहिंचाने बहुरि जब ऐसी संगति से भी दूरहोवे तब कसौटी की नाईं इस वार्ता को समझे कि जिस भोग बिषे इसके मनकी अभिलाष उपजे तब उसको झूठा और खोटजाने सो यद्यपि पूर्ण विवेक और विवेकियों की संगति बिना वैराग्यरूपी कसौटी बिषे छलों का भय होताहै पर अधिक तो यहहै कि मनकी वासनाको विपर्यय करके सूधेही मार्ग को पाताहै ताते यह जो तैंने तीनप्रकार की अजानता का वर्णन कियाहै सो इन का उपाय भी जिज्ञासुको जानना चाहिये क्योंकि प्रथम सीधे मार्ग को जानना प्रमाण है बहुरि पुरुषार्थ से उसी मार्ग में चलना चाहिये सो जिस पुरुष को पहिंचान और पुरुषार्थ प्राप्त हुआहै तब उसको परमपद पहुँचने में संशय कुछ नहीं रहता इसी पर एक महात्मा महाराज के आगे प्रार्थना करते थे कि हे महा-राज ! प्रथम तो मुझको यथार्थ के मार्गकी पहिंचानदे बहुरि दया करके उसही कर्म का पुरुषार्थ दे २ ताते अब मैं इस सर्ग बिषे अजानता का उपाय वर्णन करता हूं (अथ प्रकट करना उपाय प्रथम अजानता और मूर्खता का) ताते जान तू कि बहुत मनुष्य अजानता करकेही भगवत् से दूररहे हैं पर अजान उसको कहते हैं कि जिसको परलोक के सुख दुःख की सुधि कुछ न होवे क्योंकि जिसको परलोक की बूझ प्राप्त होती है तब वह ऐसे मार्ग बिषे आलस्य नहीं करता इस करके कि जब यह मनुष्य किसी वार्ता बिषे हानि देखता है तब दुःख को अङ्गीकार करके भी उससे दूर रहताहै पर परलोक के सुख दुःख की जो बूझ है सो तिसको सन्तजन की समझ के प्रकाश करके देखताहै अथवा उनके वचनों करके जानसक्ताहै अथवा विद्यावानों के वचन सुनकर भी इस जीव को भले बुरेकी पहिंचान होती है जैसे कोई पुरुष मार्ग बिषे सोता होवे तब उसका उपाय यही है कि कोई जाग्रत् पुरुष उसको जगाय देवे तब अपने देशको जाय पहुँचे

सो जाग्रत पुरुष सन्तजन हैं अथवा उनके वचनों के जाननेवाले विद्यावान् हैं इसी कारण से महाराज ने सन्तजनों को जगतविषे भेजाहै कि जीवों को अज्ञानतारूपी निद्रासे सचेत करावें और इस प्रकार जीवों को सुनावें कि महाराज ने सर्व जीवों को नरक के किनारे पर स्थित किया है ताते जो पुरुष मन की वासना के अनुसार स्थूल भोगों की ओर सम्मुख होवेगा तब वह निस्सन्देह नरकों बिषे गिर पड़ेगा और जो पुरुष मनकी वासना से विपर्यय बिचारेगा तब वह परम सुखको प्राप्त होवेगा ताते प्रसिद्ध हुआ कि यह स्थूल भोग नरकों बिषे डालनेकी जंजीर हैं और परम सुख के मार्ग बिषे कठिन घाटी हैं इसी पर महाराजने भी कहा है कि मैंने स्वर्ग को दुःखों के साथ लपेट राखा है और नरकों की अग्नि को मैंने इन्द्रियादिक भोगों के साथ लपेटा है पर जेते मनुष्य वनों और जङ्गलों और पर्वतों बिषे रहनेवाले हैं सो सबही अचेतता की निद्रा बिषे सोयेहुये हैं काहेसे कि उनबिषे ऐसा विद्यावान्ही कोई नहीं होता जो उन को यथार्थ वचनों करके सचेत करे इसी कारण से धर्म के मार्ग बिषे चलनेकी श्रद्धाही नहीं रखते ताते सन्तजनों ने कहा है कि विद्यावानों की संगति से दूर रहनेवाले पुरुष ऐसे हैं जैसे श्मशानों बिषे भूत होवें बहुरि नगरों बिषे यद्यपि वचन वार्ता सुनानेहारे पण्डित रहते हैं तौभी वे पण्डित सकामी और लोभी होते हैं सो तिनके वचन सुनकरभी अचेतता दूर नहीं होती क्योंकि जो पुरुष आपही घोरनिद्रा बिषे सोता होवे वह और किसी को क्योंकर जगायसके बहुरि केते विद्यावान् तो ऐसे होते हैं कि यद्यपि वचन वार्ता भी कहते हैं तोभी जीवों के कल्याण का उपदेश नहीं करते नाना प्रकार की चतुराई और अर्थरहित इतिहासों को उच्चारण करते हैं अथवा ऐसे वचन कहते हैं कि इस मनुष्य को गृहस्थ धर्मही विशेष है अथवा भगवत् की दया का वर्णन करके जीवों का भय दूर कर देते हैं सो ऐसे वचन सुननेहारे मनुष्यों की अवस्था अजान पुरुष से भी नीच होजाती है ताते इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई मनुष्य सोते हुये पुरुष को जगाकर ऐसा मदपान करावे कि जो उसको महाउन्मत्त करडारे ताते उसकी निद्रा महाघोर होजाती है क्योंकि जब मदपान किये विना सोता हुआ था तब थोड़ेही वचन कर सचेत होता और मदपान करके ऐसा अचेत होता है कि पचास लाठियों करके भी उसकी निद्रा नहीं खुलती तैसेही जब

अजान पुरुष ऐसी संगति बिपे बैठताहै तब उसका यही निश्चय दृढ़ होजाता है कि हमारे पापों करके महाराज को क्या स्पर्श होवेगा और उसको सुख देने की कृपणता कब होती है क्योंकि वह तो परमदयालु है ऐसे जानकर परलोक के भयसे निडर होजाते हैं ताते इस प्रकार के उपदेश करनेहारे भी जीवों के धर्म को भ्रष्ट करते हैं क्योंकि यह ऐसे मूर्ख हैं जैसे कोई अजान वैद्य सन्निपाती को शरद औषधि देवे तब वह रोगी शीघ्रही मृत्यु होताहै तैसेही भगवत् की कृपा और दया का जो उपदेश है सो यह भी दो प्रकार के मनुष्यों को कल्याण करता है प्रथम वह जो अधिक पापों करके निराश हुआ होवे और निराशता के भयकरके पापों का त्याग न करे तब वह भी भगवत् की दया के वचन सुनकर निराशता से रहित होता है और पापों के त्यागने की श्रद्धा रखताहै और दूसरा मनुष्य इस वचन का अधिकारी वह है जिसके ऊपर भय की अधिक प्रबलता होवे और ऐसी कठिन तपस्या को अङ्गीकार करे जो भूख और जागरण करके आपको नष्ट किया चाहे तब उसको भी भगवत् की दया का भरोसा करना विशेष है पर भोगी मनुष्यों को इस प्रकार के वचन सुनाने ऐसे हैं जैसे कोई पुरुषके कटेहुये अङ्गपर लोन लगावे तब अवश्यही पीड़ा अधिक होती है इसीकारण से कहाहै कि आत्मज्ञान के उपदेश करनेहारे पण्डित और महाराज की दया सुनानेहारे विद्यावान् विषयी जीवोंको अधिक लम्पटकर डालते हैं और जीवोंका धर्म नष्ट करते हैं पर जिस उपदेश करनेहारे का वचन धर्म की मर्याद के अनुसार होवे और उसकी करतूति वचनों से विपर्यय होवे तिसके उपदेश करके भी जीवोंकी अचेतता दूर नहीं होती सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष मिठाई का थाल आगे रखकर भोजन करताजावे और मुख से इसप्रकार कहे कि इस मिठाई बिपे हलाहल विषहै ताते इस भोजन की अभिलाष न करो तब उसका वचन सुनकर लोगोंकी तृष्णा दूर नहीं होती क्योंकि प्रथम तो उसको रुचि सहित भोजन करते देखते हैं बहुरि ऐसे जानते हैं कि यह पुरुष अपनेही खाने के निमित्त हमको विषकरके सुनाताहै तैसेही तृष्णावान् पण्डितके वचन सुनकर जीवोंके हृदयसे माया की प्रीति दूर नहीं होती पर जिस विद्यावान् का वचन और करतूति एक समान होवे तिसके उपदेश करके निस्सन्देह अचेतता की नींदसे जीव सचेत होते हैं ताते जब ऐसे मनुष्य का ऐश्वर्य

जगत बिषे प्रसिद्ध होवे तब सब किसी को लाभदायक होताहै तात्पर्य यह कि यह सबही मनुष्य मूढ़ताकी निद्रा बिषे सोते हुये हैं और सहस्रों पुरुषों बिषे कोई एकही जागताहै जो परलोक की भलाई बुराई को भलीप्रकार पहिंचाने पर यह अजानतारूपी रोग ऐसा कठिनहै कि जो आप करके इसका उपाय नहीं होसक्ता क्योंकि अचेत पुरुष तो अपनी अजानताही को नहीं जानता ताते उसका उपाय कैसे करसके इसी कारण से कहा है कि अज्ञानी जीवों का उपाय ज्ञानी पुरुषों की दयाकरके होताहै जैसे बालक को प्रथम माता पिता और पाधा सचेत करते हैं तैसेही अचेत मनुष्य विद्यावानों के उपदेश करके सचेत होते हैं पर इस समय बिषे जो वैराग्यवान् विद्यावान् दुर्लभ पाये जाते हैं ताते अजानतारूपी रोगने सर्व जगत् को घेरलियाहै और यद्यपि कोई मनुष्य परलोक की वार्ता मुख से कहताहै तो भी उसके हृदय बिषे भय और त्रास कुछ नहीं होती सो भय से रहित कहनि करके कुछ विशेषता नहीं प्राप्त होती (अथ प्रकटकरना रूप भ्रम का और उपाय भ्रम के दूर करने का) ताते जान तू कि केते मनुष्योंने भ्रम करके और का औरही निश्चय दृढ़कियाहै इसीकारण से यथार्थ के मार्ग से दूररहे हैं और विपरीत निश्चयही उनको पटल हुआ है सो यद्यपि ऐसे मत और पन्थ भी अनेक हैं पर मैं पांच प्रकार के भ्रम का वर्णन करताहूं तब उनके अनुसार और भी समझे जावें सो प्रथम भ्रम का निश्चय यह है कि केते पुरुष परलोक को ही नहीं मानते और इस प्रकार कहते हैं जब यह मनुष्य मृत्यु होताहै तब मूलही से नष्ट होजाताहै जैसे पृथ्वी पर घास सूखजाती है अथवा जैसे दीपक बुझजाता है ऐसे जानकर उन्होंने धर्म और वैराग्य को डालदियाहै और सुखेन जीवने कोही प्रियतम रखते हैं बहुरि वह ऐसे जानते हैं कि आचार्योंने लोगोंकी मर्याद ठहराने के निमित्त परलोक का भय वर्णन कियाहै अथवा उन्होंने अपने मानके निमित्त जीवोंको त्रास दियाहै ताते प्रसिद्ध इस प्रकार कहते हैं कि नरकों का भय मनुष्यों से ऐसे कहाहै जैसे माता पिता बालक को डरदेवें कि जब तू विद्या न पढ़ेगा तब तुझको मूसाके बिलमें डालदेवेंगे पर जब भाग्यहीन इसही दृष्टान्त को विचारके देखें तोभी विशेष है कि जब वह बालक विद्या से रहित होकर मूर्ख होवेगा तब वह मूर्खता मूसेके बिलसे भी बुरी है तैसेही बुद्धिमानों से इस प्रकार समझाहै कि भगवत्के वियोग का दुःख नरकों से भी अधिक दुःखरूपहै सो भगवत् का वियोग

वासना के सम्बन्ध करके होताहै ताते यह स्थूलभोग जो बहुत मनुष्यों के चित्त बिषे दृढ़ होगये हैं इस कारण करके यद्यपि प्रसिद्ध में परलोक का नतकार नहीं करते तौभी उनकी करतूतों बिषे परलोक का न मानना प्रकट दृष्ट आता है क्योंकि व्यवहार के कार्यों बिषे आगेही उद्यम उठाते हैं और बड़े दुःखों को खींचते हैं पर जब उनके हृदय बिषे परलोक की प्रतीति दृढ़ होती तब वासना के आधीन होकर पापों बिषे न बिचरते सो परलोक के लखानेहारे मार्ग भी तीन कहे हैं प्रथम तो उत्तम मार्ग यह है कि जो महापुरुष अपने अनुभव की दृष्टि करके नरक स्वर्ग और धर्मी पापी की अवस्था को प्रत्यक्ष देखते हैं और यद्यपि वह सन्तजन इन्द्रियादिक व्यवहार बिषे बिचरते हैं तौभी उनको हृदय की एकत्रता करके इन्द्रिय अगोचर पदार्थ प्रत्यक्ष दृष्ट आते हैं क्योंकि वह सन्तजन विषयों की खैंचसे सम्पूर्ण मुक्त हुये हैं और इतर जीवोंको इन्द्रियादिक भोगोंने परलोक की अवस्था देखने बिषे पटल डाला है सो इन्द्रियादिक भोगों से सर्वथा मुक्त रहना महाकठिन है पर जिनको परलोकही की वार्तापर प्रतीति नहीं वह ऐसी उत्तम अवस्थापर प्रतीति और प्रीति क्योंकर करें १ बहुरि दूसरा मार्ग परलोक के जानने का यह है कि युक्ति सहित मनुष्य का यथार्थ स्वरूप पहिंचाने और ऐसे जाने कि यह जीवात्मा क्या वस्तु है? तब इस प्रकार समझावे कि यह चैतन्यरूप अविनाशी है और शरीर इसका घोड़ा है ताते शरीर के नाश होने करके जीव का नाश नहीं होता सो यह मार्ग भी अति दुर्लभ है और कठिन है पर यह मार्ग भी यथार्थ विद्याकी प्रतीति करके प्राप्त होता है २ बहुरि तीसरा मार्ग यह है कि सन्तजनों और विद्यावानों की संगति करके भी इस बूझ का प्रकाश प्राप्त होता है सो यह सर्व जीवों का अधिकार है पर जो पुरुष पूर्ण सद्गुरु और वैराग्यसंयुक्त विद्यावानों की संगति से दूर हुआ है तब वह भी निस्सन्देह मन्दभागी रहता है और सन्तसंगति करके जो परलोक की बूझ प्राप्त होती है सो इसका दृष्टान्त यह है जैसे बालक अपने माता पिताको प्रकट देखे कि जब अचानकही सर्पको देखते हैं तब भयवान् होकर भागजाते हैं सो केतेबार ऐसे देखने करके वह बालक भी सर्प से डरने लगता है और यद्यपि बूझकरके सर्प के विष को नहीं जानता तौ भी स्वाभाविकही सर्प को देखकर भाग जाता है ताते सन्तजनों का देखना ऐसा है जैसे कोई पुरुष देखे

कि अमुक पुरुष को सर्प ने डसाथा ताते वह शीघ्रही मृतक होगया सो यह परम निश्चय है बहुरि विद्यावानों का देखना ऐसे है जैसे कोई पुरुष वैद्यक की युक्ति करके सर्प के विष का स्वभाव पहिंचाने और मनुष्य के शरीर की कोमलताई को भी भली प्रकार समझे कि इसके शरीर विषे इसप्रकार सर्प का विष प्रवेश करजाता है तब इसकरके भी सर्प के डसने का दुःख प्रत्यक्ष जानाजाता है सो यह मध्यम निश्चय कहाता है बहुरि सन्तजनों की संगति विषे जो परलोक का भय उत्पन्न होता है सो यह माता पिता की संगति के समान है जो देखने करके बालक को सर्प से डर उपजता है और यह सर्व जीवों का उत्तम अधिकार है पर यह कनिष्ठ निश्चय है ३। १ बहुरि दूसरे भ्रामिकबुद्धि ऐसे होते हैं कि यद्यपि परलोक की प्रतीति से केवल रहित नहीं होते और प्रसिद्ध नतकार भी नहीं करते पर इसप्रकार कहते हैं कि परलोक की वार्ता को भली प्रकार समझा नहीं जाता ताते इस संसार के सुख प्रकट हैं और परलोक का दुःख सुख संशय विषे है सो प्रकट सुख को संशय के दुःख निमित्त त्यागा नहीं जाता पर यह उनका वचन केवल मनही का मतहै और अन्त को झूठ है क्योंकि प्रतीतिमानों की दृष्टि विषे परलोक अति प्रकट है और इस संसार के सुख कुछ वस्तुही नहीं ताते उनको इस प्रकार समझना प्रमाण है कि केते कार्यों विषे संशय करके भी सुखका त्यागना विशेष होता है और दुःख को अङ्गीकार करते हैं जैसे अरोगता का सुख संशय विषे होता है पर उस सुख की आशा करके प्रकटही कटु ओषधियों को खाते हैं अथवा जैसे धन का लाभ संशय विषे होताहै पर केते पुरुष लाभ की आशा के निमित्त समुद्रों और परदेशों विषे फिरते हैं और दीर्घ दुःखों को सैंचते हैं अथवा जब तुझको अधिक प्यास होवे और कोई पुरुष ऐसे कहे कि इस जल विषे सर्पने मुख डालदिया है तब जल का स्वादु तो प्रत्यक्ष है और सर्पका विष संशय विषे होताहै ताते तू उस जलको किस निमित्त त्याग देताहै सो इसका प्रयोजन यहहै कि यद्यपि जल का स्वादु प्रकटहै पर उसका त्यागना तुच्छमात्र है और यद्यपि सर्प का विष संशय विषेहै तौभी उसका दुःख अतिदीर्घ है इसी कारणसे संशय करके भी प्रकट पदार्थ का त्यागना सुगम होता है तैसेही इस संसार के सुख कुछ दिनके हैं और जब बीत जाते हैं तब स्वप्नवत् भासते हैं और परलोक का सुख दुःख अविनाशी है ताते

सदैवके दुःखसे डरकर स्थूलसुखों का त्यागना विशेषहै बहुरि जो तेरी बुद्ध्यनुसार परलोक का सुख दुःख झूठ भासताहै तौभी तुझको इस प्रकार समझना चाहिये जैसे तू आदि अन्त इससंसार विषे न था और न होवेगा तैसे मध्यकाल विषे भी आपको न हुआ जान और परलोक का दुःख जब तू यथार्थ जानताहै तब तो वैराग्यकरके ऐसे परमदुःख से निस्सन्देह मुक्त होवेगा २बहुरि तीसरे भ्रामिकबुद्धि ऐसे हैं कि वह यद्यपि परलोक को सत्य जानते हैं तौभी इस प्रकार कहते हैं कि संसार का सुख नक़द है अबहीं और परलोक का सुख दुःख उधार की नाईं है ताते नक़द पदार्थ उधारसे विशेष होताहै पर यह मूर्ख इतना नहीं जानते कि उधारसे नक़द की विशेषता तबही होती है जब दोनों की मर्याद एक समान होवे और जब समान न होवे तब वह उधारही भला होता है क्योंकि व्यवहार का देना लेना इसही समझ करके सिद्ध होता है पर जो पुरुष इसबातों को भी न समझ सके तब वह केवल भ्रामिकबुद्धि कहाता है ३ बहुरि चौथे भ्रामिकबुद्धि ऐसे होते हैं जो परलोक के सुख दुःखको यथार्थ मानते हैं पर स्थूल सुखों की संपदा को पाकर अधिक प्रसन्न होते हैं ताते अपने चित्तविषे इस प्रकार अनुमान करलेते हैं कि जैसे भगवत् ने हमको यहां अपनी कृपाकरके उत्तम सुख दिया है सो परलोक विषे भी ताड़ना न करेगा क्योंकि वह महाराज परम दयालु है और उसने हमको अधिक प्यारा जानाहै ऐसे जानकर ढीठ और निडर होजाते हैं ताते उनको इस प्रकार समझाया चाहियेहै कि जैसे किसी पुरुषको पुत्र अति प्रियतम होवे और एक उसका दास होवे और वह पुरुष अपने पुत्रको सर्वदा पाधाकी ताड़ना विषे रखता होवे और टहलुवे को कुछ कहेही नहीं बहुरि वह टहलुवा ऐसे अनुमान करे कि मुझको स्वामी पुत्र से भी अधिक प्यारा जानता है इस करके कि मुझको कुछ कहताही नहीं और पुत्र को सदैव ताड़ना विषे रखता है सो ऐसे उसका जानना मूर्खता है क्योंकि पुत्रको प्रीतिसंयुक्त शुभगुण सिखाया चाहता है और टहलुवेकी ओर चित्तही नहीं देता तैसेही भगवत् भी अपने प्रियतमों को माया के भोगों से विरक्त रखताहै और मनमुखों को अधिक भोग भोगाता है ताते भ्रामिकबुद्धि जो वैराग्यादिक साधनों से आलसी होता है सो ऐसा है जैसे कोई पुरुष बीजही न बोवे तब उसकी खेती क्योंकर सफल होवेगी तैसेही जो पुरुष इन्द्रियादिक भोगों का त्याग न करे तब परमानन्द को

कैसे प्राप्त होवेगा ४ बहुरि पांचवें भ्रामिकबुद्धि ऐसे कहते हैं कि भगवत् सर्व जीवों पर परम दयालु है और उस विषे कृपणता का अंशही पाया नहीं जाता ताते अपने सुख को कब दुराय रखता है और हमारे कर्मों की ओर कब देखता है पर येह मूर्ख ऐसे नहीं जानते कि यह मनुष्य पृथ्वी विषे एकदाना बोवता है और उससे सहस्रदाने उत्पन्न होते हैं सो जिस महाराज ने ऐसे संयोग तुझको बनादिये हैं तब इससे अधिक कृपा क्या है ? तैसेही कुछदिन साधन करके इसजीव को अविनाशी पद की प्राप्ति होतीहै सो यही भगवत की परम कृपा है और जब कृपा का अर्थ यह है कि बोये बिनाही खेती वृद्धि होजावे तब नाना प्रकारके उद्यम और व्यवहार किस निमित्त करता है ताते चाहिये कि तू केवल निरुद्यमहो बैठे क्योंकि महाराज तो परम कृपालु है तेरे उद्यम बिनाही तुझको लाभ देवेगा और महाराज ने तो ऐसे भी कहा है कि सर्वजीवों का प्रतिपालक मैं हूं सो जब यह प्रतीति तेरे हृदयविषे दृढ़ नहीं तब शुभकर्मों विषे क्यों आलस्य करता है क्योंकि साधन बिना सिद्धि की चाहना ऐसे हैं जैसे कोई गृहस्थ बिना संतान की उत्पत्ति चाहे सो यह बड़ी मूर्खता है और भगवत को कृपालु जानने का अर्थ यह है कि प्रथम विधिसंयुक्त उद्यम करे बहुरि विघ्नों की रक्षा के निमित्त भगवत् का भरोसा करे तब उसको बुद्धिमान् कहते हैं और जो पुरुष भगवत पर प्रतीतिही न करे अथवा शुभकर्मों विषे दृढ़ न होवे तब वह निस्सन्देह भ्रामिकबुद्धि है पर केते मनुष्य माया के पदार्थों को देखकर भ्रामिकचित्त हुयेहैं व केते पुरुषों ने भगवत् की कृपाके अर्थ को भ्रम करके उलटा पहिंचाना है सो महाराज ने दोनों प्रकार के भ्रम से वर्जितकिया है और इस प्रकार आज्ञाकरी है कि जब कोई शुभ करतूति करेगा सो उत्तमफल को प्राप्त होवेगा और जो पुरुष अशुभकर्म करेगा सो बुरेही फलको पावेगा ताते सुचेत होकर इस वार्ता को श्रवणकरो और किसी पदार्थ को देखकर भ्रामिकबुद्धि न होवो और मेरी दया के आश्रय अशुभ कर्म न करो (अथ प्रकट करना रूप छलों का और उपाय छलों से रहित होने का) ताते जान तू कि बहुत पुरुष कर्मों की शुद्धता और अशुद्धता को भली प्रकार नहीं पहिंचानते इसी कारण से अपने कर्म को निर्विघ्न जानकर हर्षवान् होते हैं और विघ्नों से निर्भय रहते हैं सो तिसको छलाहुआ कहाजाता है क्योंकि उनको विवेकरूपी सराफी प्राप्त नहीं

हुई ताते कर्मों की स्थूलता पर छलेगये हैं बहुरि यह छल भी ऐसे अमित हैं कि कोई एक पुरुष सहस्रों विषे निर्विघ्न रहता है सो ऐसे पन्थों और मतों की मिति भी गिनती विषे नहीं आती पर तौभी सबही लोग चारप्रकार के होते हैं विद्यावान् १ तपस्वी २ अतीतजन ३ धनवान् ४ सो प्रथम तो विद्यावान् इस प्रकार छलेहुये हैं कि वह अपनी सर्व आयुष् विद्या के पढ़ने विषेही वितावते हैं और सब इन्द्रियों को पापों से रोक नहीं सके और अपने चित्तविषे ऐसा अनुमान करतेहैं कि हम इस विद्याही करके परलोक के दुःखों से मुक्त होवेंगे और हमारी प्रसन्नता पायकर और लोग भी दुःख से छूटेंगे सो इनका दृष्टान्त यह है जैसे कोई पुरुष रोगी रात्रि दिन वैद्यक का अभ्यास करे रोगों और ओषधियों को भली प्रकार विचार करके लिखलेवे पर ओषधियों को कड़वी जानकर अङ्गीकार न करे तब ओषधियोंके लिखलेने और विचार करने करके उसका रोग कब दूर होता है इसीपर महाराज ने कहा है कि अपने मनको वासनासे वर्जित करो ताते परमसुखको सोई पाता है जो मन और इन्द्रियोंको विकारों से शुद्धकरे पर ऐसे तो नहीं कहा कि विकारों से शुद्धहोने की विद्या पढ़नेवाले सुखी होवेंगे सो जबवह पुरुष विद्यावानों की विशेषता सुनकर प्रसन्न होताहै तब करतूति हीन विद्यावानों की नीचता को क्यों नहीं विचारता जैसे महाराज ने वैराग्य रहित पण्डितों को गर्दभ की भाँति कहा है इस करके कि यद्यपि पुस्तकों का भार अपनी पीठपर लिये फिरता है पर उनके तात्पर्य सें अचेत है और यौंभी कहाहै कि करतूतिहीन विद्यावान् निस्संदेह नरकोंकी अग्नि विषे जलेंगे बहुरि इस प्रकार कहेंगे कि हमने लोगों को धर्म का उपदेश कियाहै और आप उन कर्मों से विमुख रहेहैं ताते इसी नीचगति को प्राप्तहुये हैं इसीपर एक सन्त ने कहा है कि अजान पुरुष को परलोक विषे एकगुणा पश्चात्ताप होगा और करतूतिहीन विद्यावानों को उनसे दशगुणा पश्चात्ताप होवेगा क्योंकि यह तो जानबूझकर विमुख हुयेहैं बहुरि एक और विद्यावान् ऐसे होतेहैं कि यद्यपि स्थूल नियम धर्म विधिसंयुक्त करते हैं पर अपने हृदय से मलिन स्वभावों को दूर नहीं करते और सर्वदा दम्भ ईर्षा मानकी अभिलाष विषे आसक्त हैं सो ऐसे वचनों को नहीं विचारते कि जैसे कहा है कि जिसके अन्तर रञ्चकमात्र दम्भ और अभिमान होता है वह परमसुख को कदाचित् नहीं प्राप्तहोता और ईर्षा

रूपी अग्नि इस जीवके धर्म को घास की नाईं जलादेती है और महाराज ने इस प्रकार भी कहाहै कि मैं सदैव तुम्हारे हृदय की ओर देखताहूं और स्थूल करतूतों की ओर नहीं देखता ताते ऐसे विद्यावानों का दृष्टान्त यहहै जैसे कोई पुरुष कांटों के वृक्षको मूलही से नष्ट न करे और उसके पत्रों को तोड़तारहे तब वह कांटे कभी दूर नहीं होते तैसेही मलिन कर्मों का बीज बुरे स्वभाव हैं ताते इनको हृदय से निर्मूल किया चाहिये और जिसका अन्तर अशुद्ध होवे और बाहर से आप को शुद्धकर दिखावे तब वह ऐसे होता है जैसे कोई पुरुष मन्दिर के ऊपर दीपक जगायराखे और भीतर उस घरके अँधेरा रहै बहुरि एक और विद्यावान् ऐसे होते हैं कि यद्यपि उन्होंने हृदय की शुद्धता को भली प्रकार समझा है पर अभिमानके छलकरके आपको पापों से रहित जानतेहैं अथवा इस प्रकार अनुमान कर लेते हैं कि हमारा मान महद्धर्म की दृढ़ता का कारण है क्योंकि हमारी बड़ाई देखकर धर्महीन मनुष्य लज्जावान् होते हैं और प्रीति-मानों की रुचि धर्म विषे होतीहै ताते अपने रजोगुणी स्वभाव को राजसी नहीं जानते पर यह मूर्ख ऐसे बिपरीतबुद्धि हैं कि इन्होंने सन्तजनोंके बैराग्य और संयम को विस्मरण किया है और इतना नहीं समझते कि उनके बैराग्य करके धर्म की वृद्धि होती थी ऐसेही ईर्षा और दम्भ को भी इसप्रकार समझते हैं कि हमारे दम्भ करके सात्त्विकी कर्मोंविषे जीवों की रुचि अधिक होतीहै बहुरि जब राजसभाविषे जाते हैं तब ऐसे जानते हैं कि हमारी संगति करके इनका भला होता है पर जब यथार्थ विचार करके देखें तब ऐसे जानें कि माया से विरक्त होनाही धर्मकी वृद्धिता है सो जिसके राजसीस्वभाव को देखकर और जीवों का चित्त चपल होवे तब जानिये कि ऐसे पुरुष का न होनाही धर्म की वृद्धिता है और इनकी संगति करके उलटी धर्म की हानि होती है इसीकारणसे ऐसे जानने हारे विद्यावान् सबी छलेहुये होते हैं बहुरि एक ऐसे विद्यावान् हैं जो निवृत्ति विद्याही से अप्राप्तरहे हैं जिस विद्याविषे बैराग्य और निष्कामता का और भगवत् का पहिंचानना और अपना पहिंचानना और धर्ममार्ग के विघ्नोंका पहिं-चानना वर्णन होताहै सो तिसको पढ़तेही नहीं और अपनी सर्वआयुष् पन्थों के विवाद और चतुराई की विद्या विषे व्यर्थ खोते हैं और इतना नहीं जानते कि विद्याका तात्पर्य यह है कि मायासे विरक्त होना और तृष्णा को त्यागकर

संतोष करना और दम्भ को छोड़कर निष्काम होना बहुरि अचेतता को दूर करके भय और वैराग्य बिषे स्थित होना पर जो पुरुष ऐसे वचनोंको नहीं बिचारते और चतुराई के सम्मुख हुये हैं सो सबही महामूर्ख हैं बहुरि केते विद्यावान् धर्मशास्त्र और राजनीति के व्यवहार को पढ़ते रहते हैं और इतना नहीं समझते कि यह विद्या तो जगत् की मर्याद ठहरावनेहारी है और परलोक मार्ग की विद्या ही भिन्न है क्योंकि जितने कर्म शास्त्रकी मर्याद अनुसार जगत् बिषे निर्दोष हैं सो सन्तजनों के मत बिषे पाप हैं बहुरि यह प्रवृत्ति पण्डित जो पाप पुण्य का बखान करनेहारे हैं सो यह कर्मों की स्थूलता को देखतेहैं और सन्तजन हृदय की ओर देखते हैं जैसे कोई पुरुष किसीसे कुछ मांगलेवे तब जगत् बिषे इसको पाप नहीं कहते पर जब बिचार करके देखिये तब यह मांगलेनाभी ऐसे होता है जैसे कोई अनीति करके किसीको लाठीमारे और धन हरलेवे तैसे ही मांगना भी लज्जारूपी लाठी के मारने की नाईं है इसी प्रकार स्थूलविद्या पढ़नेहारे पुरुष ऐसे सूक्ष्मभेदों को कब समझसक्तेहैं ताते इनका सम्पूर्ण कहना अधिक विस्तार होता है बहुरि तपस्वी इस प्रकार छले हुये हैं कि वह शरीरकी शुद्धता के निमित्त भजन से बिमुख रहते हैं और जब किसी को स्थूल शुद्धता से हीन देखते हैं तब ग्लानि करके कठोर वचन कहते हैं और अशुद्धजीविका को नहीं त्यागसक्ते सो यहभी महा मूर्खता है और यद्यपि आप को पवित्र कर दिखावते हैं तौ भी सन्तजनों के मत बिषे महाभ्रष्ट हैं इसीपर उमरसन्त ने कहा है कि मैंने केतिकबार अशुद्ध आहार के भय करके शुद्ध जीविका को भी त्याग किया है तात्पर्य यह कि सन्तजनों ने जीविका की शुद्धता बिषे अधिक यत्नकिया है और स्नानादिक क्रिया बिषे आसक्त नहीं हुये सो इन मूर्खों ने उनके आचार को विस्मरण किया है और शरीर ही की शुचिता बिषे बन्धव हुये हैं ताते जो पुरुष अपनी जीविका शुद्ध न करे और स्थूल पवित्रता बिषे डूबा है तब निस्संदेह उसको झूठा जानिये बहुरि एक और तपस्वी ऐसे पाठक होते हैं कि उनके चित्तकी वृत्ति सर्वथा अक्षरों के बिषे आसक्त रहती है और लगमातों कोही सुधारते रहते हैं पर इस वार्त्ता को नहीं जानते कि वचनों के पाठ बिषे और उनके अर्थों में चित्तको एकत्र किया चाहिये है बहुरि एक ऐसे पाठक होते हैं कि उनकी मनसा अधिक पाठकरने की होती है और अर्थ से

अचेत रहते हैं सो ऐसे नहीं समझते कि पढ़ने का तात्पर्य भले बुरे की पहिंचान है ताते चाहिये कि भय के वचनों विषे भयवान् होजावें और महाराज की दया के वचनों विषे आशावन्तहोवें और उसकी बड़ाई के बखान विषे अधीन चित्त होजावें तब इसका पाठकरना सफल होता है पर यह मूर्ख रसना के हलावनेही को पुरुषार्थ जानते हैं सो अर्थ की पहिंचान विना ऐसे पाठ विषे लाभ कुछ नहीं होता जैसे कोई पुरुष अपने स्वामी की पत्री को वारंवार पढ़ता रहे और उस विषे जो कार्य लिखा होवे सो कुछ न करे तब निस्सन्देह दण्ड का अधिकारी होता है बहुरि केते मनुष्य व्रत और तीर्थों के अटन विषे अधिक पुरुषार्थ करते हैं और इन्द्रियों को पापकर्मों से वर्जित नहीं करते और वह सर्वदा आपको पुजावने की मनसा रखते हैं बहुरि एक ऐसे तपस्वी होते हैं जो खान पान और वस्त्रादिकों का संयम करते हैं पर मानके रसका त्याग नहीं करसके और लोगों के मिलाप विषे प्रसन्नहोते हैं सो इस भेद को नहीं पहिंचानते कि मनका विघ्न सर्व भोगों से अधिक दुःखदायक होता है पर मानी मनुष्य तो अपनी बड़ाई के निमित्त सर्वदा अधिक यत्न करते हैं और यद्यपि स्थूल नियम धर्म विषे अधिक सावधान हैं पर हृदय की शुद्धता को पहिंचानतेही नहीं ताते अभिमान और ईर्षा और दम्भ विषे आसक्त रहते हैं और महाराज के जीवों को कठोर वचन कहते हैं और क्रोध से युक्त भृकुटी चढ़ी रखते हैं सो इतना नहीं समझते कि कठोर स्वभावकरके शीघ्रही शुभकर्मों का नाश होजाता है और सर्वतपों का फल कोमलताई है पर यह भाग्यहीन तो अपने जप तपका उपकार लोगों पर रखते हैं और ग्लानि करके आपको लोगों से सकुचाय रखते हैं पर जब यह पुरुष महापुरुषों के वैराग्य और कोमलताई को भलीप्रकार पहिंचानें तब इनका अभिमान निवृत्त होजावे सो वह तो कुचील पुरुष से भी ग्लानि नहीं करते थे और सर्व जीवोंपर दया की दृष्टि से देखते थे सो उनके स्वभाव से विपर्यय होनाही भाग्यकी हीनता है और सर्व छलों का रूप है बहुरि अतीत जनों को इस प्रकार छलाहुआ कहा है कि सब लोगों से इनमें अधिक अभिमान होता है क्योंकि जितनीही किसी पदार्थ की विशेषता होती है तब उसका पहिंचानना भी उतनाही कठिन होता है और जो पुरुष उसकी पहिंचान से अचेत है वह निस्संदेह छलाजाता है ताते यथार्थ के मार्गविषे उत्तम अतीत

उसीको कहते हैं जिसमें तीन लक्षण पायेजावें सो प्रथम लक्षण यह है कि जिसने अपने मन को जीता है बहुरि मन और भोगों के रससे विरस हुआ है और विचार की मर्याद विना किसी स्वभाव की प्रबलता नहीं फुरती जैसे कोई राजा अपने शत्रुको जीतकर वशीकार करलेवे तब उस गढ़की प्रजा और सेना भी उसी राजा के अधीन होजाती है बहुरि दूसरा लक्षण यह है कि जिसके मनसे लोक परलोक की चितवनी दूर होजावे अर्थ यह कि इन्द्रिय और संकल्प के देशसे उल्लङ्घित होकर परमपद विषे स्थित होवे क्योंकि जितने पदार्थ इन्द्रिय और संकल्प करके सिद्ध होते हैं सो तिनमें पशुभी इनके समान हैं और यह स्थूलपदार्थ इन्द्रियों के भोगों का नाम है सो स्वर्ग विषे भी यही स्थूल भोग पाये जाते हैं इस करके कि स्वर्ग भी इन्द्रियों और संकल्प का देश है ताते उत्तम अतीत वही है जिसके चित्तविषे इन्द्रियों और संकल्प के ग्राह्य पदार्थों की सत्ता न रहे जैसे अमृतपान करनेहारे को घास का स्वादु कुछ नहीं भासता पर जैसे घास के अधिकारी पशु हैं तैसेही स्वर्ग के भी अधिकारी मूर्ख हैं २ बहुरि तीसरा लक्षण यह है कि जिसका चित्त महाराजही के शुद्धस्वरूप विषे लीन होवे अर्थ यह कि दिशा और स्थान और अहंकार की फुरना कुछ न रहे जैसे नेत्र राग और शब्द से अचेत होते हैं तैसेही उसको सर्व पदार्थ विस्मरण हो-जावें ३ सो जिस विषे यह तीनलक्षण सम्पूर्ण पायेजावें तब जानिये कि उस को अतीतजनों का पद प्राप्त हुआ है और उसकी अवस्था वचन से अगोचर होती है पर जिज्ञासु के समझावने के निमित्त सन्तजनों ने इस अवस्था को जीव और ब्रह्म की एकता कहा है बहुरि जिस मनुष्य की बुद्धि दृढ़ नहीं होती वह इस भेदको समझ नहीं सक्ता क्योंकि जब ऐसे पदको वचन करके सिद्ध किया चाहे तब शास्त्रों और लोककी मर्याद नहीं रहती ताते इस आनन्द को अनुभव करके पायसक्ता है सो उत्तम अतीतजनों की अवस्था यही है पर अब तू वेष-धारियों के छलों को पहिचानकरके देख कि केते पुरुष गुदड़ी और आसन को वेष बनायलेते हैं और वचन भी सन्तजनों की नाईं सूक्ष्मही कहते हैं बहुरि आप को स्थिर चित्तकर दिखावते हैं जैसे दृढ़ आसन करके शीश को नीचाकर बैठते हैं और किसी संकल्पके वेग विषे शीश को हलावने लगते हैं और अपने चित्त विषे ऐसा अनुमान करलेते हैं कि हमने पावने योग्य पदार्थ को पाय लिया है

सो इनका दृष्टान्त यह है जैसे वृद्ध स्त्री सिपाहीकी नाईं वस्त्र पहरलेवे और वीर विद्याको जानतीही नहीं कि शूरमा किस प्रकार परस्पर पुकारकर शस्त्र प्रहार करते हैं तब वह स्त्री संग्राम के समय अवश्यही लज्जावान् होती है और राजा उसके कपट को पहिंचानकर अधिक ताड़ना करता है क्योंकि इसकी नाईं और कोई कपट न करे तैसेही भगवत् भी वेषधारियों के कपट को उघार देताहै और अधिक ताड़ना करताहै बहुरि केते मनुष्य ऐसे नीच होतेहैं जो स्थूल वेष और संयम भी नहीं करसके ताते महीन वस्त्र फाड़कर गुदड़ी बनावते हैं और ऐसे जानते हैं कि रंगीन वस्त्रों का पहरनाही वैराग्य है पर इतना भेद नहीं समझ सकते कि प्रथम अतीतजनों ने रंगीन वस्त्रों की मर्याद इस निमित्त राखी है कि जो वारम्वार धोवने का खेद न होवे अथवा उन्होंने भगवत्के विरह करके श्याम वस्त्र पहर लिये हैं और शोकवानों के आचार को ग्रहण किया है पर यह मूर्ख तो महाराज के विरह और शोक से अप्राप्त हैं ताते इनको रंगीन वस्त्रों करके क्या लाभ होवेगा ? इसकरके कि ऐसे असंग्रही भी तो नहीं जो पुरातन वस्त्रों को सीवते २ गुदड़ी होजावे इसीकारण से नवीन वस्त्र फाड़ते हैं और उसकी गुदड़ी बनाकर पहरते हैं बहुरि एक और पुरुष ऐसे मन्दबुद्धि हैं कि उनके विषे पापों के त्यागने की समर्थता भी नहीं और भजन स्मरण विषेभी आलसी हैं बहुरि अभिमान करके आपको दीन भी नहीं मानते ताते भोगोंकी वृद्धता करके इसप्रकार कहते हैं कि उत्तम करतूति हृदय की एकाग्रता है और स्थूल कर्मों की विशेषता कुछ नहीं सो हमारा चित्त सर्वदा भजनविषे लीन रहता है इसी कारण से हमको स्थूलकर्मोंकी अपेक्षा कुछ नहीं और सन्तजनों ने जो स्थू कर्मोंकी विशेषता कही है सो विषयी जीवों का अधिकार है और हमारा मन तो विषय वासना से मृतकहुआ है ताते हमको पापका प्रवेश कुछ नहीं होत बहुरि जब तपस्वीजनों को देखते हैं तब इस प्रकार कहते हैं कि यह तो व्यर्थ कष्ट खींचनेहारे और विद्यावानों को देखकर कहते हैं कि यह भी प्रश्नोत्तर विं बँधेहुये हैं और यथार्थ बूझसे अप्राप्तहैं पर इस प्रकार कहनेहारे पुरुष निस्सन्दे राजदण्ड के अधिकारी हैं काहेसे कि ऐसे मूर्ख उपदेश करके कदाचित न समझते बहुरि एक और पुरुष ऐसे होतेहैं जो विषयों से विरक्त होकर विधिसंयु साधन करते हैं और चित्तकी वृत्ति को सकुचायकर भजन विषे स्थित होते

तब अन्तर्मुख के अभ्यास से उनकी ऐसी अवस्था होती है कि भविष्य वार्ता को प्रत्यक्ष देखते हैं और उनको देवतों और ईश्वरों के आकार प्रकट भासते हैं सो यद्यपि यह अवस्था सांच होती है पर स्वप्नकी नाईं अकस्मात् दूरभी होजाती है और वह पुरुष इतनी शक्ति प्रायकर ऐसे अभिमानी होते हैं कि हमको चौदहों लोक की खबर प्राप्तहुई है और इस प्रकार जानते हैं कि उत्तम अवस्था सन्तजनोंकी यही है पर जब यथार्थ दृष्टिकर देखिये तब उन्होंने भगवत्के आश्चर्य भेदों का एक बाल भी नहीं देखा और अभिमान करके तुच्छ ऐश्वर्य को पायकर अधिक प्रसन्न होते हैं और अपनी बड़ाई को प्रसिद्ध किया चाहते हैं बहुरि मान और बड़ाई के सम्बन्ध करके उनके मनकी वृत्ति पसरने लगती है और वह जानतेही नहीं सो यह छल अतिदीर्घहै और इसका पहिंचानना भी कठिन है ताते जिज्ञासु को चाहिये कि किसी शक्ति और सिद्धतापर प्रतीति न करे और अपने मनकी वासना के विपर्यय करने विषे सावधान होवे बहुरि जब मनके स्वभाव उलटकर विचारके अधीन होजावें किसी स्वभाव की वृद्धिमानी न रहे तब इसको उत्तम अवस्था जाने इसीपर एक सन्त ने कहाहै कि जलोंपर चलना और आकाश विषे उड़ना और आगम की खबर देनी भी सिद्धता कुछ नहीं और उत्तम सिद्धता यह है कि इस जीवका मन सन्तजनों की आज्ञानुसार होजावे अर्थ यह कि जब विचार की मर्याद विना किसी स्वभाव विषे आसक्त न होवे तब इस अवस्था पर प्रतीति करनी योग्य है और सबही ऐश्वर्य छलरूप हैं क्योंकि केते असुरों को भी तप करके आगम की खबरहुई है और उन्होंने नाना प्रकार की शक्ति को पाया है पर उनके मन की मलिनता दूर नहीं हुई ताते प्रतीति योग्य अवस्था यह है कि इस जीवके मनकी वासना सर्वथा दूर होजावे और विचार की मर्यादा आनि स्थित होवे इसीकारण से कहा है कि जब तू सिंहोंपर सवार न होसके तौभी संशय कुछ नहीं पर क्रोधरूपी कूकुर को जो अधीन करे तौ विशेष है और जब तैंने अपने अवगुणों को पहिंचाना तब इसको आगम की खबर से भी विशेष जान ऐसेही जब तू इन्द्रियों और संकल्प के देश से उल्लङ्घित होवे तब जलों पर चलने और आकाश विषे उड़नेसे भी इस अवस्थाको विशेष जान बहुरि जब तू सिद्धि करके एक रात्रिविषे सहस्र योजनों का पन्थ न काटसके तौ भी संशय न कर क्योंकि जब तू संसार के भोगों और जंजालों

से उल्लङ्घित हुआ तब तैंने सहस्रयोजनों के पन्थ को पीछे डालाहै और जब तू एक चरण साथ पर्वत पर चढ़ न सके तो भी शोकवान् न होहु इस करके कि जब तैंने पापसे उत्पन्न हुये पैसेका त्याग किया तब पहाड़के लङ्घने से विशेष है पर इस प्रकार के छलों का बखान सम्पूर्ण करना अधिक विस्तारकर होता है ताते धनवान् भी अनेक प्रकार छलेहुयेहैं क्योंकि केते पुरुष धनको प्रथम पापों करके उपजावते हैं बहुरि उसही धन करके कूप और ताल और पुल बनाते हैं और इसी कर्म को अपना पुरुषार्थ जानते हैं सो उत्तम वार्त्ता यहहै कि जिस मनुष्य का धन पाप अथवा छल साथ लीजिये तब वह धन तिसही को फेरदेना विशेष है पर यह अभिमानी पुरुष अपने मान के निमित्त ऐसे नहीं करते ताते छलेहुये कहेजाते हैं बहुरि एक और धनवान् ऐसे होते हैं जो शुद्ध व्यवहार करके धनको उपजावते हैं और उस करके नाना प्रकारके धर्मस्थान बनवाते हैं पर उनके चित्त विषे मान और दम्भका ही प्रयोजन होता है ताते स्थानों के द्वारपर अपना नाम लिखते हैं और जब कोई उन से कहे कि भगवत् अन्तर्यामी है तुम अपना नाम क्यों लिखावते हो तब इसका त्याग नहीं करते सो यह प्रसिद्धही लक्षण दम्भकाहै क्योंकि अर्थी को एक पैसाभी नहीं देसक्ते और मान के निमित्त कितने सहस्र रुपया खर्चते हैं इस करके कि अर्थी का माथा पृथ्वी के घरकी नाईं नहीं तजा उसके ऊपर अपना नाम लिख राखें बहुरि एक और धनवान् ऐसे होते हैं जो दम्भ और मान के प्रयोजन बिनाही धर्मस्थान बनावते हैं पर उनमें नाना प्रकार की चित्रकारी रचते हैं सो यह भी बड़ी मूर्खताहै क्योंकि जब भजन के स्थानविषे अधिक चित्रकारी होती है तब प्रथम तो उस को देखकर लोगों के चित्त बहुत विक्षेपता को प्राप्त होते हैं बहुरि और लोगभी देखकर चाहते हैं कि ऐसे गृह हम भी बनावें सो इस करके वह दोनों पाप प्रसिद्ध जगत् में होते हैं और चित्रकारी करावनेहारे पुरुष इस भेद को नहीं जानते इसीपर महापुरुष ने कहाहै कि भजनके स्थानों विषे चित्रकारी करना और पोथियों पर स्वर्ण लगावना बड़ी अवज्ञा है क्योंकि इस करके भजन की एकाग्रता और वचनों के अर्थ से शून्य रहजाते हैं सो भजन का मूल यह है जो इस का मन माया से विरक्त होकर स्थिर होजावे पर जिस स्थान को देखकर चित्त की चपलता अधिक होवे तब जानिये कि इसने भजन के स्थान को उजाड़

किया है और मन्दबुद्धि जीव ऐसे भेद को पहिंचान नहीं सके बहुरि एक और धनवान् ऐसे होते हैं जो आपको उदार जनावनेके निमित्त यज्ञ और क्षेत्र सदा व्रत करके अतीतों को अपने द्वारपर इकट्ठा करते हैं इस करके कि नगरों विषे हमारी उदारता की बड़ाई होवेगी सो ऐसे पुरुष सर्वथा मान और दम्भ करके छलेहुये होतेहैं क्योंकि गुप्त तो भूखे को एक रोटी भी नहीं देसक्ने और प्रसिद्ध स्थानों विषे नाना प्रकार के यज्ञ और दान करतेहैं इसीपर एक वार्ता है कि किसी ने बशरहाफी सन्त से कहाथा कि सहस्र रुपया मेरे पास हैं पर मैं इसको तीर्थों के मार्ग विषे खर्चना चाहताहूं तब उन्होंने पूछा कि तू तीर्थों पर भगवत् की प्रसन्नता के निमित्त जाता है अथवा तमाशा देखने के निमित्त चलाहै तब उस पुरुष ने कहा कि मुझको भगवत् की प्रसन्नताही की प्रीतिहै यह सुनकर उन्हों ने कहा कि तू यह धन किसी ऋणी अथवा धनहीन कुटुम्बी को देडाल तब उसके हृदय की प्रसन्नता सहस्र तीर्थों के फलसे विशेष है बहुरि उस पुरुष ने कहा कि मुझको तीर्थयात्रा की रुचि अधिक है तब उन्होंने कहा कि तेरा धन पापोंकरके उपजाहुआ जानाजाताहै ताते जबलग तू अशुभ मार्ग विषे न खर्चेगा तबलग तेरे मनको शान्ति न आवेगी बहुरि एक और धनवान् ऐसे कृपण होतेहैं कि यद्यपि दशवां अंश देकर भी अपनी स्तुति और टहलकराय लेतेहैं और इतर अर्थीको नहीं देसक्ने सो ऐसा दान निष्फल होताहै क्योंकि उसके फलको टहल और स्तुतिकी कामना नष्ट करडालती है और दानदेनेवाला पुरुष मूर्खता करके ऐसे जानताहै कि मैंने शास्त्रकी मर्याद अनुसार दशवां अंशदिया है पर दान की युक्ति समझे विना धनको व्यर्थही खोतेहैं और झूठाही अभिमान करतेहैं बहुरि एक और धनवान् ऐसे कृपण होतेहैं जो दशवां अंश भी नहीं देसक्ने ताते धन को इकट्ठा करके अपने पास रखते हैं और भजन स्मरण विषे रात्रि दिन सावधान रहते हैं पर उनको पैसा खर्चना कठिन होता है और वह आपको भजनी जानते हैं सो तिसका दृष्टान्त यह है जैसे किसी के शीश विषे पीड़ा होवे और चरणों पर औषध का लेपकरे तब ऐसी औषधकर उसकी पीड़ा कब दूरहोती है तैसेही कृपण तपस्वी जो विपरीतबुद्धि हैं सो इतना भेद नहीं समझ सकते कि हमारे हृदयविषे कृपणता का रोग प्रबल है अथवा अधिक आहार का रोग प्रबल है ताते व्रत और संयम करके आहार को घटावते जाते हैं और

दया दानरूपी जो कृपणता की औषध है तिसको अङ्गीकार नहीं करते पर यह जेते छल मैंने वर्णन किये हैं और और भी जो नानाप्रकार के छल हैं सो धनवान् पुरुष इनसे रहित नहीं होसके अथवा जिसको कुछ धर्म की बूझ प्राप्तहुई होवे तब ऐसाही पुरुष इन छलों से मुक्त होता है और मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जिज्ञासुजन मन के छलों और भजन के विघ्नों को भलीप्रकार पहिंचाने तब हृदय विषे उसके निष्काम प्रीति भगवत् की प्रबल होवे और छलोंसे आपको बचाय राखे और शरीर के कार्यमात्र से अधिक माया की प्रीति से विरक्त होवे और सर्वथा अपनी मृत्यु को निकट देखे और परलोक मार्ग के तोशे विना किसी पदार्थ विषे आसक्त न होवे और जिस पुरुष के ऊपर भगवत् की सहायता होती है तब उसको यह वार्ता सुगम होती है अन्यथा नहीं होसक्ती ॥

इति निषेधप्रकरण नाम तृतीयम्प्रकरणं समाप्तम् ॥

चौथा प्रकरण ॥

प्रथम सर्ग ॥

त्यागके वर्णन में ॥

ताते जान तू कि जिज्ञासु की आदि अवस्था पापों का त्याग है और धर्म के मार्ग विषे सर्व मनुष्यों को अवश्यही त्याग की अपेक्षा होती है क्योंकि यह मनुष्य प्रथमही निष्पाप नहीं होता सो केवल निष्पाप और निर्मल देवते कहे हैं और सर्वथा पापरूप असुर हैं ताते प्रसिद्ध हुआ कि भगवत् के भय करके पापों का त्यागकरना मनुष्यही का अधिकार है और सर्व आयुष्पर्यन्त पापों विषे आसक्त रहना असुरों का लक्षण है सो जिस पुरुष ने पापों की मनसा का त्याग किया है और व्यतीतहुये पापों के पुनश्चरण विषे सावधान हुआ है सो उत्तम मनुष्य वही कहावता है पर प्रथम इस जीव की उत्पत्ति नीच और मलिन है इसकरके कि आदि उत्पत्ति विषे भगवत् ने इसके ऊपर भोगों को प्रेरा है और भोगों की शत्रु जो बुद्धि है सो वह पीछे किशोर अवस्था विषे प्रकट होती है ताते भोगों ने बालक अवस्था विषेही हृदयरूपी गढ़ को घेरलिया है और मन का स्वभाव इनही के साथ मिलाहुआ है बहुरि जब निर्मल बुद्धि प्रकट होती है तब इस जीव को अवश्यही भोगों के त्याग और पुरुषार्थ की अपेक्षा होती है

इसी कारण से कहा है कि प्रथम सर्व मनुष्यों का अधिकार पापों का त्याग है और जिज्ञासु की आदि अवस्था यही है सो त्याग का अर्थ यह है कि अशुभ मार्ग की ओर से अपने मुख को फेरना और शुभ मार्ग विषे सम्मुख होना (अथ प्रकट करनी महिमा त्यागकी) ताते जान तू कि भगवत् ने सर्व मनुष्यों को त्यागही विशेष कहा है और इसप्रकार आज्ञा करी है कि जिस पुरुष को मुक्त होने की इच्छा होवे तब चाहिये कि प्रथम पापों का त्यागकरे और महापुरुष ने कहा है कि भगवत् इस जीव के त्याग को अन्तकाल पर्यन्त प्रमाण करता है और जब इस मनुष्य से कुछ पाप होजावे तब उसका पश्चात्ताप करनाही त्याग है और यों भी कहा है कि जिस स्थानविषे विषयीजीव इकट्ठे होवें और नानाप्रकार के चञ्चल वचन कहें सो तिस स्थानविषे कदाचित् स्थित न होवो क्योंकि ऐसे ठौरविषे अवश्यही इस जीव का धर्म नष्ट होजाता है ताते नरकों का अधिकारी होता है और जो पुरुष उस स्थान को त्याग देता है सो तिसका धर्म दृढ़ रहता है और जो पुरुष पापकर्म करके आपको भूला मानता है तब चित्रगुप्त को भी वह पाप भूल जाताहै और यों भी कहाहै कि जिससे इस लोक में दिन विषे कुछ पाप होजावे और रात्रि में आपको भूलाजान उसे त्यागे तब भगवत वह त्याग प्रमाण करलेता है और दया के द्वारे को इसके ऊपर बन्द नहीं रखता ऐसेही जबलग इस जीव के प्राण नहीं जाते तबलग वह द्वार खुलाही रहता है और योंभी कहा है कि जो पुरुष पापकरके आपको भूलाजाने और उसका त्याग करे तब निस्सन्देह उसकी गति उत्तमहोती है क्योंकि पापकर्म करके उसको त्याग देना ऐसे है जैसे किसी ने पाप कियाही न होवे पर पापों का त्याग करना यही है कि फिर उस पापकी मंशाही न करे और योंभी कहा है कि त्यागी पुरुष भगवत् का अतिप्रियतम है और त्यागी जनको देखकर भगवत् अधिक प्रसन्न होता है और जो पुरुष पाप कर्म करके आपको क्षमा कराया चाहता है सो भगवत् निस्सन्देह तिसपर क्षमा करता है पर जो पुरुष मन्मथके विषे सर्वदा दृढ़ होता है और मन्मथ के त्यागने की श्रद्धाही नहीं रखता सो ऐसा पुरुष सर्वदा सन्तजनों की सहायता से दूर रहता है इसीपर एक वार्ता है कि इबराहीम सन्तने किसी पापी को देखकर ग्लानि करीथी तब उनको आकाशवाणी हुई कि तू इसके ऊपर ग्लानि न कर क्योंकि जब यह मेरे भयकरके पाप-

कर्मों का त्याग करेगा तबहीं मैं इसके त्यागको प्रमाण करूंगा और जब आपको भूला जानकर मेरे आगे दीनचित्त होवेगा तो भी मैं उसको क्षमा करलूंगा इस करके कि मेरा नाम दीनदयालु है (अथ प्रकट करना अर्थ त्यागका) ताते जान तू कि त्याग से आगे ही जिज्ञासुके चित्तविषे धर्म का प्रकाश प्रकट होता है तब उस प्रकाश करके पापको हलाहल विषवत् जानता है बहुरि ऐसे जानता है कि मैंने इस विष को बहुत अङ्गीकार किया है और मरने के निकट प्राप्त हुआ हूं ऐसे जानकर अपने चित्त विषे अधिक भयवान् होता है और पश्चात्ताप करने लगता है जैसे किसी मनुष्य ने मूर्खता करके मधु के संग विष खालिया होवे बहुरि जब विष का निश्चयकरे तब अधिक त्रास को पावता है और यत्न करके वमनकिया चाहता है और उसही के उपचार विषे सावधान होता है तैसेही जिज्ञासुजन को यह बूझ प्राप्तहोती है कि मैंने जितने भोगों को मीठे जानकर प्रीतिसंयुक्त भोगा है सो सबों विषे पापरूपी विष मिला हुआ था ताते भय और पश्चात्ताप की अग्नि विषे जलने लगता है और उसी अग्नि करके भोगवासना जलजाती है बहुरि जेते पापकर्म आगे किये थे सो तिनके पुनश्चरण की मंशा करता है ताते रजोगुण तमोगुणी पहरावे को दूर करता है और सात्त्विकी धर्म का पहरावा पहरता है तिससे पीछे जो आगे विषयी जीवों की संगति करताथा सो अब ज्ञानवानों की संगति को ग्रहण करता है तात्पर्य यह कि त्याग का रूप भय और त्रास है और मूल इसका धर्म का प्रकाश है और पापों का पुनश्चरण करना इसकी शाखा है बहुरि सर्व इन्द्रियों को पापों से रोक रखना और भगवत् भजन विषे सावधान होना इसका फल है (अथ प्रकट करना इसका कि त्याग करना सर्व मनुष्यों का अधिकार है और सबको सब समय विषे त्याग करना प्रमाण है) ताते जान तू कि प्रथम तो इस मनुष्य को प्रतीति की हीनता का त्याग करना कहा है और यद्यपि लोगों के मुख से सुनकर यह भी भगवत् के ऊपर प्रतीति करता है पर हृदय करके उससे अचेत है ताते चाहिये कि उस अचेतता का त्यागकरे और धर्म के अर्थको भलीप्रकार पहिंचाने सो धर्म का पहिंचानना विद्या की अधिकता करके नहीं कहा ताते धर्म की दृढ़ता का लक्षण यह है कि सर्व कर्मों विषे धर्म और विचार की मर्याद अनुसार विचरे और सन्तजनों की आज्ञा को प्रीतिसंयुक्त प्रमाणकरे और अपने मनकी वासना

का आज्ञाकारी न होवे ताते जानिये कि जिस पुरुष की करतूति मलिन होवे तिसकी प्रतीतिही दृढ़ नहीं क्योंकि जिस पुरुष ने पापों को विषरूप जाना है वह ऐसी दुःखदायक वस्तु को क्योंकर अङ्गीकार करताहै पर इस मनुष्यसे पाप-कर्म तबहीं होता है जब भोगों की प्रीति बिषे प्रथमही इसकी प्रतीति स्पष्ट हो-जावे अथवा शुद्ध बुद्धि का प्रकाश वासना के अन्धकार बिषे छिपजावे तात्पर्य यह कि प्रथम इस मनुष्य को प्रतीति की हीनता का त्यागकरना प्रमाण कहा है बहुरि इन्द्रियों के पापकर्म का त्यागकरना चाहिये है और जब इन्द्रियों करके पापों से रहित हुआ तब मान और दम्भ और ईर्षा और अभिमान आदिक जो हृदय के मलिन स्वभाव हैं सो तिनका त्याग करना भी अवश्यही प्रमाण है क्योंकि यह बुरे स्वभाव बुद्धि के आवरण करनेहारे हैं और सर्व पापकर्मों के बीज हैं ताते चाहिये कि सम्पूर्ण स्वभावों को अपने वशीकार करे सो यह सा-धना भी बड़े पुरुषार्थ करके सिद्ध होती है बहुरि इससे पीछे जिज्ञासु को व्यर्थ चितवनी और मनके संकल्पों का त्याग करना प्रमाण कहा है और महाराज के भजन से जो किसी समय बिषे अचेत होता है सो तिस अचेतता को दूर किया चाहिये है इस करके कि एक क्षणभी भगवत् का बिसारना सर्व बिघ्नों का बीज है बहुरि यह मनुष्य सर्वदा भगवत् भजनही करे और भगवत् भजन की अवस्था बिषे बड़े भेद हैं अर्थ यह कि एक भजन स्थूल है और एक सूक्ष्म है और एक उससे भी अतिसूक्ष्म होता है ऐसेही सूक्ष्मता से अधिक सूक्ष्मता चली जाती है ताते चाहिये कि स्थूलता को त्यागकर सूक्ष्मही की ओर होवे किसी स्थान और अवस्था पर अटक न रहे क्योंकि उत्तम पद को त्यागकर नीचपद बिषे अटक रहना भी हानि का कारण है ताते पूर्ण पदके मार्ग बिषे जितने और स्थान हैं सो सबों का त्याग करनाही प्रेम की दृढ़ता है इसीपर महा-पुरुष ने कहा है कि मैं एक दिन बिषे सत्तरबार आपको भूला जानता हूं और उस अवस्था का त्याग करके महाराज के आगे दीन होता हूं सो इसका अर्थ यह है कि उनकी अवस्था क्षण क्षण बिषे बढ़तीजाती थी और और पद बिषे स्थित होते थे सो जब एक पद को त्यागकर दूसरे पद बिषे पहुँचते थे तब प्रथम पद को अपनी अवज्ञा जानते थे और आपको भूला जानकर क्षमा करावने लगते थे सो इस अवस्था का दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई पुरुष प्रथम पांच पैसे

की मजदूरी करता होवे तब उसी विषे प्रसन्न होता है बहुरि जब ऐसे जानता है कि अमुक व्यवहार करके इतनेही काल में पांच रुपये प्राप्त होते हैं तब शोकवान् होकर प्रथम मजदूरी को त्यागदेता है और दूसरे व्यवहार को ग्रहणकरता है तब पांच रुपये पायकर प्रसन्न होता है बहुरि जब इस प्रकार जानता है कि रत्नों का व्यवहार करके एक दिन विषेही सहस्रों रुपये का लाभ होता है तब दूसरे व्यवहारको भी त्यागदेता है और रत्नों के व्यवहारही को अङ्गीकार करता है सो इसी पर सन्तजनों ने कहा है कि जिज्ञासु की आदि अवस्था के जेते शुभकर्म हैं सो ज्ञानवानों के निकट वही पापरूप हैं पर जब कोई इस प्रकार प्रश्न करे कि यद्यपि प्रतीति की हीनता और पाप और अचेतता तो अवश्य त्यागकरने के योग्य है क्योंकि जबलग इनका त्याग न करे तब निस्सन्देह पापी होता है और ऊन पदको त्यागकर ऊंचपद विषे स्थितहोने को विशेष कहना भी प्रमाण है पर उत्तम पुरुषों ने जो ऊंचपद विषे ठहरने को अवज्ञा कहा है सो तिसका कारण क्या है ? ताते इसका उत्तर यह है कि योग्य और अयोग्य कर्म भी दो प्रकार के कहे हैं सो प्रथम तो संसारी जीवों को स्थूल पापों का त्यागकरना प्रमाण कहा है इसकरके कि अल्पबुद्धि भी नरकों से मुक्त होवें बहुरि दूसरी भलाई और बुराई जिज्ञासुओं का आधार है और संसारीजीव उस अवस्था विषे स्थित हो नहीं सके सो यह है कि यद्यपि ज्ञानीजनों को नरकों का दुःख तो कदाचित् नहीं होता पर जब अपने से उत्तम अवस्थावालों को देखते हैं तब अपनी न्यून अवस्थापर शोकवान् होते हैं और इस प्रकार कहते हैं कि हमने ऐसा पुरुषार्थ क्यों न किया इसी कारण से कहा है कि उत्तम अवस्था से अप्राप्त रहना और न्यूनपद विषे स्थित रहना भी अयोग्य है ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन पुरुषार्थ करके किसी पद विषे अटक न रहें और उत्तम से उत्तम पदवी की ओर चलाजावे तब ऐसे दुःख से मुक्त होवे इसीपर सन्तजनों ने कहा है कि परलोक विषे सब किसी को पश्चात्ताप होवेगा पापी मनुष्य तो अपने पापों को देखकर पश्चात्ताप करेंगे और भजनवान् इस प्रकार कहेंगे कि हमने अधिक भजन क्यों न किया ऐसे जानकर बुद्धिमान् पुरुष परमार्थ के मार्ग विषे आलस नहीं करते और यथाशक्ति आगे ही को चले जाते हैं और पापरहित भोगों को अङ्गीकार नहीं करते इसीपर आयशाने महापुरुष से पूछा

था कि तुम तो निष्पाप हो ताते तुम निद्रा और आहार का इतना संयम क्यों करते हो तब उन्होंने कहा कि मेरे भाई महापुरुष मुझ से आगे गये हैं और उन्हों ने पुरुषार्थ करके उत्तम पदको पाया है ताते मैं भी इसीप्रकार चाहताहूं कि संसार के सुखों में आसक्त होकर उनसे पीछे न रहूं तो भला है और कुछ दिन जो जगत् का जीवना है सो वैराग्य त्याग बिषे ही व्यतीत करूं उसीपर एक वार्ता है कि एकबार एक महापुरुष पत्थर को शीश तले रखकर सोयरहे थे तब माया मनुष्यरूप धरकर उनसे कहनेलगी कि हे सन्तजी! तुम माया का त्याग करके बहुरि पश्चात्ताप को प्राप्तहुये हो इस करके कि पत्थर को शीश तले रख कर सुखसे नींद लिया चाहते हो तब यह सुनकर उन्हों ने पत्थर को उठाडाला और कहनेलगे कि माया के सुखों के साथ पत्थर भी तू ले तात्पर्य यह कि जिसप्रकार जिज्ञासुजन परलोक के भय करके परमवैराग्य के बिषे स्थित हुये हैं सो संसारी जीव उस अवस्था को कब पासक्ते हैं ताते तू अपने चित्त बिषे ऐसा अनुमान न कर कि उन्होंने यह यत्न व्यर्थ ही किया है और दृढ़ प्रतीति करके उसी मार्ग को अङ्गीकार कर और संसारी जीवों के पुण्य का पीछा न ले क्योंकि इनका मार्गही भिन्न है इस करके प्रसिद्ध हुआ कि यह मनुष्य सब समय और सर्व अवस्था बिषे त्याग की अपेक्षासे रहित नहीं होसक्ता इसीपर एक सन्तने कहा है कि जब यह मनुष्य किसी पदार्थ की ओर प्रीति सहित देखताहै तब निस्संदेह अपना समय व्यर्थ खोवता है और वह प्रीति अन्तकाल बिषे इसको अवश्य पश्चात्ताप देती है पर यह बड़ा आश्चर्य है कि यह पुरुष व्यतीत हुये समयकी नाईं आगे भी अपनी आयुष् को खोवता है और मूर्खता करके जानता नहीं और जब विचार करके देखिये तब जिस प्रकार इस मनुष्य के श्वासरूपी रत्न व्यर्थ ही चले जाते हैं ताते सर्वकाल इसको रुदनही करना प्रमाण है और यद्यपि इस समय बिषे अचेतता करके रुदन नहीं करता तब परलोक बिषे दुःखित होकर अधिकही रोवता रहेगा क्योंकि यह आयुष्रूपी पदार्थ अमोल है और इसी करके परमपद को पहुँच सक्ता है सो भोगों की प्रीति बिषे व्यर्थही चली जाती है और यह मूर्ख सर्वदा उससे अचेत है पर यह मनुष्य तबही सुचेत होता है जब इसकी सुचेतताका लाभ कुछ न होवेगा इसी पर महाराज ने कहा है कि जब यह मनुष्य अन्तकाल बिषे यमगणों को देखताहै तब ऐसे जानताहै कि मेरे

चलने का समय आया है और अधिक पश्चात्ताप करके रुदन करने लगताहै पर उस पश्चात्ताप करके फल कुछ नहीं होता बहुरि यमगणों से इस प्रकार कहता है कि एक दिन अथवा एक घड़ी मुझको अवकाश देवो तब मैं कुछ भजन कर लेवों तब वह यमगण ऐसे कहने लगते हैं कि आगे महाराज ने तुझको दिन और पहर बहुत दिये थे पर अब तो तेरी आयुष् पूर्ण होचुकी और कोई पल घड़ी शेष नहीं रही बहुरि जब यह प्राणी निराश होताहै तब निराशता करके धर्म- हीन होजाताहै और दुःखों का अधिकारी होताहै और जिसके ऊपर श्रीरघुनाथ जी सहायता करते हैं तब उसका धर्म नष्ट नहीं होता ताते परमसुखों को पा- वताहै इसी पर सन्तजनों ने कहाहै कि भगवत् दोबार इस मनुष्य के साथ वचन करताहै सो प्रथम तो गर्भ बिषे इसप्रकार आज्ञा करताहै कि हे मनुष्य ! मैंने तुझको भजन स्मरण का अधिकारी बनाया है और आयुष्रूपी पदार्थ तुझको दिया है ताते तुझको चाहिये कि भलीप्रकार मेरे भजन बिषे सावधान होवे और मेरी बख़शीश को पापों बिषे न लगावे बहुरि दूसरीबार मृत्यु हुये पीछे इस प्रकार पूछता है कि हे मनुष्य ! जब तैंने मेरे दिये पदार्थों को शुभकर्मों बिषे लगायाहै तब उसके फल को प्राप्त हो और जब तैंने वह पदार्थ पापों बिषे लगाये हैं तब नरकों के दुःखों को भोग (अथ प्रकट करना इसका कि जब यह मनुष्य युक्तिपूर्वक त्याग करता है तब उसको भगवत् अवश्य प्रमाण क- रता है) ताते जान तू कि जब तैंने युक्ति अनुसार पापों का त्याग किया तब उसके प्रमाण होने बिषे संशय न कर और इस वार्त्ता को भलीप्रकार विचार करके देख कि मेरा त्याग युक्ति अनुसार है अथवा युक्ति से रहित है सो जिस पुरुष ने इस जीव के भेदको भलीप्रकार पहिंचाना है बहुरि जीव और देहके सम्बन्ध को भी जिसने समझाहै और भगवत् के साथ जो इस जीव का सम्बन्ध है सो तिसको भी भलीप्रकार पहिंचाना है तब उसको इस वार्त्ता बिषे संशय कुछ नहीं होता कि भोग और पाप आवरण करनेहारे हैं और इनका त्याग करना महाराज की निकटता का कारण है इस करके कि इस जीव की उत्पत्ति का कारण निर्मल स्वरूप है ताते जब इसका हृदय दर्पण की नाईं जंगाल से रहित होवे तब इस बिषे महाराज के शुद्धस्वरूप का प्रतिबिम्ब भासे सो जब यह पापकर्म करताहै तब हृदयरूपी दर्पण मलिन होजाताहै और जब शुभकर्म बिषे

स्थित होताहै तब वह प्रकाश पापों के अन्धकार को दूर करडारता है सो इस जीव के हृदयपर रज तमरूपी अन्धकार और सात्त्विकी प्रकाश सर्वदा ही वर्त्तमान रहते हैं पर जब पापों का अन्धकार अधिक होजावे और यह पुरुष भगवत् का भयकरके पापों को त्यागदेवे तब निस्सन्देह इस अन्धकार को उसका प्रकाश नष्ट करडारता है और हृदयरूपी दर्पण निर्मल होताहै पर जिस का चित्त पापोंके अन्धकार करके ऐसा मलिन होजावे कि इसकी बुराई को समझ न सके तब ऐसे पुरुष से त्यागरूपी उपाय कदाचित् नहीं होता और यद्यपि मुख से इस प्रकार कहता है कि मैंने भोगों का त्याग किया है तौभी उसका कहना व्यर्थ होताहै क्योंकि जैसे वस्त्रको जल और साबुन साथ धोइलीजै तब वह शीघ्रही उज्ज्वल होइ आवता है पर जब वस्त्रके धोवने की वार्त्ताही करता रहे तब कदाचित् निर्मल नहीं होता इसी पर महापुरुषने कहा है कि जब तुझ से कुछ पाप होजावे तब उससे पीछे शीघ्रही भला कर्म कर जो वह बुराई नष्ट होजावे और जब तेरे पाप इतनेहोवें कि अधिकता करके आकाश को छिपालेवें पर जब तू श्रीराघवजी का भयकरके उनका त्यागकरे तौभी उस त्यागको श्रीजानकीनाथ अपनी दया करके प्रमाण करलेतेहैं और योंभी कहाहै कि केते मनुष्य पापही के सम्बन्ध करके स्वर्गको पाते हैं तब किसीने पूछा कि हे महा-पुरुष ! यह मनुष्य पाप करके परमसुखका अधिकारी क्योंकर होसक्ता है ? तब उन्होंने कहा कि प्रथम जिससे कुछ अवज्ञा होजावे और फिर वह त्रासमान होकर उसका त्यागकरे और भयकरके अपनी अवज्ञाको विस्मरणकरे और सर्वदा अधीन चित्तरहे तब वह निस्सन्देह परमसुखका अधिकारी होताहै औरयोंभी कहा है कि जैसे जलकरके मैल उतर जाताहै तैसेही शुभकर्म करके अशुभकर्मों का नाश होताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि जिससमय शैतान को धिक्कारहुई थी तब क्रोध करके कहनेलगा कि हे महाराज ! तेरी दुहाई करके कहता हूं कि जबलग यह मनुष्य मृत्यु न होवेगा तबलग इसके हृदय से मैं बाहर न निकसूंगा बहुरि महाराज ने कहा कि मैं भी अपनी बड़ाई की दुहाई करके कहताहूं कि जबलग इस मनुष्य का शरीर न छूटेगा तबलग मैंभी त्याग के द्वारको बन्द न करूंगा इसीपर एक सन्त ने भी कहाहै कि सर्व महापुरुषों को श्रीरामजी ने इस प्रकार आज्ञा करी है कि तुम पापी मनुष्यों से हमारी ओरसे कहो कि जब तुम ग्लानि

और भय मानकर पापों का त्याग करोगे तब मैं सब पाप तुम्हारे क्षमा करके तुमको अपनायलूंगा और धर्मात्मा पुरुषों को इस प्रकार भय देवो कि जब मैं यथार्थ न्याय करूं तब वह भी दण्ड के अधिकारी होवेंगे और एक और सन्त ने भी कहा है कि रसना करके भगवत के उपकार को कोई गिन नहीं सक्ता ताते चाहिये कि जिज्ञासुजन रात्रिदिन अपने अवगुणों को क्षमा कराता रहै तौ महाराज अपनी दया करके इस जीवके पापों को क्षमा करताहै इसीपर एक वार्त्ता है कि एक तामसी मनुष्य ने एक तपस्वी से पूछाथा कि मैंने पाप बहुत किये हैं और निन्यानबे मनुष्यों का घात कियाहै सो जब इससे आगे पापों का त्याग करूं तब भगवत् क्षमा करेगा कि नहीं तपस्वी ने कहा कि तू क्षमा का अधिकारी नहीं क्योंकि तू महापापी है यह वचन सुनकर वह निराश हुआ और उस तपस्वी को मारडाला बहुरि एक विद्यावान् से पूछताभया कि मैंने सौ मनुष्यों का घात किया है पर जब मैं आगे को पापों से रहित होऊं तब महाराज मेरी अवज्ञाको क्षमा करेगा कि नहीं करेगा तब उस बुद्धिमान्ने कहा कि जिस नगर बिषे तू रहता है सो सबही तामसी मनुष्य तहां रहते हैं ताते जब तू इनकी संगति को त्याग कर अमुक नगरमें सात्त्विकी संगति बिषे जायरहै तब तेरा त्याग प्रमाण होवेगा बहुरि वह पुरुष पापकर्मों को त्यागकर अपने नगर को छोड़ चला और महाराज की इच्छा करके मार्ग बिषेही शरीर उसका छूटगया तब यमगण और श्रीरामपार्षद उसका जीव लेनेको आये और अपनी अपनी ओर खैंचनेलगे तब उनको आकाशवाणी हुई कि यह पुरुष एक हाथ प्रमाण अपने नगर की भूमि से श्रीरामभक्तों के नगरकी पृथ्वीपर अधिक आया है ताते यह मुक्ति का अधिकारी है तात्पर्य यहकि यद्यपि शरीरधारी मनुष्य सर्वदा पापों से रहित नहीं होसक्ते पर जब अल्पमात्र भी शुभकर्मों बिषे इसकी रुचि अधिक होवे और पापों की अभिलाषा हीन होवे तौभी मुक्ति का अधिकारी होता है (अथ प्रकट करना भेद लघु दीर्घपापों का) ताते जान तू कि एक लघु पाप है और एक दीर्घ पाप कहे हैं पर जब इस मनुष्य से अकस्मात् लघु पाप होजावे और उस पाप बिषे अधिक न बिचरे तब त्यागकरके वह पाप सुगमही क्षमा होजाता है इसी पर महापुरुष ने कहा है कि जब तुम दीर्घपापों से रहित होओ तब लघुपाप तुम्हारे मैं क्षमाकरलूंगा ताते दीर्घ पापों का पहिंचानना अवश्यही प्रमाण हुआ